ॐ

पण्डितप्रवर श्री टोडरमलजी विरचित

मोक्षमार्ग-प्रकाशक
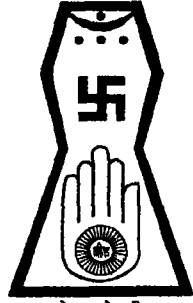
❉ प्रकाशक ❉

पं. हँसमुख जैन प्रतिष्ठाचार्य

'आगम दर्शन', शास्त्रीनगर

धरियावद ३१३ ६०५

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

✽ लेखक : पण्डितप्रवर टोडरमलजी

✽ सम्पादक : पण्डित नीरज जैन, सतना
डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर
पं. हँसमुख जैन, धरियावद

✽ संस्करण : प्रथम, १००० प्रतियाँ, १९९६
द्वितीय, २००० प्रतियाँ, १९९८

✽ मूल्य : लागत ६५) रुपये

✽ संकल्पना : निधि कम्प्यूटर्स, जोधपुर

✽ मुद्रक : हिन्दुस्तान एन्टरप्राइजेज, जोधपुर

✽ प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान : पं. हँसमुख जैन प्रतिष्ठाचार्य
'आगम दर्शन', शास्त्रीनगर,
धरियावद ३१३ ६०५

मोक्षमार्ग–प्रकाशक का यह अभिनव संस्करण

हिन्दी में जैन दर्शन के प्राचीन जैन साहित्य की चर्चा करें तो अनिवार्य रूप से उसमें आचार्यकल्प पंडित श्री टोडरमलजी के **मोक्षमार्ग- प्रकाशक** का समावेश करना ही पड़ेगा। प्राप्त ग्रन्थ **नौ अधिकार** प्रमाण है। नौ अधिकारों में क्रमश: १. पंचपरमेष्ठी का स्वरूप, २. संसारावस्था का स्वरूप ३. संसारदु:ख तथा मोक्षसुख, ४. मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्र, ५. विविध मत समीक्षा ६. असत्यायतनों का स्वरूप, ७. जैन मिथ्यादृष्टि का विवेचन ८. आगम का स्वरूप तथा ९. मोक्षमार्ग का स्वरूप वर्णित है। **यद्यपि ग्रन्थ का मूल विषय मोक्षमार्ग का प्रकाशन है तथापि प्रकरणवश इसमें कर्मसिद्धान्त, निमित्त उपादान, स्याद्वाद-अनेकान्त, निश्चय-व्यवहार, पुण्य-पाप, दैव-पुरुषार्थ आदि विषयों पर भी तात्त्विक एवं आध्यात्मिक विवेचना की गई है। इस प्रकार इसमें एक तरह से जैनागम का सार आ गया है।** समग्र जैन विचार-पद्धति की सटीक और चुस्त रूपरेखा प्रस्तुत करने में इस ग्रन्थ को अद्वितीय माना गया है। अब तक शायद इस ग्रन्थ की एक लाख से अधिक प्रतियाँ छप चुकी होंगी। कहना न होगा कि इतना विस्तृत प्रचार-प्रसार बिरले ही ग्रन्थों को प्राप्त होता है।

प्रकाशन का प्रारम्भ :

सवा दो सौ साल पूर्व विक्रम संवत् १८२४-२५ में रचित मोक्षमार्ग-प्रकाशक की हस्तलिखित प्रतियाँ इतनी प्रचलित होती रहीं कि हिन्दीभाषी प्रदेशों के प्राय: हर जिनालय में वे मिल जाती हैं। मुद्रणयंत्रों के प्रादुर्भाव के साथ ही इस उपयोगी ग्रन्थ के प्रकाशन के प्रयास प्रारम्भ हो गये। प्राप्त सूचनाओं के आधार पर **सबसे पहले सन् १८९७ में बाबू ज्ञानचन्दजी जैनी ने लाहौर से मोक्षमार्ग-प्रकाशक का पहला संस्करण प्रकाशित किया था।** इसके चौदह वर्ष पश्चात् **सन् १९११ में श्री नाथूराम प्रेमी ने अपने हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई से इसे प्रकाशित किया।** प्रेमीजी इसी संस्करण में पण्डितजी का जीवन-परिचय देना चाहते थे परन्तु किसी कारणवश यह सम्भव नहीं हुआ। बाबू ज्ञानचन्दजी ने पण्डितजी की ढूंढारी भाषा में ''बहुरि'' ''जातैं'' और ''जाकरि'' आदि शब्दों को बदल दिया था, परन्तु प्रेमीजी ने यह बदलाव पसन्द नहीं किया और अपना संस्करण मूल प्रति के अनुरूप 'जस-का-तस' ढूंढारी में ही प्रकाशित किया।

सन् १९३९ में श्री दुलीचन्द परवार ने जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता से इस ग्रन्थ को प्रेमीजी के १९११ के संस्करण की अक्षरश: प्रति कराकर प्रकाशित किया। **इस बीच मुम्बई से ही पं. रामप्रसादजी शास्त्री** द्वारा एक और संस्करण प्रकाशित किया जा चुका था पर उसकी प्रति हमारे देखने में नहीं आई। मात्र उसकी सूचना है।

खड़ी बोली में रूपान्तरण :

मोक्षमार्ग-प्रकाशक की मूल भाषा ढूंढारी राजस्थान के एक छोटे से भू-भाग की भाषा है। पिछले डेढ़-दो सौ वर्षों में उस भाषा में कुछ परिवर्तन भी हुए हैं। हिन्दी का क्षेत्र बहुत बड़ा है और किसी भी ग्रन्थ को ढूंढारी की अपेक्षा प्रचलित हिन्दी या खड़ी बोली में पढ़ना-समझना अधिकाधिक पाठकों के लिए अधिक से अधिक आसान होता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर इस उपयोगी ग्रन्थ को खड़ी बोली में रूपान्तरित करके प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया। १८९७ में बाबू ज्ञानचन्दजी जैनी ने जिसका मंगलाचरण किया था, रूपान्तरण का वह कार्य, पचास वर्ष के बाद १९४७ में पहली बार सामने आया।

सर्वप्रथम पमारी (आगरा) निवासी **पण्डित लालबहादुरजी शास्त्री ने १९४२ में मोक्षमार्ग-प्रकाशक के भाषा-रूपान्तरण का कार्य हाथ में लिया** जिसे उन्होंने दो वर्ष के कठोर परिश्रम से १९४४ में समाप्त कर लिया। परन्तु उसका प्रकाशन भारतवर्षीय दिगम्बर जैनसंघ, चौरासी मथुरा द्वारा सन् १९४८ में, जैन संघ ग्रन्थमाला के दूसरे पुष्प के रूप में सम्भव हुआ। पण्डित लालबहादुरजी शास्त्री ने इस कार्य में बहुत परिश्रम किया। उन्होंने श्री नाथूरामजी प्रेमी द्वारा १९११ में प्रकाशित प्रति को ही मानक प्रति बनाकर कार्य किया। कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति उन्हें उपलब्ध नहीं हो सकी। शास्त्रीजी को श्री प्रेमीजी से इस कार्य में मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। पं. **परमानन्दजी** से उन्हें सहयोग प्राप्त हुआ तथा पं. **कैलाशचन्द जी शास्त्री** का कार्य-निष्पादन में सर्वोपरि योगदान रहा।

मथुरा संघ से प्रकाशित संस्करण में ग्रन्थ को अधुनातन सम्पादकीय पद्धति तथा मुद्रण पद्धति से संवारकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया था। उस समय तक ग्रन्थ के पाँच विभिन्न संस्करण सम्पादक के समक्ष थे। मूल हस्तलिखित प्रतियों में तो अल्प-विराम और पूर्ण-विराम लगाने का प्रचलन ही नहीं था। पैरा भी कहीं कदाचित् ही दर्शाये जाते थे। विषयवार शीर्षक और उपशीर्षक भी नहीं होते थे। पूरे ग्रन्थ में विषयवार शीर्षक/उपशीर्षक देने का कार्य १९११ में प्रेमीजी ने कर लिया था, परन्तु वे सारे शीर्षक ग्रन्थ की सूची में ही दिये गये थे। ग्रन्थ के पृष्ठों पर कोई शीर्षक नहीं थे। पण्डित लालबहादुरजी ने प्रेमीजी द्वारा सूचित शीर्षकों का भरपूर लाभ उठाया और उन्हें कुछ और संवार कर ग्रन्थ में ही यथास्थान जोड़ दिया। इससे पाठकों को बहुत सुभीता हुआ।

पण्डित टोडरमलजी ने मतान्तरों के खण्डन में जगह-जगह उनकी मान्यताओं का उल्लेख तो किया था परन्तु उनके स्रोत स्पष्ट नहीं किये थे। पण्डित लालबहादुरजी ने उन सभी स्थलों को खोज कर ग्रन्थ-प्रकरण-अध्याय और श्लोक सहित उनके संदर्भ अंकित कर दिये और पूरे-पूरे उद्धरण भी सामने ला दिये। यह बहुत परिश्रम-साध्य कार्य था। शास्त्रीजी ने ग्रन्थ के अन्त में विस्तृत परिशिष्ट देकर भी एक बड़ा कार्य किया। परिशिष्ट को दो भागों में विभक्त करके प्रस्तुत किया गया है। पहले भाग में ग्रन्थ के विशेष-स्थलों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है और दूसरे भाग में वे कथाएँ प्रस्तुत की गई हैं

जिनका पण्डित टोडरमलजी ने ग्रन्थ में दृष्टान्त रूप में उपयोग किया था। शास्त्रीजी ने इस सम्पादन कार्य में प्रयुक्त ९९ ग्रन्थों की जो तालिका ग्रन्थ के प्रारम्भ में दी है, उसके अवलोकन मात्र से उनके परिश्रम और अध्यवसाय का संकेत मिल जाता है।

अन्य भाषाओं में अनुवाद :

पं. लालबहादुरजी शास्त्री के इसी संस्करण के आधार पर **श्री धन्यकुमार गंगासा भोरे ने मोक्षमार्ग-प्रकाशक का मराठी अनुवाद तैयार किया**, जो सन् १९५६ में कारंजा से प्रकाशित हुआ। यद्यपि इस प्रकाशन के पूर्व पं. **कल्लप्पा भरमप्पा निटवे** ने मराठी अनुवाद का कार्य प्रारम्भ किया था परन्तु उसके कुछ अंश ''जैन बोधक'' में छपकर ही रह गये। शायद वह अनुवाद पूरा ही नहीं हुआ। सन् १९५६ में मराठी अनुवाद सामने आने तक गुजराती में भी ग्रन्थ के दो संस्करण सामने आ चुके थे।

ग्रन्थ के प्रसार के इन सारे प्रयत्नों के साथ-साथ मूल ढूंढारी में भी उसकी मांग बराबर बनी हुई थी। मूल भाषा की विश्वसनीयता एक ऐसा प्रलोभन था जिसके लिए स्वाध्यायप्रेमी कुछ कठिनाई उठाकर भी उसी भाषा में ग्रन्थ का स्वाध्याय करना सुरक्षित मानते थे। **दिल्ली की 'सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी' ने उसी पचास के दशक में, ग्रन्थ का मूल ढूंढारी संस्करण प्रेमीजी के प्रकाशन के आधार पर प्रकाशित किया।** इसमें मथुरा संघ के आधार पर शीर्षक आदि यथास्थान जोड़ दिये गये थे। यह संस्करण सस्ता और सुलभ होने के कारण बहुत लोकप्रिय हुआ। १९६५ तक सस्ती ग्रन्थमाला चार संस्करण करके दस हजार ग्रन्थ वितरित कर चुकी थी। दिल्ली से ही **श्री मुसद्दीलाल जैन चेरिटेबल ट्रस्ट** ने १९८४ में एक संस्करण प्रकाशित किया। इसके पूर्व **सन् १९२४ में बाबू पन्नालाल चौधरी, वाराणसी** द्वारा तथा १९३६ में **मुनि अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला, बम्बई** द्वारा भी एक-एक संस्करण प्रकाशित हो चुका था। बहुत बाद में **दिल्ली से उर्दू में भी एक संस्करण प्रकाशित हुआ है।**

टोडरमल स्मारक का योगदान :

सुरुचिपूर्ण मुद्रण और वाजिब मूल्य पर, प्रचुर मात्रा में प्रसार की दृष्टि से मोक्षमार्ग-प्रकाशक का उल्लेखनीय प्रकाशन श्री टोडरमल स्मारक, जयपुर से हुआ है। मोटे बड़े टाइप में, अपेक्षाकृत मोटे कागज पर, अच्छी जिल्द के साथ, लागत से भी कम दामों पर इस ग्रन्थ को सबसे पहले सोनगढ़ के 'जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट' के नाम से १९६५-६६ में सामने लाया गया। पिछले तीस-बत्तीस वर्षों में जयपुर से लगभग अस्सी हजार प्रतियाँ वितरित हो चुकी हैं। यह एक सराहनीय कार्य कहा जाना चाहिए।

सोनगढ़ में इस ग्रन्थ को ढूंढारी भाषा से आधुनिक खड़ी बोली में जब भाषान्तरित किया गया तब इसकी प्रामाणिकता पर अनेक प्रश्न चिह्न लगाये गये थे, पर वह बात दब गई और उस समय उठाये गये प्रश्नों के आज तक कोई समाधान या स्पष्टीकरण जयपुर से नहीं दिये गये। इनका पहला संस्करण

निकलने के पूर्व स्व. पं. परमानन्दजी शास्त्री द्वारा सम्पादित चार संस्करण ढूंढारी में सस्ती ग्रन्थमाला, दिल्ली से निकल चुके थे। सोनगढ़ वालों ने उस प्रति का भी अनुकरण किया और जयपुर के वधीचन्द्र दीवान मन्दिर से हस्तलिखित प्रति मँगाकर उसके फोटो लिये तथा उसके सहारे ही खड़ी बोली का संस्करण तैयार किया था।

जब स्वाध्याय मन्दिर का पहला संस्करण आया और उसकी प्रामाणिकता पर संदेह किया गया, तब पं. बालचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री और पं. परमानन्दजी शास्त्री ने जयपुर से वह फोटो प्रति मँगाकर उससे प्रकाशित प्रति का मिलान किया और उसमें ५७ जगह स्खलन या परिवर्तन ढूंढ़ निकाले। इन दोनों विद्वानों ने ग्रन्थ के कतिपय प्रसंगों पर आठ प्रश्न भी उठाये जिन पर विचार करना आवश्यक था। इस सारे ऊहापोह को 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक का प्राग्रूप' नामक एक विस्तृत लेख में दिल्ली की 'अनेकान्त' पत्रिका के वर्ष २०, किरण ६ में पृष्ठ २६१ से २७० तक दस पृष्ठों पर छापा गया। सोनगढ़ पक्ष की ओर से इन आक्षेपों या प्रश्नों का आज तक कोई उत्तर नहीं दिया गया। यद्यपि इस लेख के आधार पर कुछ सुधार अवश्य कर लिये गये।

इस प्रकार वास्तविकता यह है कि -

१. मोक्षमार्ग प्रकाशक परिपूर्ण ग्रन्थ नहीं है। वह अधूरा ग्रन्थ है अत: लेखक की सारी विवक्षाएँ उसमें समाहित नहीं हो सकी हैं।

२. ग्रन्थ की स्वयं लेखक द्वारा तैयार की गई कोई शुद्ध पाण्डुलिपि अब तक उपलब्ध नहीं हुई। दीवानजी का मन्दिर, जयपुर से जो प्रति मिली, जिसके आधार पर सोनगढ़ ट्रस्ट ने अपना संस्करण तैयार किया, वह ग्रन्थ का प्राग्रूप मात्र था। उसके प्रारम्भ के ५५ पत्र (१०९ पृष्ठ) किसी अन्य व्यक्ति के हाथ के लिखे हुए हैं। इनमें पद-अक्षर और मात्राओं की प्रचुर अशुद्धियाँ हैं और इनका संशोधन पं. टोडरमलजी नहीं कर पाये। आगे के पत्र अपेक्षाकृत शुद्ध लिखे गये हैं और संशोधित भी हैं।

३. उस प्रति में अंत के कुछ पृष्ठ भी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखकर लगाये गये हैं।

यहाँ इन बातों का उल्लेख करने से हमारा अभिप्राय किसी व्यक्ति या संस्था पर दोषारोपण का नहीं है। हमारा तो इतना ही राग है कि स्व. पं. टोडरमलजी का यह लेखन जिनागम की छाया है, अत: इसे अधिक से अधिक आगमानुकूल और शुद्ध रूप में पाठकों के हाथ में देने का सम्यक् प्रयास किया जाना चाहिए। इसमें जोड़-तोड़ करके अपनी कषाय की पुष्टि करने या हठाग्रह करने का मान-प्रेरित कार्य नहीं किया जाना चाहिए। यदि कोई अध्येता विद्वान् इस आलेख पर प्रश्न उठाता है, या उसके किसी अंश को आगम के आलोक में पुनर्परिभाषित करने का ईमानदार प्रयत्न करता है, तो धमकी भरे पत्र लिखकर उसकी कलम छीनने के बजाय, वास्तविकता को प्रगट करना चाहिए और आगम की मूलभूत विशेषताओं की रक्षा की चिन्ता रखनी चाहिए। श्रावक का यही कर्त्तव्य है।

श्री टोडरमल स्मारक की ओर से ही मोक्षमार्ग प्रकाशक का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया जा चुका है। यद्यपि अनुवादक विद्वान् ब्र. हेमचन्द्रजी श्रुतज्ञ मुमुक्षु हैं, परन्तु उनके अनुवाद में भी कुछ विसंगतियाँ देखने में आई हैं। दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के कोषाध्यक्ष श्री अमरचन्द्र ने उन भूलों की ओर संस्थान का ध्यानाकर्षण किया है। आशा है, अगले संस्करण में उन पर विचार किया जायेगा।

अधूरे ग्रन्थ की पूर्णता के प्रयास :

यह सर्वमान्य तथ्य है कि मोक्षमार्ग-प्रकाशक परिपूर्ण ग्रन्थ नहीं है। लेखक की ग्रन्थ-प्रतिज्ञा तथा अन्य स्पष्ट संकेतों[1] के अनुसार यह एक अधूरा ग्रन्थ है। अधिकांश विद्वानों का तो यह मूल्यांकन है कि पण्डितजी के मन में जिस विस्तारपूर्वक ग्रन्थ लिखने का संकल्प था, उसके सामने यह लिखित भाग, ग्रन्थ का प्रारम्भ भी नहीं है। यह तो मात्र उसकी भूमिका है। पण्डितजी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अपना शोधग्रन्थ प्रस्तुत करते हुए डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने तो स्पष्ट लिखा है कि यदि यह ग्रन्थ, जो मात्र साढ़े तीन सौ पृष्ठों का ही हमें मिला है, कभी पण्डितजी के हाथों से पूरा हो पाता तो कम-से-कम पाँच हजार पृष्ठों का अवश्य होता। इस प्रकार भारिल्लजी की मान्यता में संकल्पित लेखन की मात्र सात-आठ प्रतिशत सामग्री ही हमारे सामने उपलब्ध है।

पंडितजी के असमय देहावसान के तुरन्त बाद से ही इस ग्रन्थ को पूरा करने के बारे में सोचा जाने लगा था, परन्तु विषय की गहनता और वर्णन की सहजता को देखकर किसी ने भी इस काम को हाथ में लेने का साहस नहीं किया।

इस सम्बन्ध में पं. लालबहादुरजी शास्त्री ने अपनी प्रस्तावना में लिखा है —

''उस समय के विद्वान् स्वतंत्र ग्रन्थ-रचना के लिए अपने आपको अधिकारी विद्वान् न पाते थे। उस सम्बन्ध में हम अपनी तरफ से कुछ न लिखकर टोडरमलजी से लगभग पचास वर्ष बाद लिखी गई पं. जयचन्द्रजी के ही एक पत्र की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर देना ठीक समझते हैं। यह पत्र कवि वृन्दावनदासजी काशी को लिखा गया था और 'वृन्दावन-विलास' के अंत में ज्यों का त्यों छापा गया है। पत्र की वे पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

''और लिख्या कि टोडरमलजी कृत मोक्षमार्ग प्रकाश ग्रन्थ पूरण भया नाहीं ताकों पूरण करना योग्य है। सो कोई एक मूलग्रन्थ की भाषा होइ तौ पूरण करें। उनकी बुद्धि बड़ी थी यातैं बिना मूलग्रन्थ के आश्रय उनने किया। हमारी एती बुद्धि नाहीं। कैसे पूरण करें।''

''इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि उस समय के विद्वान् स्वतन्त्र रचना के लिए अपने आपको

१. देखिए — इसी संस्करण के पृष्ठ २६, ११२, १२९, १३६, १७०, १९१, १९६, २१८, २७७ पर स्वयं पण्डितजी द्वारा लिखे गये वाक्यखण्ड (आगे वर्णन करेंगे, आगे कहेंगे आदि) — जिनसे उनकी लेखनयोजना का संकेत मिलता है, परन्तु जिसे वे लिख नहीं पाये।

अधिकारी न पाते थे। पद्मपुराण, हरिवंशपुराण आदि ग्रन्थों के सफल टीकाकार श्री पंडित दौलतरामजी टोडरमलजी के समकालीन विद्वान् थे किन्तु टोडरमलजी के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके अधूरे ग्रन्थों में से वे पुरुषार्थसिद्धयुपाय की ही टीका पूरी कर सके। मोक्षमार्ग-प्रकाशक को उन्होंने भी पूरा नहीं किया।''

— मथुरा संस्करण / प्रस्तावना / पृष्ठ २

ब्र. शीतलप्रसादजी का प्रयास :

पं. टोडरमलजी के इस अधूरे अनुष्ठान को पूरा करने का एक प्रयास १९३० में ब्र. शीतलप्रसादजी ने किया था। उन्होंने श्री प्रेमीजी के १९११ के संस्करण के माध्यम से मोक्षमार्ग-प्रकाशक का अध्ययन किया और स्वयं पं. टोडरमलजी के संकेतों के अनुसार विषय निर्धारित करके छोटे आकार के ३४४ पृष्ठों के कलेवर में ''मोक्षमार्ग-प्रकाशक-द्वितीय भाग'' की रचना करके इस अधूरे ग्रन्थ को पूर्ण करने का दावा किया। शायद अपने लेखन को एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की श्रेणी में रखना भी ब्रह्मचारीजी का लक्ष्य रहा हो क्योंकि उन्होंने इसमें नये सिरे से सम्यग्दर्शन, देव-शास्त्र-गुरु और सात तत्त्वों का सविस्तार वर्णन किया। अंतिम दो सौ पृष्ठों में करणानुयोग के विषय का निरूपण करके उन्होंने कुछ संदृष्टियाँ प्रस्तुत की हैं जो महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं। परन्तु इस पुस्तक से बात कुछ बनी नहीं। पण्डितजी का संकल्प जैसा सर्वांग, परिपूर्ण और विशाल था, उसके आगे ब्रह्मचारीजी का प्रयास एक बौना सा प्रयास ही रहा।

ब्र. शीतलप्रसादजी अपने सुधारक विचारों के लिए विख्यात हो चुके थे। उनके विधवा-विवाह समर्थक होने के कारण समाज में उनका विरोध भी होने लगा था। इसी पृष्ठभूमि में जब उनके द्वारा मोक्षमार्ग-प्रकाशक का द्वितीय भाग लिखने की घोषणा हुई तो उसका विरोध भी हुआ। ग्रन्थ के प्रकाशन के पूर्व ही ''जैन गजट'' में उसके विरोध में कुछ लेख आदि प्रकाशित हुए और इन्दौर की महिला परिषद् ने ग्रन्थ के विरोध में एक प्रस्ताव भी पारित किया। परन्तु ब्रह्मचारीजी ने विरोध की आवाज को अनसुना करते हुए ग्रन्थ को सूरत से प्रकाशित किया और 'जैन-मित्र' के ग्राहकों को नि:शुल्क भेंट कराया।

भूमिका में ब्रह्मचारीजी ने अपनी लघुता और पं. टोडरमलजी की महत्ता को स्वीकार करते हुए इसे मात्र एक वैकल्पिक प्रयास कहा था परन्तु उनके लेखन ने पं. टोडरमलजी के संकल्प के शायद शतांश को भी पूरा नहीं किया। इसीलिए उनकी वह रचना काल के गाल में विलीन होकर रह गई। फिर दुबारा उसकी कोई आवृत्ति निकली हो ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला। मोक्षमार्ग-प्रकाशक में और उसके इस द्वितीय भाग में उतना ही अंतर था जितना अंतर आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी में था।

श्रीमद् राजचन्द्र का मोक्षमार्ग प्रकाश :

यह पुस्तक श्री राज-सौभाग सत्संग मण्डल, सायला (सौराष्ट्र) से १९८२ में प्रकाशित हुई है। देखने पर पता चला कि यह श्रीमद्जी के कतिपय पत्रों का संकलन मात्र है। पं. टोडरमलजी के मोक्षमार्ग-प्रकाशक से इसका कोई साम्य, सम्बन्ध या समतुल्यता नहीं है।

यह संस्करण और विशेषार्थ का औचित्य :

मोक्षमार्ग-प्रकाशक निर्विवाद रूप से एक अधूरा ग्रन्थ माना गया है। यदि पण्डितजी का वर्ण्य विषय मोक्षमार्ग या रत्नत्रय था तो उसमें से सम्यग्दर्शन की चर्चा ही नवें अध्याय से प्रारम्भ हो पाई है। जब हम पाते हैं कि यह प्रारम्भिक अध्याय ही अधूरा छूट गया, तब हमें यह कहना भी उचित प्रतीत होता है कि ग्रन्थ के आठों अध्याय मात्र उसकी भूमिका ही हैं। उससे ग्रन्थ की रूपरेखा तो स्पष्ट होती है, परन्तु उसके वर्ण्य-विषय का विस्तार सामने नहीं आता।

आगमनिष्ठ अध्येता विद्वानों को प्रारम्भ से ही यह कठिनाई रही है कि सम्पूर्ण विस्तार के अभाव में मोक्षमार्ग-प्रकाशक के कतिपय विवेचन एकान्त का पोषण करते और आगम के विरोध में स्थापित प्रतीत होते हैं। आगम के आलोक में उनका परीक्षण करके, जब तक उन्हें विवक्षापूर्वक स्पष्ट न किया जाये, तब तक वे स्थल जिनवाणी के हार्द को प्रकट करने में सफल नहीं होते। कहीं-कहीं उनके आधार पर संशय या विपर्यास की भी स्थिति निर्मित हो जाती है। यद्यपि इसमें ग्रन्थकार का प्रमाद जरा भी नहीं है, परन्तु प्रमुखता से दो ऐसे कारण रहे हैं जिनसे स्वयमेव ऐसे प्रसंग बनते गये लगते हैं।

सरलमति पाठकों के लिए भ्रान्तियों की सम्भावनाएँ शेष रह जाने में **पहला कारण** तो ग्रन्थ की अपूर्णता ही रहा है। किसी भी विषय को अतिसंक्षेप में निर्णयात्मक ढंग से कह देना अलग बात है और आगम के आलोक में उसे विस्तार से समझाकर समस्त विवक्षाओं के साथ तालमेल बिठाकर निरूपण करना कुछ अलग बात है। इसीलिए कुछ स्थानों पर सामान्य रूप से कही गई बातें इसलिए प्रश्नचिह्नांकित हो गईं क्योंकि उनका विस्तार नहीं हुआ और उस कथन की सारी विवक्षाएँ सामने नहीं आ पाईं। इसका **एक कारण और** रहा कि पण्डितजी के सामने षट्खण्डागम नहीं था। प्रथमानुयोग को छोड़कर शेष तीनों अनुयोगों की जैसी सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्ररूपणा धवल-जयधवल और महाधवल महाग्रन्थों में हुई है, वैसी सूक्ष्मता से वह प्ररूपणा पण्डितजी के सामने नहीं थी।

स्खलनाओं और अपूर्णताओं का दूसरा सबसे बड़ा कारण यह रहा कि ग्रन्थ का वास्तविक प्रारम्भ करके, लिखते-लिखते अकस्मात् उनका प्राणहरण हो गया। उन्हें एक बार भी अपना लिखा बांचने का अवसर नहीं मिला।

लेखक कितना ही प्रबुद्ध और अभ्यस्त हो पर उसे अपने लेखन में संशोधन और परिमार्जन करने की आवश्यकता होती ही है। एक बार पढ़ने पर ही लेखक अपनी रचना की पूर्णता-अपूर्णता और दोष-हीनता की परख कर पाता है। हर लेखक को यह करना ही पड़ता है और यही ''पुनरवलोकन''

उसकी रचना को प्रस्तुति के योग्य बनाता है। दुर्भाग्य से पण्डित टोडरमलजी को, मोक्षमार्ग-प्रकाशक का जितना भाग वे लिख सके, उस अपने लेखन के पुनरवलोकन का अथवा उसकी कमियों और खामियों को जाँचने-परखने और सुधारने का अवसर नहीं मिला। यदि वे प्रकरण पूरा कर पाते तो निश्चित ही उसका पुनरवलोकन करते और उसमें आवश्यक सुधार भी करते। यह लेखन का सामान्य नियम है।

सर्वश्री पं. नाथूराम प्रेमी, पं. युगलकिशोर मुख्तार, पं. परमानन्द शास्त्री, पं. कैलाशचन्द शास्त्री, पं. राजेन्द्रकुमार और पं. लालबहादुर शास्त्री प्रभृति विद्वानों ने अध्येताओं की इस कठिनाई को समझा और उसके प्रतिकार की आवश्यकता का भली भाँति अनुभव किया। उन सभी विद्वानों के चिन्तन का ही सुफल था कि मथुरा संघ से १९४८ में प्रकाशित लालबहादुरजी शास्त्री वाले संस्करण में ग्रन्थ के प्रश्नचिह्नांकित प्रसंगों को स्पष्ट करने के लिए ग्रन्थ के अन्त में ४४ पृष्ठों का एक परिशिष्ट जोड़ा गया। इस परिशिष्ट में २०-२२ प्रसंगों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया। परन्तु ये प्रसंग प्राय: करणानुयोग से ही सम्बन्धित रहे। दूसरी बात यह रही कि धवल ग्रन्थों के अध्ययन का लाभ इन टिप्पणियों में पूरी तरह समाहित नहीं हो पाया। कहीं-कहीं तो ऐसा लगा कि स्पष्टीकरण ने प्रसंग को कुछ और अधिक जटिलता प्रदान कर दी है।

प्रस्तुत संस्करण मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थ का एक नवीन संस्करण है। इसकी विशेषता यह है कि इसके सम्पादन हेतु हमने टोडरमलजी की ही हस्तलिखित मूल प्रति की फोटोस्टेट कॉपी को प्रामाणिक प्रति माना है। मूल में सर्वत्र पण्डित टोडरमलजी के वाक्यों को एक अक्षर प्रमाण भी परिवर्तन किये बिना ज्यों का त्यों रखा है। मात्र इतनी विशेषता है कि हमने इसमें यथास्थान विशेष (विशेषार्थ) संकलित कर दिये हैं। ऐसे कुल ३६ विशेषार्थ हैं। अनेक पादटिप्पण भी दिये गये हैं। ये विशेषार्थ या तो उस विवक्षित विषय को स्पष्ट करने, खुलासा करने के लिए संकलित किये गये हैं या फिर ग्रन्थान्तरों का तत्सम्बन्धी मतान्तर दिखाने हेतु या फिर श्रद्धेय लेखक द्वारा सूक्ष्मतम विषय को स्पष्ट न करने से भी विशेषार्थ संकलित किया गया है। इस संस्करण में पं. लालबहादुरजी शास्त्री के टिप्पणवाले प्रसंगों को भी आधार नहीं बनाया गया है क्योंकि इस बीच के दीर्घ अन्तराल में, धवलादि ग्रन्थों के प्रकाशन-अध्ययन-वाचन और प्रचार-प्रसार से अनेक विषयों की जटिलताएँ स्वयमेव दूर हो चुकी हैं तथा मथुरा संस्करण के अनेक टिप्पण विषय को विस्तार ही देते हैं। इस संस्करण के 'विशेष' की प्रस्तुति लालबहादुरजी की टिप्पणियों से कुछ अलग हट कर अपनी विशेषता लिये हुए है। दोनों में प्रमुख अन्तर इस प्रकार है --

(i) मथुरा संस्करण में टिप्पण अलग पृष्ठों पर ग्रन्थ के अन्त में दिये गये हैं, जबकि इस संस्करण में जहाँ वांछित समझे गये वहीं 'विशेष' शीर्षक देकर, खड़ी बोली में मूलपाठ से भिन्न बड़े टाइप में। इस प्रकार विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि पाठक स्वाध्याय के साथ-ही-साथ विषय को सही सन्दर्भ में समझ कर आगे बढ़ सके।

(ii) इस संस्करण में सभी विशेषार्थ आगम के सन्दर्भ, ग्रन्थनाम, संस्करण, श्लोक तथा पृष्ठ संख्या सहित वहीं के वहीं दे दिये हैं। इससे स्वाध्याय की धारा खण्डित नहीं होती।

(iii) मथुरा संघ के संस्करण में कुल २१ टिप्पण जोड़े गये थे। प्रस्तुत संस्करण में ३६ स्थानों पर 'विशेष' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकरण का खुलासा प्रस्तुत किया गया है, अधिकांश प्रकरण नये हैं।

संकलित विशेषार्थों में से कतिपय पूर्व प्रकाशित हैं और कतिपय पहली बार प्रखर स्वाध्यायियों की स्वाध्याय-प्रतियों से यहाँ संकलित किये गये हैं। इस संस्करण के पृष्ठ २०५ से २१२ तक का सबसे लम्बा विशेषार्थ (नय विषयक) जैन गजट दिनांक ३१.१२.६४ तथा १४.१.६५ के अंकों से संकलित है। पृष्ठ २९३ का विशेषार्थ जैन गजट के ६.६.६३ के अंक में प्रकाशित है। काललब्धि विषयक (पृ. २६६) विशेषार्थ 'क्रमबद्धपर्याय समीक्षा' पुस्तक के पृष्ठ १९४ से उद्धृत है। अन्तरायाम अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है, मुहूर्त्त प्रमाण नहीं (पृ. २२५), यह टिप्पण 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' के सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी के संस्करणों में बराबर छपता ही रहा है। क्षयोपशम लब्धि की परिभाषा जैन सन्देश दिनांक (१०.७.५८ अंक) में प्रकाशित हुई है। इसके अतिरिक्त 'वीतरागवाणी' मासिक के जून १९८८ से फरवरी १९८९ तक के अंकों में 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक के कतिपय स्थल' शीर्षक से प्रकाशित प्रकरणों की समीक्षा को भी यहाँ विशेषार्थ के रूप में संकलित किया गया है। शेष विशेषार्थ दीर्घकालीन व्यक्तिगत व सामूहिक स्वाध्याय के अन्तर्गत उपजी जिज्ञासाओं के परिणाम हैं जो यदा-कदा स्वाध्यायियों के बीच साक्षात् चर्चा से या पत्रों के माध्यम से निस्सृत हुए हैं।

ये विशेषार्थ उपयुक्त और आवश्यक हैं, पर आगे अन्य विशेषार्थ नहीं लिखे जा सकते, ऐसा सम्पादकों का कोई दावा नहीं है। सम्पादकीय दृष्टि इतनी ही रही है कि स्थापनाएँ खुलासा हों, उन पर आगम के परिप्रेक्ष्य में नयदृष्टि से विचार हो। ग्रन्थान्तरों के मत भी सामने हों।

पृष्ठ २ पर सिद्धों के आत्मप्रदेशों के आकार के सम्बन्ध में दो मत उद्धृत हैं। एक मत से उनका आकार 'चरम शरीर तैं किंचित् ऊन पुरुषाकारवत्' है। दूसरे मत से अन्तिम शरीर के दो तिहाई भाग प्रमाण आकार है। 'परमात्म प्रकाश' में एक तीसरा मत भी मिलता है —

कारण बिरहिउ सुद्ध जिउ, वड्ढइ खिरइ ण जेण।
चरम सरीर पमाणु जिउ जिणवर बोल्लहिं तेण॥५४॥

अर्थात् सिद्धों के आत्मप्रदेशों का आकार चरम शरीर प्रमाण होता है।

पृष्ठ १५९ पर कहा है — 'सो शुद्ध-अशुद्ध अवस्था पर्याय है।' किन्तु सर्वथा ऐसा नहीं है। 'प्रवचनसार' में द्रव्य की अशुद्धता की बात भी कही है। पर्याय अशुद्ध है तो द्रव्य भी अशुद्ध होगा। पृष्ठ १८६ पर लिखा है —"सो एक कारण तैं पुण्य बन्ध भी मानै अर संवर भी मानै सो बनै नाहीं।" सर्वथा ऐसा नहीं है क्योंकि एक ही दीपक कालिमा व प्रकाश दोनों का कारण देखा जाता है। श्री

पूज्यपादाचार्य ने कहा भी है –"ननु च तपोऽभ्युदयाङ्गमिष्टं देवेन्द्रादिस्थानप्राप्तिहेतुत्वाभ्युपगमात्, तत् कथं निर्जराङ्गं स्यादिति? नैष दोषः, एकस्यानेक-कार्यदर्शनादग्निवत्। यथाऽग्निरेकोऽपि विक्लेदनभस्माङ्गारादिप्रयोजन उपलभ्यते तथा तपोऽभ्युदयकर्मक्षयहेतुरित्यत्र को विरोधः। **शंका-** तप को अभ्युदय का कारण मानना इष्ट है, क्योंकि वह देवेन्द्र आदि विशेष की प्राप्ति के हेतुरूप से स्वीकार किया गया है, इसलिए वह निर्जरा का कारण कैसे हो सकता है? **समाधान** – यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अग्नि के समान एक होते हुए भी इसके अनेक कार्य देखे जाते हैं। जैसे अग्नि एक है तो भी उसके विक्लेदन, भस्म और अंगार आदि अनेक कार्य उपलब्ध होते हैं वैसे ही तप अभ्युदय और कर्मक्षय इन दोनों का हेतु है, ऐसा मानने में क्या विरोध है।

पृष्ठ १८१ पर कहा है – "भक्ति तो राग रूप है, रागतैं बंध है। तातैं मोक्ष का कारण नाहीं।" "इस शुभोपयोग को बंध का ही कारण जानना, मोक्ष का कारण न जानना" (पृ. २१७)। आचार्यों ने प्रशस्त राग को परम्परा मोक्ष का कारण माना है। **श्री कुन्दकुन्दाचार्य** कहते हैं –

एसा पसत्थभूदा समणाणं वा पुणो घरत्थाणं।
चरिया परेत्ति भणिदा ता एव परं लहदि सोक्खं॥२५४ प्रवचनसार॥

अर्थ : यह प्रशस्तचर्या (शुभोपयोग) श्रमणों के गौण होती है और गृहस्थों के मुख्य होती है। ऐसा जिनागम में कहा है। उसी से गृहस्थ परमसौख्य को प्राप्त होते हैं।

इसकी टीका में **श्री अमृतचन्द्र सूरि** कहते हैं – "**गृहिणां तु समस्तविरतेरभावेन शुद्धात्मप्रकाशस्याभावात् कषायसद्भावात् प्रवर्तमानोऽपि स्फटिकसम्पर्केणार्कतेजस इवैंधसां रागसंयोगेन शुद्धात्मनोऽनुभवनात्क्रमतः परमनिर्वाणसौख्यकारणत्वाच्च मुख्यः।**

अर्थ – वह शुभोपयोग गृहस्थों के तो, सर्वविरति के अभाव से, शुद्धात्म प्रकाशन का अभाव होने से कषाय के सद्भाव के कारण प्रवर्तमान होता हुआ भी मुख्य है, क्योंकि जैसे ईंधन को स्फटिक के सम्पर्क से सूर्य के तेज का अनुभव होता है (इसीलिए वह क्रमशः जल उठता है), उसी प्रकार गृहस्थ को राग के संयोग से शुद्धात्मा का अनुभव होता है और (इसीलिए वह शुभोपयोग) क्रमशः परम निर्वाणसुख का कारण होता है।

पृष्ठ २१८ पर लिखित यह कथन "तातैं मिथ्यादृष्टी का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोग को कारण है नाहीं।" यह जिज्ञासा पैदा करता है कि क्या मिथ्यादृष्टि के शुभोपयोग सम्भव है? **जयसेनाचार्य प्रवचनसार तात्पर्यवृत्ति १/९** में लिखते हैं–मिथ्यात्व-सासादन-मिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभोपयोगः तदनन्तरमसंयतसम्यग्दृष्टि-देशविरत-प्रमत्तसंयतगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः, तदनन्तरमप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तगुणस्थानषट्के तारतम्येन शुद्धोपयोगः, तदनन्तरं सयोग्ययोगीजिनगुणस्थानद्वये शुद्धोपयोगफलमिति भावार्थः॥१-९॥

यद्यपि आगे चलकर पण्डितजी ने स्वयं भी इसका खुलासा कर दिया है कि यहाँ उपयोग से उनका तात्पर्य केवलीज्ञानगम्य परिणामों से नहीं, छद्मस्थ के ज्ञानगम्य मन-वचन-काय की चेष्टा से है। अर्थात् वे योग की बात करते हैं, उपयोग की नहीं, इससे प्रकरण स्पष्ट हो जाता है।

उपर्युक्त स्थापनाओं पर अनेक बार चर्चा, परिचर्चा, वाद-विवाद होते रहे हैं, आज भी हैं। **'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः।'** पर इन सबको सम्मिलित-संकलित करने से ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जाता अतः ऐसी लम्बी चर्चाओं को छोड़कर मात्र **३६ विशेषार्थ** ही संकलित किये गये हैं जो ग्रन्थ के **मात्र ३० पृष्ठों में** ही आ गये हैं।

यहाँ पाठकों के मन में यह प्रश्न सहज ही उठ सकता है, उठना भी चाहिए कि क्या पण्डित टोडरमलजी के लेखन में कोई कमी है या कोई ऐसी त्रुटियाँ हैं जिनके निराकरण के लिए आज के विद्वानों को उनके लेखन में टिप्पण या विशेषार्थ जोड़ने पड़ रहे हैं?

इस स्वाभाविक प्रश्न के उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि मोक्षमार्ग-प्रकाशक की रचना-संयोजना इतने बड़े फलक पर रेखाङ्कित की गई थी जिसमें पं. टोडरमलजी ने समूचे मोक्षमार्ग को लोकभाषा में प्रस्तुत करने का ऐतिहासिक संकल्प किया था। दुर्भाग्य से वे अपने संकल्प की आंशिक पूर्ति भी नहीं कर पाये और उनकी पर्याय पूरी हो गई। इस ग्रन्थ का अपूर्ण रह जाना ही अपने आप में एक बड़ी कमी है, जिसे पूरा करने का कोई उपाय हमारे पास नहीं है। कई विषय ऐसे हैं जिनकी व्याख्याओं को वांछित विस्तार नहीं मिल पाने के कारण उनमें कतिपय भ्रान्तियों की आशंका को स्थान मिलता है।

ऐसी स्थिति में, **ग्रन्थकार के हार्द को समझने के लिए और उसके वर्ण्यविषय को सही सन्दर्भों सहित सूक्ष्मता से जानने के लिए अनेक स्थलों पर कुछ स्पष्टता लाना आवश्यक समझा गया, इसी प्रयोजन से प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित किया गया है। हमारा यह प्रयास न तो अधूरे ग्रन्थ को पूरा करने के लिए हुआ है, न ही उसमें त्रुटियाँ निकालकर उनका परिमार्जन करने के लिए हुआ है। यह तो पण्डितजी के कथन को आगम की विवक्षाओं और प्रमाणों के आलोक में समझने का एक लघु प्रयत्न मात्र है।**

किसी भी ग्रन्थकार के लेखन में किसी विशेष स्थल को अधिक स्पष्ट करने के लिए टिप्पण लिखने की परम्परा अतिप्राचीन और मान्य परम्परा है। अनेक बड़े-बड़े आचार्यों के लेखन पर इस प्रकार के टिप्पण परवर्ती आचार्यों ने लिखे हैं और शास्त्रों में उन्हें मान्य किया गया है। **पूज्यपाद स्वामी की 'सर्वार्थसिद्धि' टीका के अनेक स्थलों पर सैकड़ों वर्षों बाद आचार्य प्रभाचन्द्र ने टिप्पणी लिखी थी।** पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री द्वारा अनूदित, सम्पादित होकर जब यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठ से पहली बार प्रकाशित हुआ तब ये टिप्पण इसमें नहीं दिये गये। परन्तु उनकी उपयोगिता देखते हुए पं. कैलाशचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री ने दूसरे संस्करण में उनका समावेश किया जो अब तक बराबर छप रहे हैं। निश्चित ही **उन टिप्पणियों से सम्बन्धित प्रकरणों को समझने में आसानी होती है।**

इस संस्करण में संकलित-सम्पादित विशेषार्थों का औचित्य तर्क या परम्परा से नहीं समझाया जा सकता। अनाग्रही मन से स्वाध्याय करके उसे समझा अवश्य जा सकता है। पूर्वाग्रह रहित होकर जो भी अध्येता इन सारे स्थलों का अवलोकन-मनन करेंगे, उन्हें प्रस्तुत विशेषार्थों का औचित्य भर नहीं, वरन् उनकी महत्ता और अनिवार्यता भी सहज ही समझ में आ जायेगी। **पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे इस सत्प्रयास को इसी भावना से ग्रहण करें, किसी भी दृष्टि से उसे अन्यथा ग्रहण न करें। फिर भी चिन्तन का आकाश सबके लिए खुला है, सदा के लिए खुला है।**

हमें विश्वास है कि 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' का यह संस्करण इस ग्रन्थ की लोकप्रियता में अवश्य वृद्धि करेगा। फिर भी यदि किसी भव्यात्मा को हमारे इस प्रयत्न से किसी प्रकार का मानसिक क्लेश पहुँचा हो तो उसके लिए हम उनसे सविनय क्षमा चाहते हैं। स्वयं पण्डित टोडरमलजी लिखते हैं —

''सावधानी करते भी कहीं सूक्ष्म अर्थ का अन्यथा वर्णन होय जाय तो विशेष बुद्धिमान होइ सो सँवारि करि शुद्ध करियो, यह मेरी प्रार्थना है।'' (पृष्ठ १३)

आशा है, प्रबुद्ध पाठकों के बीच, प्रखर स्वाध्यायियों के बीच इस संस्करण का सम्मान होगा। इसके माध्यम से पण्डित टोडरमलजी के इस कृतित्व को अधिक सार्थकता पूर्वक पढ़ा समझा जायेगा और अल्पकाल में ही इस संस्करण की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता पड़ेगी।

इस संस्करण के सम्बन्ध में पूज्य आचार्यों, मुनिराजों, आर्यिकाओं और विद्वानों ने अपने आशीर्वाद/अभिमत/अनुशंसा/प्रतिक्रिया भेजकर हमें अनुगृहीत किया है, एतदर्थ हम उनके हृदय से आभारी हैं।

ग्रन्थ के सम्पादन हेतु पं. टोडरमलजी की ही हस्तलिखित मूल प्रति की फोटोस्टेट कॉपी विद्वद्वर श्री राजमलजी जैन, भोपाल ने बड़ी कृपा करके हमें भेजी थी। एतदर्थ हम उनके आभारी हैं।

ग्रन्थ-प्रकाशन में समर्पित भाव से सहयोग करने वाले सभी सहयोगी हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। अर्थ-सहयोग प्रदान करने वाले सभी उदार दातारों के हम अतिशय आभारी हैं।

पण्डित नीरज जैन, सतना
डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर
पण्डित हंसमुख जैन, धरियावद

।। श्रीवीतरागाय नमः।।

卐 आशीर्वाद / अभिमत / अनुशंसा / प्रतिक्रिया 卐

❑ आचार्य विमलसागरजी महाराज

आपने **मोक्षमार्ग-प्रकाशक** ग्रन्थ में मुख्य विषयों का स्पष्टीकरण करके एक महान् कार्य किया है। इसी प्रकार आगे भी ग्रन्थों का सम्पादन आदि कार्य करके जिनवाणी का माहात्म्य बढ़ावें, यही हमारा आशीर्वाद है।

❑ आचार्य वर्धमानसागरजी महाराज

मोक्षमार्ग-प्रकाशक के नवीन संस्करण की प्रति प्राप्त हुई। इसमें ग्रन्थकार द्वारा स्पष्ट विवेचना के अभाव में आशंकित भूलों की ओर आपने ध्यान दिलाने का सम्यक् पुरुषार्थ किया है। मात्र इतना ही नहीं, उन स्थलों का सटीक समाधान भी 'विशेष' में आगम ग्रन्थों का प्रमाण देकर किया है। धवलादि सिद्धान्तग्रन्थों के तलस्पर्शी अध्ययन का प्रचुर उपयोग करके वांछित स्थलों का सम्यक् स्पष्टीकरण भी किया है। आपके द्वारा यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है।

इस महनीय जिनवाणी-सेवा के लिए सम्पादकों को अनेकशः आशीर्वाद।

❑ आचार्य आर्यनन्दीजी महाराज

मोक्षमार्ग-प्रकाशक का नवीन संस्करण पढ़कर अत्यन्त आत्मीय हर्ष हुआ। इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने में आपने महान् ग्रन्थों के प्रमाण देते हुए सूक्ष्म विषयों को स्पष्ट किया अतः विशेष ज्ञानवृद्धि में सुगमता हुई। आपने छान-बीन करके जो-जो विषय स्पष्ट किये वे सहज सुगमता से ज्ञान होने में सहायक होते है, यह आपने मुमुक्षु भव्यों का बड़ा उपकार किया है, एतदर्थ आप धन्यवाद के पात्र हैं। जिनवाणी माता की ऐसी ही सेवा आपसे होती रहे - यही मंगल आशीर्वाद।

❑ आचार्य सुमतिसागर जी महाराज

मोक्षमार्ग-प्रकाशक के प्रस्तुत सम्पादन को देखा। यह शुद्ध और पठनीय है। इसी पर हमें बड़ा गौरव है कि जो हमारे मुनिधर्म की प्राचीन प्रणाली को आगे बढ़ाते हुए नई पीढ़ी को पुनः गुरुशिक्षा का ज्ञान देकर जीवन समृद्ध बना रहे हैं, वह दिन-प्रतिदिन बढ़ती रहे; यही हमारा अन्तःआशीर्वाद है।

❑ आचार्य सम्भवसागर जी महाराज

निश्चयव्यवहार समन्वित विशेषार्थों से युक्त श्रेष्ठ सम्पादन के लिए शुभाशीः।

❑ आचार्य अभिनन्दनसागर जी महाराज

मैंने **मोक्षमार्गप्रकाशक** के नवीन संस्करण का अवलोकन किया। देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपने चारों अनुयोगों के द्वारा और विशेष रूप से करणानुयोग के द्वारा **मोक्षमार्गप्रकाशक** ग्रन्थ में चार चांद लगा दिये, क्योंकि पण्डितप्रवर टोडरमलजी के सामने सिद्धान्तग्रन्थ (धवल, महाधवल) उपलब्ध नहीं थे। इसलिए वे उनका अभ्यास नहीं कर पाये जिससे **मोक्षमार्गप्रकाशक** में अनेक स्थलों पर बहुत कुछ अनकहा या अस्पष्ट रह गया था। आपने करणानुयोग के प्रकाश में अपने 'विशेषों' के द्वारा ऐसे स्थल स्पष्ट कर दिये। इससे स्वाध्यायप्रेमियों को रत्नत्रय प्राप्त करने में सुविधा रहेगी और मन्दबुद्धियों के लिए एकान्तवाद, नियतिवाद रूपी मिथ्यात्व का भूत भाग जायेगा। देवशास्त्रगुरु के प्रति विशेष-विशेष श्रद्धा जागृत होगी। यह आपका बड़ा उपकार माना जायेगा। आपके पास जितना भी ज्ञानधन है, लेखनी के द्वारा, वाणी के द्वारा भव्य जीवों को प्रदान करते रहें, यही हमारा कोटि-कोटि आशीर्वाद है।

❑ आचार्य विरागसागर जी महाराज

सम्पादकों ने इस ग्रन्थ के सम्पादन में जो अतुल परिश्रम करके आगमिक विशेषार्थ दिये हैं, अथवा गहराई को छुआ है, वह सराहनीय एवं प्रशंसनीय है। वे जिनवाणी की सेवा में साधुता के पात्र हैं। मेरा उन्हें मंगल शुभाशिष है।

वर्तमान विद्वान् यदि तादृग् खोजपूर्ण कार्य करें तो जिनवाणी की यथार्थ सेवा करने, आत्महितैषियों का हित करने, समाज का एकीकरण करने, धर्मवात्सल्य से प्रचार करने तथा धर्मप्रभावना करने में उनका योगदान सम्यक् सिद्ध होगा।

❑ आचार्य भरतसागर जी महाराज

पं. टोडरमलजी कृत **मोक्षमार्गप्रकाशक** ग्रन्थ अपनी विशेषताओं से लोकप्रिय ग्रन्थ है। इसके द्वारा लेखक की प्रौढ़ता, गम्भीरता और विद्वत्ता को सहज ही जाना जा सकता है तथापि 'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे'। ग्रन्थ में कुछ स्थल ऐसे हैं जिनका स्पष्टीकरण लेखक पण्डित जी की लेखनी से नहीं हो पाया अतः ऐसे स्थल जनसाधारण को दिग्भ्रान्त करने में कारण बन गये हैं। ऐसे स्थलों का आगमचक्षु से अवलोकन कर सम्पादकों ने आगमप्रमाणों से स्पष्टीकरण का सफल प्रयास-पुरुषार्थ किया है। इस ग्रन्थ के विभिन्न अध्यायों में कुल ३६ स्थलों पर उलझी गुत्थियों को सहज सुलझाया गया है जिससे ग्रन्थ की गरिमा में मानों चार चांद ही लग गये हैं। ऐसा करने में सम्पादकों का अभिप्राय सर्वज्ञवाणी की सत्यता का प्रकाशन मात्र है अन्य कोई गारव या अहंभाव नहीं। विद्वानों द्वारा आगे भी इसी प्रकार साहित्यसेवा होती रहे।

❑ उपाध्याय गुप्तिसागरजी महाराज (आ. विद्यासागरजी के शिष्य)

स्वस्थ प्रकाशन

'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' की प्रति प्राप्त हुई, जिसका
आद्योपान्त अवलोकन किया।
सम्पादन सुन्दर है,
टिप्पणियाँ सटीक हैं,
आपने आर्षमार्ग की गरिमा को
गौरवमण्डित करते हुए सैद्धान्तिक ग्रन्थों से
जो उचित व्याख्याएँ दी हैं,
मूल ढूंढ़ारी पाठ न छूते हुए,
वह सचमुच ही
मणिकांचन योग है।

✳ ✳ ✳

टिप्पणियों के माध्यम से
वे सब अनकहे तथ्य
स्वस्थ सौन्दर्यबोध से भर गये।
अनेकान्त, जो है जैनदर्शन की सर्वश्रेष्ठ पहिचान,
वह आपने जयवन्त रखी।
हमें अत्यन्त धार्मिक प्रमोद है कि
विद्वान् सम्पादकों ने **विशेषार्थ** देकर
ग्रन्थ को सर्वग्राह्य बना दिया है।
ये विशेषार्थ टिप्पणियाँ
सिद्धान्त में गहरी पैठ और
आर्षमार्ग के प्रति अनन्य निष्ठा के परिणाम हैं।
इस नीरक्षीर विवेक के लिए सम्पादक
साधुवाद के पात्र हैं।
उन्हें मेरा बहुत-बहुत शुभाशीर्वाद।
स्वाध्यायी जन निश्चित ही
ग्रन्थ का समादर करेंगे।

★ मुनि कामकुमारनन्दीजी

पं. टोडरमलजी द्वारा विरचित प्रासंगिक एवं कालजयी कृति की आपकी **वैदुष्यपूर्ण लेखनी से विशेषार्थ सहित प्रस्तुति** बड़ी प्रसन्नता की बात है। ... पण्डित जी ने समस्त जैनागम का सार एवं अन्य दर्शनों का खण्डन-मण्डन जिस प्रज्ञाबल से किया है वह अनुपम है ही, आपके द्वारा लिखित विशेषार्थों से सभी विषय को सरलता से समझ कर ग्रहण करेंगे, ऐसा पूर्ण विश्वास है। हमारा बहुत-बहुत आशिष।

★ मुनि ब्रह्मानन्दसागरजी (संघस्थ १०८ मुनिश्री सरलसागरजी संघ)

आपका प्रयास वर्तमान युग में अत्यन्त प्रशंसनीय एवं जैनतत्त्वानुसार जनहितकारी एवं जनोपयोगी है। आप इसी प्रकार श्रुत की सेवा करते रहें, यही हमारा आशीर्वाद है।

★ मुनिराज श्री श्रुतसागरजी महाराज

मोक्षमार्ग-प्रकाशक को आपने जगह-जगह विशेषार्थ एवं टिप्पण देकर नवीन रूप से सम्पादित किया है, यह आपका बहुत ही उत्तम प्रयास है। यह कार्य ग्रन्थ को समझने में सरलता और स्पष्टता का द्योतक है। धर्मवृद्धि।

★ बालब्रह्मचारिणी गणिनी आर्यिका विशुद्धमती माताजी

'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' ग्रन्थ का नवीन संस्करण अवलोकनार्थ प्राप्त हुआ। आगमानुसार स्थान-स्थान पर विशेषार्थ व टिप्पणी देकर स्वाध्यायशील भव्य जीवों के श्रद्धान को जो दृढ़ व स्थिर करने का प्रयास किया है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। इतना ही नहीं, पर-जीवों के सम्यग्दर्शन को सुरक्षित रख कर स्वयं के सम्यग्दर्शन को पुष्ट कर स्थितीकरण अंग का पालन किया है। भ्रान्ति ही संशयादि मिथ्यात्व को पुष्ट करती है जो जीव को संसार-परिभ्रमण कराने में समर्थ है। ऐसे अप्रशस्त मार्ग से जीवों को बचाने का श्रेय एवं आगम की सूक्ष्मावलोकन दृष्टि आपकी स्वाध्यायशीलता को व्यक्त करती है। आज समाज को आप जैसे विद्वानों की परम आवश्यकता है जो आगमज्ञान के साथ-साथ समाज को सत् श्रद्धान व चारित्र के बीज देकर रत्नत्रयांकुर उत्पन्न करा मोक्षफल प्राप्त कराने में समर्थ हों।

सम्पादक विद्वानों को माताजी का बहुत-बहुत आशीर्वाद।

(प्रेषक : आर्यिका विनीतमती)

★ क्षुल्लक शीतलसागरजी महाराज

आपने इस संस्करण में 'विशेष' के माध्यम से शास्त्रों के प्रमाण सहित जो अभिप्राय प्रकट किया है, वह प्रशंसनीय है। अब इसका आशातीत प्रचार होगा, ऐसी हमारी अन्तर आत्मा की आवाज है।

मोक्षमार्ग-प्रकाशक में पण्डित टोडरमलजी ने जहाँ-जहाँ मुनियों की निन्दा लिखी है, वहाँ जो आपने पृष्ठ १४८-१४६ १५२-१५३ पर विशेषार्थ देकर सप्रमाण स्पष्टीकरण किया है, उससे एकान्तवादी मुनिनिन्दकों की आँखें खुलेंगी। इन्हें इससे सभी अनुयोगों के ग्रन्थों को देखने का सुअवसर प्राप्त होगा।

पण्डितजी ने जहाँ व्यवहार को एकान्त रूप से असत्य ही बताया है, वहाँ जो आपने परमागम के उद्धरण देकर उसकी भूमिका स्पष्ट की है, उससे अनेक पाठकों को आपने निश्चयाभासी होने से बचा लिया है। इसी प्रकार आपने प्रामाणिक विशेषार्थ लिखकर **मोक्षमार्ग-प्रकाशक** ग्रन्थ को 'यथा नाम तथा गुण' वाला कर दिया है।

इस महान् कार्य के लिए मेरा अन्तरंग से कोटिशः धन्यवाद। आशीर्वाद।

● ब्र. विद्युल्लता हिराचन्द शहा, सोलापुर

मोक्षमार्ग-प्रकाशक का नवीन सस्करण प्राप्त हुआ। आपकी महनीय, बहुमोल, उपयुक्त अन्य रचनाओं के समान इस ग्रन्थ का भी सम्पादन अत्यन्त सजगतापूर्वक तथा दृष्टेपन लेकर हुआ है।

पण्डित टोडरमलजी के मूल ढूंढारी पाट में परिवर्तन न करके 'विशेष' के माध्यम से सामान्य जन से लेकर विद्वानों के लिए भी उचित स्थान में विषय तथा नयी दृष्टि खोलकर सूक्ष्म सैद्धान्तिक दृष्टि का बहुमोल लाभ होने के लिए मानों 'दीपस्तम्भ' लगाये हैं। खड़ी बोली में अलग टाइप में मुद्रित 'विशेष' के प्रति स्वाध्यायार्थी आकर्षित होकर उसकी श्रद्धा परमागम की और देवगुरु की ओर दृढ़ जम जाती है, वह खतरे से पार होता है। अज्ञानी-अल्पज्ञानी सिद्धान्त तथा आगम ग्रन्थ पढ़ने समय शंकित-भ्रमित होता है, सम्यक्त्व में बाधा, दोष मलादि कषाय आवेशवशात् आती है, उस समय ये कुञ्जियाँ उपयुक्त होंगी।

आपकी जिनवाणी सेवाएँ चिरन्तन होकर स्वाध्यायार्थी जन उनसे लाभान्वित हों - यही शुभ भावना है।

● डॉ. दरबारीलालजी कोठिया, न्यायाचार्य

पूर्व रीडर, का.हि.वि.वि., वाराणसी

विद्वान् सम्पादकों द्वारा सम्पादित पण्डितप्रवर टोडरमल जी द्वारा रचित **मोक्षमार्ग-प्रकाशक** का अभिनव संस्करण देखा। उसका संशोधन-सम्पादन और साथ में सम्बद्ध विद्वत्तापूर्ण विशेषार्थ बिल्कुल अभिनव एवं आश्चर्यजनक हैं। हम इन सम्पादक विद्वानों की, उनकी बारीकी पकड़ की हृदय से प्रशंसा करते हैं और उन्हें बधाई देते हैं।

आशा है, यह संस्करण सर्वाधिक पाठकों द्वारा पढ़ा जाएगा और विद्वद्ग्राह्य होगा।

● डॉ. उदयचन्द्र जैन, सर्वदर्शनाचार्य

पूर्व रीडर, का.हि.वि.वि., वाराणसी

परमश्रद्धेय पं. टोडरमल जी द्वारा निर्मित **मोक्षमार्गप्रकाशक** एक उच्चकोटि की रचना है, जिसमें जैनदर्शन के अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह ढूंढाड़ी भाषा में है। प्रस्तुत संस्करण के सम्पादकों ने मोक्षमार्गप्रकाशक का नूतनशैली में सम्पादन करके इसका एक अभिनव संस्करण प्रस्तुत किया है, जो दृष्टव्य, ध्यातव्य और मन्तव्य है। इस सम्पादन की विशेषता यह है कि इसमें सम्पादकों ने पं.जी की मूल भाषा में किञ्चिन्मात्र भी परिवर्तन नहीं किया है। अपितु जहाँ कहीं भी आवश्यक प्रतीत हुआ, वहाँ खड़ी

बोली में विशेषार्थ देकर पं.जी के कथन को अनेक ग्रन्थों से प्रमाण देकर पल्लवित, पुष्पित और संवर्द्धित किया है।

मोक्षमार्गप्रकाशक के इस संस्करण के पृष्ठ - २ पर सिद्धों के विषय में लिखा है - "बहुरि जिनके चरम शरीरतैं किंचित् ऊन पुरुषाकारवत् आत्मप्रदेशनि का आकार अवस्थित भया।"

यहाँ विशेषार्थ देकर यह बतलाया गया है कि सिद्धों के आत्मप्रदेशों का आकार चरम मनुष्य शरीर से किञ्चित् न्यून होता है, यह एक मत है। परन्तु इस विषय में एक दूसरा मत भी है। इस मत के अनुसार अन्तिम शरीर का दो तिहाई भाग ही सिद्धावस्था में रहता है।

यहाँ इस विशेषार्थ से एक नवीन बात की जानकारी मिलती है।

इस संस्करण के पृष्ठ ६ पर लिखा है -

बहुरि वर्द्धमान स्वामी तो मुक्त भये। तहाँ पीछे इस पंचमकाल में तीन केवली भये, गौतम, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी। तहाँ पीछै केवलज्ञानी होने का अभाव भया।"

यहाँ विशेषार्थ में बतलाया गया है कि ये तीन तो अनुबद्ध केवली हैं। इनके अतिरिक्त जम्बूस्वामी के बाद ६२ वर्ष के काल में कई अननुबद्ध केवली भी हुए हैं, जिनमें अन्तिम केवली श्रीधर थे जो कुण्डलगिरि से मुक्त हुए।

इस संस्करण के पृष्ट २६६ पर लिखा है - "काललब्धि व होनहार तो किछू वस्तु नाहीं। जिस काल में कार्य बनै सोई काललब्धि अर जो कार्य भया सोई होनहार।"

यहाँ विशेषार्थ में यह सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि काललब्धि वस्तुभूत है, अवस्तुभूत नहीं।

इस प्रकार सम्पादकों द्वारा संकलित अनेक विशेषार्थों से अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं। यह इस संस्करण की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

इस तरह ३६ विशेषार्थों और अनेक विस्तृत टिप्पणों सहित आर्षमार्गानुसार सम्पादित मोक्षमार्गप्रकाशक का यह नूतन संस्करण सबके लिए उपादेय और पठनीय है। इसके सम्पादन में सम्पादकों ने जो परिश्रम किया है, वह प्रशंसनीय है। अन्त में, इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने के लिए सम्पादकों को मेरी हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

कुछ विशेष :

(१) पृष्ठ १०६ पर बौद्धमत निराकरण में चार आर्य सत्यों के नाम दुःख, आयतन, समुदय और मार्ग दिये हैं। वास्तव में इनके नाम इस प्रकार हैं - दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग। निरोध के स्थान में आयतन शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है। यहाँ 'मार्ग' और 'समुदय' शब्द की व्याख्या भी पूर्ण ठीक नहीं है।

पृष्ठ ११० पर बौद्धों के चार भेद - वैभाषिक, सौतान्त्रिक, योगाचार और मध्यम बतलाये हैं। यहाँ मध्यम शब्द ठीक नहीं है, सही शब्द है - माध्यमिक। वैभाषिक आदि शब्दों की व्याख्या भी ठीक नहीं है। अस्तु।

(२) पृष्ठ २३५-२३६ पर जो विस्तृत टिप्पण है, उसे विशेषार्थ में दिया जा सकता था।

● डॉ. (पं.) पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, जबलपुर

जिनागम के मर्मज्ञ पूज्य पं. टोडरमलजी द्वारा लिखित **मोक्षमार्गप्रकाशक** ग्रन्थ हिन्दी भाषा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें ग्रन्थकर्त्ता ने स्वयं ही अनेक प्रश्न उठाकर उनका समाधान किया है।

ग्रन्थ की रचना ढूंढारी भाषा में है जिसका खड़ी बोली में भी परिवर्तन कर संस्करण प्रकाशित हुए हैं। परन्तु पण्डितजी की स्वाभाविक भाषा में जो माधुर्य है, वह खड़ी बोली में नहीं है। **मोक्षमार्गप्रकाशक** के कई संस्करण विभिन्न स्थानों से प्रकाशित हुए हैं जो स्वाध्यायशील जनता के द्वारा समादृत हुए हैं।

अभी हाल यह एक नवीन संस्करण प्रकाशित हुआ है, जिसमें सम्पादक विद्वानों ने ३६ विशेषार्थों के द्वारा प्रतिपादित विषय को स्पष्ट किया है। अन्य दर्शनों के प्रकरण में तत्-तत् दर्शनों की मूल मान्यता को भी स्पष्ट किया है। प्रकरणों को शीर्षक देकर सुगम बनाया है। विशेषार्थों में प्रमाण रूप से अन्य ग्रन्थों के अवतरण पृष्ठ संख्या के साथ दिये हैं। इन सबसे सम्पादकों की प्रतिभा और आगमज्ञान की झलक स्पष्ट होती है।

वास्तव में, **मोक्षमार्गप्रकाशक** पर सम्पादित यह संस्करण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

● प्रोफेसर खुशालचन्द गोरावाला, वाराणसी

आपके द्वारा प्रेषित **मोक्षमार्ग-प्रकाशक** के आदर्श सस्करण की परिकर (प्रकाशकीय, सम्पादकीय, परिशिष्ट, शब्दकोश) विहति प्रति मिली।

"यह संस्करण मेरे लिए आदर्श है क्योंकि जयधवलवृत्तिकर्त्ता श्री यतिवृषभाचार्य द्वारा तिलोयपण्णत्ती के "मंगल णिमित्त हेदू ....." द्वारा आचार्यत्व की परिभाषा के छह अंगों में मंगलाचरण द्वारा मूल (अचेल) जिनवाङ्मय में ग्रन्थकर्त्ता, भाषान्तरकर्त्ता, सम्पादक, शोधक, वाचकादि शपथपूर्वक परमगुरु, परम्परागुरु, गुरु के वचनों की तदवस्थता से आश्वस्त करता है। आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी की ढूंढारी को अक्षुण्ण रखकर यही किया गया है। फलतः आप वीरसेनाचार्य एवं पण्डिताचार्य आशाधर जी के चरण-चिह्नों पर चले हैं। और 'विशेष' द्वारा सम्पादक-संहिता का सांगोपांग अनुसरण करके साधार-शोध का मार्ग प्रशस्त किया है। यही कारण है कि "यदि धर्मध्यान या स्वाध्याय तप में भी वितर्क-वीचार सम्भव हों तो यह संस्करण ही सम्पादकश्री को वितर्क कहने के लिए पर्याप्त होगा।"

आप सबको इस आदर्श संस्करण के सुन्दर एवं साधार सम्पादन-प्रकाशन के लिए आन्तरिक बधाई।

● ब्र. पं. रतनलाल जैन शास्त्री, इन्दौर

आपका प्रयास उत्तम है। करणानुयोग का विषय तो बहुत ही स्पष्ट हुआ है। आप श्री ने ३६ विशेषार्थों के माध्यम से स्पष्ट किया सो बहुत ही प्रसन्नता का विषय है। करणानुयोग के जो भी स्थल हैं, उनका स्पष्ट

विवेचन आदरणीय पण्डित टोडरमल जी सा. आगे स्वतन्त्र कर्माधिकार में करने वाले थे परन्तु वर्णन नहीं हो सका तथा ऐसे ग्यारह स्थानों पर अन्य उल्लेख हैं जिनका वर्णन करने की मंगल भावना वे रखते थे। आठवें अध्याय तक मात्र भूमिका ही बन पाई। ग्रन्थ के नामानुसार वर्णन नौवें अध्याय से प्रारम्भ हुआ है। आप गजट आदि पत्रों में विशेषार्थों को अवश्य प्रकाशित करावें। आपकी भावना उत्तम है। फल भावों से ही प्राप्त होता है। अलमतिविस्तरेण।

● पं. सागरमल जैन, विदिशा

श्री **मोक्षमार्ग-प्रकाशक** महान् ग्रन्थराज का नवीन संस्करण - विशेषार्थ एवं टिप्पण सहित स्वाध्याय हेतु प्राप्त हुआ। धन्य हो गया। प्रथम बार सन् १६५७ में इस महान् ग्रन्थ का स्वाध्याय किया था। तबसे अनेक बार पढ़ा और पढ़ाया किन्तु मन में जो जिज्ञासाएँ उठती थीं वे आज पूरी हुई हैं, यह आपका उपकार है।

पृष्ठ १६६ पर असंयत सम्यक्त्वी की ढाई द्वीप में संख्या देकर बड़ा उपकार किया है। मात्र सात सौ करोड़ जीव यानी दस खरब मनुष्यों में मात्र एक असंयत सम्यग्दृष्टि आत्मा है। आज जिन्हें एकान्त ही प्रिय है, शायद उनकी आँखें खुल जायें - और फिर जैसी होनहार हो। पृष्ठ १६१-१६२ पर गुणश्रेणी निर्जरा की भ्रान्ति मिट गई। पृष्ठ २०५ से २१२ तक व्यवहार नय पर विशेषार्थ एवं टिप्पणी अत्यधिक उपयोगी हो गई है। पृष्ठ २२८-२२६ पर सम्यग्मिथ्यादृष्टि का विवेचन अनेक जीवों को नया लगेगा। महामुनि विष्णुकुमारजी की कथा का अंश देकर आपने अनेक का कुतर्क बन्द कर दिया। इस काल के स्वामी समन्तभद्राचार्य उदाहरण हैं। पृष्ठ २७० पर महान् सम्यग्दृष्टि भरत महाराज का कथन उद्धृत कर देने से आज के काल्पनिक भरत की आँखें खुल गईं, जिनकी होनहार भली है, वे तो सचेत हो जाएंगे।

इस उत्तम प्रकाशन के लिए सम्पादक, प्रकाशक बधाई के पात्र हैं। सम्पादकों के इस उपकार को कोई बुद्धिजीवी नहीं भूल सकेगा। इस संस्करण में मुद्रित विशेषों द्वारा जिनवाणी के सिद्धान्तों की जो श्रीवृद्धि हुई है, वह इस शताब्दी में कोई नहीं कर सका।

● पं. शिवचरणलाल जैन, मैनपुरी

पण्डितप्रवर टोडरमलजी की यह कृति बड़ी उपयोगी एवं प्रभावक रही है किन्तु कतिपय स्थलों के कारण एकान्त निश्चयाभासियों द्वारा इसका दुरुपयोग किया जाता रहा है। सम्भव है कि यदि ग्रन्थ पूरा होता तो एतद्जन्य भ्रमों का निवारण स्वतः ही हो जाता। वर्तमान में प्रारम्भ से ही पं. रतनचन्दजी मुख्तार प्रभृति विद्वानों ने इस ग्रन्थ के अपेक्षित स्थलों का स्पष्टीकरण किया है। सम्पादक वर्ग ने बड़ी सूझबूझ के साथ पूर्व प्रकाशित सभी टिप्पणियों, समालोचनाओं एवं मन्तव्यों को यथास्थान समायोजित कर इसे 'मोक्षमार्गप्रकाशक' का प्रकाशक ही बना दिया है।

वस्तुतः पं. टोडरमलजी के मन्तव्यों को सही दिशा में न समझने से जो मतिविभ्रम समाज में उत्पन्न हुआ, उसे दूर करने में यह प्रस्तुत प्रयत्न अवश्य ही प्रकाश का कार्य करेगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। इससे विद्वद् वर्ग को भी पर्याप्त लाभ होगा। सम्पादकों को हार्दिक बधाई।

ग्रन्थ से उद्धृत
कतिपय मननीय सूत्रवाक्य

(१) बहुरि त्रिलोकविषै जे अकृत्रिम जिनबिम्ब विराजै हैं मध्यलोक विषै विधिपूर्वक कृत्रिम जिनबिम्ब विराजै हैं, जिनके दर्शनादिकतैं एक धर्मोपदेश बिना अन्य अपने हित की सिद्धि जैसे तीर्थंकर केवली के दर्शनादिकतैं होइ तैसे ही होइ, तिनि जिनबिंबनिकों हमारा नमस्कार होउ। (पृष्ठ-५)

(२) अरहंतादिविषै स्तवनादि रूप भाव हो है सो कषायनि की मन्दता लिये ही हो है तातैं विशुद्ध परिणाम हैं। बहुरि समस्त कषाय मिटावने का साधन है, तातैं शुद्ध परिणाम का कारण है। (पृष्ठ-६)

(३) इहाँ कोऊ पूछै कि प्रथम ग्रन्थ की आदि विषै मंगल ही किया सो कौन कारण? ताका उत्तर - जो सुखस्यौं ग्रन्थ की समाप्तता होइ, पापकरि कोऊ विघ्न न होय, या वासतैं इहाँ प्रथम मंगल किया है। (पृष्ठ-७)

(४) जो जीवनि के सुख-दुःख होने का प्रबल कारण अपना कर्म का उदय है ताही के अनुसार बाह्य निमित्त बनै हैं। (पृष्ठ-८)

(५) इस जीव का तो मुख्य कर्त्तव्य आगमज्ञान है। (पृष्ठ १७) आगमज्ञान बिना और धर्म का साधन होय सकै नाहीं। (पृष्ठ-२६१)

(६) रागादिक का कारण तो द्रव्यकर्म है अर द्रव्यकर्म का कारण रागादिक है। (पृष्ठ-१६)

(७) जिनको बन्ध न करना होय ते कषाय मति करो। (पृष्ठ-२५)

(८) जैसे मंत्र निमित्तकरि जलादिकविषै रोगादिक दूरि करने की शक्ति हो है वा कांकरी आदिविषै सर्पादि रोकने की शक्ति हो है तैसे ही जीवभाव के निमित्तकरि पुद्गल परमाणुनिविषैं ज्ञानावरणादिरूप शक्ति हो है। (पृष्ठ-२५)

(९) यहु मतिज्ञान बाह्य द्रव्य के भी आधीन जानना ..... यहु श्रुतज्ञान है सो अनेक प्रकार पराधीन जो मतिज्ञान ताके भी आधीन है, वा अन्य अनेक कारणनि के आधीन है, तातैं महापराधीन जानना। (पृष्ठ-२६)

(१०) श्वासोच्छ्वास जीवितव्य का कारण है। (पृष्ठ-३८)

(११) तू यह मान कि 'मेरे अनादि संसाररोग पाइए है, ताके नाश का मोको उपाय करना', इस विचारतैं तेरा कल्याण होगा। (पृष्ठ-३८)

(१२) जो मोहतैं विषयग्रहण की इच्छा है, सोई दुःख का कारण जानना। (पृष्ठ-४३)

(१३) अन्य द्रव्य का किछु वश नाहीं, जिनका वश नाहीं तिनिसों काहे को लरिये। (पृष्ठ-४८)

(१४) जो आप शुद्ध होय अर ताको अशुद्ध जानै तो भ्रम अर आप कामक्रोधादिसहित अशुद्ध होय रह्या ताको अशुद्ध जानै तो भ्रम कैसे होइ। शुद्ध जानै भ्रम होइ, सो झूंठा भ्रम करि आपको शुद्ध ब्रह्म माने कहा सिद्धि है? (पृष्ठ-६७)

(१५) जब काल पाय काम-क्रोधादि मिटेंगे अर जानपनांकै मन इन्द्रिय का आधीनपना मिटेगा तब केवलज्ञानस्वरूप आत्मा शुद्ध होगा। (पृष्ठ-६८)

(१६) ऐसे अपने परिणामनि की अवस्था देखि भला होय सो करना। एकान्तपक्ष कार्यकारी नाहीं। बहुरि अहिंसा ही केवल धर्म्म का अंग नाहीं है। रागादिकनि का घटना धर्म्म का अंग मुख्य है। तातैं जैसे परिणामनिविषै रागादिक घटै सो कार्य करना। (पृष्ठ-१३५)

(१७) अपना उपयोग जैसे निर्मल होय सो कार्य करना। सधै सो प्रतिज्ञा करनी। जाका अर्थ जानिए सो पाठ पढ़ना। (पृष्ठ-१३५)

(१८) मंत्रादिक की अचिन्त्य शक्ति है। (पृष्ठ-१३६)

(१९) जिनमतविषै संयम धारे पूज्यपनो हो है। (पृष्ठ-१४१)

(२०) जो रागादिक अपने न जानै आपको अकर्त्ता मान्या, तब रागादिक होने का भय रह्या नाहीं वा रागादिक मेटने का उपाय करना रह्या नाहीं, तब स्वच्छन्द होय खोटे कर्म बांधि अनन्त संसारविषै रुलै है। (पृष्ठ-१६१)

(२१) एक कार्य होने विषै अनेक कारण चाहिए है। तिनविषै जे कारण बुद्धिपूर्वक होय, तिनको तो उद्यम करि मिलावै अर अबुद्धिपूर्वक कारण स्वयमेव मिलै तब कार्यसिद्धि होय। (पृष्ठ-१६२)

(२२) तातैं सर्वथा निर्बन्ध आपको मानना मिथ्यादृष्टि है। (पृष्ठ-१६३)

(२३) केवल आत्मज्ञान ही तैं तो मोक्षमार्ग होइ नाहीं। सप्त तत्त्वनि का श्रद्धानज्ञान भए वा रागादिक दूरि किए मोक्षमार्ग होगा। (पृष्ठ-१६६)

(२४) बिना प्रतिज्ञा किये अविरत सम्बन्धी बंध मिटै नाहीं। ... तातैं बने सो प्रतिज्ञा लेनी युक्त है। बहुरि प्रारब्ध अनुसारि तो कार्य बनै ही है, तू उद्यमी होय भोजनादि काहे को करै है। जो तहाँ उद्यम

करै है, तो त्याग करने का भी उद्यम करना युक्त ही है। ...काहे को स्वच्छन्द होने की युक्ति बनावै है। बनै सो प्रतिज्ञा करि व्रत धारना योग्य ही है। (पृष्ठ-१६८)

(२५) जहाँ शुद्धोपयोग होता जानै, तहाँ तो शुभ कार्य का निषेध ही है, अर जहाँ अशुभोपयोग होता जानै तहाँ शुभ को उपाय करि अंगीकार करना युक्त है। (पृष्ठ-१६६)

(२६) बहुरि चौथा गुणस्थान विषै कोई अपने स्वरूप का चिन्तवन करै है, ताकै भी आस्रव बन्ध अधिक है, वा गुणश्रेणी निर्जरा नाहीं है। (पृष्ठ १७२, १६०)

(२७) स्वद्रव्य-परद्रव्य का चिंतवनतैं निर्जराबंध नाहीं। रागादिक घटै निर्जरा है, रागादिक भए बन्ध है। (पृष्ठ-१७२)

(२८) ज्ञानी जननि के उपवासादि की इच्छा नाहीं है, एक शुद्धोपयोग की इच्छा है। उपवासादि किए शुद्धोपयोग बधै है, तातैं उपवासादि करै हैं। (पृष्ठ-१८६)

(२६) मिथ्यात्व समान अन्य पाप नाहीं है। मिथ्यात्व का सद्भाव रहे अन्य अनेक उपाय किये भी मोक्षमार्ग न होय। तातैं जिस-तिस उपाय करि सर्व प्रकार मिथ्यात्व का नाश करना योग्य है। (पृष्ठ-२३०)

(३०) वात्सल्य अंग की प्रधानता करि विष्णुकुमार जी की प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनि को ऊँचा धर्म छोड़ि नीचा धर्म अंगीकार करना योग्य नाहीं। (पृष्ठ-२३७)

(३१) जैसे गुवालिया मुनि को अग्नि कर तपाया सो करुणातैं यहु कार्य किया... तातैं याकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनि को धर्मपद्धतिविषै जो विरुद्ध होय सो कार्य करना योग्य नाहीं। (पृष्ठ-२३७)

(३२) करणानुयोगविषै तो यथार्थ पदार्थ जनावने का मुख्य प्रयोजन है। (पृष्ठ-२४०)

(३३) बाह्य संयम साधन बिना परिणाम निर्मल न होय सकै हैं। तातैं बाह्य साधन का विधान जानने को चरणानुयोग का अभ्यास अवश्य किया चाहिए। (पृष्ठ-२५१)

(३४) तातैं जो उपदेश होय ताको सर्वथा न जानि लेना। उपदेश का अर्थ को जानि तहाँ इतना विचार करना, यहु उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन लिए है, किस जीव को कार्यकारी है?... (पृष्ठ-२५८)

(३५) बहुरि पुरुषार्थतैं उद्यम करिए है, सो यहु आत्मा का कार्य है। तातैं आत्मा को पुरुषार्थकरि उद्यम करने का उपदेश दीजिए है।... जो पुरुषार्थ करि मोक्ष का उपाय करै है, ताकै सर्वकारण मिले हैं, ऐसा निश्चय करना अर वाकै अवश्य मोक्ष की प्राप्ति हो है।... जो उपदेश सुनि पुरुषार्थ करै है, सो मोक्ष

का उपाय करि सकै है अर पुरुषार्थ न करै है सो मोक्ष का उपाय न करि सकै है। उपदेश तो शिक्षा मात्र है, फल पुरुषार्थ करै तैसा लागै। (पृष्ठ-२३७)

(३६) बहुरि जब कर्म का उदय तीव्र होय, तब पुरुषार्थ न होय सकै है। ऊपरले गुणस्थाननितैं भी गिर जाय है। तहाँ तो जैसा होनहार होय तैसा ही होय। परन्तु जहाँ मन्द उदय होय अर पुरुषार्थ होय सकै, तहाँ तो प्रमादी न होना-सावधान होय अपना कार्य करना। (पृष्ठ-२६६)

(३७) तत्त्वश्रद्धान ज्ञान बिना तो रागादि घटाए मोक्षमार्ग नाहीं अर रागादि घटाए बिना तत्त्वश्रद्धानज्ञानतैं भी मोक्षमार्ग नहीं। तीनों मिले साक्षात् मोक्षमार्ग हो है। (पृष्ठ-२७२)

(३८) पहिले तो देवादिक का श्रद्धान होय, पीछे तत्त्वनि का विचार होय, पीछे आपा-पर का चिंतवन करै, पीछे केवल आत्मा को चिन्तवै। इस अनुक्रम तैं साधन करै तो परम्परा सांचा मोक्षमार्ग को पाय कोई जीव सिद्धपद को भी पावै। (पृष्ठ-२८३)

(३९) सम्यक्त्व का अर्थी इनि कारणनि को मिलावे, पीछै घने जीवनिकै तो सम्यक्त्व की प्राप्ति होय ही है। काहू कै न होय तो नाहीं भी होय। परन्तु याको तो आपतैं बने सो उपाय करना। (पृष्ठ-२८४)

अनुक्रम

卐 विशेषार्थ 卐

पृष्ठ सं. २, ५, ६, २०, २३, ३०, ३४, ४६, ५४, ५७, ६८, ७२, १०२, १०४, १०८, १११, १२५, १४८, १५२, १८५, १८८, १९१, २०५, २२१, २२५, २२८, २३२, २३५, २३९, २६४, २६६, २७०, २८८, २९२-२९३, २९५, २९६।

मुख्य टिप्पण : ६०, ७४, १७६, १८१, १९६, २०२, २३५, २७८, २८५।

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

ॐ

।। ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।।

आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी कृत

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

卐 पहला अधिकार 卐

अथ **मोक्षमार्गप्रकाशक** नामा शास्त्र लिख्यते

❀ मंगलाचरण ❀

।। दोहा ।।

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग विज्ञान।
नमौं ताहि जातैं भये, अरहंतादि महान्।।१।।
करि मंगल करिहौं महा, ग्रंथकरन को काज।
जातैं मिलै समाज सब, पावै निजपदराज।।२।।

अथ **मोक्षमार्गप्रकाशक** नाम शास्त्रका उदय हो है। तहाँ मंगल करिये है –

णमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं।।

यहु प्राकृतभाषामय नमस्कारमन्त्र है, सो महामंगलस्वरूप है। बहुरि याका संस्कृत ऐसा होइ –

नमोऽर्हद्भ्यः । नमः सिद्धेभ्यः । नमः आचार्येभ्यः। नमः उपाध्यायेभ्यः। नमो लोके सर्वसाधुभ्यः। बहुरि याका अर्थ ऐसा है – नमस्कार अरहंतनिके अर्थि, नमस्कार सिद्धनिकै अर्थि, नमस्कार आचार्यनिकै अर्थि, नमस्कार उपाध्यायनिकै अर्थि, नमस्कार लोकविषै समस्तसाधुनिके अर्थि, ऐसे या विषै नमस्कार किया, तातैं याका नाम नमस्कारमंत्र है। अब इहाँ जिनकूं नमस्कार किया तिनिका स्वरूप चिंतवन कीजिये है। (जातैं स्वरूप जाने बिना यहु जान्या नाहीं जाय जो मैं कौनकों नमस्कार करूँ। तब उत्तमफल की प्राप्ति कैसे होय।[1])

---

१. यह पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है, संशोधित लिखित प्रतियों में है, इसी से इसे मूल में दिया गया है।

अरहन्तों का स्वरूप

तहाँ प्रथम अरहंतनिका स्वरूप विचारिये है – जे गृहस्थपनो त्यागि मुनिधर्म अंगीकार करि निजस्वभावसाधनतैं च्यारि घातिकर्मनिकौं खिपाय अनन्त चतुष्टय विराजमान भये। तहाँ अनन्तज्ञानकरि तौ अपने अनन्त गुणपर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यनिको युगपत् विशेषपने करि प्रत्यक्ष जानै है। अनन्तदर्शनकरि तिनिकौं सामान्यपने अवलोकै है। अनन्तवीर्यकरि ऐसी (उपर्युक्त) सामर्थ्यको धारै है। अनन्तसुखकरि निराकुल परमानन्दको अनुभवे है। बहुरि जे सर्वथा सर्व रागद्वेषादि विकारभावनिकरि रहित होय शान्तरस रूप परिणए हैं। बहुरि क्षुधा-तृषाआदि समस्तदोषनितैं मुक्त होइ देवाधिदेवपनाको प्राप्त भये हैं। बहुरि आयुध अंबरादिक वा अंगविकारादिक जे कामक्रोधादि निंद्यभावनिके चिह्न तिनकरि रहित जिनका परम औदारिक शरीर भया है। बहुरि जिनके वचननितैं लोकविषै धर्मतीर्थ प्रवर्तै है, ताकरि जीवनिका कल्याण हो है। बहुरि जिनके लौकिक जीवनिकूं प्रभुत्व माननेके कारण अनेक अतिशय अर नाना प्रकार विभव तिनिका संयुक्तपना पाइये है। बहुरि जिनकों अपना हितके अर्थि गणधर इन्द्रादिक उत्तम जीव सेवै हैं। ऐसे सर्वप्रकार पूजने योग्य श्रीअरहंतदेव हैं, तिनिकौं हमारा नमस्कार होउ।

सिद्धों का स्वरूप

अब सिद्धनिका स्वरूप ध्याइये है-जे गृहस्थअवस्था त्यागि मुनिधर्म साधनतैं च्यारि घातिकर्मनि का नाश भये अनन्तचतुष्टय भाव प्रगट करि केतेक काल पीछे च्यारि अघातिकर्मनि का भी भस्म होतैं परम औदारिक शरीरको भी छोरि ऊर्ध्वगमन स्वभावतैं लोक का अग्रभागविषै जाय विराजमान भये। तहां जिनकै समस्त परद्रव्य सम्बन्ध छूटनेतैं मुक्त अवस्थाकी सिद्धि भई, बहुरि जिनकै चरमशरीरतैं किंचित् ऊन पुरुषाकारवत् आत्मप्रदेशनिका आकार अवस्थित भया,

विशेष – सिद्धों के आत्मप्रदेशों का आकार चरम मनुष्य शरीर से किञ्चित् न्यून होता है। यह मत **द्रव्यसंग्रह मूल व टीका (गाथा १४), तिलोयपण्णत्ती ९/१०, लोकविभाग** प्रस्तावना पृ. ३०, **लोकविभाग ११/६** आदि का है। परन्तु दूसरे मत के अनुसार अन्तिमशरीर का दो तिहाई भाग प्रमाण आकार ही सिद्धावस्था में रहता है - यह मत **तिलोयपण्णत्ती ९/९, सिद्धान्तसारदीपक १६/८/५९०** तथा श्रीमद् राजचन्द्र पृष्ठ ६२६ आदि पर है। इस प्रकार दो मत हैं।

बहुरि जिनकै प्रतिपक्षी कर्मनिका नाश भया, तातैं समस्त सम्यक्त्वज्ञान-दर्शनादिक आत्मीक गुण सम्पूर्ण अपने स्वभावको प्राप्त भये हैं, बहुरि जिनकै नोकर्मका सम्बन्ध दूर भया तातैं समस्त अमूर्तत्वादिक आत्मीकधर्म प्रकट भये हैं। बहुरि जिनकै भावकर्मका अभाव भया तातैं निराकुल आनन्दमय शुद्धस्वभावरूप परिणमन हो है। बहुरि जिनके ध्यानकरि भव्यजीवनि कै स्वद्रव्यपरद्रव्य का अर औपाधिक भाव स्वभावभावनि का विज्ञान हो है, ताकरि तिनि सिद्धनिके समान आप होने का साधन हो है। तातैं साधनेयोग्य जो अपना शुद्धस्वरूप ताके दिखावनेको प्रतिबिंब समान हैं। बहुरि जे कृतकृत्य भये हैं तातैं ऐसे ही अनन्त कालपर्यंत रहै हैं, ऐसे निष्पन्न भये सिद्ध भगवान तिनको हमारा नमस्कार होउ।

अब आचार्य, उपाध्याय, साधुनि का स्वरूप अवलोकिये है-

जे विरागी होइ समस्त परिग्रहको त्यागि शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करि अंतरंगविषैं तो तिस शुद्धोपयोगकरि आपको आप अनुभवै है, परद्रव्यविषै अहंबुद्धि नाहीं धारे है। बहुरि अपने ज्ञानादिक स्वभावनि ही को अपने मानै है। परभावनिविषैं ममत्व न करै है। बहुरि जे परद्रव्य वा तिनके स्वभाव ज्ञानविषैं प्रतिभासै है तिनिको जानै तो है परन्तु इष्ट-अनिष्ट मानि तिनविषैं रागद्वेष नाहीं करै है। शरीर की अनेक अवस्था हो है, बाह्य नाना निमित्त बनै है परन्तु तहाँ किछू भी सुखदु:ख मानते नाहीं। बहुरि अपने योग्य बाह्यक्रिया जैसे बनै है, तैसे बनै है, खैंचिकरि तिनको करते नाहीं। बहुरि अपने उपयोगको बहुत नाहीं भ्रमावै है। उदासीन होय निश्चल वृत्ति को धारे है। बहुरि कदाचित् मंदराग के उदयतैं शुभोपयोग भी हो है, तिसकरि जे शुद्धोपयोग के बाह्य साधन हैं तिनविषै अनुराग करै है परन्तु तिस रागभावको हेय जानि दूरि किया चाहै है। बहुरि तीव्र कषाय के उदयका अभावतैं हिंसादिरूप जो अशुभोपयोग परिणतिका तौ अस्तित्व ही रह्या नाहीं। बहुरि ऐसी अंतरंग अवस्था होतैं बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्राके धारी भये हैं। शरीरका संवारना आदि विक्रियानिकरि रहित भये हैं। वनखंडादिविषैं बसै हैं। अठाईस मूलगुणनिको अखंडित पालै हैं। वाईस परीषहनिको सहै हैं। बारह प्रकार तपनिको आदरै हैं। कदाचित् ध्यानमुद्रा धारी प्रतिमावत् निश्चल हो हैं। कदाचित् अध्ययनादि बाह्य धर्मक्रियानि विषै प्रवर्तै हैं। कदाचित् मुनिधर्म का सहकारी शरीर की स्थिति के अर्थि योग्य आहार - विहारादिक्रियानिविषैं सावधान हो हैं। ऐसे जैनी मुनि हैं, तिन सबनिकी ऐसी ही अवस्था हो है।

आचार्य का स्वरूप

तिनिविषैं जे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की अधिकताकरि प्रधानपदको पाइ संघविषैं नायक भये हैं। बहुरि जे मुख्यपने तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण विषैं ही मग्न हैं अर जो कदाचित् धर्म के लोभी अन्य जीवयाचकनि को देखि राग अंश उदयतैं करुणाबुद्धि होय तो तिनिकों धर्मोपदेश देते हैं। जे दीक्षाग्राहक हैं तिनिकों दीक्षा देते हैं, जे अपने दोष प्रगट करै हैं, तिनिको प्रायश्चित्त-विधिकरि शुद्ध करै हैं। ऐसे आचरन अचरावन वाले आचार्य तिनको हमारा नमस्कार होउ।

उपाध्याय का स्वरूप

बहुरि जे बहुत जैन शास्त्रनिके ज्ञाता होइ संघविषैं पठन-पाठन के अधिकारी भये हैं, बहुरि जे समस्त शास्त्रनिका प्रयोजनभूत अर्थ जानि एकाग्र होय अपने स्वरूपको ध्यावै है। अर जो कदाचित् कषाय अंश उदयतैं तहाँ उपयोग नाहीं थंभै है तो तिन शास्त्रनिकों आप पढ़ै है वा अन्य धर्मबुद्धीनिको पढ़ावै है। ऐसे समीपवर्ती भव्यनिको अध्ययन करावनहारे उपाध्याय तिनिको हमारा नमस्कार होहु।

साधु का स्वरूप

बहुरि इन दोय पदवीधारक बिना अन्य समस्त जे मुनिपद के धारक हैं, बहुरि जे आत्मस्वभावको साधै हैं। जैसे अपना उपयोग परद्रव्यनिविषैं इष्ट-अनिष्टपनो मानि फँसै नाहीं वा भागै नाहीं तैसे उपयोग

को सधावै हैं। बहुरि बाह्यतपकी साधनभूत तपश्चरण आदि क्रियानिविषै प्रवर्तै हैं वा कदाचित् भक्ति-वन्दनादि कार्यनिवषैं प्रवर्तै हैं। ऐसे आत्मस्वभाव के साधक साधु हैं तिनिको हमारा नमस्कार होउ।

पूज्यत्व का कारण

ऐसे इन अरहंतादिकनि का स्वरूप है सो वीतराग विज्ञानमय है। तिसही करि अरहंतादिक स्तुति योग्य महान् भये हैं; जातैं जीवतत्त्व करि तौ सर्व ही जीव समान हैं परन्तु रागादिविकारनिकरि वा ज्ञानकी हीनताकरि तौ जीव निन्दा योग्य हो हैं। बहुरि रागादिककी हीनताकरि वा ज्ञानकी विशेषताकरि स्तुति योग्य हो हैं। सो अरहंत सिद्धनि कै तौ सम्पूर्ण रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषता होने करि सम्पूर्ण वीतरागविज्ञान भाव संभवै है। अर आचार्य उपाध्याय साधुनिकै एकोदेश रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषता होने करि एकोदेश वीतरागविज्ञान संभवै है। तातैं ते अरहंतादिक स्तुति योग्य महान जानने।

परमेष्ठी के स्वरूप का उपसंहार

बहुरि ए अरहंतादिक पद हैं तिन विषै ऐसा जानना जो मुख्यपने तौ तीर्थंकरका अर गौणपने सर्वकेवली का ग्रहण है, यहु पदका प्राकृत भाषाविषैं अरहंत अर संस्कृतविषैं अर्हत् ऐसा नाम जानना। बहुरि चौदवाँ गुणस्थान के अनंतर समयतैं लगाय सिद्धनाम जानना। बहुरि जिनको आचार्यपद भया होय ते संघविषै रहो वा एकाकी आत्मध्यान करो वा एकाविहारी होहु वा आचार्यनिविषै भी प्रधानताको पाय गणधरपदवी के धारक होहु, तिन सबनिका नाम आचार्य कहिये है। बहुरि पठन-पाठन तो अन्यमुनि भी करै हैं परन्तु जिनके आचार्यनिकरि दिया उपाध्याय पद भया होइ ते आत्मध्यानादि कार्य करतैं भी उपाध्याय ही नाम पावै हैं। बहुरि जे पदवीधारक नाहीं ते सर्व मुनि साधुसंज्ञा के धारक जानने। इहाँ ऐसा नाहीं नियम है जो पंचाचारनि करि आचार्य पद हो है, पठनपाठनकरि उपाध्यायपद हो है, मूलगुण साधनकरि साधुपद हो है। जातैं ए तो क्रिया सर्वमुनिन के साधारण हैं परन्तु शब्द नयकरि तिनका अक्षरार्थ तैसे करिये है। समभिरूढ़नय करि पदवीकी अपेक्षा ही आचार्यादिक नाम जानने। जैसे शब्द नयकरि गमन करै सो गऊ कहिये सो गमन तौ मनुष्यादिक भी करै है परन्तु समभिरूढ़ नयकरि पर्याय अपेक्षा नाम है, तैसै ही यहाँ समझना।

इहाँ सिद्धनिके पहले अरहंतनिको नमस्कार किया सो कौन कारण? ऐसा सन्देह उपजै है। ताका समाधान यह है-

नमस्कार करिये है सो अपने प्रयोजन साधने की अपेक्षा करिये है, सो अरहंतनितैं उपदेशादिकका प्रयोजन विशेष सिद्ध हो है, तातैं पहले नमस्कार किया है।[1] या प्रकार अरहंतादिकनि का स्वरूप चिंतवन किया। जातैं स्वरूप-चिंतवन किये विशेष कार्यसिद्धि हो है। बहुरि इन अरहंतादिक ही को पंचपरमेष्ठी कहिये है। जातैं जो सर्वोत्कृष्ट इष्ट होइ ताका नाम परमेष्ट है। पंच जे परमेष्ट तिनिका समाहार समुदाय ताका नाम पंचपरमेष्ठी जानना।

---

१. धवला प्र. पु. पृ. ५४।

भरत तथा विदेह क्षेत्रस्थ तीर्थंकर

बहुरि रिषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयान्, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, वर्द्धमान नामधारक चौबीस तीर्थंकर इस भरतक्षेत्र - विषैं वर्तमान धर्मतीर्थ के नायक भये, गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-निर्वाण कल्याणकनिविषैं इन्द्रादिकनिकरि विशेष पूज्य होइ अब सिद्धालयविषै विराजै हैं, तिनिको हमारा नमस्कार होहु। बहुरि सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, संजातक, स्वयंप्रभ, वृषभानन, अनंतवीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, चन्द्रबाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य नामधारक बीसतीर्थंकर पंचमेरु सम्बन्धी विदेहक्षेत्रनिविषैं अवार केवलज्ञान (सहित) विराजमान है तिनिको हमारा नमस्कार होहु। यद्यपि परमेष्ठी पदविषैं इनका गर्भितपना है तथापि विद्यमान कालविषै इनको विशेष जानि जुदा नमस्कार किया है।

जिनबिम्ब तथा जिनवाणी

बहुरि त्रिलोकविषै जे अकृत्रिम जिनबिम्ब विराजै हैं मध्यलोकविषै विधिपूर्वक[1] कृत्रिम जिनबिम्ब विराजै हैं, जिनके दर्शनादिकतैं (स्वपरभेद-विज्ञान होय है, कषाय मंद होय शान्तभाव हो है वा)[2] एक धर्मोपदेश बिना अन्य अपने हितकी सिद्धि जैसे तीर्थंकर केवलीके दर्शनादिकतैं होइ तैसे ही होइ, तिनि जिनबिंबनिकों हमारा नमस्कार होउ।

विशेष : षट्खण्डागम में भी लिखा है कि मनुष्यों के सम्यक्त्व उत्पन्न होने के तीन कारण हैं – १. जातिस्मरण २. धर्मोपदेशश्रवण तथा ३. जिनबिम्बदर्शन। **(धवल ६/४२९)**। जिनबिम्बदर्शन से निधत्त तथा निकाचित रूप भी मिथ्यात्वादि कर्मकलाप का क्षय देखा जाता है। **(धवल ६/४२७)** मेरु पर्वत पर किये जाने वाले जिनेन्द्र-जन्म-महोत्सवों को विद्याधर मनुष्य देखते हैं और उस कारण कितने ही विद्याधर सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं। **(धवल ६/४३०) बृहद् नयचक्र** में भी लिखा है कि तीर्थंकर, केवली, श्रमण, भवस्मरण, शास्त्र, देवमहिमा (जिनबिम्बदर्शन अन्तर्भूत) आदि सम्यग्दर्शन के बाह्य कारण हैं। **(नयचक्र ३१६)** यही सब राजवार्तिक २/३/२ पृ. **१०५ आदि में भी है।**

बहुरि केवली की दिव्यध्वनिकरि दिया उपदेश ताकै अनुसारि गणधरकरि रचित अंगप्रकीर्णक तिनकै अनुसारि अन्य आचार्यादिकनिकरि रचे ग्रन्थादिक ऐसे ये सर्व जिनवचन हैं, स्याद्वादचिह्नकरि पहचानने योग्य हैं, न्यायमार्गतैं अविरुद्ध हैं, तातैं प्रमाणीक हैं, जीवको तत्त्वज्ञान के कारण हैं, तातैं उपकारी हैं, तिनको हमारा नमस्कार होउ।

१. प्रतिष्ठादि विधान से प्रतिष्ठित। २. कोष्ठक वाली पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है।

द्रव्य चतुष्टय की अपेक्षा नमस्कार

बहुरि चैत्यालय, आर्यिका, उत्कृष्ट श्रावक आदि द्रव्य अर तीर्थक्षेत्रादि क्षेत्र अर कल्याणककाल आदि काल, रत्नत्रय आदि भाव, जे मुझकरि नमस्कार करने योग्य हैं तिनकौं नमस्कार करूं हौं अर (जे) किंचित् विनय करने योग्य हैं तिनका यथायोग्य विनय करौं हौं। ऐसे अपने इष्टनिका सन्मानकरि मंगल किया है। अब ए अरहंतादिक इष्ट कैसे हैं, सो विचार करिए है-

जा करि सुख उपजै वा दुःख विनसे तिस कारिज (कार्य) का नाम प्रयोजन है। बहुरि तिस प्रयोजनकी जाकरि सिद्धि होय सो ही अपना इष्ट है। सो हमारे इस अवसरविषै वीतरागविशेष ज्ञान का होना सो प्रयोजन है, जातैं याकरि निराकुल सांचे सुख की प्राप्ति हो है अर सर्व आकुलतारूप दुःखका नास हो है। बहुरि इस प्रयोजनकी सिद्धि अरहंतादिकनिकरि हो है। कैसे, सो विचारिए है-

अरहन्तादिकों से प्रयोजनसिद्धि

आत्मा के परिणाम तीन प्रकार हैं - संक्लेश, विशुद्ध, शुद्ध।[1] तहाँ तीव्र कषायरूप संक्लेश है, मंद कषायरूप विशुद्ध है, कषायरहित शुद्ध है। तहाँ वीतरागविशेष ज्ञानरूप अपने स्वभाव के घातक जु हैं ज्ञानावरणादि घातियाकर्म, तिनिका संक्लेश परिणाम करि तौ तीव्र बन्ध हो है, अर विशुद्ध परिणामकरि मंद बन्ध हो है[2] वा विशुद्ध परिणाम प्रबल होइ तौ पूर्वै जो तीव्रबंध भया था ताकौं भी मंद करै है, अर शुद्ध परिणामकरि बन्ध न हो है, केवल तिनकी निर्जरा ही हो है। सो **अरहंतादिविषैं स्तवनादि रूप भाव हो है सो कषायनिकी मन्दता लिये ही हो है तातैं विशुद्ध परिणाम है। बहुरि समस्त कषाय मिटावने का साधन है तातैं शुद्ध परिणाम का कारण** है सो ऐसे परिणाम करि अपना घातक घातिकर्म का हीनपनाके होनेतैं, सहज ही वीतराग विशेषज्ञान प्रगट हो है। जितने अंशनिकरि वह हीन होय तितने अंशनिकरि यहु प्रगट होइ ऐसे अरहंतादिक करि अपना प्रयोजन सिद्ध हो है।

दर्शन-स्मरण से कषायों की शिथिलता

अथवा अरहंतादिक का आकार अवलोकना वा स्वरूप विचार करना वा वचन सुनना वा निकटवर्ती होना वा तिनके अनुसारि प्रवर्तना इत्यादि कार्य तत्काल ही निमित्तभूत होइ रागादिकनिको हीन करै है। जीव अजीवादिक का विशेषज्ञान को उपजावै है। तातैं ऐसे भी अरहंतादिक करि वीतराग विशेषज्ञानरूप प्रयोजन की सिद्धि हो है।

इहाँ कोऊ कहै कि इनिकरि ऐसे प्रयोजन की तो सिद्धि ऐसे हो है बहुरि जाकरि इन्द्रियजनित सुख उपजै, दुःख विनसै ऐसे भी प्रयोजन की सिद्धि इन करि हो है कि नाहीं? ताका **समाधान-**

अरहन्तादि से सांसारिक प्रयोजन की सिद्धि

जो अरहंतादि विषै स्तवनादिरूप विशुद्ध परिणाम हो है ताकरि अघातिया कर्मनि की साता आदि

---

१. प्र.सा.अ. १ गाथा ६ । २. गो.क. गाथा १६३।

पुण्यप्रकृतिनिका बंध हो है। बहुरि जो वह परिणाम तीव्र होय तो पूर्वे असाताआदि पापप्रकृति बंधी थी तिनको भी मंद करै है अथवा नष्टकरि पुण्य प्रकृतिरूप परिणमावै है। बहुरि तिस पुण्यका उदय होतैं स्वयमेव इन्द्रियसुखकौ कारणभूत सामग्री मिलै है अर पापका उदय दूर होतैं स्वयमेव दुःख कौ कारणभूत सामग्री दूर हो है। ऐसे इस प्रयोजनकी भी सिद्धि तिनकरि हो है। अथवा जिनशासन के भक्त देवादिक हैं ते तिस भक्त पुरुषकै अनेक इन्द्रियसुखकौं कारणभूत सामग्रीनिका संयोग करावै है, दुःखकी कारणभूत सामग्रीनिकों दूरि करै हैं। ऐसे भी इस प्रयोजन की सिद्धि तिन अरहंतादिकनि करि हो है। परन्तु इस प्रयोजनतैं किछु अपना भी हित होता नाहीं तातैं यहु आत्मा कषायभावनितैं बाह्य सामग्रीविषैं इष्ट-अनिष्टपनो मानि आप ही सुख-दुःखकी कल्पना करै है। **बिना कषाय बाह्य सामग्री किछु सुख-दुःखकी दाता नाहीं।** बहुरि कषाय है सो सब आकुलतामय है तातैं **इन्द्रियजनितसुख की इच्छा करनी, दुःखतैं डरना सो यह भ्रम है।** बहुरि इस प्रयोजन के अर्थि अरहंतादिककी भक्ति किए भी तीव्रकषाय होनेकरि पापबन्ध ही हो है तातैं आपकों इस प्रयोजनका अर्थी होना योग्य नाहीं। अरहंतादिककी भक्ति करतैं ऐसे प्रयोजन तौ स्वयमेव ही सधै हैं।

अरहन्तादि ही परम मंगल हैं

ऐसे अरहंतादिक परम इष्ट मानने योग्य हैं। बहुरि ए अरहंतादिक ही परममंगल हैं। इन विषै भक्तिभाव भये परममंगल हो है। जातैं 'मंग' कहिये सुख ताहि 'लाति' कहिये देवै अथवा 'मं' कहिये पाप ताहि 'गालयति' कहिये गालै ताका नाम मंगल है सो तिनकरि पूर्वोक्त प्रकार दोऊ कार्यनिकी सिद्धि हो है। तातैं तिनके परममंगलपना सम्भवै है।

मंगलाचरण करने का कारण

इहां **कोऊ पूछै** कि प्रथम ग्रन्थकी आदि विषैं मंगल ही किया सो कौन कारण ? ताका **उत्तर-**

जो सुखस्यौं ग्रन्थ की समाप्तता होइ, पापकरि कोऊ विघ्न न होय, या वास्तैं इहां प्रथम मंगल किया है।

इहां तर्क - जो अन्यमती ऐसै मंगल नाहीं करै हैं तिनके भी ग्रन्थकी समाप्तता अर विघ्न का न होना देखिये है, तहाँ कहा हेतु है ? ताका **समाधान-**

जो अन्यमती ग्रन्थ करै है तिसविषैं मोहके तीव्र उदयकरि मिथ्यात्व कषाय भावनिको पोषते विपरीत अर्थनिकों धरै है तातैं ताकी निर्विघ्न समाप्तता तौ ऐसे मंगल बिना किये ही होइ। जो ऐसे मंगलनिकरि मोह मंद हो जाय तो वैसा विपरीत कार्य कैसे बनै? बहुरि **हमहु ग्रन्थ करै हैं** तिस विषै मोहकी मंदता करि वीतराग तत्त्वज्ञानको पोषते अर्थनिको धरेंगे **ताकि निर्विघ्न समाप्तता ऐसे मंगल किये ही होय।** जो ऐसे मंगल न करैं तो मोहका तीव्रपना रहै, तब ऐसा उत्तम कार्य कैसे बनै? बहुरि वह कहै है जो ऐसे तो मानेंगे परन्तु कोऊ ऐसा मंगल न करै ताकै भी सुख देखिए है, पापका उदय न देखिये है अर कोऊ ऐसा मंगल करै है ताकै भी सुख न देखिये है, पापका उदय देखिये है, तातैं पूर्वोक्त मंगलपना कैसे बनै? ताकौं कहिये है-

जो जीवनिकै संक्लेश विशुद्ध परिणाम अनेक जातिके हैं तिनकरि अनेक कालनिविषैं पूर्वै बंधे कर्म एक कालविषै उदय आवै हैं। तातैं जैसे जाकै पूर्वैं बहुत धनका संचय होय ताकै बिना कुमाए भी धन देखिए है अर देणा न देखिये है। अर जाकै पूर्वैं ऋण बहुत होय ताकै धन कुमावतैं भी देणा देखिये है अर धन न देखिए है। परन्तु विचार किए तैं कुमावना धन ही का कारण है, ऋणका कारण नाहीं। तैसें जाकै पूर्वैं बहुत पुण्य बंध्या होइ ताकै इहाँ ऐसा मंगल बिना किए भी सुख देखिए है, पापका उदय न देखिए है। बहुरि जाकै पूर्वे बहुत पाप बंध्या होय ताकै इहां ऐसा मंगल किये भी सुख न देखिए है, पापका उदय देखिए है। परन्तु विचार किएतैं ऐसा मंगल तो सुख ही का कारण है, पाप उदयका कारण नाहीं। ऐसे पूर्वोक्त मंगलका मंगलपना बनै है।

बहुरि वह कहै है कि यह भी मानी परन्तु जिनशासन के भक्त देवादिक हैं तिनि तिस मंगल करने वाले की सहायता न करी अर मंगल न करने वाले को दंड न दिया सो कौन कारण? ताका **समाधान**-

जो जीवनिकै सुख दुख होने का प्रबल कारण अपना कर्म का उदय है ताहीके अनुसारि बाह्य निमित्त बनै हैं, तातैं जाकै पापका उदय होइ ताकै सहायता का निमित्त न बनै है अर जाकै पुण्यका उदय होइ ताकै दंडका निमित्त न बनै है। यह निमित्त कैसे न बनै है सो कहिये है-

जे देवादिक हैं ते क्षयोपशम ज्ञानतैं सर्वकों युगपत् जानि सकते नाहीं, तातैं मंगल करने वाले वा न करने वाले का जानपना किसी देवादिककै काहू कालविषै हो है। तातैं जो तिनिका जानपना न होइ तो कैसै सहाय करै वा दंड दे। अर जानपना होय तब आपकै जो अति मंदकषाय होइ तौ सहाय करने के वा दंड देने के परिणाम ही न होइ। अर तीव्रकषाय होइ तौ धर्मानुराग होइ सके नाहीं। बहुरि मध्यम कषायरूप तिस कार्य करने के परिणाम भये अर अपनी शक्ति नाहीं तो कहा करै। ऐसे सहाय करने वा दंड देने का निमित्त नाहीं बनै है। जो अपनी शक्ति होय अर आपके धर्मानुरागरूप मध्यमकषाय का उदयतैं तैसे ही परिणाम होइ अर तिस समय अन्य जीवका धर्म अधर्मरूप कर्तव्य जानै, तब कोई देवादिक किसी धर्मात्मा की सहाय करै है वा किसी अधर्मीको दंड दे है। ऐसे कार्य होने का किछू नियम तौ है नाहीं, ऐसे समाधान किया। इहां इतना जानना कि सुख होने की, दुःख न होने की, सहाय करावने की, दुख द्यावने की जो इच्छा है सो कषायमय है, तत्काल विषैं वा आगामी काल विषैं दुखदायक है। तातैं ऐसी इच्छा कूं छोरि हम तौ एक वीतराग विशेष ज्ञान होने के अर्थी होइ अरहंतादिकक्कों नमस्कारादिक रूप मंगल किया है। ऐसे मंगलाचरण करि अब सार्थक **मोक्षमार्ग-प्रकाशक**नाम ग्रन्थका उद्योत करै हैं। तहां यहु ग्रन्थ प्रमाण है ऐसी प्रतीति आवने के अर्थि पूर्व अनुसारका स्वरूप निरूपिए है-

ग्रन्थ की प्रामाणिकता और आगम-परम्परा

अकारादि अक्षर हैं ते अनादिनिधन हैं, काहूके किए नाहीं, इनका आकार लिखना तो अपनी इच्छा के अनुसार अनेक प्रकार है परन्तु बोलने में आवै हैं ते अक्षर तो सर्वत्र सर्वदा ऐसे ही प्रवर्तै हैं, सोई कह्या है- **'सिद्धो वर्णसमाम्नायः'**। याका अर्थ- यहु जो अक्षरनिका सम्प्रदाय है सो स्वयंसिद्ध है। बहुरि तिन

अक्षरनिकरि निपजे सत्यार्थ के प्रकाशक पद तिनके समूह का नाम श्रुत है सो भी अनादिनिधन है। जैसे 'जीव' ऐसा अनादिनिधन पद है सो जीवका जनावनहारा है। ऐसे अपने-अपने सत्य अर्थ के प्रकाशक अनेक पद तिनका जो समुदाय सो श्रुत जानना। बहुरि जैसे मोती तो स्वयंसिद्ध है तिन विषै कोऊ थोरे मोतीनिकों, कोऊ घने मोतीनिकों, कोऊ किसी प्रकार,कोऊ किसी प्रकार गूंथि गहना बनावै है तैसै पद तो स्वयंसिद्ध है तिन विषै कोऊ थोरे पदनिकों, कोऊ घने पदनिकों, कोऊ किसी प्रकार, कोऊ किसी प्रकार गूंथि ग्रन्थ बनावै है। इहां मैं भी तिन सत्यार्थ पदनिकों मेरी बुद्धि अनुसारि गूंथि ग्रन्थ बनाऊँ हूँ। मेरी मति करि कल्पित झूठे अर्थ के सूचक पद या विषै नाहीं गूंथूं हूं। तातैं यह ग्रन्थ प्रमाण जानना।

इहाँ **प्रश्न**- जो तिन पदनिकी परम्परा इस ग्रन्थ पर्यंत कैसै प्रवर्तै है? ताका **समाधान**- अनादितैं तीर्थंकर केवली होते आये हैं, तिनिके सर्वका ज्ञान हो है तातैं तिन पदनिका वा तिनके अर्थनिका भी ज्ञान हो है। बहुरि तिन तीर्थंकर केवलीनिका जाकरि अन्य जीवनिकै पदनिके अर्थनिका ज्ञान होय ऐसा दिव्यध्वनि करि उपदेश हो है। ताके अनुसारि गणधरदेव अंग प्रकीर्णकरूप ग्रन्थ गूंथे हैं। बहुरि तिनके अनुसारि अन्य-अन्य आचार्यादिक नाना प्रकार ग्रन्थादिककी रचना करै हैं। तिनिकों केई अभ्यासै हैं, केई कहै हैं, केई सुनै हैं, ऐसे परम्पराय मार्ग चल्या आवै है।

महावीर से द्वादशांग का उद्भव तथा अंगश्रुत की परम्परा

सो अब इस भरतक्षेत्र विषै वर्तमान अवसर्पिणी काल है, तिस विषै चौबीस तीर्थंकर भए, तिनि विषै श्रीवर्द्धमान नामा अन्तिम तीर्थंकर देव भये। सो केवलज्ञान विराजमान होइ जीवनिकों दिव्यध्वनि करि उपदेश देते भये। ताके सुननेका निमित्त पाय गौतम नामा गणधर अगम्य अर्थनिकों भी जानि धर्मानुराग के वशतैं अंगप्रकीर्णकनि की रचना करते भये। बहुरि वर्द्धमान स्वामी तो मुक्त भए, तहाँपीछे इस पंचम कालविषै तीन केवली भए, गौतम १, सुधर्माचार्य २, जम्बू स्वामी ३, तहां पीछे कालदोषतैं केवलज्ञानी होने का तो अभाव भया बहुरि केतेक काल तांई द्वादशांग के..

विशेष - सामान्यतया सर्वत्र यही कहा है कि महावीर स्वामी की मुक्ति के बाद तीन केवली हुए। परन्तु विशेष ज्ञातव्य यह है कि महावीर की मुक्ति के बाद तीन से अधिक केवली हुए हैं। तीन तो अनुबद्ध-पट्टधर-सतत-परम्परा-अत्रुटितसंतान-स्वरूप केवली हुए। महावीर के मुक्त होने के समय गौतम को केवलज्ञान हुआ। गौतम के मुक्त होने के दिन ही लोहाचार्य (सुधर्माचार्य) को केवलज्ञान हुआ। लोहाचार्य के मुक्त होने के दिन ही जम्बूस्वामी को केवलज्ञान हुआ। परन्तु जम्बूस्वामी के मुक्त होने के दिन किसी अन्य को केवलज्ञान नहीं हुआ। इस कारण केवलज्ञान का जो अविनष्टधाराप्रवाह क्रम था, वह नष्ट हो गया। यानी परम्परा-सतत-अनुबद्ध केवली जम्बूस्वामी के बाद नहीं हुए। परन्तु जम्बूस्वामी के बाद भी ६२ वर्ष के काल में अननुबद्ध केवली हुए।

- परवार जैन समाज का इतिहास, प्रस्तावना पृ. २३, पं. फूलचन्द शास्त्री

✤ गौतम, सुधर्म तथा जम्बूस्वामी ये तीन तो अनुबद्ध-क्रमबद्ध-परिपाटीक्रम युक्त केवली

हुए थे परन्तु अननुबद्ध अक्रमपूर्वक कैवल्य उपार्जन करने वाले तो अन्य भी हुए हैं जिनमें अन्तिम केवली श्रीधर थे जो कुण्डलगिरि से मुक्त हुए।

- ति.प.४/१४७४-७५; महाधवल पु.१ प्रस्तावना पृ. ८

✤ महावीर स्वामी के बाद होने वाले इन मात्र तीन अनुबद्ध केवलियों के पश्चात् अन्य कोई अनुवद्ध केवली तो नहीं हुआ (**जयधवल** १/५६-७७/६६४। **तथा ति.प.** ४/१४७८) परन्तु पूज्य १००८ जम्बूस्वामी के पश्चात् भी अन्य केवली हुए हैं। वे अननुबद्ध-असतत केवली हैं तथा उनमें अन्तिम केवली श्रीधर थे।

- पं. रतनचन्द्र मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व पृ. ८२

पाठी श्रुतकेवली रहे, पीछे तिनका भी अभाव भया। बहुरि केतेक कालताईं थोरे अंगनिके पाठी रहे (तिनने यह जानकर जो भविष्य कालमें हम सारिखे भी ज्ञानी न रहेंगे, तातैं ग्रन्थ-रचना आरम्भ करी और द्वादशांगानुकूल प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगके ग्रन्थ रचे।[1]) पीछे तिनका भी अभाव भया। तब आचार्यादिकनिकरि तिनिके अनुसार बनाए ग्रन्थ वा अनुसारी ग्रन्थनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ तिनहीकी प्रवृत्ति रही। तिनविषै भी कालदोषतैं दुष्टनिकरि कितेक ग्रन्थनिकी व्युच्छित्ति भई वा महान् ग्रन्थनिका अभ्यासादि न होनेतैं व्युच्छित्ति भई। बहुरि केतेक महान् ग्रन्थ पाइए हैं तिनिका बुद्धिकी मंदतातैं अभ्यास होता नाहीं। जैसे दक्षिणमें गोमट्टस्वामीके निकट मूलबद्री नगरविषै धवल महाधवल जयधवल पाइए है परन्तु दर्शनमात्र ही है[2] बहुरि कितेक ग्रन्थ अपनी बुद्धिकरि अभ्यास करने योग्य पाइए हैं। तिन विषै भी कितेक ग्रन्थनिका ही अभ्यास बनै है। ऐसे इस निकृष्ट काल विषै उत्कृष्ट जैनमतका घटना तो भया परन्तु इस परम्पराकरि अब भी जैन शास्त्रनि विषै सत्य अर्थके प्रकाशनहारे पदनिका सद्भाव प्रवर्तै है।

ग्रन्थकार का आगमाभ्यास और ग्रन्थ-रचना का निश्चय

बहुरि हम इस काल विषै इहां अब मनुष्यपर्याय पाया सो इस विषै हमारे पूर्व संस्कारतैं वा भला होनहारतैं जैनशास्त्रनिविषै अभ्यास करने का उद्यम होत भया। तातैं व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी

---

१. ये पंक्तियाँ खरड़ा प्रति में नहीं हैं, अन्य सब प्रतियों में है। इसीसे आवश्यक जान यहाँ दी गई हैं।

२. परमपूज्य चा.च. शान्तिसागरजी महाराज (दक्षिण) को जब यह ज्ञात हुआ कि मूड़बिद्री में जैनसिद्धान्त के प्राणभूत प्राचीन ग्रन्थ धवल, जयधवल, महाधवल, ताड़पत्र ग्रन्थ बहुत जीर्ण हो गये हैं, उनमें से महाधवल का करीब चार पाँच हजार श्लोक प्रमाण भाग कीड़ों द्वारा नष्ट हो चुका है तो वे अत्यन्त चिन्तित हुए। आचार्यश्री के प्रभावक उपदेश से प्रेरित होकर जैनसमाज ने इन्हें ताम्रपत्र पर खुदवाने का कार्य प्रारम्भ किया। मूल ताड़पत्रों के फोटो लेने का भी निर्णय लिया। उस समय (विक्रम संवत् २००६ से पूर्व) श्री धवल ग्रन्थ को ताम्रपत्र पर खुदवाने में २१०००/- रुपया खर्च हुआ। फलटण में श्री चन्द्रप्रभ मन्दिर के सभामण्डप के ऊपर एक श्रुतभण्डार हॉल में धवल ताम्रपट तथा मुद्रित ग्रन्थ सुरक्षित रखे गये हैं। आज तो धवलादि तीनों ग्रन्थ सहस्राधिक प्रतियों में छपकर हम सबको सुलभ हैं। पण्डित टोडरमलजी को इनके दर्शन नहीं हो पाये थे।

ग्रन्थनिका किंचित् अभ्यास करि टीकासहित समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोमट्टसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक, मुनिके आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुष्ठुकथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिन विषै हमारै बुद्धि अनुसार अभ्यास वर्तै है। तिसु करि हमारै हू किंचित् सत्यार्थ पदनिका ज्ञान भया है। बहुरि इस निकृष्ट समय विषै हम सारिखे मंद बुद्धिनितैं भी हीन बुद्धि के धनी घने जन अवलोकिए है। तिनिकों तिन पदनिका अर्थज्ञान होने के अर्थि धर्मानुरागके वशतैं देशभाषामय ग्रन्थ करनेकी हमारै इच्छा भई। ताकरि हम यहु ग्रन्थ बनावै हैं सो इस विषै भी अर्थसहित तिनही पदनिका प्रकाशन हो है। इतना तो विशेष है जैसे प्राकृत संस्कृत शास्त्रनि विषै प्राकृत संस्कृत पद लिखिए है तैसे इहाँ अपभ्रंश लिये वा यथार्थपनाको लिये देशभाषारूप पद लिखिए है परन्तु अर्थविषै व्यभिचार कछू नाहीं है। ऐसै इस ग्रंथपर्यन्त तिन सत्यार्थ पदनिकी परम्परा प्रवर्ते है।

इहां कोऊ पूछै कि परम्परा तो हम ऐसै जानी परन्तु इस परम्पराविषै सत्यार्थ पदनि ही की रचना होती आई, असत्यार्थ पद न मिले, ऐसी प्रतीति हमको कैसै होय। ताका **समाधान**–

असत्यपद रचना का प्रतिषेध

असत्यार्थ पदनिकी रचना अतितीव्र कषाय भए बिना बनै नाहीं, जातैं जिस असत्य रचनाकरि परम्परा अनेक जीवनिका महा बुरा होय, आपको ऐसी महाहिंसाका फलकरि नरक निगोदविषै गमन करना होय सो ऐसा महाविपरीत कार्य तो क्रोध मान माया लोभ अत्यन्त तीव्र भए ही होय। सो जैनधर्मविषै तो ऐसा कषायवान् होता नाहीं। प्रथम मूल उपदेशदाता तो तीर्थंकर केवली सो तो सर्वथा मोहके नाशतैं सर्व कषायनि करि रहित ही हैं। बहुरि ग्रन्थकर्ता गणधर वा आचार्य ते मोहका मन्द उदयकरि सर्व बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहको त्यागि महा मंदकषायी भए हैं, तिनिके तिस मंदकषायकरि किंचित् शुभोपयोगहीकी प्रवृत्ति पाइए है और किछु प्रयोजन ही नाहीं। बहुरि श्रद्धानी गृहस्थ भी कोउ ग्रन्थ बनावै है सो भी तीव्रकषायी नाहीं है, जो वाकै तीव्रकषाय होय तो सर्वकषायनिका जिस तिस प्रकार नाशकरणहारा जो जिनधर्म तिस विषै रुचि कैसै होइ अथवा जो मोहके उदयतैं अन्य कार्यनिकरि कषाय पोषै हैं तो पोषो परन्तु जिनआज्ञा भंगकरि अपनी कषाय पोषै तो जैनीपना रहता नाहीं, ऐसे जिनधर्म्मविषै ऐसा तीव्रकषायी कोऊ होता नाहीं जो असत्य पदनिकी रचनाकरि परका अर अपना पर्याय-पर्यायविषै बुरा करै।

इहां **प्रश्न**– जो कोऊ जैनाभास तीव्रकषायी होय असत्यार्थ पदनिको जैन शास्त्रनिविषै मिलावै, पीछै ताकी परम्परा चलि जाय तो कहा करिये?

ताका **समाधान**– जैसे कोऊ साँचे मोतिनिके गहनेविषै झूठे मोती मिलावै परन्तु झलक मिलै नाहीं तातैं परीक्षाकरि पारखी ठिगावता भी नाहीं, कोई भोला होय सो ही मोती नामकरि ठिगावै है। बहुरि ताकी परम्परा भी चालै नाहीं, शीघ्र ही कोऊ झूठे मोतिनिका निषेध करै है। तैसे कोऊ सत्यार्थ पदनिके समूहरूप जे जैनशास्त्र तिनिविषै असत्यार्थ पद मिलावै परन्तु जैनशास्त्रके पदनिविषै तो कषाय मिटावनेका वा लौकिक

कार्य घटावनेका प्रयोजन है अर उस पापीनै जे असत्यार्थ पद मिलाए हैं तिन विषै कषाय पोषनेका वा लौकिक कार्य साधनेका प्रयोजन है, ऐसे प्रयोजन मिलता नाहीं, तातैं परीक्षाकरि ज्ञानी ठिगावते भी नाहीं, कोई मूर्ख होय सो ही जैनशास्त्र नामकरि ठिगावै है। बहुरि ताकी परम्परा भी चालै नाहीं, शीघ्र ही कोऊ तिन असत्यार्थ पदनि का निषेध करै है। बहुरि ऐसे तीव्रकषायी जैनाभास इहाँ इस निकृष्ट कालविषै ही हो है, उत्कृष्ट क्षेत्रकाल बहुत है, तिस विषै तो ऐसे होते नाहीं। तातैं जैन शास्त्रनि विषै असत्यार्थ पदनिकी परम्परा चालै नाहीं, ऐसा निश्चय करना।

बहुरि वह कहै कि कषायनिकरि तो असत्यार्थ पद न मिलावै परन्तु ग्रंथ करनेवालेकै क्षयोपशमज्ञान है तातैं कोई अन्यथा अर्थ भासै ताकरि असत्यार्थ पद मिलावै ताकी तो परम्परा चलै? ताका **समाधान**-

मूल ग्रंथकर्त्ता तो गणधरदेव है। ते आप च्यार ज्ञान के धारक हैं अर साक्षात् केवलीका दिव्यध्वनि उपदेश सुनै है; ताका अतिशयकरि सत्यार्थ ही भासै है। अर ताहीके अनुसार ग्रन्थ बनावै है। सो उन ग्रन्थनिविषै तो असत्यार्थ पद कैसै गूँथे जांय अर अन्य आचार्यादिक ग्रन्थ बनावै है, ते भी यथायोग्य सम्यग्ज्ञानके धारक हैं। बहुरि ते तिन मूलग्रन्थनिकी परंपराकरि ग्रन्थ बनावै है। बहुरि जिन पदनिका आपको ज्ञान न होइ तिनकी तो आप रचना करै नाहीं अर जिन पदनिका ज्ञान होइ तिनको सम्यग्ज्ञान प्रमाणतैं ठीक करि गूंथे है सो प्रथम तो ऐसी सावधानी विषै असत्यार्थ पद गूंथे जांय नाहीं अर कदाचित् आपको पूर्व ग्रन्थनिके पदनिका अर्थ अन्यथा ही भासै अर अपनी प्रमाणतामें भी तैसे ही आजाय तो याका किछू सारा[1] नाहीं। परन्तु ऐसे कोइको भासे सबहीकौं तौ न भासैं तातैं जिनको सत्यार्थ भास्या होय ते ताका निषेधकरि परम्परा चलने देते नाहीं। बहुरि इतना जानना-जिनको अन्यथा जाने जीवका बुरा होय, ऐसा देव गुरु धर्मादिक वा जीव-अजीवादिक तत्त्वनिको तो श्रद्धानी जैनी अन्यथा जाने ही नाहीं, इनिका तो जैनशास्त्रनिविषै प्रसिद्ध कथन है अर जिनको भ्रमकरि अन्यथा जाने भी जिन आज्ञा माननेतैं जीवका बुरा न होइ, ऐसे कोई सूक्ष्म अर्थ है तिन विषै किसी को कोई अन्यथा प्रमाणता में ल्यावै तो भी ताका विशेष दोष नाहीं। सो गोमट्टसारविषै कह्या है-

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।।२७।।

- गो.सा.जीवकाण्ड

याका अर्थ-सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश्या सत्यवचनकौं श्रद्धान करै है अर अजाणमाण गुरुके नियोग तैं असत्यको भी श्रद्धान करै है, ऐसा कह्या है। बहुरि हमारै भी विशेष ज्ञान नाहीं है अर जिनआज्ञा भंग करने का बहुत भय है परन्तु इस ही विचारके बलतैं ग्रन्थ करने का साहस करते हैं सो इस ग्रन्थ विषै जैसे पूर्व ग्रन्थनि में वर्णन है तैसे ही वर्णन करेंगे। अथवा कहीं पूर्व ग्रन्थनिविषै सामान्य गूढ वर्णन था ताका विशेष प्रगट करि इहाँ वर्णन करेंगे। सो ऐसै वर्णन करने विषै मैं तो बहुत सावधानी राखूंगा। सावधानी

---

१. वश नहीं।

करते भी कहीं सूक्ष्म अर्थका अन्यथा वर्णन होय जाय तो विशेष बुद्धिमान होइ सो संवारकरि शुद्ध करियो, यह मेरी प्रार्थना है। ऐसे शास्त्र करने का निश्चय किया है।

बांचने-सुनने योग्य शास्त्र

अब इहां कैसे शास्त्र बांचने-सुनने योग्य हैं अर तिन शास्त्रनिके वक्ता श्रोता कैसे चाहिए सो वर्णन करिए है। जे शास्त्र मोक्षमार्ग का प्रकाश करै तेई शास्त्र बांचने-सुनने योग्य हैं। जातैं जीव संसारविषै नाना दुःखनिकरि पीड़ित है, सो शास्त्ररूपी दीपककरि मोक्षमार्ग को पावै तो उस मार्ग विषै आप गमनकरि उन दुःखनितैं मुक्त होय। सो मोक्षमार्ग एक वीतराग भाव है, तातैं जिन शास्त्रनिविषै काहू प्रकार राग-द्वेष-मोह भावनिका निषेध करि वीतराग भावका प्रयोजन प्रकट किया होय तिनिही शास्त्रनिका वांचना-सुनना उचित है। बहुरि जिनशास्त्रनिविषै शृङ्गार भोग कुतूहलादिक पोषि रागभावका अर हिंसा-युद्धादिक पोषि द्वेषभाव का अर अतत्त्व श्रद्धान पोषि मोहभाव का प्रयोजन प्रगट किया होय ते शास्त्र नाहीं शस्त्र हैं। जातैं जिन राग-द्वेष-मोह भावनिकरि जीव अनादितैं दुःखी भया तिनकी वासना जीवकै बिना सिखाई ही थी। बहुरि इन शास्त्रनि करि तिनही का पोषण किया, भले होने की कहा शिक्षा दीनी। जीवका स्वभावघात ही किया तातैं ऐसे शास्त्रनिका बांचना सुनना उचित नाहीं है। इहां बांचना-सुनना जैसे कह्या तैसे ही जोड़ना सीखना सिखावना विचारना लिखावना आदि कार्य भी उपलक्षणकरि जान लैने। ऐसे साक्षात् वा परम्परायकरि वीतरागभावको पोषै ऐसे शास्त्रहीका अभ्यास करना योग्य है।

वक्ता का स्वरूप

अब इनके **वक्ता** का स्वरूप कहिये है। **प्रथम** तो वक्ता कैसा होना चाहिए, जो जैन श्रद्धान विषै दृढ़ होय, जातैं जो आप अश्रद्धानी होय तो औरको श्रद्धानी कैसे करै? श्रोता तो आपहीतैं हीन बुद्धि के धारक हैं तिनकों कोऊ युक्तिकरि श्रद्धानी कैसै करै? अर **श्रद्धान ही सर्व धर्मका मूल है। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए,** जाकै विद्याभ्यास करनेतैं शास्त्र वांचनेयोग्य बुद्धि प्रगट भई होय, जातैं ऐसी शक्ति बिना वक्तापनेका अधिकारी कैसे होय। **बहुरि वक्ता कैसा चाहिए,** जो सम्यग्ज्ञानकरि सर्व प्रकार के व्यवहार निश्चयादिरूप व्याख्यानका अभिप्राय पहचानता होय, जातैं जो ऐसा न होय तो कहीं अन्य प्रयोजन लिये व्याख्यान होय ताका अन्य प्रयोजन प्रगटकरि विपरीत प्रवृत्ति करावै। **बहुरि वक्ता कैसा चाहिए,** जाकै जिनआज्ञा भंग करने का भय बहुत होय, जातैं जो ऐसा न होय तो कोई अभिप्राय विचारि सूत्र-विरुद्ध उपदेश देय जीवनिका बुरा करै। सो ही कह्या है-

बहुगुणविज्जाणिलयो, असुत्तभासी तहावि मुत्तव्वो।
जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घयरो विसहरो लोए।।१।।

याका अर्थ- जो बहुत क्षमादिक गुण अर व्याकरण आदि विद्याका स्थान है तथापि उत्सूत्रभाषी है तो छोड़ने योग्य है। जैसे उत्कृष्टमणिसंयुक्त है तो भी सर्प है सो लोकविषै विघ्नका ही करणहारा है। **बहुरि वक्ता कैसा चाहिए** जाकै शास्त्र वांचि आजीविका आदि लौकिक कार्य साधने की इच्छा न होय, जातैं जो

आशावान होइ तो यथार्थ उपदेश देइ सकै नाहीं, वाकै तो किछू श्रोतानिका अभिप्राय के अनुसार व्याख्यानकर अपने प्रयोजन साधने ही का साधन रहै अर श्रोतानितैं वक्ता का पद ऊँचा है परन्तु यदि वक्ता लोभी होय तो वक्ता आप हीन होइ जाइ, श्रोता ऊँचे होइ। **बहुरि वक्ता कैसा चाहिए,** जाकै तीव्र क्रोध मान न होय, जातैं तीव्र क्रोधी मानी की निंदा होय, श्रोता तिसतैं डरते रहैं तब तिसतैं अपना हित कैसे करैं। **बहुरि वक्ता कैसा चाहिए,** जो आप ही नाना प्रश्न उठाय आप ही उत्तर करै अथवा अन्य जीव अनेक प्रकारकरि बहुत बार प्रश्न करै तो मिष्टवचननिकरि जैसे उनका सन्देह दूरि होय तैसै समाधान करै। जो आपकै उत्तर देने की सामर्थ्य न होय तो या कहै, याका मोकों ज्ञान नाहीं, (किसी विशेष ज्ञानी से पूछकर तिहारे तांई उत्तर दूंगा। अथवा कोई समय पाय विशेष ज्ञानी तुमसों मिलै तो पूछ कर अपना सन्देह दूर करना और मोकूं बताय देना। जातैं ऐसा न होय तो अभिमानके वशतैं अपनी पण्डिताई जनावने को प्रकरणविरुद्ध अर्थ उपदेशै, तातैं श्रोतान का विरुद्ध श्रद्धान करने तैं बुरा होय, जैनधर्म की निंदा होय।) जातैं जो ऐसा न होइ तो श्रोतानि का संदेह दूर न होइ तब कल्याण कैसे होइ अर जिनमत की प्रभावना होय सके नाहीं। **बहुरि वक्ता कैसा चाहिए,** जाकै अनीतिरूप लोकनिंद्य कार्यनिकी प्रवृत्ति न होय, जातैं लोकनिंद्य कार्यनिकरि हास्य का स्थान होय जाय तब ताका वचन कौन प्रमाण करै, जिनधर्म को लजावै। **बहुरि वक्ता कैसा चाहिए,** जाका कुल हीन न होय, अंगहीन न होय, स्वरभंग न होय, मिष्टवचन होय, प्रभुत्व होय तातैं लोकविषै मान्य होय। जातैं जो ऐसा न होय तो ताकों वक्तापना की महंतता शोभै नाहीं। ऐसा वक्ता होय। वक्ताविषै ये गुण तो अवश्य चाहिए सो ही **आत्मानुशासनविषै** कह्या है-

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः,
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया,
ब्रूयाद्धर्म्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः।।५।।

याका अर्थ- बुद्धिमान होइ, जानै समस्त शास्त्रनिका रहस्य पाया होय, लोकमर्यादा जाकै प्रगट भई होय, आशा जाकै अस्त भई होय, कांतिमान् होय, उपशमी होय, प्रश्न किये पहले ही जानै उत्तर देख्या होय, बाहुल्यपने प्रश्ननि का सहनहारा होय, प्रभु होय, परकी वा परकरि आपकी निन्दा रहितपना करि होय, परके मनका हरनहारा होय, गुणनिधान होय, स्पष्ट मिष्ट जाके वचन होय, ऐसा सभा-नायक धर्मकथा कहै। बहुरि **वक्ता का विशेष लक्षण** ऐसा है जो याकै व्याकरण न्यायादिक वा बड़े-बड़े जैनशास्त्रनिका विशेष ज्ञान होय तो विशेषपने ताकों वक्तापनो शोभै। बहुरि ऐसा भी होय अर अध्यात्मरसकरि यथार्थ अपने स्वरूप का अनुभवन जाकै न भया होय सो जिनधर्म का मर्म जाने नाहीं, पद्धतिही करि वक्ता हो है। अध्यात्मरसमय साँचा जिनधर्म का स्वरूप वाकरि कैसै प्रगट किया जाय, तातैं आत्मज्ञानी होइ तो सांचा वक्तापनो होई, जातैं **प्रवचनसार** विषै ऐसा कह्या है। **आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, संयमभाव ये तीनों आत्मज्ञानकरि शून्य कार्यकारी नाहीं।** (अ. ३ गाथा ३८-३६) बहुरि **दोहापाहुडविषै** ऐसा कह्या है-

पंडिय पंडिय पंडिय कण छोडि वितुस कंडिया।
पय-अत्थं तुट्ठोसि परमत्थ ण जाणइ मूढोसि।।८४।।

याका अर्थ- हे पांडे! हे पांडे! हे पांडे! तू कण छोडि तुस ही कूटै है, तू अर्थ अर शब्द विषै सन्तुष्ट है, परमार्थ न जानै है, तातैं तू मूर्ख ही है। ऐसा कह्या है। अर चौदह विद्यानिविषै भी पहले अध्यात्मविद्या प्रधान कही है। तातैं अध्यात्मरस का रसिया वक्ता है सो जिनधर्म्म के रहस्य का वक्ता जानना। बहुरि जे बुद्धिऋद्धि के धारक हैं वा अवधिमनःपर्यय केवलज्ञान के धनी वक्ता हैं ते महान वक्ता जानने। ऐसे वक्तानिके विशेष गुण जानने। सो इन विशेष गुणनिके धारी वक्ता का संयोग मिलै तो बहुत भला है ही अर न मिलै तो श्रद्धानादिक गुणनिके धारी वक्तानिहीके मुखतैं शास्त्र सुनना। या प्रकार गुण के धारी मुनि वा श्रावक तिनके मुखतैं तो शास्त्र सुनना योग्य है अर पद्धति बुद्धि करि वा शास्त्र सुनने के लोभकरि श्रद्धानादि गुणरहित पापी पुरुषनिके मुखतैं शास्त्र सुनना उचित नाहीं। उक्तं च-

तं जिणआणपरेण य धम्मो सोयव्व सुगुरुपासम्मि।
अह उचिओ सद्धाओ तस्सुवएसस्स कहणाओ।।१।।

याका अर्थ- जो जिन आज्ञा मानने विषै सावधान है ता करि निर्ग्रन्थ सुगुरु ही के निकटि धर्म सुनना योग्य है अथवा तिस सुगुरुही के उपदेश का कहनहारा उचित श्रद्धानी श्रावक तातैं धर्म सुनना योग्य है। ऐसा जो वक्ता धर्मबुद्धिकरि उपदेशदाता होय सो ही अपना अर अन्य जीवनिका भला करै है अर जो कषायबुद्धि करि उपदेश दे है सो अपना अर अन्य जीवनिका बुरा करै, ऐसा जानना। ऐसे वक्ता का स्वरूप कह्या, अब श्रोता का स्वरूप कहै है-

श्रोता का स्वरूप

भला होनहार है तातैं जिस जीवकै ऐसा विचार आवै है कि मैं कौन हूँ? मेरा कहा स्वरूप है? (अर कहांतैं आकर यहां जन्म धार्या है और मरकर कहाँ जाऊंगा?[1]) यह चरित्र कैसे बनि रह्या है? ये मेरे भाव हो हैं तिनका कहा फल लागेगा, जीव दुःखी होय रह्या है सो दुःख दूरि होने का कहा उपाय है, मुझको इतनी बातनिका ठीककरि किछू मेरा हित होय सो करना ऐसा विचारतैं उद्यमवंत भया है। बहुरि इस कार्य की सिद्धि शास्त्र सुननेतैं होती जानि अति प्रीतिकरि शास्त्र सुनै है, किछू पूछना होय सो पूछै है। बहुरि गुरुनिकरि कह्या अर्थको अपने अन्तरंगविषै बारम्बार विचारै है बहुरि अपने विचारतैं सत्य अर्थनिका निश्चयकरि जो कर्तव्य होय ताका उद्यमी हो है, ऐसा तो नवीन श्रोता का स्वरूप जानना। बहुरि जे जैनधर्म्म के गाढ़े श्रद्धानी हैं अर नाना शास्त्र सुननेकरि जिनकी बुद्धि निर्मल भई है। बहुरि व्यवहार निश्चयादिक का स्वरूप नीके जानि जिस अर्थको सुने हैं ताको यथावत् निश्चय जानि अवधारै है। बहुरि जब प्रश्न उपजै है तब अति विनयवान होय प्रश्न करै है।[2] अथवा परस्पर अनेक प्रश्नोत्तर करि वस्तु का निर्णय करै है,

---

१. यह पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है, अन्य सब प्रतियों में है। इसी से आवश्यक जान यहाँ दे दी गई है।

२. यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि जो दूसरों की बुद्धि परखने के लिए ही प्रायः प्रश्न करते हैं, ऐसे श्रोताओं का यह कृत्य परस्त्रीसंग तुल्य है (परस्त्री के स्वाद परखने तुल है) बनारसीदासजी ने कहा भी है - 'परनारी संग परबुद्धि को परखिबौ' नाटकसमयसार। साध्यसाधकद्वार। छन्द २६। उत्तरार्ध।

शास्त्राभ्यास विषै अति आसक्त है, धर्म्मबुद्धिकरि निंद्य कार्यनिके त्यागी भए हैं, ऐसे तिनि शास्त्रनिके श्रोता चाहिए। बहुरि श्रोतानिके विशेष लक्षण ऐसे हैं। जो याकै किछू व्याकरण न्यायादिकका वा बड़े जैनशास्त्रनिका ज्ञान होय तो श्रोतापनो विशेष शोभै है। बहुरि ऐसा भी श्रोता है अर वाकै आत्मज्ञान न भया होय तो उपदेश का मरम समझि सकै नाहीं तातैं आत्मज्ञानकरि जो स्वरूपका आस्वादी भया है सो जिनधर्म्म के रहस्यका श्रोता है। बहुरि जो अतिशयवंत बुद्धिकरि वा अवधिमनःपर्ययकरि संयुक्त होय तो वह महान् श्रोता जानना। ऐसे श्रोतानिके विशेष गुण हैं। ऐसे जिनशास्त्रनिके श्रोता चाहिए। बहुरि शास्त्र सुननेतैं हमारा भला होगा, ऐसी बुद्धिकरि जो शास्त्र सुनै हैं परन्तु ज्ञान की मन्दताकरि विशेष समझे नाहीं, तिनिके पुण्यबन्ध हो है, विशेष कार्यसिद्धि होती नाहीं। बहुरि जे कुलप्रवृत्तिकरि वा पद्धति बुद्धि करि वा सहज योग बनने करि शास्त्र सुनै हैं वा सुनै तो हैं परन्तु किछू अवधारण करते नाहीं, तिनकै परिणाम अनुसार कदाचित् पुण्यबन्ध हो है कदाचित् पापबंध हो है। बहुरि जे मद-मत्सर भावकरि शास्त्र सुनै है वा **तर्क करने ही का जिनका अभिप्राय है,** बहुरि जे महंतता के अर्थि वा किसी लोभादिकके प्रयोजनके अर्थि शास्त्र सुनै है, **बहुरि जो शास्त्र तो सुनै है परन्तु सुहावता नाहीं, ऐसे श्रोतानिके केवल पापबन्ध ही हो है।** ऐसा श्रोतानिका स्वरूप जानना। ऐसे ही यथासम्भव सीखना सिखावना आदि जिनके पाइए तिनका भी स्वरूप जानना। या प्रकार शास्त्र का अर वक्ता श्रोताका स्वरूप कह्या सो उचित शास्त्र को उचित वक्ता होय बांचना, उचित श्रोता होय सुनना योग्य है। अब यहु मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र रचिए है ताका सार्थकपना दिखाइए है-

'मोक्षमार्गप्रकाशक' नाम की सार्थकता

इस संसार अटवी विषै समस्त जीव हैं ते कर्म्मनिमित्ततैं निपजे जे नाना प्रकार दुःख तिनकरि पीड़ित होइ रहे हैं। बहुरि तहाँ मिथ्या अन्धकार व्याप्त होय रहा है। ताकरि तहाँतैं मुक्त होने का मार्ग पावते नाहीं, तड़फि-तड़फि तहाँ ही दुःख को सहै हैं। बहुरि ऐसे जीवनिका भला होनेको कारण तीर्थंकर केवली भगवान सो ही सूर्य भया, ताका उदय भया, ताकै दिव्यध्वनिरूपी किरणनिकरि तहांतैं मुक्त होने का मार्ग प्रकाशित किया। जैसे सूर्य के ऐसी इच्छा नाहीं जो मैं मार्ग प्रकाशूं परन्तु सहज ही वाकी किरण फैले है ताकरि मार्गका प्रकाश हो है तैसे ही केवली वीतराग हैं तातैं ताकै ऐसी इच्छा नाहीं जो हम मोक्षमार्ग प्रगट करैं परन्तु सहज ही अघातिकर्मनिका उदयकरि तिनका शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप परिणमै है ताकरि मोक्षमार्गका प्रकाशन हो है। बहुरि गणधरदेवनिके यहु विचार आया कि जहाँ केवली सूर्यका अस्तपना होइ तहाँ जीव मोक्षमार्गकौं कैसै पावै अर मोक्षमार्ग पाए बिना जीव दुःख सहैंगे, ऐसी करुणाबुद्धि करि अंगप्रकीर्णकादिरूप ग्रन्थ तेई भए महान् दीपक तिनका उद्योत किया। बहुरि जैसे दीपक करि दीपक जोबनेतैं दीपकनिकी परम्परा वर्तै तैसे आचार्यादिकनि करि तिनि ग्रन्थनितैं अन्य ग्रन्थ बनाए। बहुरि तिनहूतैं किनहू अन्य ग्रन्थ बनाए। ऐसे ग्रन्थनितैं ग्रन्थ होतेतैं ग्रन्थनिकी परम्परा वर्तै है। मैं भी पूर्वग्रन्थनितैं इस ग्रन्थ को बनाऊँ हूँ। बहुरि जैसे सूर्य वा सर्व दीपक है ते मार्ग को एकरूप ही प्रकाशै है तैसे दिव्यध्वनि वा सर्व ग्रन्थ हैं ते मोक्षमार्ग को एकरूप ही प्रकाशै हैं। सो यह भी ग्रन्थ मोक्षमार्ग को प्रकाशै है। बहुरि जैसे प्रकाशै भी नेत्ररहित वा नेत्रविकार सहित पुरुष है तिनकुं मार्ग सूझता नाहीं तो दीपककै तो मार्ग प्रकाशकपनेका अभाव

भया नाहीं, तैसे प्रगट किये भी जे मनुष्य ज्ञानरहित हैं वा मिथ्यात्वादि विकार सहित हैं तिनकूं मोक्षमार्ग सूझता नाहीं तो ग्रन्थकै तो मोक्षमार्ग प्रकाशकपनेका अभाव भया नाहीं। ऐसे इस ग्रन्थ का मोक्षमार्ग प्रकाशक ऐसा नाम सार्थक जानना।

प्रस्तुत ग्रन्थ की आवश्यकता

इहां **प्रश्न**-जो मोक्षमार्ग के प्रकाशक ग्रन्थ पूर्व तो थे ही, तुम नवीन ग्रन्थ काहे को बनावो हो? ताका **समाधान**-जैसे बड़े दीपकनिका तो उद्योत बहुत तैलादिक का साधनतैं रहे है, जिनकै बहुत तैलादिक की शक्ति न होइ तिनको स्तोक दीपक जोइ दीजिये तो वे उसका साधन राखि ताके उद्योततैं अपना कार्य करै; तैसे बड़े ग्रन्थनिका तो प्रकाश बहुत ज्ञानादिक का साधनतैं रहै है, जिनकै बहुत ज्ञानादिक की शक्ति नाहीं तिनकूं स्तोक ग्रन्थ बनाय दीजिये तो वे वाका साधन राखि ताके प्रकाशतैं अपनो कार्य करे। तातैं यह स्तोक सुगम ग्रन्थ बनाइए है। बहुरि इहां जो मैं यहु ग्रन्थ बनाऊँ हूँ सो कषायनितैं अपनो मान बधावनेको वा लोभ साधने को वा यश होने को वा अपनी पद्धति राखने को नाहीं बनाऊँ हूँ। जिनकै व्याकरण न्यायादिक का वा नय प्रमाणादिकका वा विशेष अर्थनिका ज्ञान नाहीं तातैं तिनकै बड़े ग्रन्थनिका अभ्यास तौ बनि सकै नाहीं। बहुरि कोई छोटे ग्रन्थनिका अभ्यास बनै तो भी यथार्थ अर्थ भासै नाहीं। ऐसे इस समयविषै मंदज्ञानवान जीव बहुत देखिये हैं तिनिका भला होने के अर्थि धर्मबुद्धितैं यह भाषामय ग्रन्थ बनाऊँ हूँ। बहुरि जैसे बड़े दरिद्री को अवलोकनमात्र चिन्तामणिकी प्राप्ति होय अर वह न अवलोकै, बहुरि जैसे कोढीकूं अमृत पान करावै अर वह न करै तैसे संसारपीड़ित जीवको सुगम मोक्षमार्ग के उपदेश का निमित्त बनै अर वह अभ्यास न करै तो वाके अभाग्य की महिमा का वर्णन हमतैं तो होय सकै नाहीं। वाका होनहारहीको विचारे अपने समता आवै। उक्तं च-

साहीणे गुरुजोगे जे ण सुणंतीह धम्मवयणाइं ।
ते धिट्ठदुट्ठचित्ता अह सुहडा भवभयविहूणा ।।१।।

स्वाधीन उपदेशदाता गुरु का योग जुड़े भी जे जीव धर्म्म वचननिकों नाहीं सुने हैं ते धीठ हैं अर उनका दुष्टचित्त है अथवा जिस संसारभयतैं तीर्थंकरादिक डरे तिस संसारभयकरि रहित हैं, ते बड़े सुभट हैं। बहुरि **प्रवचनसारविषैं** भी मोक्षमार्ग का अधिकार किया है तहां **प्रथम आगमज्ञान ही उपादेय कह्या,** सो **इस जीवका तो मुख्य कर्तव्य आगमज्ञान है,** याकों होतैं तत्त्वनिका श्रद्धान हो है, तत्त्वनिका श्रद्धान भये संयमभाव हो है अर **तिस आगमतैं आत्मज्ञान की भी प्राप्ति हो है तब सहज ही मोक्ष की प्राप्ति हो है।** बहुरि धर्म्म के अनेक अंग हैं तिनविषै एक ध्यान बिना यातैं ऊँचा और धर्म्मका अंग नाहीं है तातैं जिस तिसप्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है। बहुरि इस ग्रन्थ का तो वांचना सुनना विचारना घना सुगम है, कोऊ व्याकरणादिक का भी साधन न चाहिए, तातैं अवश्य ताका अभ्यासविषैं प्रवर्तो, तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्री मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषैं पीठबन्धप्ररूपक
प्रथम अधिकार समाप्त भया ।।१।।

ॐ

दूसरा अधिकार

संसार अवस्था का स्वरूप

❁ दोहा ❁

मिथ्याभाव अभावतैं, जो प्रगटै निजभाव।
सो जयवंत रहो सदा, यह ही मोक्ष उपाय।।१।।

दु:ख का मूल कारण : कर्मबन्धन

अब इस शास्त्रविषै मोक्षमार्ग का प्रकाश करिए है। तहां बन्धनतैं छूटने का नाम मोक्ष है। सो इस आत्मा के कर्म्म का बन्धन है, बहुरि तिस बन्धनकरि आत्मा दु:खी होय रह्या है। बहुरि याकै दु:ख दूरि करने ही का निरन्तर उपाय भी रहे है परन्तु सांचा उपाय पाए बिना दु:ख दूरि होता नाहीं अर दु:ख सह्या भी जाता नाहीं तातैं यहु जीव व्याकुल होय रह्या है। **ऐसे जीव को समस्त दु:ख का मूल कारण कर्मबन्धन है** ताका अभावरूप मोक्ष है सो ही परम हित है। बहुरि याका सांचा उपाय करना सो ही कर्त्तव्य है तातैं इस ही का याकों उपदेश दीजिए है। तहाँ जैसे वैद्य है सो रोग सहित मनुष्य को प्रथम तो रोग का निदान बतावै, ऐसे यहु रोग भया है, बहुरि उस रोग के निमित्त तैं याकै जो-जो अवस्था होती होय सो बतावै, ताकरि याकै निश्चय होय जो मेरे ऐसे ही रोग है। बहुरि तिस रोग के दूरि करने का उपाय अनेक प्रकार बतावै अर तिस उपाय की ताको प्रतीति अनावै, इतना तो वैद्य का बतावना है। बहुरि जो वह रोगी ताका साधन करै तो रोग तैं मुक्त होइ अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु रोगी का कर्तव्य है। तैसे ही इहाँ कर्मबन्धन युक्त जीव को प्रथम तो कर्मबन्धन का निदान बताइए है, ऐसे यहु कर्मबन्धन भया है बहुरि उस कर्मबन्धन के निमित्त तैं याकै जो-जो अवस्था होती है सो सो बताइए है, ताकरि जीवकै निश्चय होय जो मेरे ऐसे ही कर्मबन्धन हैं। बहुरि तिस कर्मबन्धन के दूरि होने का उपाय अनेक प्रकार बताइए है अर तिस उपाय की याको प्रतीति अनाइये है, इतना तो शास्त्र का उपदेश है। बहुरि यहु जीव ताका साधन करै तो कर्मबन्धनतैं मुक्त होय अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु जीव का कर्तव्य है। सो इहां प्रथम ही कर्मबन्धन का निदान बताइये है।

कर्मबन्धन का कारण

बहुरि कर्म्मबन्धन होतैं नाना उपाधिक भावनिविषै परिभ्रमणपनों पाइए है, एक रूप रहनो न हो

है तातैं कर्म-बन्धन सहित अवस्था का नाम संसार अवस्था है। सो इस संसार अवस्थाविषै अनन्तानन्त जीव द्रव्य हैं ते अनादिहीतैं कर्मबन्धन सहित हैं। ऐसा नाहीं है जो पहले जीव न्यारा था अर कर्म न्यारा था, पीछे इनिका संयोग भया। तो कैसे है-जैसे मेरुगिरि आदि अकृत्रिम स्कन्धनिविषैं अनंते पुद्गल परमाणु अनादितैं एकबन्धनरूप हैं, पीछै तिनमें केई परमाणु भिन्न हो हैं केई नये मिलै हैं। ऐसे मिलनो बिछुरनो हुआ करै है। तैसे इस संसार विषै एक जीव द्रव्य अर अनन्ते कर्मरूप पुद्गल परमाणु तिनिका अनादितैं एकबन्धनरूप है, पीछै तिनमें केई कर्म परमाणु भिन्न हो हैं केई नये मिले हैं। ऐसे मिलनो बिछुरनो हुआ करै है।

बहुरि इहां **प्रश्न** - जो पुद्गलपरमाणु तो रागादिक के निमित्त तैं कर्मरूप हो है, अनादि कर्मरूप कैसे है?

ताका **समाधान**-निमित्त तैं नवीन कार्य होय तिस विषै ही सम्भवै है। अनादि अवस्थाविषै निमित्त का किछू प्रयोजन नाहीं। जैसे नवीन पुद्गल-परमाणुनिका बंधन तो स्निग्ध रूक्ष गुण के अंशन ही करि हो है अर मेरुगिरि आदि स्कन्धनिविषै अनादि पुद्गल परमाणुनिका बन्धान है तहां निमित्त का कहा प्रयोजन है? तैसे नवीन परमाणुनिका कर्म्मरूप होना तो रागादिकनि ही करि हो है अर अनादि पुद्गल परमाणुनि की कर्म्मरूप ही अवस्था है। तहाँ निमित्त का कहा प्रयोजन है? बहुरि जो अनादिविषै भी निमित्त मानिए तो अनादिपना रहे नाहीं। तातैं कर्म का बन्ध अनादि मानना। सो तत्त्वप्रदीपिका प्रवचनसार शास्त्र की व्याख्या विषै जो सामान्यज्ञेयाधिकार है तहां कह्या है। **रागादिक का कारण तो द्रव्यकर्म है अर द्रव्यकर्म्म का कारण रागादिक है**। तब वहाँ तर्क करी जो ऐसे इतरेतराश्रयदोष लागै, वह वाके आश्रय, वह वाके आश्रय, कहीं थंभाव नाहीं है, तब उत्तर ऐसा दिया है-

[1] **नैवं, अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्म्मसम्बन्धस्य तत्र हेतुत्वेनोपादानात्।**

याका अर्थ-ऐसे इतरेतराश्रय दोष नाहीं है। जातैं अनादिका स्वयंसिद्ध द्रव्यकर्म्म का सम्बन्ध है ताका तहाँ कारणपनाकरि ग्रहण किया है। ऐसे आगम में कह्या है। बहुरि युक्ति तैं भी ऐसे ही सम्भवै है, जो कर्म्मनिमित्त बिना पहले जीव के रागादिक कहिए तो रागादिक जीव का एक स्वभाव हो जाय, जातैं **परनिमित्त बिना होइ ताही का नाम स्वभाव है**। तातैं कर्म्म का सम्बन्ध अनादि ही मानना।

बहुरि इहाँ **प्रश्न**-जो न्यारे-न्यारे द्रव्य अर अनादितैं तिनका सम्बन्ध, ऐसे कैसे सम्भवै?

ताका **समाधान**-जैसे ठेठिहीसूं जल दूध का, वा सोना किट्टिकका, वा तुष कण का, वा तैल तिल का सम्बन्ध देखिए है, नवीन इनका मिलाप भया नाहीं तैसे अनादिहीसों जीव कर्म्म का सम्बन्ध जानना, नवीन इनका मिलाप नाहीं भया। बहुरि तुम कही कैसे सम्भवै? अनादितैं जैसे केई जुदे द्रव्य हैं तैसे केई मिले द्रव्य हैं, इस संभवनेविषै किछू विरोध तो भासता नाहीं।

१. नहि, अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्माभिसम्बद्धस्यात्मनः प्राक्तनद्रव्यकर्मणस्तत्र हेतुत्वेनोपादानात्। प्रवचनसार टीका, २/२९

बहुरि प्रश्न-जो सम्बन्ध वा संयोग कहना तो तब संभवै जब पहले जुदे होइ पीछै मिलै। इहाँ अनादि मिले जीव कर्म्मनिका सम्बन्ध कैसे कह्या है।

ताका **समाधान**- अनादितैं तो मिले थे परन्तु पीछे जुदे भए तब जान्या जुदे थे तो जुदे भए। तातैं पहले भी भिन्न ही थे। ऐसे अनुमान करि वा केवलज्ञानकरि प्रत्यक्ष भिन्न भासै है। तिसकरि तिनका बन्धान होतैं भिन्नपना पाइए है। बहुरि तिस भिन्नता की अपेक्षा तिनका सम्बन्ध वा संयोग कह्या है, जातैं नए मिलो वा मिले ही होहु, भिन्न द्रव्यनिका मिलापविषै ऐसे ही कहना संभवै है। ऐसे इन जीवकर्म्मनिका अनादि सम्बन्ध है।

जीव और कर्मों की भिन्नता

तहाँ जीवद्रव्य तो देखने जानने रूप चेतनागुण का धारक है अर इन्द्रियगम्य न होने योग्य अमूर्त्तीक है, संकोचविस्तारशक्तिको लिये असंख्यातप्रदेशी एक द्रव्य है। बहुरि कर्म है सो चेतनागुणरहित जड़ है अर मूर्त्तीक है, अनन्त पुद्‌गल परमाणुनिका पिण्ड है तातैं एक द्रव्य नाहीं है। ऐसे ए जीव अर कर्म्म हैं सो इनका अनादि सम्बन्ध है तो भी जीव का कोई प्रदेश कर्म्मरूप न हो है अर कर्म्म का कोई परमाणु जीव रूप न हो है। अपने-अपने लक्षण को धरे जुदे-जुदे ही रहे हैं। जैसे सोना रूपा का एक स्कन्ध होइ तथापि पीततादि गुणनिकों धरे सोना जुदा रहे है, स्वेततादि गुणनिको धरे रूपा जुदा रहे है, तैसे जुदे जानने।

इहां **प्रश्न**-जो मूर्त्तीक मूर्त्तीक का तो बन्धान होना बनै, अमूर्त्तीक मूर्त्तीक का बन्धान कैसे बनै?

ताका **समाधान**-जैसे व्यक्त इन्द्रियगम्य नाहीं ऐसे सूक्ष्म पुद्‌गल अर व्यक्त इन्द्रियगम्य है ऐसे स्थूल पुद्‌गल तिनका बन्धान होना मानिए है तैसे इन्द्रियगम्य होने योग्य नाहीं ऐतो अमूर्त्तीक आत्मा अर इन्द्रियगम्य होने योग्य मूर्त्तीककर्म्म इनका भी बन्धान होना मानना। बहुरि इस बन्धानविषै कोऊ किसी को करै तो है नाहीं। यावत् बन्धान रहे तावत् साथ रहे, बिछुरे नाहीं अर कारण-कार्यपना तिनकै बन्यो रहे, इतना ही इहाँ बंधान जानना। सो मूर्त्तीक अमूर्त्तीककै ऐसे बन्धान होने विषै किछू विरोध है नाहीं। या प्रकार जैसे एक जीवकै अनादि कर्म्मसम्बन्ध कह्या तैसे ही जुदा-जुदा अनन्त जीवनिकै जानना।

विशेष-सर्वार्थसिद्धि में यही प्रश्न उठाया गया है कि अमूर्त आत्मा के साथ मूर्त कर्मों का बन्ध नहीं बनता, तो उसका उत्तर वहाँ दिया गया है-आत्मा के अमूर्तत्व के विषय में अनेकान्त है यानी यह कोई एकान्त नहीं है कि आत्मा अमूर्त ही है। कर्मबन्धरूप पर्याय की अपेक्षा उससे युक्त होने के कारण आत्मा कथंचित् मूर्त है तथैव शुद्ध स्वरूप की अपेक्षा कथंचित् अमूर्त है। (स.सि. २/७ पृ.१६१) पूज्य अमृतचन्द्राचार्य ने भी कहा है कि "अमूर्तिक आत्मा का मूर्तिक कर्मों के साथ बन्ध असिद्ध नहीं है क्योंकि अनेकान्त से आत्मा में मूर्तिकपना सिद्ध है। कर्मों के साथ अनादिकालीन नित्य सम्बन्ध होने से आत्मा और कर्मों में एकत्व हो रहा है। इसी एकत्व के कारण अमूर्त आत्मा में भी मूर्तत्व माना जाता है। जिस प्रकार एक साथ पिघलाये हुए स्वर्ण तथा चांदी का एक पिण्ड बनाये जाने पर परस्पर प्रदेशों के मिलने से दोनों के एकरूपता मालूम होती है। आत्मा

के मूर्तिक मानने में एक युक्ति यह भी है कि उस पर मदिरा (मूर्त पदार्थ) का प्रभाव देखा जाता है इसलिए आत्मा मूर्तिक है। क्योंकि मदिरा अमूर्तिक आकाश में मद को उत्पन्न नहीं कर सकती। **(त.सार ५/१६-१९)** पूज्य भगवद्वीरसेन स्वामी भी कहते हैं कि संसार अवस्था में जीवों के अमूर्तपना नही पाया जाता। इसलिए "जीवद्रव्य अमूर्त है तथा पुद्‌गलद्रव्य मूर्त; फिर इनका बन्ध कैसे हो सकता है" यह प्रश्न ही नही उठता। **प्रश्न** : यदि संसार अवस्था में जीव मूर्त है तो मुक्त होने पर वह अमूर्तपने को कैसे प्राप्त हो सकता है? **उत्तर** : यह कोई दोष नहीं है क्योंकि जीव में मूर्तपने का कारण कर्म है, कर्म का अभाव होने पर तज्जनित मूर्तता का भी अभाव हो जाता है और इसीलिए सिद्ध जीवों के अमूर्तपने की सिद्धि हो जाती है। **(धवल १३/११, ३३३, धवल १५/३३-३४ आदि)**इस प्रकार संसारी जीव कथञ्चित् मूर्त है, यह सिद्ध हुआ। इसीलिए तो मूर्तजीव का मूर्त कर्म के साथ बन्ध भी बन जाता है। कहा भी है- **संसारत्था जीवा रूवी-गो.जी.**।

कर्म के आठ भेद और घातिया कर्मों का प्रभाव

बहुरि सो कर्म्म ज्ञानावरणादि भेदनिकरि आठ प्रकार है। तहाँ च्यारि घातियाकर्म्मनि के निमित्ततैं तो जीव के स्वभाव का घात हो है। तहाँ ज्ञानावरण दर्शनावरणकरि तो जीव के स्वभाव ज्ञान दर्शन तिनकी व्यक्तता नाहीं हो है, तिन कर्म्मनिका क्षयोपशम के अनुसार किंचित् ज्ञान दर्शन की व्यक्तता रहे है। बहुरि मोहनीयकरि जीव के स्वभाव नाहीं ऐसे मिथ्याश्रद्धान वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय तिनकी व्यक्तता हो है। बहुरि अंतरायकरि जीव का स्वभाव दीक्षा लेने की समर्थतारूप वीर्य ताकी व्यक्तता न हो है, ताका क्षयोपशम के अनुसार किंचित् शक्ति हो है। ऐसे घातिकर्म्मनिके निमित्ततैं जीव के स्वभाव का घात अनादिहीतैं भया है। ऐसे नाहीं जो पहले तो स्वभाव रूप शुद्ध आत्मा था पीछे कर्म्मनिमित्ततैं स्वभावघात होने करि अशुद्ध भया।

इहां **तर्क**- जो घात नाम तो अभावका है सो जाका पहले सद्‌भाव होय ताका अभाव कहना बने। इहां स्वभावका तो सद्‌भाव है ही नाहीं, घात किसका किया?

ताका **समाधान**-जीवविषै अनादि ही तैं ऐसी शक्ति पाइए है जो कर्म्मका निमित्त न होइ तो केवलज्ञानादि अपने स्वभावरूप प्रवर्तै परन्तु अनादिहीतैं कर्मका सम्बन्ध पाइए है। तातैं तिस शक्तिका व्यक्तपना न भया सो शक्ति अपेक्षा स्वभाव है ताका व्यक्त न होने देनेकी अपेक्षा घात किया कहिए है।

अघातिया कर्मों का प्रभाव

बहुरि च्यारि अघातिया कर्म्म हैं तिनके निमित्ततैं इस आत्माकै बाह्यसामग्रीका सम्बन्ध बने है तहाँ वेदनीयकरि तो शरीरविषै वा शरीरतैं बाह्य नाना प्रकार सुख-दुःखको कारण परद्रव्यनिका संयोग जुरै है अर आयुकरि अपनी स्थितिपर्यंत पाया शरीर का सम्बन्ध नाहीं छूट सकै है अर नामकरि गति आदि शरीरादिक निपजै है अर गोत्रकरि ऊँचा-नीचा कुल की प्राप्ति हो है ऐसे अघातिकर्म्मनिकरि बाह्य सामग्री

भेली हो है ताकरि मोह के उदय का सहकार होतै जीव सुखी दुःखी हो है। अर शरीरादिकनिके सम्बन्धतैं जीव के अमूर्त्तत्वादि स्वभाव अपने स्वार्थ को नाहीं करै है। जैसे कोऊ शरीर को पकरै तो आत्मा भी पकरया जाय। बहुरि यावत् कर्म का उदय रहे तावत् बाह्य सामग्री तैसे ही बनी रहे अन्यथा न होय सकै, ऐसा इन अघातिकर्मनिका निमित्त जानना।

इहां कोऊ **प्रश्न** करै कि कर्म्म तो जड़ हैं, किछू बलवान नाहीं, तिनकरि जीव के स्वभाव का घात होना वा बाह्य सामग्री का मिलना कैसे सम्भवै है?

ताका **समाधान**-जो कर्म आप कर्त्ता होय उद्यमकरि जीवके स्वभाव को घातै, बाह्य सामग्री को मिलादै तो कर्म्मकै चेतनपनों भी चाहिए अर बलवानपनों भी चाहिए सो तो है नाहीं, सहजही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। जब उन कर्मनिका उदयकाल होय तिस कालविषै आपही आत्मा स्वभाव रूप न परिणमै विभावरूप परिणमै वा अन्य द्रव्य हैं ते तैसे ही सम्बन्धरूप होय परिणमैं। जैसे काहू पुरुषके सिर परि मोहनधूलि परी है तिसकरि सो पुरुष बावला भया तहाँ उस मोहनधूलिकै ज्ञान भी न था अर बलवानपना भी न था अर बावलापना तिस मोहनधूलि ही करि भया देखिए है। मोहनधूलिका तो निमित्त है अर पुरुष आप ही बावला हुआ परिणमै है, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। बहुरि जैसे सूर्य उदय का कालविषै चकवा चकवीनिका संयोग होय तहाँ रात्रिविषै किसी ने द्वेषबुद्धितैं जोरावरी करी जुदे किए नाहीं, दिवस विषै काहू ने करुणाबुद्धि तैं ल्यायकरि मिलाए नाहीं, सूर्य उदयका निमित्तपाय आप ही मिलै है अर सूर्यास्त का निमित्त पाय आप ही बिछुरै हैं। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। तैसे ही कर्मका भी निमित्त नैमित्तिक भाव जानना। ऐसे कर्म का उदय करि अवस्था होय है। बहुरि तहाँ नवीन बन्ध कैसे हो है, सो कहिए है-

नूतन बन्ध विचार

स्वभाव बन्ध का कारण नहीं है

जैसे सूर्य का प्रकाश है सो मेघपटलतैं जिलना व्यक्त नाहीं तितने का तो तिस कालविषै अभाव है बहुरि तिस मेघपटलका मन्दपनातैं जेता प्रकाश प्रगटै है सो तिस सूर्य के स्वभाव का अंश है, मेघपटलजनित नाहीं है। तैसे जीवका ज्ञानदर्शन वीर्य स्वभाव है सो ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय के निमित्ततैं जितने व्यक्त नाहीं तितने का तो तिसकालविषै अभाव है। बहुरि तिन कर्म्मनि का क्षयोपशमतैं जेता ज्ञान दर्शन वीर्य प्रगटै है सो तिस जीव के स्वभाव का अंश ही है, कर्म्मजनित उपाधिक भाव नाहीं है। सो ऐसा स्वभाव के अंशका अनादितैं लगाय कबहूँ अभाव न हो है। याही करि जीव का जीवत्वपना निश्चय कीजिए है। जो यहु देखनहार जाननहार शक्तिको धरे, वस्तु है सो ही आत्मा है। बहुरि इस स्वभावकरि नवीन कर्म्मका बन्ध नाहीं है। जातैं निज स्वभाव ही बन्ध का कारण होइ तो बन्ध का छूटना कैसे होय। बहुरि तिन कर्म्मनिके उदयतैं जेता ज्ञान दर्शन वीर्य अभाव रूप है ताकरि भी बन्ध नाहीं है जातैं आप ही का अभाव होतैं अन्यको कारण कैसे होय। तातैं ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय के निमित्ततैं निपजै भाव नवीनकर्म्मबन्ध के कारण नाहीं।

औपाधिक भाव ही नवीनबन्ध के कारण हैं

बहुरि मोहनीय कर्म्मकरि जीव के अयथार्थ श्रद्धानरूप तो मिथ्यात्वभाव हो है वा क्रोध, मान माया लोभादिक कषाय हो है। ते यद्यपि जीव के अस्तित्वमय हैं, जीवतैं जुदे नाहीं, जीव ही इनका कर्ता है, जीव के परिणमनरूप ही ये कार्य हैं तथापि इनका होना मोहकर्म्म के निमित्ततैं ही है, कर्म्मनिमित्त दूरि भए इनका अभाव ही है तातैं ए जीव के निजस्वभाव नाहीं, उपाधिकभाव हैं। बहुरि अघातिकर्म्मनिके उदयतैं बाह्य सामग्री मिलै है, तिन विषै शरीरादिक तो जीव के प्रदेशनिसों एकक्षेत्रावगाही होय एकबन्धानरूप हो हैं अर धन कुटुम्बादिक आत्मातैं भिन्न रूप हैं सो ए सर्व बन्ध के कारण नाहीं हैं, जातैं **परद्रव्य बंध का कारण न होय।** इन विषै आत्मा के ममत्वादिरूप मिथ्यात्वादि भाव हो हैं सोई बंध का कारण जानना।

विशेष : पर-द्रव्य बन्ध का साक्षात् कारण नहीं होता, यह त्रैकालिक सत्य है। किन्तु इसके साथ ही यह भी जानना चाहिए कि धन-कुटुम्बादिक रूप पर-पदार्थ बन्ध में कारण के कारण हैं। **समयसार गाथा २६५ की आत्मख्याति टीका** में अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि बाह्य वस्तुरूप आश्रय के बिना अध्यवसान (रागादिभाव) नहीं होते (ततो निराश्रयं नाध्यवसानमिति नियमः) तथा अध्यवसान (रागादि भाव) ही बन्ध का कारण है। (अध्यवसानमेव बन्धहेतुः) यह भी वहीं **(स.सा. २६५ आत्मख्याति में)** लिखा है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि बन्ध के कारण (अध्यवसान) का आश्रय रूप कारण बाह्यवस्तु है अर्थात् **बाह्यवस्तु बन्ध के कारण की कारण है।** इसीलिए तो वहीं पर कहा है कि 'इसीलिए अध्यवसान की आश्रयभूत बाह्यवस्तु का अत्यन्त निषेध किया है जिससे कि कारण (बाह्यवस्तु) के प्रतिषेध से ही कार्य (अध्यवसान-रागादिभाव) का प्रतिषेध हो जाए। **अमृतचन्द्राचार्य ने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय गाथा** ४६ में कहा है कि "हिंसायतननिवृत्तिः तदपि परिणामविशुद्धये कार्या" अर्थात् परवस्तु से बन्ध नहीं होता तो भी परिणामों की विशुद्धि के लिए यह आवश्यक है कि बाह्य निमित्तों का भी त्याग करें। कहा भी है-**परिणामों की विशुद्धि के लिए बाह्यनिमित्तों का त्याग करना भी जरूरी है।** (पु.सिद्ध्युपाय पृ. १६३ पं. मुन्नालाल जी रांधेलीय का अनुवाद) इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि बाह्य वस्तु बन्ध के कारण की कारण है। **(बन्धहेतुहेतुत्वे सत्यपि)** समयसार २६५ अमृतचन्द्रीय टीका।

रागद्वेष-मोह (बन्ध के कारण) के बाह्य कारण (अर्थात् निमित्त, आश्रय, आधार, विषय) पर-पदार्थ होते हैं। यही कारण है कि यदि किसी से कहा जाए कि तुम रागद्वेष मोह करो किन्तु शुद्धात्मा के सिवाय अन्य पदार्थों में मत करो तो वह कर ही कैसे सकता है? **(वर्णी प्रवचन वर्ष ३६ अंक ६ पृ. ३३)** बाह्य पदार्थों का परित्याग करने पर तज्जन्य रागभाव छूटे भी और न भी छूटे किन्तु पदार्थ के त्याग बिना रागभाव नहीं छूट सकता।

योग और उससे होने वाले प्रकृतिबन्ध प्रदेशबन्ध

बहुरि इतना जानना जो नामकर्म्म के उदयतैं शरीर वा वचन वा मन निपजै है तिनिकी चेष्टा के निमित्ततैं आत्मा के प्रदेशनिका चंचलपना हो है ताकरि आत्मा के पुद्गलवर्गणासौं एक बन्धान होने की शक्ति हो है, ताका नाम योग है। ताकै निमित्ततैं समय-समयप्रति कर्म्मरूप होने योग्य अनंत परमाणुनिका ग्रहण हो है। तहाँ अल्पयोग होय तो थोरे परमाणुनिका ग्रहण होय, बहुत योग होय तो घने परमाणुनिका ग्रहण होय। बहुरि एक समय विषै जे पुद्गलपरमाणु ग्रहे तिनि विषै ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति वा तिनकी उत्तर प्रकृतिनिका जैसे सिद्धान्तविषै कह्या है तैसे बटवारा हो है। तिंस बटवारा माफिक परमाणु तिन प्रकृतिनिरूप आपही परिणमै हैं। विशेष इतना कि योग दोय प्रकार है-शुभयोग, अशुभयोग। तहाँ धर्मके अंगनिविषै मनवचनकायकी प्रवृत्ति भए तो शुभयोग हो है अर अधर्मके अंगनिविषै तिनकी प्रवृत्ति भए अशुभयोग हो है सो शुभ योग होहु वा अशुभयोग होहु सम्यक्त्व पाए बिना घातियाकर्मनिका तो सर्वप्रकृतिनिका निरन्तर बंध हुआ ही करै है। कोई समय किसी भी प्रकृतिका बन्ध हुआ बिना रहता नाहीं। इतना विशेष है जो मोहनीयका हास्य शोक युगलविषै, रति अरति युगलविषै, तीनों वेदनिविषै एकै काल एक-एक ही प्रकृतिनिका बन्ध हो है। बहुरि अघातियानिकी प्रकृतिनिविषै शुभयोग होतैं साता वेदनीय आदि पुण्यप्रकृतिनिका बन्ध हो है। अशुभ योग होतैं असातावेदनीय आदि पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। मिश्रयोग होतैं केई पुण्यप्रकृतिनिका केई पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। ऐसा योग के निमित्त तैं कर्मका आगमन हो है। तातैं योग है सो आस्रव है। बहुरि याकरि ग्रहे कर्मपरमाणुनिका नाम प्रदेश है तिनिका बंध भया अर तिन विषै मूल उत्तरप्रकृतिनिका विभाग भया तातैं योगनिकरि प्रदेशबन्ध वा प्रकृतिबन्ध का होना जानना।

कषाय से स्थिति और अनुभाग

बहुरि मोह के उदयतैं मिथ्यात्व क्रोधादिक भाव हो है, तिन सबनिका नाम सामान्यपने कषाय है। ताकरि तिनकर्मप्रकृतिनिकी स्थिति बन्धै है सो जितनी स्थिति बन्धै तिसविषै आबाधाकाल छोड़ि तहाँ पीछै यावत् बँधी स्थिति पूर्ण होय तावत् समय-समय तिस प्रकृति का उदय आया ही करै। सो देव मनुष्य तिर्यंचायु बिना अन्य सर्व घातिया अघातिया प्रकृतिनिका अल्पकषाय होतें थोरा स्थिति बन्ध होय, बहुत कषाय होतैं घना स्थितिबन्ध होय। तिन तीन आयुनि का अल्पकषायतैं बहुत अर बहुत कषायतैं अल्प स्थितिबन्ध जानना। बहुरि तिस कषायहीकरि तिन कर्मप्रकृतिनिविषैं अनुभाग-शक्ति का विशेष हो है सो जैसा अनुभाग बंधे तैसा ही उदयकालविषै तिन प्रकृतिनिका घना वा थोरा फल निपजै है। तहाँ घातिकर्मनिकी सर्व प्रकृतिनिविषै वा अघातिकर्मनिकी पाप प्रकृतिनिविषै तो अल्पकषाय होतैं थोरा अनुभाग बंधै है, बहुत कषाय होतैं घना अनुभाग बन्धै है। बहुरि पुण्यप्रकृतिनिविषै अल्पकषाय होतैं घना अनुभाग बंधै है, बहुत कषाय होतैं थोरा अनुभाग बन्धै है। ऐसे कषायनिकरि कर्मप्रकृतिनिके स्थिति अनुभाग का विशेष भया तातैं कषायनिकरि स्थितिबन्ध अनुभागबंध का होना जानना। इहाँ जैसे बहुत भी मदिरा है अर ताविषै थोरे

कालपर्यंत थोरी उन्मत्तता उपजावने की शक्ति है तो वह मदिरा हीनपनाकों प्राप्त है। बहुरि जो थोरी भी मदिरा है अर ताविषै बहुत कालपर्यंत घनी उन्मत्तता उपजावने की शक्ति है तो वह मदिरा अधिकपनाकों प्राप्त है। तैसे घने भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु हैं अर तिनविषै थोरे कालपर्यन्त थोरा फल देने की शक्ति है तो ते कर्मप्रकृति हीनताको प्राप्त हैं। बहुरि थोरे भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु हैं अर तिनविषै बहुत कालपर्यंत बहुत फल देने की शक्ति है तो वे कर्मप्रकृति अधिकपनाको प्राप्त हैं। तातैं योगनिकरि भया प्रकृतिबन्ध प्रदेशबन्ध बलवान नाहीं, कषायनिकरि किया स्थितिबंध अनुभागबन्ध ही बलवान है। तातैं मुख्यपने कषाय ही बन्ध का कारण जानना। **जिनको बन्ध न करना होय ते कषाय मति करो।**

जड़ पुद्गल परमाणुओं का यथायोग्य प्रकृतिरूप परिणमन

बहुरि इहां कोऊ **प्रश्न** करै कि पुद्गलपरमाणु तो जड़ है, उनके किछु ज्ञान नाहीं, कैसे यथायोग्य प्रकृतिरूप होय परिणमै हैं?

ताका **समाधान**-*जैसे भूख होतैं मुखद्वारकरि ग्रह्याहुवा भोजनरूप पुद्गलपिंड सो मांस शुक्र शोणित* आदि धातुरूप परिणमै है। बहुरि तिस भोजन के परमाणुनिविषै यथायोग्य कोई धातुरूप थोरे कोई धातुरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिनविषै केई परमाणुनिका सम्बन्ध घने काल रहे, केईनिका थोरे काल रहै, बहुरि तिन परमाणुनिविषै केई तो अपने कार्य निपजावने की बहुत शक्तिको धरैं हैं, केई स्तोकशक्तिको धरैं हैं। सो ऐसे होने विषै कोऊ भोजनरूप पुद्गलपिण्ड के ज्ञान तो नाहीं है जो मैं ऐसे परिणमूं अर और भी कोऊ परिणमावनहारा नाहीं है, ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक भाव बनि रह्या है, ताकरि तैसे ही परिणमन पाइए है। तैसे ही कषाय होतैं योग द्वारकरि ग्रह्या हुवा कर्मवर्गणारूप पुद्गलपिण्ड सो ज्ञानावरणादि प्रकृतिरूप परिणमै है। बहुरि तिन कर्म परमाणुनिविषै यथायोग्य कोई प्रकृतिरूप थोरे कोई प्रकृतिरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिन विषै केई परमाणुनिका सम्बन्ध घने काल रहै, केईनिका थोरे काल रहै। बहुरि तिन परमाणुनिविषै केई तो अपने कार्य निपजावने की बहुत शक्ति धरै है, कोऊ थोरी शक्ति धरै है सो ऐसे होनेविषै कोऊ कर्मवर्गणारूप पुद्गलपिण्डकै ज्ञान तो नाहीं है जो मैं ऐसे परिणमूं अर और भी कोई परिणमावनहारा है नाहीं, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिकभाव बनि रह्या है ताकरि तैसे ही परिणमन पाइये है। सो ऐसे तो लोकविषै निमित्त नैमित्तिक घने ही बनि रहे हैं। जैसे-**मंत्रनिमित्तकरि जलादिकविषै रोगादिक दूरि करने की शक्ति हो है वा कांकरी आदिविषै सर्पादि रोकने की शक्ति हो है तैसे ही जीव भाव के निमित्तकरि पुद्गल परमाणुनिविषै ज्ञानावरणादिरूप शक्ति हो है।** इहाँ विचारकरि अपने उद्यमतैं कार्य करै तो ज्ञान चाहिए अर तैसा निमित्त बने स्वयमेव तैसे परिणमन होय तो तहाँ ज्ञान का किछु प्रयोजन नाहीं, या प्रकार नवीनबन्ध होने का विधान जानना ।

भावों से कर्मों की पूर्वबद्ध अवस्था का परिवर्तन

अब जे परमाणु कर्मरूप परिणमैं तिनका यावत् उदयकाल न आवै तावत् जीव के प्रदेशनिसों एकक्षेत्रावगाहरूप बंधान रहे है। तहां जीवभाव के निमित्तकरि केई प्रकृतिनिकी अवस्था का पलटना भी होय जाय है। तहाँ केई अन्य प्रकृतिनिके परमाणु थे ते संक्रमणरूप होय अन्य प्रकृति के परमाणु होय जाँय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग बहुत था सो अपकर्षण होयकरि थोरा हो जाय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग थोरा था सो उत्कर्षण होयकरि बहुत हो जाय। सो ऐसे पूर्व बंधे परमाणुनिकी भी जीवभावनिका निमित्त पाय अवस्था पलटै है अर निमित्त न बनै तो न पलटै, जैसे के तैसे रहे। ऐसे सत्तारूप कर्म रहे हैं।

कर्मों के फलदान में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध

बहुरि जब कर्मप्रकृतिनिका उदयकाल आवै तब स्वयमेव तिन प्रकृतिनिका अनुभाग के अनुसार कार्य बनै। कर्म्म तिनके कार्यनिकों निपजावता नाहीं। याका उदयकाल आए वह कार्य स्वयं बनै है। इतना ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जानना। बहुरि जिस समय फल निपज्या तिसका अनन्तर समयविषै तिन कर्मरूप पुद्गलनिकै अनुभाग शक्ति के अभाव होनेतैं कर्मत्वपना का अभाव हो है। ते पुद्गल अन्यपर्यायरूप परिणमै हैं। याका नाम सविपाक निर्जरा है। ऐसे समय-समय प्रति उदय होय कर्म खिरै हैं। कर्मत्वपना नास्ति भए पीछैं ते परमाणु तिस ही स्कंधविषै रहो वा जुदे होइ जाहु किछू प्रयोजन रह्या नाहीं।

इहां इतना जानना- इस जीव के समय-समय प्रति अनन्त परमाणु बंधे हैं तहाँ एक समय विषै बंधे परमाणु ते आबाधाकाल छोड़ अपनी स्थिति के जेते समय होहिं तिन विषै क्रमतैं उदय आवै है। बहुरि बहुत समयनिविषै बंधे परमाणु जे एक समय विषै उदय आवने योग्य हैं ते एकठे होय उदय आवै हैं। तिन सब परमाणुनिका अनुभाग मिले, जेता अनुभाग होय तितना फल तिस कालविषै निपजै है। बहुरि अनेक समयनिविषै बंधे परमाणु बंधसमयतैं लगाय उदयसमय पर्यन्त कर्मरूप अस्तित्व को धरे जीवसों सम्बन्धरूप रहे हैं। ऐसे कर्मनिकी बंध उदय सत्तारूप अवस्था जाननी। तहाँ समय-समय प्रति एकसमयप्रबद्ध मात्र परमाणु बंधै है, एकसमयप्रबद्ध मात्र निर्जरै है। ड्योढ़गुणहानिकरि गुणित समयप्रबद्ध मात्र सदा काल सत्ता रहे है। **सो इन सबनिका विशेष आगे कर्मअधिकारविषैं लिखेंगे तहाँ जानना।**

द्रव्यकर्म और भावकर्म का स्वरूप

बहुरि ऐसे यह कर्म है सो परमाणुरूप अनन्त पुद्गलद्रव्यनिकरि निपजाया कार्य है तातैं याका नाम द्रव्यकर्म है। बहुरि मोह के निमित्ततैं मिथ्यात्वक्रोधादिरूप जीव का परिणाम है सो अशुद्ध भावकरि निपजाया कार्य है तातैं याका नाम भावकर्म है। सो द्रव्यकर्म के निमित्ततैं भावकर्म होय अर भावकर्म के निमित्ततैं द्रव्यकर्म का बन्ध होय। **बहुरि द्रव्यकर्मतैं भावकर्म, भावकर्मतैं द्रव्यकर्म, ऐसे ही परस्पर कारणकार्यभावकरि संसारचक्रविषै परिभ्रमण हो है।** इतना विशेष जानना-तीव्र मन्द बन्ध होनेतैं वा संक्रमणादि होनेतैं वा एक

कालविषै बन्ध्या अनेककालविषै वा अनेककालविषै बंधे एककालविषै उदय आवनेतैं काहू कालविषै तीव्र उदय आवै तब तीव्रकषाय होय तब तीव्र ही नवीनबन्ध होय। अर काहू कालविषै मन्द उदय आवै तब मन्द कषाय होय तब मन्द ही बन्ध होय। बहुरि तिन तीव्रमंदकषायनिही के अनुसारि पूर्वबंधे कर्मनिका भी संक्रमणादिक होय तो होय। या प्रकार अनादितैं लगाय धाराप्रवाहरूप द्रव्यकर्म वा भावकर्म की प्रवृत्ति जाननी।

शरीर की नोकर्म अवस्था और इसकी प्रवृत्ति

बहुरि नामकर्म के उदयतैं **शरीर हो है सो द्रव्यकर्मवत् किंचित् सुख दुःखको कारण है।** तातैं शरीर को नोकर्म कहिए है। इहां नो शब्द ईषत् कषायवाचक जानना। सो शरीर पुद्गलपरमाणुनिका पिण्ड है अर द्रव्यइन्द्रिय, द्रव्यमन, श्वासोश्वास अर वचन ए भी शरीर के अंग हैं सो ए भी पुद्गलपरमाणुनिके पिण्ड जानने। सो ऐसे शरीर के अर द्रव्यकर्मसम्बन्धसहित जीव के एकक्षेत्रावगाहरूप बन्धान हो है सो शरीर का जन्म-समयतैं लगाय जेती आयु की स्थिति होय तितने काल पर्यन्त शरीर का सम्बन्ध रहे है। बहुरि आयु पूर्ण भए मरण हो है। तब तिस शरीर का सम्बन्ध छूटे है शरीर आत्मा जुदे-जुदे होय जाय हैं। बहुरि ताके अनन्तर समयविषै वा दूसरे तीसरे चौथे समय जीव कर्मउदय के निमित्ततैं नवीन शरीर धरै है तहां भी अपने आयुपर्यन्त तैसे ही सम्बन्ध रहे है, बहुरि मरण हो है तब तिससौं सम्बन्ध छूटै है। ऐसे ही पूर्व शरीर का छोड़ना नवीन शरीर का ग्रहण अनुक्रमतैं हुआ करै है। बहुरि यह आत्मा यद्यपि असंख्यातप्रदेशी है तथापि संकोचविस्तारशक्तितैं शरीरप्रमाण ही रहे। विशेष इतना- समुद्घातहोतैं शरीरतैं बाह्य भी आत्मा के प्रदेश फैले हैं। बहुरि अंतराल समयविषै पूर्व शरीर छोड्याथा तिस प्रमाण रहे है। बहुरि इस शरीर के अंगभूत **द्रव्यइन्द्रिय अर मन तिन के सहायतैं जीवकैं जानपना की प्रवृत्ति हो है।** बहुरि शरीर की अवस्था के अनुसार मोह के उदयतैं जीव सुखी-दुःखी हो है। बहुरि कबहूँ तो जीव की इच्छा के अनुसार शरीर प्रवर्तै है, कबहूँ शरीर की अवस्था के अनुसार जीव प्रवर्तै है। कबहूँ जीव अन्यथा इच्छारूप प्रवर्तै है, पुद्गल अन्यथा अवस्थारूप प्रवर्तै है। ऐसे इस नोकर्म की प्रवृत्ति जाननी।

नित्य निगोद और इतर निगोद

तहां अनादितैं लगाय प्रथम तो इस जीव के नित्यनिगोद रूप शरीर का सम्बन्ध पाइये है। तहाँ नित्यनिगोद शरीर को धरि आयु पूर्ण भए मरि बहुरि नित्यनिगोद शरीरको धारै है बहुरि आयु पूर्ण भए मरि नित्यनिगोदशरीरहीको धारै हैं। याही प्रकार अनंतानंत प्रमाण लिए जीवराशि है सो अनादितैं तहां ही जन्ममरण किया करै हैं। बहुरि तहाँतैं छै महीना अर आठ समयविषै छैस्सै आठ जीव निकसै हैं ते निकसि अन्य पर्यायनिकौं धारै है। सो पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, प्रत्येकवनस्पतिरूप एकेन्द्रिय पर्यायनिविषै वा बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रियरूप पर्यायनिविषे वा नारक तिर्यंच मनुष्य देवरूप पंचेन्द्रिय पर्यायनिविषै भ्रमण करै है, बहुरि तहाँ कितेक काल भ्रमणकरि फिर निगोदपर्याय को पावै सो वाका नाम इतरनिगोद है। बहुरि तहां कितेककाल रहे तहां ते निकसि अन्य पर्यायनिविषै भ्रमण करै है। तहां परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरनिविषै असंख्यात कल्पमात्र है अर द्वीन्द्रियादि पंचेन्द्रियपर्यंत त्रसनिविषै साधिक दोय

हजार सागर है अर इतरनिगोदविषै अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तन मात्र है सो यह अनंतकाल है। बहुरि इतरनिगोदतैं निकसि कोई स्थावर पर्याय पाय बहुरि निगोद जाय ऐसे एकेन्द्रियपर्यायनिविषै उत्कृष्ट परिभ्रमणकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है। बहुरि जघन्य सर्वत्र एक अन्तर्मुहूर्त काल है। ऐसे घना तो एकेन्द्रिय पर्यायनिका ही धरना है। अन्य पर्याय पावना तो काकतालीय न्यायवत् जानना। या प्रकार इस जीवकै अनादिहीतैं कर्मबन्धनरूप रोग भया है।

कर्मबन्धन रूप रोग से जीव की अवस्था

अब इस कर्मबन्धनरूप रोग के निमित्ततैं जीव की कैसी अवस्था होय रही है सो कहिए है। प्रथम तो इस जीवका स्वभाव चैतन्य है सो सबनिका सामान्य-विशेष स्वरूपका प्रकाशनहारा है। जो उनका स्वरूप होय सो आपको प्रतिभासै है, तिसही का नाम चैतन्य है। तहाँ सामान्यरूप प्रतिभासने का नाम दर्शन है, विशेषरूप प्रतिभासने का नाम ज्ञान है। सो ऐसे स्वभावकरि त्रिकालवर्ती सर्वगुणपर्यायसहित सर्व पदार्थनिको प्रत्यक्ष युगपत् बिना सहाय देखै जानै ऐसी आत्माविषै शक्ति सदा काल है। परन्तु अनादिहीतैं ज्ञानावरण दर्शनावरण का सम्बन्ध है ताके निमित्ततैं इस शक्ति का व्यक्तपना होता नाहीं। तिन कर्मनिका क्षयोपशमतैं किंचित् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अर कदाचित् अवधिज्ञान पाइए है वा अचक्षुदर्शन पाइए है अर कदाचित् चक्षुदर्शन व अवधिदर्शन भी पाइए है। सो इनिकी भी प्रवृत्ति कैसे है सो दिखाइए है।

मतिज्ञान की प्रवृत्ति

सो प्रथम तो मतिज्ञान है सो शरीर के अंगभूत जे जीभ, नासिका, नयन, कान, स्पर्शन ए द्रव्यइन्द्रिय अर हृदयस्थान विषै आठ पांखड़ी का फूल्या कमल के आकार द्रव्यमन तिनके सहायहीतैं जानै है। जैसे जाकी दृष्टि मन्द होय सो अपने नेत्रकरि ही देखै है परन्तु चश्मा दीए ही देखै, बिना चश्मे के देख सके नाहीं। तैसे आत्मा का ज्ञान मन्द है सो अपने ज्ञानहीकरि जाने है परन्तु द्रव्यइन्द्रिय वा मनका सम्बन्ध भए ही जानै, तिन बिना जानसकै नाहीं। बहुरि जैसे नेत्र तो जैसा का तैसा है अर चश्मा विषै किछू दोष भया होय तो देखि सके नाहीं अथवा थोरा दीसै अथवा और का और दीसै,तैसे अपना क्षयोपशम तो जैसा का तैसा है अर द्रव्य इन्द्रिय वा मनके परमाणु अन्यथा परिणमै होय तो जान सके नाहीं, अथवा थोरा जानै अथवा औरका और जानै। जातैं द्रव्यइन्द्रिय वा मनरूप परमाणुनिका परिणमनकै अर मतिज्ञानकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है सो उनका परिणमनके अनुसार ज्ञान का परिणमन होय है। ताका उदाहरण-जैसे मनुष्यादिककै बाल वृद्ध अवस्थाविषै द्रव्यइन्द्रिय वा मन शिथिल होय तब जानपना भी शिथिल होय। बहुरि जैसे शीतवायु आदिके निमित्ततैं स्पर्शनादि इन्द्रियनिके वा मनके परमाणु अन्यथा होय तब जानना न होय वा थोरा जानना होय वा अन्यथा जानना होय। बहुरि इस ज्ञानकै अर बाह्य द्रव्यनिकै भी निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पाइए है। ताका उदाहरण- जैसे नेत्रइन्द्रियके अंधकार के परमाणु वा फूला आदिकके परमाणु वा पाषाणादिके परमाणु आदि आड़े आ जाएँ तो देखि न सके। बहुरि लाल कांच आड़ा आवै तो सब लाल ही दीसै, हरित कांच आड़ा आवै तो हरितही दीसै ऐसे अन्यथा जानना होय। बहुरि दूरबीन चश्मा इत्यादि

आड़ा आवै तो बहुत दीसने लग जाय। प्रकाश जल हिलव्वी कांच इत्यादिकके परमाणु आड़े आवै तो भी जैसाका तैसा दीखै। ऐसे अन्य इन्द्रिय वा मनके भी यथासम्भव निमित्तनैमित्तिकपना जानना। बहुरि मंत्रादिक प्रयोगतैं वा मदिरा पानादिकतैं वा भूतादिकके निमित्ततैं न जानना वा थोरा जानना वा अन्यथा जानना हो है। ऐसे **यहु मतिज्ञान बाह्य द्रव्यके भी आधीन जानना।** बहुरि इस ज्ञानकरि जो जानना हो है सो अस्पष्ट जानना हो है। दूरितैं कैसा ही जानै, समीपतैं कैसा ही जानै, तत्काल कैसा ही जानै, जानते बहुत बार होय जाय तब कैसा ही जानै। काहूको संशय लिए जानै, काहूको अन्यथा जानै, काहूको किंचित् जानै इत्यादि रूपकरि निर्मल जानना होय सकै नाहीं। ऐसे **यहु मतिज्ञान पराधीनता के लिए इन्द्रिय मन द्वारकरि प्रवर्तै है।** तहाँ इन्द्रियनिकरि तो जितने क्षेत्रका विषय होय तितने क्षेत्र विषै जे वर्तमान स्थूल अपने जानने योग्य पुद्गलस्कंध होय तिनहीको जानै। तिन विषै भी जुदे-जुदे इन्द्रियनिकरि जुदे-जुदेकालविषै कोई स्कंधके स्पर्शादिकका जानना हो है। बहुरि मनकरि अपने जानने योग्य किंचिन्मात्र त्रिकाल सम्बन्धी दूरक्षेत्रवर्ती वा समीप क्षेत्रवर्ती रूपी अरूपी द्रव्य वा पर्याय तिनको अत्यन्त अस्पष्टपने जानै है सो भी इन्द्रियनिकरि जाका ज्ञान भया होय वा अनुमानादिक जाका किया होय तिसहीको जान सकै है। बहुरि कदाचित् अपनी कल्पना हीकरि असत्को जानै है। जैसे सुपने विषै वा जागते भी जे कदाचित् कहीं न पाइए ऐसे आकारादिक चिंतवै जैसे नाहीं तैसे मानै वा ऐसे मन करि जानना होय है सो यहु इन्द्रिय वा मन द्वारकरि जो ज्ञान हो है ताका नाम मतिज्ञान है। तहां पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पतीरूप एकेन्द्रिय के स्पर्शहीका ज्ञान है। लट शंख आदि बेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रसका ज्ञान है। कीड़ी मकोड़ा आदि तेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रस गंध वर्णका ज्ञान है। मच्छ गऊ कबूतर इत्यादि तिर्यंच अर मनुष्य देव नारकी ए पंचेन्द्रिय हैं तिनकै स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दनिका ज्ञान है बहुरि तिर्यंचनिविषै केई संज्ञी है केई असंज्ञी हैं। तहां संज्ञीनिकै मनजनित ज्ञान है, असंज्ञीनिकै नाहीं है। बहुरि मनुष्य देव नारकी संज्ञी ही हैं, तिन सबनिकै मनजनित ज्ञान पाइए है, ऐसे मतिज्ञानकी प्रवृत्ति जाननी।

श्रुतज्ञान

बहुरि मतिज्ञानकरि जिस अर्थको जान्या होय ताकै सम्बन्धतैं अन्य अर्थको जाकरि जानिये सो श्रुतज्ञान है। सो दोय प्रकार है। अक्षरात्मक १. अनक्षरात्मक २। तहाँ जैसे 'घट' ए दोय अक्षर सुने वा देखे सो तो मतिज्ञान भया तिनके सम्बन्धतैं घट पदार्थका जानना भया सो श्रुतज्ञान भया, ऐसे अन्य भी जानना। सो यहु तो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। बहुरि जैसे स्पर्शकरि शीतका जानना भया सो तो मतिज्ञान है ताकै सम्बंधतैं यह हितकारी नाहीं यातैं भाग जाना इत्यादिरूप ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है, ऐसे अन्य भी जानना। यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। तहाँ एकेन्द्रियादिक असंज्ञी जीवनिकै तो अनक्षरात्मक ही श्रुतज्ञान है अर संज्ञी पंचेन्द्रियकै दोऊ है। सो **यहु श्रुतज्ञान है।** सो अनेक प्रकार पराधीन जो मतिज्ञान ताकै भी आधीन है वा अन्य अनेक कारणनिके आधीन है, तातैं **महापराधीन जानना।**

अवधिज्ञान : प्रवृत्ति और उसके भेद

बहुरि अपनी मर्यादाके अनुसार क्षेत्रकाल का प्रमाण लिए रूपी पदार्थनिको स्पष्टपने जाकरि जानिये सो अवधिज्ञान है सो यह देव नारकीनिकै तो सर्वकै पाइए है अर संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अर मनुष्यनिकै भी कोईकै पाइए है। असंज्ञीपर्यन्त जीवनिकै यह होता ही नाहीं। सो यहु भी शरीरादिक पुद्गलनिके आधीन है। बहुरि अवधि के तीन भेद हैं। **देशावधि १, परमावधि २, सर्वावधि ३।** सो इनविषै थोरा क्षेत्रकालकी मर्यादा लिये किंचिन्मात्र रूपी पदार्थको जाननहारा देशावधि है सो ही कोई जीवकै होय है। बहुरि परमावधि सर्वावधि अर मनःपर्यय ए ज्ञान मोक्षमार्गविषै प्रगटै है। केवलज्ञान मोक्षस्वरूप है तातैं इस अनादि संसार अवस्था विषै इनका सद्भाव ही नाहीं है, ऐसे तो ज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि इन्द्रिय वा मनके स्पर्शादिक विषय तिनका सम्बन्ध होतैं प्रथम कालविषै मतिज्ञानके पहले जो सत्तामात्र अवलोकनरूप प्रतिभास हो है ताका नाम चक्षुदर्शन वा अचक्षुदर्शन है। तहां नेत्र इन्द्रियकरि दर्शन होय ताका नाम तो चक्षुदर्शन है सो तो चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवनिहीकै हो है। बहुरि स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इन च्यार इन्द्रिय अर मन करि दर्शन होय ताका नाम अचक्षुदर्शन है सो यथायोग्य एकेन्द्रियादि जीवनिकै हो है।

बहुरि अवधिके विषयनिका सम्बन्ध होतैं अवधिज्ञान के पहले जो सत्तामात्र अवलोकनेरूप प्रतिभास होय ताका नाम अवधिदर्शन है सो जिनकै अवधिज्ञान सम्भवै तिनहीकै यहु हो है। **जो यहु चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन है सो मतिज्ञान वा अवधिज्ञानवत् पराधीन जानना।** बहुरि केवलदर्शन मोक्षस्वरूप है ताका यहाँ सद्भाव ही नाहीं। ऐसे दर्शनका सद्भाव पाइए है।या प्रकार ज्ञान-दर्शनका सद्भाव ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम के अनुसार हो है। जब क्षयोपशम थोरा हो है तब ज्ञानदर्शनकी शक्ति भी थोरी हो है। जब बहुत हो है तब बहुत हो है। बहुरि क्षयोपशमतैं शक्ति तो ऐसी बनी रहे अर परिणमनकरि एक जीवकै एक कालविषै एक विषयहीका देखना वा जानना है। इस परिणमनहीका नाम उपयोग है। तहाँ एक जीवकै एक कालविषै कै तो ज्ञानोपयोग हो है के दर्शनोपयोग हो है। बहुरि एक उपयोगका भी एक ही भेदकी प्रवृत्ति हो है। जैसे मतिज्ञान होय तब अन्य ज्ञान न होय। बहुरि एक भेदविषै भी एक विषयविषै ही प्रवृत्ति हो है। जैसे स्पर्शको जानै तब रसादिकको न जानै। बहुरि एक विषय विषै भी ताके कोऊ एक अंग ही विषै प्रवृत्ति हो है। जैसे उष्णस्पर्शको जानै तब रूक्षादिकको न जानै।

विशेष-धवला में लिखा है कि-

स्निग्ध-मृदु-कठिनोष्ण-गुरु-लघु-शीतादिद्रव्यविषयः अक्रमवृत्ति-बहुविधः प्रत्ययः स्पर्शनेन्द्रियजः। न चायमसिद्धः, उपलभ्यमानत्वात् न चोपलम्भः अपह्नोतुं पार्यते, अव्यवस्थापत्तेः (धवल पु. १३ पृ. २३७ प्रथम अनुच्छेद)

अर्थ-स्निग्ध, मृदु, कठिन, उष्ण, गुरु, लघु और शीत आदि द्रव्यविषयक युगपत् (एक साथ) होने वाला प्रत्यय (ज्ञान) स्पर्शनेन्द्रियज बहुविध-प्रत्यय (ज्ञान) है। ऐसा प्रत्यय (ज्ञान) होना असिद्ध

भी नहीं है, क्योंकि उसकी उपलब्धि होती है और उपलब्धि का अपलाप नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा करने पर अव्यवस्था की आपत्ति आती है। बहुत गन्ध आदि का भी इस तरह युगपत् ज्ञान सम्भव है। कहा भी है-

कर्पूरागरु-तुरुष्क-चन्दनादिगन्धेष्वक्रमवृत्तिः घ्राणजो बहुविधप्रत्ययः (वही ग्रन्थ, वही पृष्ठ)

अर्थ- कपूर, अगरु तुरुष्क और चन्दन आदि की गन्धों का युगपत् होने वाला प्रत्यय (ज्ञान) घ्राणज बहुविध प्रत्यय है।

राजवार्तिक में भी कहा है- **प्रकृष्टश्रोत्रेन्द्रियावरण वीर्यान्तराय क्षयोपशमांगोपांगनामोपष्टम्भात् संभिन्नश्रोता अन्यो वा युगपत् ततविततघनसुषिरादिशब्दश्रवणात् बहुशब्दमवग्रहणाति।......** (रा. वा. १/१६/१६/६३ से ६६)

अर्थ-श्रोत्रेन्द्रिय (कान) और वीर्यान्तराय का प्रकृष्ट (उत्तम) क्षयोपशम होने पर (यानी साधारण क्षयोपशमी मनुष्य के नहीं) तथा तदनुकूल अंगोपांग नामकर्म के उदय से, संभिन्न श्रोता या अन्य पुरुष एक साथ (क्रम से नहीं) तत, वितत, घन, सुषिर आदि का श्रवण बन जाने से "बहुशब्द" का अवग्रह ज्ञान करता है।

इस प्रकार आगमानुसार महान् क्षयोपशम सम्पन्न जीव युगपत् शीत रूक्ष उष्ण आदि स्पर्शों को एक ही काल में जान लेता है। किसी/व्यक्ति विशेष के किसी ज्ञानविशेष का अभाव होने से पुरुषान्तर में भी उस ज्ञान का अभाव निश्चित नहीं किया जा सकता ।

यदि यह कहा जाए कि "अनेक उपयोग कालों को उपचार से एक काल मान कर फिर युगपत् बहुविध अवग्रह आदि बनता है, ऐसा समझना चाहिए।" तो इसका उत्तर यह है कि **प्रथम** तो इस तरह अप्रकृष्ट-सामान्य क्षयोपशम वालों के भी, क्रम करके तो, अव्यवधान रूप से, शीघ्र-शीघ्र, शीत उष्ण आदि का ज्ञान बन जाने से बहुविध अवग्रह मानना पड़ेगा जो आगम (रा. वा. १/१६/१६ प्रकृष्ट-श्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशम.......) के विरुद्ध है। **दूसरा,** बहुविध अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा का ही अभाव आजायगा। क्योंकि उपालम्भकर्ता के अनुसार क्रमशः व निरन्तर संजात शीत, उष्ण आदि का ज्ञान तो एक या एकविध अवग्रह स्वरूप ही होगा। क्योंकि वहाँ तो क्रमशः निरन्तर एकावग्रह या एकविधावग्रह ही, प्रति अन्तर्मुहूर्त भिन्न-भिन्न स्वीकार किये जा रहे हैं। दूसरे, आगम में कालक्रम से ज्ञात एकावग्रहों का योग बहु-अवग्रह रूप से; तथा एवमेव कालक्रम से लब्ध एकविधावग्रहों के योग को बहुविधावग्रह कहा भी नहीं है।

ऐसे एक जीवकै एक कालविषै एक ज्ञेय वा दृश्यविषै ज्ञान वा दर्शनका परिणमन जानना। सो ऐसे

ही देखिए है। जब सुनने विषै उपयोग लग्या होय तब नेत्रनिके समीप तिष्टता भी पदार्थ न दीसै, ऐसे ही अन्य प्रवृत्ति देखिए है। बहुरि परिणमनविषै शीघ्रता बहुत है ताकरि काहू कालविषै ऐसा मानिए है युगपत् भी अनेक विषयनिका जानना वा देखना हो है सो युगपत् होता नाहीं, क्रम ही करि हो है, संस्कारबलतैं तिनका साधन रहे है। जैसे कागलेके नेत्र के दोय गोलक हैं, पुतरी एक है सो फिरै शीघ्र है ताकरि दोऊ गोलकनिका साधन करै है तैसे ही इस जीवके द्वार तो अनेक हैं अर उपयोग एक है। सो फिरै शीघ्र है ताकरि सर्व द्वारनिका साधन रहे है।

इहां **प्रश्न**- जो एक कालविषै एक विषय का जानना वा देखना हो है तो इतना ही क्षयोपशम भया कहो, बहुत काहेकूं कहो? बहुरि तुम कहो हो, क्षयोपशमतैं शक्ति हो है तो शक्ति तो आत्माविषै केवलज्ञानदर्शन की भी पाइए है।

ताका **समाधान**-जैसे काहू पुरुषकै बहुत ग्रामनिविषै गमन करने की शक्ति है। बहुरि ताको काहूने रोक्या अर यहु कह्या, पाँच ग्रामनिविषै जावो परन्तु एक दिनविषै एक ही ग्रामको जावो। तहाँ उस पुरुष कै बहुत ग्राम जाने की शक्ति तो द्रव्य अपेक्षा पाइए है, अन्य काल विषै सामर्थ्य होय, वर्तमान सामर्थ्यरूप नाहीं है परन्तु वर्तमान पाँच ग्रामनितैं अधिक ग्राम विषै गमन करि सकै नाहीं। बहुरि पाँच ग्रामनि विषै जाने की पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्यरूप शक्ति है जातै इनिविषै गमन करि सकै है। बहुरि व्यक्तता एक दिनविषै एक ग्राम कौ गमन करने ही की पाइए है। तैसे इस जीव के सर्वको देखने जानने की शक्ति है। बहुरि याको कर्मने रोक्या अर इतना क्षयोपशम भया जो स्पर्शादिक विषयनि को जानो वा देखो परन्तु एक काल विषै एकहीको जानो वा देखो। तहाँ इस जीवके सबके देखने-जानने की शक्ति तो द्रव्यअपेक्षा पाइए है अन्य-कालविषै सामर्थ्य होय परन्तु वर्तमान सामर्थ्यरूप नाहीं, जातैं अपने योग्य विषयनितैं अधिक विषयनिकों देखि जानि सकै नाहीं। बहुरि अपने योग्य विषयनिकूं देखने जानने की पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्य रूप शक्ति है जातैं इनको देखि जानि सकै है; बहुरि व्यक्तता एक कालविषै एकहीको देखने वा जानने की पाइए है।

बहुरि इहाँ **प्रश्न**-जो ऐसे तो जान्या परन्तु क्षयोपशम तो पाइए अर बाह्य इन्द्रियादिकका अन्यथा निमित्त भये देखना-जानना न होय वा थोरा होय वा अन्यथा होय सो ऐसे होते कर्महीका निमित्त तो न रह्या?

ज्ञान-दर्शन की पराधीनता में कर्म ही निमित्त है

ताका **समाधान**- जैसे रोकनहाराने यहु कह्या जो पाँच ग्रामनिविषै एक ग्रामको एक दिनविषै जावो परन्तु इन किंकरनिको साथ ले जावो तहाँ वे किंकर अन्यथा परिणमैं तो जाना न होय वा थोरा जाना होय वा अन्यथा जाना होय। तैसे कर्मका ऐसा ही क्षयोपशम भया है जो इतने विषयनिविषै एक विषयको एक कालविषै देखो वा जानो परन्तु इतने **बाह्य द्रव्यनिका निमित्त भये देखो जानो। तहाँ वे बाह्य द्रव्य अन्यथा परिणमै तो देखना जानना न होय वा थोरा होय वा अन्यथा होय।** ऐसे यहु कर्म के क्षयोपशमहीका विशेष

है तातैं कर्महीका निमित्त जानना। जैसे काहूकै अंधकार के परमाणु आड़े आए देखना न होय, मार्जारादिकनिकै तिनको आड़े आये भी देखना होय। सो ऐसा यहु क्षयोपशमहीका विशेष है। जैसे-जैसे क्षयोपशम होय तैसे-तैसे ही देखना जानना होय। ऐसे इस जीवकै क्षयोपशमज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि मोक्षमार्गविषै अवधि मनःपर्यय हो है ते भी क्षयोपशमज्ञान ही है, तिनिकी भी ऐसे ही एक कालविषै एकको प्रतिभासना वा परद्रव्यका आधीनपनां जानना। बहुरि विशेष है सो विशेष जानना। या प्रकार ज्ञानावरण दर्शनावरणका उदयके निमित्ततैं बहुत ज्ञानदर्शनके अंशनि का तो अभाव है अर तिनके क्षयोपशमतैं थोरे अंशनिका सद्भाव पाइए है।

मोह का उदय और मिथ्यात्व का स्वरूप

बहुरि इस जीवकै मोह के उदयतैं मिथ्यात्व वा कषायभाव हो है। तहाँ दर्शनमोहके उदयतैं तो मिथ्यात्वभाव हो है ताकरि यह जीव अन्यथा प्रतीतिरूप अतत्त्व श्रद्धान करै है। जैसे है तैसे तो न मानै है। अर जैसे नाहीं है तैसे माने है। अमूर्त्तीक प्रदेशनिका पुंज प्रसिद्ध ज्ञानादिगुणनिका धारी अनादिनिधनवस्तु आप है अर मूर्त्तीक पुद्गल द्रव्यनिकापिंड प्रसिद्ध ज्ञानादिकनिकरि रहित जिनका नवीन संयोग भया, ऐसे शरीरादिक पुद्गल पर हैं। इनका संयोगरूप नाना प्रकार मनुष्य तिर्यंचादि पर्याय हो है, तिस पर्यायविषै अहंबुद्धि धारै है, स्व-परका भेद नाहीं करि सकै है। जो पर्याय पावै तिसहीको आप मानै है। बहुरि तिस पर्यायविषै ज्ञानादिक हैं ते तो आपके गुण हैं अर रागादिक हैं ते आपके कर्मनिमित्ततैं उपाधिक भाव भए हैं अर वर्णादिक हैं ते आपके गुण नाहीं हैं, शरीरादिक पुद्गलके गुण हैं अर शरीरादिकविषै वर्णादिकनिकी वा परमाणुनिकी नाना प्रकार पलटनि हो है सो पुद्गल की अवस्था है सो इन सबनिहीको अपनो स्वरूप जानै है, स्वभाव परभावका विवेक नाहीं होय सकै है। बहुरि मनुष्यादिक पर्यायनिविषै कुटुम्ब धनादिकका सम्बन्ध हो है, ते प्रत्यक्ष आपतैं भिन्न हैं अर ते अपने आधीन होय नाहीं परिणमैं हैं तथापितिन विषै ममकार करै है। 'ए मेरे हैं' वे काहू प्रकार भी अपने होते नाहीं, यह ही अपनी मानि तैं ही अपने मानै है।बहुरि मनुष्यादि पर्यायनिविषै कदाचित् देवादिकका वा तत्त्वनिका अन्यथास्वरूप जो कल्पित किया ताकी तो प्रतीति करै है अर यथार्थस्वरूप जैसे है तैसे प्रतीति न करै है। ऐसे दर्शनमोह के उदय करि जीवकै अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्वभाव हो है। जहाँ तीव्र उदय होय है तहाँ सत्यश्रद्धानतैं घना विपरीत श्रद्धान होय है। जब मंद उदय होय है तब सत्य श्रद्धानतैं थोरा विपरीत श्रद्धान हो है।

चारित्रमोह से कषायभावों की प्रवृत्ति

बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं इस जीवकै कषायभाव हो है तब वह देखता जानता संता पर पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्टपनो मानि क्रोधादिक करै है तहां क्रोधका उदय होतैं पदार्थनिविषै अनिष्टपनो वा ताका बुरा चाहै। कोउ मंदिरादि अचेतन पदार्थ बुरा लागै तब फोरना-तोरना इत्यादि रूपकरि वाका बुरा चाहै। बहुरि शत्रु आदि सचेतन पदार्थ बुरा लागै तब वाकों बध-बन्धादिकरि वा मारनेकरि दुःख उपजाय ताका बुरा चाहै। बहुरि आप वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थ कोई प्रकार परिणए, आपको सो परिणमन

बुरा लागै तब अन्यथा परिणमावनेकरि तिस परिणमनका बुरा चाहै। या प्रकार क्रोधकरि बुरा चाहनेकी इच्छा तो होय, बुरा होना भवितव्य आधीन है।

बहुरि **मानका उदय** होतैं पदार्थविषै अनिष्टपनो मानि ताकौं नीचा किया चाहै, आप ऊँचा भया चाहै, मल धूलि आदि अचेतन पदार्थनिविषै घृणा वा निरादरादिककरि तिनकी हीनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि पुरुषादिक सचेतन पदार्थनिकों नमावना, अपने आधीन करना इत्यादि रूपकरि तिनकी हीनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि आप लोकविषै जैसे ऊँचा दीसै तैसे शृंगारादि करना वा धन खरचना इत्यादिरूपकरि औरनिकों हीन दिखाय आप ऊँचा हुआ चाहै। बहुरि अन्य कोई आपतैं ऊँचा कार्य करै ताको कोई उपाय करि नीचा दिखावै अर आप नीचा कार्य करै ताकूं ऊंचा दिखावै; या प्रकार मानकरि अपनी महंतताकी इच्छा तो होय, महंतता होनी भवितव्य आधीन है।

बहुरि **मायाका उदय** होतैं कोई पदार्थको इष्ट मानि नाना प्रकार छलनिकरि ताको सिद्ध किया चाहै। रत्न सुवर्णादिक अचेतन पदार्थनिकी वा स्त्री दासी - दासादि सचेतन पदार्थनिकी सिद्धिके अर्थि अनेक छल करै। परको ठगनेके अर्थि अपनी अनेक अवस्था करै वा अन्य अचेतन सचेतन पदार्थनिकी अवस्था पलटावै इत्यादिरूप छलकरि अपना अभिप्राय सिद्ध किया चाहै। या प्रकार मायाकरि इष्टसिद्धिके अर्थि छल तो करै अर इष्टसिद्धि होना भवितव्य आधीन है।

बहुरि **लोभका उदय** होतैं पदार्थनिकों इष्ट मानि तिनकी प्राप्ति चाहै। वस्त्राभरण धनधान्यादि अचेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय। बहुरि स्त्री पुत्रादिक चेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय। बहुरि आपकै वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थकै कोई परिणमन होना इष्ट मानि तिनको तिस परिणमनरूप परिणमाया चाहै। या प्रकार लोभकरि इष्टप्राप्ति की इच्छा तो होय अर इष्ट प्राप्ति होनी भवितव्य के आधीन है। ऐसे क्रोधादिकका उदयकरि आत्मा परिणमै है।

कषायों के उत्तरभेद और उनका कार्य

तहां एक-एक कषाय का चार-चार प्रकार है। **अनंतानुबन्धी १, अप्रत्याख्यानावरण २, प्रत्याख्यानावरण ३, संज्वलन ४**। तहाँ (जिनका उदयतैं आत्माकै सम्यक्त्व न होय, स्वरूपाचरण चारित्र न होय सकै ते अनंतानुबंधीकषाय हैं।*)

विशेष-टोडरमलजी की हस्तलिखित प्रति में उन्होंने ऐसा नहीं लिखा है कि- "जिनका उदयतैं आत्मा कै सम्यक्त्व न होय, स्वरूपाचरण चारित्र न होय सकै ते अनन्तानुबन्धी कषाय हैं।" फिर भी हमने यहाँ इस पाठ को इसलिए दिया है कि चूंकि श्रद्धेय पण्डित सा. यहाँ अनन्तानुबन्धीकी परिभाषा लिखना भूल गये थे तथा लिपिकारों ने बाद में उक्त शब्दों में इसे सम्मिलित किया था अतः हमने भी ऐसा ही रहने दिया है। इस विषय में यह ध्यातव्य है कि पण्डित राजमलजी के पूर्व

* यह पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है।

अर्थात् आज से ४०० वर्ष पहिले तक स्वरूपाचरण नाम का जैनागममें कहीं कोई उल्लेख/अस्तित्व नहीं था[1] अतः पं. कैलाशचन्द्र जैन सिद्धान्तशास्त्री ने ठीक ही लिखा है कि सम्यक्त्वाचरण चारित्र को स्वरूपाचरण चारित्र का पूर्व रूप कहना उचित होगा। सम्यक्त्वाचरण चारित्र ही स्वरूपाचरण चारित्र नाम के रूपमें परिवर्तित हुआ जान पड़ता है।[2] पण्डित जगन्मोहनलाल सिद्धान्तशास्त्री लिखते हैं कि "अविरत सम्यग्दृष्टि के संयम भाव के बिना भी सम्यक्चारित्र होता है। उसे आचार्य कुन्दकुन्द (तथा भगवद् वीरसेन स्वामी) सम्यक्त्वाचरण कहते हैं। (चारित्रप्राभृत गाथा ३ से १२) तथा उसे ही पंचाध्यायीकार तथा अन्य ग्रन्थकार स्वरूपाचरण कहते हैं। मात्र नाम में अन्तर है।"[3]

उक्त कथनों से अत्यन्त स्पष्ट है कि चतुर्थगुणस्थान में होने वाले चारित्र को आचार्य कुन्दकुन्द आदि ने सम्यक्त्वाचरण चारित्र ही कहा है, स्वरूपाचरण नहीं। धवल, जयधवल, महाधवल तथा आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में कहीं भी यह नहीं लिखा है कि चतुर्थगुणस्थान में स्वरूपाचरण चारित्र होता है। अतः चतुर्थ गुणस्थान में होने वाले चारित्र का नाम 'सम्यक्त्वाचरण' ही समीचीन है जिसका समर्थन चारित्रप्राभृत आदि से होता है।

जिनका उदय होतैं देशचारित्र न होय तातैं किंचित् त्याग भी न होय सकै, ते अप्रत्याख्यानावरण कषाय हैं। बहुरि जिनका उदय होतैं सकलचारित्र न होय तातैं, सर्व का त्याग न होय सकै ते प्रत्याख्यानावरण कषाय हैं। बहुरि जिनका उदय होतैं सकलचारित्रको दोष उपज्या करै तातैं यथाख्यातचारित्र न होय सकै, ते संज्वलन कषाय हैं। सो अनादि संसार अवस्थाविषै इन च्यार्यों ही कषायनिका निरन्तर उदय पाइए है। परमकृष्णलेश्यारूप तीव्रकषाय होय तहाँ भी अर शुक्ललेश्यारूप मंदकषाय होय तहाँ भी निरन्तर च्यार्योंही का उदय रहै है। जातैं तीव्रमन्दकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद नाहीं हैं, सम्यक्त्वादि घातनेकी अपेक्षा ए भेद हैं। इनही प्रकृतिनिका तीव्र अनुभाग उदय होतैं तीव्र क्रोधादिक हो है, मन्द अनुभाग उदय होतैं मन्द उदय हो है। बहुरि मोक्षमार्ग भए इन च्यारों विषै तीन, दोय, एकका उदय हो है, पीछे च्यार्योंका अभाव हो है। बहुरि क्रोधादिक च्यार्यों कषायनिविषै एककाल एकहीका उदय हो है। इन कषायनिकै परस्पर कारणकार्यपनो है। क्रोधकरि मानादिक होय जाय, मानकरि क्रोधादिक होय जाय, तातैं काहू काल भिन्नता भासै काहू काल न भासै है। ऐसे कषायरूप परिणमन जानना।

बहुरि **चारित्र मोह ही के उदयतैं नोकषाय हो हैं** तहां हास्यका उदयकरि कहीं इष्टपनो मानि प्रफुल्लित हो है, हर्ष मानै है। बहुरि रतिका उदयकरि काहूको इष्ट मान प्रीति करै है तहां आसक्त हो है। बहुरि अरतिका उदयकरि काहूको अनिष्ट मान अप्रीति करै है तहाँ उद्वेगरूप हो है। बहुरि शोक का

---

१. पं. कैलाशचन्द सि. शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ पृ. १६६ तथा समकित आदि निबन्ध संग्रह, पृ. ४२ (शिवसागर ग्रन्थमाला)।

२. कुन्दकुन्द प्राभृत संग्रह-प्रस्तावना पृ. ६७।

३. अध्यात्म अमृतकलश प्रस्तावना पृ. ४६, दि. जैन मन्दिर, कटनी।

उदयकरि कहीं अनिष्टपनो मान दिलगीर हो है, विषाद मानै है। बहुरि भयका उदयकरि किसीको अनिष्ट मान तिसतैं डरै है, वाका संयोग न चाहै है। बहुरि जुगुप्साका उदयकरि काहू पदार्थको अनिष्ट मान ताकी घृणा करै है, वाका वियोग चाहै है। ऐसे ए हास्यादिक छह जानने। बहुरि वेदनिके उदयतैं याकै काम-परिणाम हो है तहाँ स्त्रीवेदके उदयकरि पुरुषसौं रमनेकी इच्छा हो है। अर पुरुषवेद के उदयकरि स्त्रीसौं रमने की इच्छा हो है। अर नपुंसकवेदके उदयकरि युगपत् दोऊनिसौं रमने की इच्छा हो है, ऐसे ए नव तो नोकषाय हैं। क्रोधादि सारिखे ए बलवान नाहीं तातैं इनको ईषत्कषाय कहै हैं। यहाँ नोशब्द ईषत् वाचक जानना। इनका उदय तिन क्रोधादिकनिकी साथ यथासम्भव हो है। ऐसे मोहके उदयतैं मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं सो ए संसारके मूल कारण ही हैं। इनही करि वर्तमान काल विषै जीव दुःखी है अर आगामी कर्मबन्धनके भी कारण ए ही हैं। बहुरि इनंहीका नाम राग द्वेष मोह है। तहां मिथ्यात्वका नाम मोह है, जातैं जहाँ सावधानीका अभाव है। बहुरि माया लोभ कषाय अर हास्य रति तीन वेदनिका नाम राग है जातैं तहाँ इष्टबुद्धि करि अनुराग पाइए है। बहुरि क्रोध मान कषाय अर अरति शोक भय जुगुप्सानिका नाम द्वेष है जातैं तहाँ अनिष्ट बुद्धि करि द्वेष पाइए है। बहुरि सामान्यपने सबही का नाम मोह है। तातैं इन विषै सर्वत्र असावधानी पाइए है।

बहुरि अन्तरायके उदयतैं जीव चाहै सो न होय। दान दिया चाहै देय न सकै। वस्तुकी प्राप्ति चाहै सो न होय। भोग किया चाहै सो न होय। उपभोग किया चाहै सो न होय। अपनी ज्ञानादि शक्तिको प्रगट किया चाहै सो न प्रगट होय सके। ऐसे अन्तरायके उदयतैं चाह्या होय नाहीं। बहुरि तिसहीका क्षयोपशमतैं किंचिन्मात्र चाह्या भी हो है। चाहिए तो बहुत है परन्तु किंचिन्मात्र (चाह्या हुआ होय है। बहुत दान देना चाहै है परन्तु थोड़ा हो*) दान देय सकै है। बहुत लाभ चाहै है परन्तु थोड़ा ही लाभ हो है। ज्ञानादिक शक्ति प्रगट हो है तहाँ भी अनेक बाह्य कारण चाहिए। या प्रकार घातिकर्मनिके उदयतैं जीवकै अवस्था हो है।

बहुरि अघातिकर्मनिविषै वेदनीयके उदयकरि शरीर विषै बाह्य सुख दुःखका कारण निपजै है। शरीरविषै आरोग्यपनो रोगीपनो शक्तिवानपनो दुर्बलपनो इत्यादि अर क्षुधा तृषा रोग खेद पीड़ा इत्यादि सुख दुःखनिके कारण हो हैं। बहुरि बाह्यविषै सुहावना ऋतु पवनादिक वा इष्ट स्त्री पुत्रादिक वा मित्र धनादिक, असुहावनी ऋतु पवनादिक वा अनिष्ट स्त्री पुत्रादिक वा शत्रु दरिद्र वधबंधनादिक सुख दुःखको कारण हो है। ए बाह्य कारण कहे तिन विषै केई कारण तो ऐसे हैं जिनके निमित्तस्यों शरीर की अवस्था सुख दुःखको कारण हो है अर वे ही सुख दुःखको कारण हो हैं। बहुरि केई कारण ऐसे हैं जे आप ही सुख दुःखको कारण हो हैं। ऐसे कारण का मिलना वेदनीयके उदयतैं ही है। **तहाँ साता वेदनीयतैं सुखके कारण मिलै अर असातावेदनीयतैं दुःखके कारण मिलै। सो इहाँ ऐसा जानना, ए कारणही तो सुख-दुःखको उपजावै नाहीं, आत्मा मोहकर्म का उदयतैं आप सुख दुःख मानै है।** तहाँ वेदनीयकर्मका उदयकै अर मोहकर्मका

* यह पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है किन्तु अन्य सब प्रतियों में है, इस कारण आवश्यक जान यहाँ दे दी गई है।

उदयकै ऐसाही सम्बन्ध है। जब सातावेदनीयका निपजाया बाह्य कारण मिलै तब तौ सुख मानने रूप मोहकर्मका उदय होय अर जब असातावेदनीयका निपजाया बाह्यकारण मिलै तब दुःख मानने रूप मोहकर्मका उदय होय। बहुरि एक ही कारण काहूको सुखका, काहूको दुःख का कारण हो है। जैसे काहूकै सातावेदनीयका उदय होतैं मिल्या जैसा वस्त्र सुखका कारण हो है तैसा ही वस्त्र काहूको असातावेदनीयका उदय होतैं मिल्या सो दुःखका कारण हो है। **तातैं बाह्य वस्तु सुख-दुःख का निमित्त मात्र हो है। सुख दुःख हो है सो मोहके निमित्ततैं हो है।** निर्मोही मुनिनके अनेक ऋद्धि आदि परीसह आदि कारण मिलै तो भी सुख दुःख न उपजे। मोही जीवकै कारण मिले वा बिना कारण मिले भी अपने संकल्प ही तैं सुख दुःख हुआ ही करै है। तहाँ भी तीव्रमोहीकै जिस कारणको मिले तीव्र सुख दुःख होय तिसही कारणको मिले मंदमोहीकै मंद सुख दुःख होय। **तातैं सुख-दुःख का मूल बलवान कारण मोहका उदय है।** अन्य वस्तु हैं सो बलवान कारण नाहीं। परन्तु अन्य वस्तुकै अर मोही जीवके परिणामनिकै निमित्तनैमित्तिककी मुख्यता पाइए है। ताकरि **मोहीजीव अन्य वस्तुहीको सुख-दुःख का कारण मानै है।** ऐसे वेदनीयकरि सुखदुःखका कारण निपजै है।

बहुरि **आयुकर्म के उदयकरि मनुष्यादि पर्यायनिकी स्थिति रहै है।** यावत् आयुका उदय रहै तावत् अनेक रोगादिक कारण मिलो, शरीरस्यों सम्बन्ध न छूटै। बहुरि जब आयुका उदय न होय तब अनेक उपाय किये भी शरीरस्यों सम्बन्ध रहै नाहीं, तिसही काल आत्मा अर शरीर जुदा होय। इस संसारविषैं जन्म, जीवन, मरण का कारण आयुकर्म ही है। जब नवीन आयुका उदय होय तब नवीनपर्यायविषै जन्म हो है। बहुरि यावत् आयुका उदय रहै तावत् तिस पर्यायरूप प्राणनिके धारणतैं जीवना हो है। बहुरि आयुका क्षय होय तब तिस पर्यायरूप प्राण छूटनैतैं मरण हो है। सहज ही ऐसा आयुकर्म का निमित्त है। और कोई उपजावनहारा, क्षपावनहारा, रक्षाकरनेहारा है नाहीं, ऐसा निश्चय करना। बहुरि जैसे नवीन वस्त्र पहरे कितेक काल पहरे रहै, पीछे ताकूं छोड़ि अन्य वस्त्र पहरै तैसे जीव नवीन शरीर धरै कितेककाल धरै रहै, पीछे ताकूं छोड़ि अन्य शरीर धरै है। तातैं शरीरसम्बन्धअपेक्षा जन्मादिक हैं। जीव जन्मादिरहित नित्य ही है तथापि मोही जीवकै अतीत अनागतका विचार नाहीं। तातैं पाया पर्याय मात्र ही अपना अस्तित्व मानि पर्याय सम्बन्धी कार्यनिविषै ही तत्पर होय रह्या है। ऐसे आयुकरि पर्याय की स्थिति जाननी।

बहुरि **नामकर्मकरि यह जीव मनुष्यादिगतिनिविषैं प्राप्त हो है, तिस पर्यायरूप अपनी अवस्था हो है।** बहुरि तहाँ त्रसस्थावरादि विशेष निपजै हैं। बहुरि तहाँ एकेन्द्रियादि जातिको धारै है। इस जाति कर्मका उदयकै अर मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम के निमित्तनैमित्तिकपना जानना। जैसा क्षयोपशम होय तैसी जाति पावै। बहुरि शरीरनिका सम्बन्ध हो है तहां शरीरके परमाणु अर आत्मा के प्रदेशनि का एक बन्धान हो है अर संकोच विस्ताररूप होय शरीरप्रमाण आत्मा रहै है। बहुरि नोकर्मरूप शरीरविषै अंगोपांगादिकका योग्यस्थान प्रमाण लिये हो है। इसहीकरि स्पर्शन रसना आदि द्रव्यइन्द्रिय निपजै हैं वा हृदय स्थान विषै आठ पांखड़ीका फूल्या कमलके आकार द्रव्य मन हो है। बहुरि तिस शरीरहीविषै आकारादिकका विशेष होना अर वर्णादिकका विशेष होना अर स्थूलसूक्ष्मत्वादिकका होना इत्यादि कार्य निपजै है सो ए शरीररूप परणए

परमाणु ऐसे परिणमै हैं। बहुरि श्वासोच्छ्वास वा स्वर निपजै है सो ए भी पुद्‌गलके पिण्ड हैं अर शरीरस्यों एकबंधानरूप है। इन विषै भी आत्माके प्रदेश व्याप्त हैं। तहां श्वासोच्छ्वास तो पवन है सो जैसे आहारको ग्रहै नीहारको निकासै तबही जीवनो होय तैसे बाह्यपवनको ग्रहै अर अभ्यन्तर पवनको निकासै तब ही जीवितव्य रहै। तातैं **श्वासोच्छ्वास जीवितव्यका कारण है**। इस शरीरविषै जैसे हाड़-माँसादिक हैं तैसे ही पवन जानना। बहुरि जैसे हस्तादिकस्यों कार्य करिए तैसे ही पवनतैं कार्य करिए है। मुखमें ग्रास धर्‍या ताकों पवनतैं निगलिए है, मलादिक पवनतैं ही बाहर काढिए है, तैसे ही अन्य जानना। बहुरि नाड़ी वा वायुरोग वा वायगोला इत्यादि ए पवनरूप शरीरके अंग जानने। बहुरि स्वर है सो शब्द है। सो जैसे वीणाकी तांतको हलाए भाषारूप होने योग्य पुद्‌गलस्कंध हैं, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमै है; तैसे तालवा होठ इत्यादि अंगनिको हलाए भाषापर्याप्तिविषै ग्रहै पुद्‌गलस्कन्ध हैं, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमै हैं। बहुरि शुभ अशुभ गमनादिक हो है। इहाँ ऐसा जानना, जैसे दोयपुरुषनिकै इकदंडी बेड़ी है तहाँ एक पुरुष गमनादिक किया चाहै अर दूसरा भी गमनादिक करै तो गमनादिक होय सकै, दोऊनिविषै एक बैठि रहे तो गमनादि होय सकै नाहीं, अर दोऊनिविषै एक बलवान होय तो दूसरे को भी घसीट ले जाय तैसे आत्माकै अर शरीरादिकरूप पुद्‌गलकै एक-क्षेत्रावगाहरूप बंधान है। तहाँ आत्मा हलनचलनादि किया चाहै अर पुद्‌गल तिस शक्तिकरि रहित हुआ हलन चलन न करै वा पुद्‌गलविषै शक्ति पाइए है अर आत्माको इच्छा न होय तो हलनचलनादि न होय सकै। बहुरि इन विषै **पुद्‌गल बलवान होय हालै चालै तो ताकी साथ बिना इच्छा भी आत्मा हालै चालै**। ऐसे हलन-चलनादि क्रिया हो है।

बहुरि याका अपजस आदि बाह्य निमित्त बनै है। ऐसे ए कार्य निपजै हैं, तिनकरि मोहके अनुसार आत्मा सुखी दुःखी भी हो है। नामकर्मके उदयतैं स्वयमेव ऐसे नानाप्रकार रचना हो है और कोई करनहारा नाहीं है। बहुरि तीर्थकरादि प्रकृति इहाँ है ही नाहीं। **बहुरि गोत्रकर्मकरि ऊँचा नीचा कुलविषै उपजना हो है** तहाँ अपना अधिकहीनपना प्राप्त हो है। मोहके उदयकरि आत्मा सुखी दुःखी भी हो है। ऐसे अघातिकर्मनिका निमित्ततैं अवस्था हो है।

या प्रकार इस अनादि संसारविषै घाति अघातिकर्मनिका उदयके अनुसार आत्माकै अवस्था हो है। सो हे भव्य! अपने अन्तरंगविषै विचारकरि देख, ऐसे ही है कि नाहीं? सो ऐसा विचार किये ऐसे ही प्रतिभासै है बहुरि जो ऐसे है तो **तू यह मान कि 'मेरे अनादि संसार रोग पाइए है, ताके नाशका मोको उपाय करना' इस विचारतैं तेरा कल्याण होगा।**

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसारअवस्था का निरूपक द्वितीय अधिकार सम्पूर्ण भया ।।२।।

ॐ

卐 तीसरा अधिकार 卐

संसार-अवस्था का स्वरूप-निर्देश

❀ दोहा ❀

सो निजभाव सदा सुखद, अपनो करौ प्रकाश ।
जो बहुविधि भवदुःखनिको, करि है सत्तानाश ।।१।।

अब इस संसार अवस्थाविषै नाना प्रकार दुःख हैं तिनका वर्णन करिए है-जातैं जो संसार-विषै भी सुख होय तो संसारतैं मुक्त होने का उपाय काहेको करिए। इस संसारविषै अनेक दुःख हैं, तिसहीतैं संसारतैं मुक्त होने का उपाय कीजिए है। जैसे वैद्य है सो रोग का निदान अर ताकी अवस्थाका वर्णनकरि रोगी को रोगका निश्चय कराय पीछे तिसका इलाज करनेकी रुचि करावै है तैसे इहाँ संसारका निदान वा ताकी अवस्थाका वर्णनकरि संसारीको संसार-रोगका निश्चय कराय अब तिनका उपाय करनेकी रुचि कराइए है। जैसे रोगी रोगतैं दुःखी होय रह्या है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाहीं, साँचा उपाय जानै नाहीं अर दुःख भी सह्या जाय नाहीं। तब आपको भासै सो ही उपाय करै तातैं दुःख दूरि होय नाहीं। तब तड़फि तड़फि परवश हुवा तिन दुःखनिको सहै है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाहीं। याको वैद्य दुःखका मूलकारण बतावै, दुःखका स्वरूप बतावै, या के किए उपायनिकूं झूठे दिखावै तब सांचे उपाय करने की रुचि होय। तैसेही यह संसारी संसारतैं दुःखी होय रह्या है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाहीं अर साँचा उपाय जानै नाहीं अर दुःख भी सह्या जाय नाहीं। तब आपको भासै सो ही उपाय करै तातैं दुःख दूर होय नाहीं। तब तड़फि-तड़फि परवश हुवा तिन दुःखनिको सहै है।

दुःखों का मूल कारण

याकों इहाँ दुःखका मूलकारण बताइए है, अर दुःखका स्वरूप बताइए है अर तिन उपायनिकूं झूठे दिखाइए तो साँचे उपाय करने की रुचि होय तातैं यह वर्णन इहाँ करिये है। तहाँ सर्व दुःखनि का मूलकारण मिथ्यादर्शन, अज्ञान अर असंयम है। जो दर्शनमोहके उदयतैं भया अतत्त्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन है ताकरि वस्तुस्वरूपकी यथार्थ प्रतीति न होय सकै है, अन्यथा प्रतीति हो है। बहुरि तिस मिथ्यादर्शनहीके निमित्ततैं क्षयोपशमरूपज्ञान है सो अज्ञान होय रह्या है। ताकरि यथार्थ वस्तुस्वरूपका जानना न हो है, अन्यथा जानना हो है। बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं भया कषायभाव ताका नाम असंयम है ताकरि जैसे वस्तुका स्वरूप है

तैसे नाहीं प्रवर्तै है, अन्यथा प्रवृत्ति हो है। ऐसे ये मिथ्यादर्शनादिक हैं तेई सर्व दुःखनि के मूल कारण हैं। कैसे? सो दिखाइये है-

मिथ्यात्व का प्रभाव

मिथ्यादर्शनादिककरि जीवकै स्व-पर-विवेक नाहीं होइ सकै है, एक आप आत्मा अर अनन्त पुद्गलपरमाणुमय शरीर इनका संयोगरूप मनुष्यादिपर्याय निपजै है तिस पर्यायहीको आपो मानै है। बहुरि आत्माका ज्ञानदर्शनादि स्वभाव है ताकरि किंचित् जानना देखना हो है। अर कर्मउपाधितैं भए क्रोधादिक भाव तिनरूप परिणाम पाइए है। बहुरि शरीरका स्पर्श रस गन्ध वर्ण स्वभाव है सो प्रगट है अर स्थूल कृशादिक होना वा स्पर्शादिकका पलटना इत्यादि अनेक अवस्था हो है। इन सबनिको अपना स्वरूप जानै है। तहाँ ज्ञानदर्शनकी प्रवृत्ति इन्द्रिय मनके द्वारे हो है तातैं यहु मानै है कि ए त्वचा जीभ नासिका नेत्र कान मन ये मेरे अंग हैं। इनकरि मैं देखूँ जानूँ हूँ, ऐसी मानिता तैं इन्द्रियनिविषै प्रीति पाइए है।

मोहजनित विषयाभिलाषा

बहुरि मोहके आवेशतैं तिन इन्द्रियनिके द्वारा विषय ग्रहण करनेकी इच्छा हो है। बहुरि तिनविषयनिका ग्रहण भए तिस इच्छा के मिटनेतैं निराकुल हो है, तब आनन्द मानै है। जैसे कूकरा हाड़ चाबै ताकरि अपना लोही निकसै ताका स्वाद लेय ऐसा मानै, यहु हाड़निका स्वाद है। तैसे यहु जीव विषयनिको जानै ताकरि अपना ज्ञान प्रवर्तै, ताका स्वाद लेय ऐसे मानै, यहु विषयका स्वाद है सो विषयमें तो स्वाद है नाहीं। आप ही इच्छा करी थी ताको आप ही जानि आप ही आनन्द मान्या परन्तु मैं अनादि अनंतज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ ऐसा निःकेवलज्ञानका तो अनुभव है नाहीं। बहुरि मैं नृत्य देख्या, राग सुन्या, फूल सूंघ्या, पदार्थ स्पर्श्या, स्वाद जान्या तथा मोकौं यहु जानना, इस प्रकार ज्ञेयमिश्रित ज्ञानका अनुभव है ताकरि विषयनिकरि ही प्रधानता भासै है। ऐसे इस जीव के मोहके निमित्ततैं विषयनिकी इच्छा पाइए है।

शक्तिहीनता से इच्छानुसार विषय न भोग सकने से दुःख

सो इच्छा तो त्रिकालवर्ती सर्वविषयनिके ग्रहण करनेकी है। मैं सर्वकों स्पर्शूं, सर्वकूं स्वादूँ, सर्वकूं सूंघूँ, सर्वको देखूं, सर्वको सुनूं, सर्वको जानूं, सो इच्छा तो इतनी है अर शक्ति इतनी ही है जो इन्द्रियनिके सम्मुख भया वर्तमान स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द तिनविषै काहूकू किंचिन्मात्र ग्रहै वा स्मरणादिकतैं मनकरि किछु जानै सो भी बाह्य अनेक कारन मिले सिद्धि होय। तातैं **इच्छा कबहूँ पूर्ण होय नाहीं। ऐसी इच्छा तो केवलज्ञान भए सम्पूर्ण होय।** क्षयोपशमरूप इन्द्रियकरि तो इच्छा पूर्ण होय नाहीं तातैं मोह के निमित्ततैं इन्द्रियनिकै अपने-अपने विषय-ग्रहणकी निरन्तर इच्छा होवो ही करै ताकरि आकुलित हुवा दुःखी हो रह्या है ऐसा दुःखी होय रह्या है जो एक कोई विषयका ग्रहणके अर्थि अपना मरनको भी नाहीं गिनै है। जैसे हाथीकै कपटकी हथनीका शरीर स्पर्शनेकी अर मच्छकै बड़सीकै लाग्या मांस स्वादनेकी अर भ्रमरकै कमलसुगन्ध सूंघनेकी अर पतंग कै दीपकका वर्ण देखनेकी अर हिरणकै राग सुनने की इच्छा ऐसी हो है जो तत्काल मरना भासै तो भी मरनको गिनै नाहीं, विषयनिका ग्रहण करै, जातैं मरण होनेतैं इन्द्रियनिकरि

विषयसेवन की पीड़ा अधिक भासै है। इन इन्द्रियनिकी पीड़ाकरि सर्व जीव पीड़ितरूप निर्विचार होय जैसे कोऊ दुःखी पर्वततैं गिर पड़ै तैसे विषयनिविषै झंपापात ले हैं। नाना कष्टकरि धनको उपजावै ताको विषयनिके अर्थि खोवै। बहुरि विषयनिके अर्थि जहाँ मरन होता जानै तहां भी जाय, नरकादिकको कारन जे हिंसादिक कार्य तिनको करै वा क्रोधादि कषायनिको उपजावै, सो करै कहा इन्द्रियनिकी पीड़ा सही न जाय तातैं अन्य विचार किछू आवता नाहीं। इस पीड़ाहीकरि पीड़ित भए इन्द्रादिक हैं ते भी विषयनिविषै अति आसक्त होय रहे हैं। जैसे खाज रोगकरि पीडित हुवा पुरुष आसक्त होय खुजावै है, पीड़ा न होय तो काहेको खुजावै; तैसे इन्द्रिय रोगकरि पीड़ित भए इन्द्रादिक आसक्त होय विषय सेवन करै हैं, पीड़ा न होय तो काहेको विषय सेवन करै? ऐसे ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमतैं भया इन्द्रियादिजनित ज्ञान सो मिथ्यादर्शनादिकके निमित्ततैं इच्छासहित होय दुःखका कारण भया है।

ज्ञानदर्शनावरण के उदय से उत्पन्न दुःख और उसकी निवृत्ति के उपाय का मिथ्यापना

अब इस दुःख दूर होनेका उपाय यह जीव कहा करै है सो कहिए है- इन्द्रियनिकरि विषयनिका ग्रहण भए मेरी इच्छा पूरण होय ऐसा जानि प्रथम तो नाना प्रकार भोजनादिकनिकरि इन्द्रियनिको प्रबल करै है अर ऐसे ही जानै है जो इन्द्रिय प्रबल रहे मेरे विषय-ग्रहणकी शक्ति विशेष हो है। बहुरि तहाँ अनेक बाह्यकारण चाहिए हैं तिनका निमित्त मिलावै है। बहुरि इन्द्रिय हैं ते विषयको सन्मुख भए ग्रहै तातैं अनेक बाह्य उपाय करि विषयनिका अर इन्द्रियनिका संयोग मिलावै है। नाना प्रकार वस्त्रादिकका वा भोजनादिकका वा पुष्पादिकका वा मन्दिर आभूषणादिकका वा गायन वादित्रादिकका संयोग मिलावनेके अर्थि बहुत ही खेदखिन्न हो है। बहुरि इन इन्द्रियनिके सम्मुख विषय रहै तावत् तिस विषयका किंचित् स्पष्ट जानपना रहै। पीछे मन द्वारे स्मरणमात्र रह जाय। काल व्यतीत होतैं स्मरण भी मन्द होता जाय तातैं तिन विषयनिकों अपने आधीन राखनेका उपाय करै अर शीघ्र-शीघ्र तिनका ग्रहण किया करै। बहुरि इन्द्रियनिकै तो एक कालविषै एक विषयही का ग्रहण होय अर यह बहुत ग्रहण किया चाहै तातैं आखतां* होय शीघ्र-शीघ्र एक विषयको छोड़ि औरको ग्रहै। बहुरि वाको छोड़ि औरको ग्रहै, ऐसे हापटा मारै है। बहुरि जो उपाय याको भासै है सो करै है सो यह उपाय झूठा है। जातैं प्रथम तो इन सबनिका ऐसे ही होना अपने आधीन नाहीं, महाकठिन है। बहुरि कदाचित् उदय अनुसार ऐसे ही विधि मिलै तो इन्द्रियनिको प्रबल किए किछू विषय-ग्रहणकी शक्ति बधै नाहीं। यह शक्ति तो ज्ञानदर्शन बधे** बधै +। सो यह कर्मका क्षयोपशमके आधीन है। किसीका शरीर पुष्ट है ताके ऐसी शक्ति घाटि देखिए है। काहूका शरीर दुर्बल है ताके अधिक देखिए है। तातैं भोजनादिककरि इन्द्रियपुष्ट किए किछू सिद्धि है नाहीं। कषायादि घटनेतैं कर्मका क्षयोपशम भए ज्ञानदर्शन बधै तब विषयग्रहणकी शक्ति बधै है। बहुरि विषयनिका संयोग मिलावै सो बहुत काल ताईं रहता नाहीं अथवा सर्व विषयनि का संयोग मिलता ही नाहीं। तातैं यह आकुलता रहिबो ही करै। बहुरि

* उतावला, ** बढ़ने पर, + बढ़ै।

तिन विषयनिको अपने आधीन राखि शीघ्र-शीघ्र ग्रहण करै सो वे आधीन रहते नाहीं। वे तो जुदे द्रव्य अपने आधीन परिणमै हैं वा कर्मोदय के आधीन हैं। सो ऐसा कर्मका बन्ध यथायोग्य शुभ भाव भए होय। फिर पीछे उदय आवै सो प्रत्यक्ष देखिए है। अनेक उपाय करते भी कर्मका निमित्त बिना सामग्री मिलै नाहीं। बहुरि एक विषय को छोड़ि अन्य का ग्रहणकों ऐसे हापटा मारै है सो कहा सिद्धि हो है। जैसे मणकी भूख वाले को कण मिल्या तो भूख कहा मिटै? तैसे सर्व का ग्रहण की जाकै इच्छा ताकै एक विषयका ग्रहण भए इच्छा कैसे मिटै? इच्छा मिटे बिना सुख होता नाहीं। तातैं यह उपाय झूठा है।

कोऊ पूछै कि इस उपायतैं केई जीव सुखी होते देखिए हैं, सर्वथा झूठ कैसे कहो हो?

ताका समाधान-सुखी तो न हो है, भ्रमतैं सुख मानै है। जो सुखी भया तो अन्य विषयनि की इच्छा कैसे रही। जैसे रोग मिटे अन्य औषध काहेको चाहै, तैसे दुःख मिटे अन्य विषयको काहेको चाहै। तातैं विषयका ग्रहणकरि इच्छा थंभि जाय तो हम सुख मानैं। सो तो यावत् जो विषय ग्रहण न होय तावत् काल तो तिसकी इच्छा रहै अर जिस समय वाका ग्रहण भया तिसही समय अन्य विषय ग्रहण की इच्छा होती देखिए है तो यह सुख मानना कैसे है। जैसे कोऊ महा क्षुधावान रंक ताको अन्नका एक कण मिल्या ताका भक्षण करि चैन मानै, तैसे यह महातृष्णावान याकों एक विषयका निमित्त मिल्या ताका ग्रहणकरि सुख मानै है। परमार्थतैं सुख है नाहीं।

कोऊ कहै जैसे कण-कणकरि अपनी भूख मेटै तैसे एक-एक विषयका ग्रहणकरि अपनी इच्छा पूरण करै तो दोष कहा?

ताका समाधान-जो कण भेले होय तो ऐसे ही मानै। परन्तु जब दूसरा कण मिलै तब तिस कण का निर्गमन हो जाय तो कैसे भूख मिटै? तैसे ही जानने विषै विषयनिका ग्रहण भेले होता जाय तो इच्छा पूरन होय जाय परन्तु जब दूसरा विषय ग्रहण करै तब पूर्व विषय ग्रहण किया था ताका जानना रहै नाहीं तो कैसे इच्छा पूरण होय? इच्छा पूरन भये बिना आकुलता मिटे नाहीं। आकुलता मिटे बिना सुख कैसे कह्या जाय। बहुरि एक विषयका ग्रहण भी मिथ्यादर्शनादिक का सद्भाव पूर्वक करै है तातैं आगामी अनेक दुःखका कारन कर्म बंधै है। जातैं यह वर्त्तमानविषै सुख नाहीं, आगामी सुखका कारन नाहीं, तातैं दुःख ही है। सोई प्रवचनसार विषै कह्या है-

सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं ।
जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव बह्याधा* ।।

याका अर्थ-जो इन्द्रियनिकरि पाया सुख सो पराधीन है, बाधा सहित है, विनाशीक है, बँधका कारण है, विषम है सो ऐसा सुख तैसा दुःख ही है, ऐसे इस संसारीकरि किया उपाय झूठा जानना। तो **सांचा उपाय कहा?**

---

* प्रवचनसार १/७६ में 'तहा' पाठ दिया है।

दुःखनिवृत्तिका सच्चा उपाय

उत्तरः जब इच्छा तो दूरि होय अर सर्व विषयनिका युगपत् ग्रहण रह्या करै तब यह दुःख मिटै। सो इच्छा तो मोह गए मिटै और सबका युगपत् ग्रहण केवलज्ञान भए होय। सो इनका उपाय सम्यग्दर्शनादिक है, सोई साँचा उपाय जानना। ऐसे तो मोहके निमित्त तैं ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम भी दुःखदायक है, ताका वर्णन किया।

इहां कोऊ कहै-ज्ञानावरण दर्शनावरण का उदयतैं जानना न भया ताकूं दुःख का कारण कहो, क्षयोपशमको काहेको कहो हो?

ताका समाधान-जो जानना न होना दुःखका कारण होय तो पुद्गलकै भी दुःख ठहरे। तातैं दुःखका मूलकारण तो इच्छा है सो इच्छा क्षयोपशमहीतैं हो है, तातैं क्षयोपशमको दुःख का कारण कह्या है, परमार्थतैं क्षयोपशम भी दुःखका कारण नाहीं। **जो मोहतैं विषयग्रहणकी इच्छा है सोई दुःखका कारण जानना।** बहुरि मोहका उदय है सो दुःखरूप है ही। कैसे? सो कहिए है-

दर्शनमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति के उपाय का झूठापना

प्रथम तो दर्शनमोहके उदयतैं मिथ्यादर्शन हो है ताकरि जैसे याकै श्रद्धान है तैसे तो पदार्थ है नाहीं, जैसे पदार्थ है तैसे यह मानै नाहीं, तातैं याकै आकुलता ही रहै। जैसे बाउलाको काहूने वस्त्र पहराया, वह बावला तिस वस्त्रको अपना अंग जानि आपकूं अर शरीरको वस्त्र को एक मानै। वह वस्त्र पहरावनेवालेके आधीन है सो वह कबहू फारै, कबहू जोरै, कबहू खोसै, कबहू नवा पहरावै इत्यादि चरित्र करे। वह बाउला तिसको अपने आधीन मानै, वाकी पराधीन क्रिया होय तातैं महा खेदखिन्न होय। तैसे इस जीवको कर्मोदयने शरीर सम्बन्ध कराया, यहु जीव तिस शरीरको अपना अंग जानि आपको अर शरीर को एक मानै। वह शरीर कर्मके आधीन कबहू कृश होइ कबहू स्थूल होय, कबहू नष्ट होय, कबहू नवीन निपजै इत्यादि चरित्र होय। यह जीव तिसको अपने आधीन मानै, वाकी पराधीन क्रिया होय तातैं महाखेदखिन्न हो है। बहुरि जैसे जहां बाउला तिष्ठै था तहाँ मनुष्य घोटक धनादिक कहींतै आन उतरे, वह बाउला तिनको अपने जानै, वे तो उनहीके आधीन, कोऊ आवै, कोऊ जावै, कोऊ अनेक अवस्थारूप परिणमै। यह बाउला तिनको अपने आधीन मानै, उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय। तैसे यह जीव जहाँ पर्याय धरे तहाँ स्वयमेव पुत्र घोटक धनादिक कहींतैं आन प्राप्त भए, यह जीव तिनको अपने जानै सो वे तो उनहीके आधीन, कोऊ आवै, कोऊ जावै, कोऊ अनेक अवस्थारूप परिणमै। यह जीव तिनको अपने आधीन मानै, उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय।

इहां कोऊ कहै-काहूकाल विषै शरीरकी वा पुत्रादिककी इस जीव के आधीन भी तो क्रिया होती देखिए है तब तो सुखी हो है।

ताका समाधान-शरीरादिककी, भवितव्यकी अर जीवकी इच्छा की विधि मिले कोई एक प्रकार जैसे वह चाहे तैसे परिणमै तातैं काहू कालविषै वाहीका विचार होतैं सुखकी सी आभासा होय परन्तु सर्व ही तो

सर्व प्रकार करि यह चाहै तैसे न परिणमै। तातैं अभिप्रायविषै तो अनेक आकुलता सदाकाल रहयो ही करै। बहुरि कोई कालविषै कोई प्रकार इच्छा अनुसार परिणमता देखिकरि यह जीव शरीर पुत्रादिक विषै अहंकार ममकार करै है। सो इस बुद्धिकरि तिनके उपजावनेकी वा बधावनेकी वा रक्षा करनेकी चिंताकरि निरन्तर व्याकुल रहै है। नाना प्रकार कष्ट सहकरि भी तिनका भला चाहै है। बहुरि जो विषयनि की इच्छा हो है, कषाय हो है, बाह्य साम्रगीविषै इष्ट अनिष्टपनो मानै है, उपाय अन्यथा करै है, साँचा उपायको न श्रद्धहै है, अन्यथा कल्पना करै है सो इन सबनिका मूलकारण एक मिथ्यादर्शन है। याका नाश भए सबनिका नाश होइ जाय तातैं सब दुःखनिका मूल यह मिथ्यादर्शन है। बहुरि इस मिथ्यादर्शनके नाशका उपाय भी नाहीं करै है। अन्यथा श्रद्धानको सत्य श्रद्धान मानै, उपाय काहेको करै। बहुरि संज्ञी पंचेन्द्रिय कदाचित् तत्त्व निश्चय करनेका उपाय विचारै तहां अभाग्यतैं कुदेव कुगुरु कुशास्त्रका निमित्त बनै तो अतत्त्व श्रद्धान पुष्ट होइ जाय; यह तो जानै कि इनतैं मेरा भला होगा, वे ऐसा उपाय करै जाकरि यह अचेत होय जाय। वस्तु स्वरूपका विचार करनेका उद्यमी भया था सो विपरीत विचारविषै दृढ़ होय जाय। तब विषयकषाय की वासना बधनेतैं अधिक दुःखी होइ। बहुरि **कदाचित् सुदेव सुगुरु सुशास्त्रका भी निमित्त बनि जाय तो तहां तिनका निश्चय उपदेशको तो श्रद्धै नाहीं, व्यवहार श्रद्धानकरि अतत्त्वश्रद्धानी ही रहै**। तहां मंद कषाय होय वा विषय इच्छा घटै तो थोरा दुःखी होय, पीछे बहुरि जैसाका तैसा होइ जाय। तातैं यह संसारी उपाय करै सो भी झूठा ही होय। बहुरि इस संसारीकै एक यह उपाय है जो आपके जैसा श्रद्धान है तैसे पदार्थनिको परिणमाया चाहै सो वे परिणमै तो याका सांचा श्रद्धान होय जाय परन्तु अनादिनिधन वस्तु जुदी-जुदी अपनी मर्यादा लिये परिणमै है, कोऊ कोऊके आधीन नाहीं। कोऊ किसी का परिणमाया परिणमै नाहीं तिनको परिणमाया चाहै सो उपाय नाहीं। यह तो मिथ्यादर्शन ही है। तो सांचा उपाय कहा है? जैसे पदार्थनिका स्वरूप है तैसे श्रद्धान होइ तो सर्व दुःख दूरि हो जाय। जैसे कोऊ मोहित होय मुरदाको जीवता मानै वा जिवाया चाहै तो आप ही दुःखी हो है। बहुरि वाको मुरदा मानना अर यह जिवाया जीवेगा नाहीं ऐसा मानना सो ही तिस दुःख दूर होनेका उपाय है। तैसे **मिथ्यादृष्टि होइ पदार्थनिको अन्यथा मानै, अन्यथा परिणमाया चाहै तो आप ही दुःखी हो है। बहुरि उनको यथार्थ मानना अर ए परिणमाए अन्यथा परिणमैंगे नाहीं, ऐसा मानना सोही तिस दुःखके दूर होने का उपाय है**। भ्रमजनित दुःखका उपाय भ्रम दूर करना ही है। सो भ्रम दूर होनेतैं सम्यक्श्रद्धान होय सो ही सत्य उपाय जानना।

चारित्रमोह के उदय से दुःख की प्राप्ति तथा उसकी निवृत्ति के उपाय का झूठापना

बहुरि चारित्रमोह के उदयतैं क्रोधादि कषायरूप वा हास्यादि नोकषायरूप जीव के भाव हो हैं। तब यह जीव क्लेशवान होय दुःखी होता संता विह्वल होय नाना कुकार्यनिविषै प्रवर्तै है। सोई दिखाइए है-जब याकै क्रोध कषाय उपजै तब अन्यका बुरा करने की इच्छा होइ। बहुरि ताकै अर्थि अनेक उपाय विचारै। मरमच्छेद गालीप्रदानादिरूप वचन बोलै। अपने अंगनि करि वा शस्त्रपाषाणादिकरि घात करै। अनेक कष्ट सहनेकरि वा धनादि खर्चनेकरि वा मरणादिकरि अपना भी बुरा कर अन्यका बुरा करने का उद्यम करै। अथवा औरनि करि बुरा होता जानै तो औरनिकरि बुरा करावै। वाका स्वयमेव बुरा होय तो अनुमोदना

करै। वाका बुरा भए अपना किछु भी प्रयोजन सिद्ध न होय तो भी वाका बुरा करै। बहुरि क्रोध होतैं कोई पूज्य वा इष्ट भी बीचि आवै तो उनको भी बुरा कहै। मारने लगि जाय, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्यका बुरा न होई तो अपने अंतरंग विषै आप ही बहुत सन्तापवान होइ वा अपने ही अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था क्रोध होते हो है। बहुरि जब याकै मानकषाय उपजै तब औरनिको नीचा वा आपको ऊँचा दिखावनेकी इच्छा होइ। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, अन्यकी निंदा करै, आपकी प्रशंसा करै वा अनेक प्रकारकरि औरनिकी महिमा मिटावै, आपकी महिमा करै। महाकष्टकरि धनादिकका संग्रह किया ताको विवाहादि कार्यनिविषै खरचै वा देना करि भी खर्चे। मूए पीछे हमारा जस रहेगा ऐसा विचारि अपना मरन करिकै भी अपनी महिमा बधावै। जो अपना सम्मानादि न करै ताको भय आदिक दिखाय दुःख उपजाय अपना सम्मान करावै। बहुरि मान होतैं कोई पूज्य बड़े होहिं तिनका भी सम्मान न करै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्य नीचा, आप ऊँचा न दीसै तो अपने अंतरंग विषै आप बहुत सन्तापवान होय वा अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था मान होते होय है। बहुरि जब याकै मायाकषाय उपजै तब छलकरि कार्य सिद्ध करनेकी इच्छा होय। बहुरि ताकै अर्थि अनेक उपाय विचारै, नाना प्रकार कपटके वचन कहै, कपटरूप शरीर की अवस्था करै, बाह्य वस्तुनिको अन्यथा दिखावै। बहुरि जिन विषै अपना मरन जानै ऐसे भी छल करै; बहुरि कपट प्रगट भए अपना बहुत बुरा होई, मरनादिक होई तिनको भी न गिनै। बहुरि माया होतैं कोई पूज्य वा इष्टका भी सम्बन्ध बनै तो उनस्यों भी छल करै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि छलकरि कार्यसिद्ध न होइ तो आप बहुत संतापवान होय, अपने अंगनिका घात करै वा विषादिकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था माया होते हो है। बहुरि जब याकै लोभ कषाय उपजै तब इष्ट पदार्थका लाभ की इच्छा होय, ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै। याके साधनरूप वचन बोलै, शरीरकी अनेक चेष्टा करै, बहुत कष्ट सहै, सेवा करै, विदेशगमन करै, जाकरि मरन होता जानै सो भी कार्य करै। घना दुःख जिनविषै उपजै ऐसा कार्य प्रारम्भ करै। बहुरि लोभ होते पूज्य वा इष्टका भी कार्य होय तहां भी अपना प्रयोजन साधै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि जिस इष्ट वस्तुकी प्राप्ति भई है ताकी अनेक प्रकार रक्षा करै है; बहुरि इष्टवस्तुकी प्राप्ति न होय वा इष्टका वियोग होइ तो आप बहुत सन्तापवान होय अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय, ऐसी अवस्था लोभ होते हो है; ऐसे कषायनिकरि पीड़ित हुवा इन अवस्थानिविषै प्रवर्तै है।

बहुरि इन कषायनिकी साथ नोकषाय हो हैं। जहाँ जब हास्य कषाय होइ तब आप विकसित होइ प्रफुल्लित होइ सो यह ऐसा जानना जैसा वायवालेका हंसना, नाना रोगकरि आप पीड़ित है, कोई कल्पनाकरि हंसने लग जाय है। ऐसे ही यह जीव अनेक पीड़ासहित है, कोई झूठी कल्पनाकरि आपका सुहावता कार्य मानि हर्ष मानै है। परमार्थतैं दुःखी ही है। सुखी तो कषायरोग मिटे होगा। बहुरि जब रति उपजै है, तब इष्ट वस्तुविषै अति आसक्त हो है। जैसे बिल्ली मूसाकों पकरि आसक्त हो है, कोऊ मारै, तो भी न छोरै। सो इहाँ इष्टपना है। बहुरि वियोग होनेका अभिप्राय लिये आसक्तता हो है तातैं दुःख ही

है। बहुरि जब अरति उपजै तब अनिष्ट वस्तुका संयोग पाय महा व्याकुल हो है। अनिष्टका संयोग भया सो आपकूँ सुहावता नाहीं। सो यह पीड़ा सही न जाय तातैं ताका वियोग करने को तड़फड़ै है सो यह दुःख ही है, बहुरि जब शोक उपजै है तब इष्टका वियोग वा अनिष्टका संयोग होतैं अतिव्याकुल होइ सन्ताप उपजावै, रोवै, पुकारै, असावधान होइ जाय, अपना अंगघात करि मरि जाय, किछू सिद्धि नाहीं तो भी आपही महादुःखी हो है। बहुरि जब भय उपजै है तब काहू को इष्टवियोग, अनिष्टसंयोगका कारण जानि डरै, अति विह्वल होइ, भागै वा छिपै वा शिथिल होइ जाय, कष्ट होनेके ठिकाने प्राप्त होय वा मरि जाय सो यह दुःख रूपही है। बहुरि जुगुप्सा उपजै है तब अनिष्ट वस्तुसों घृणा करै। ताका तो संयोग भया, आप घृणाकरि भाग्या चाहै, खेदखिन्न होई कैं वाकूं दूर किया चाहै, महादुःखको पावै है। बहुरि तीनूं वेदनिकरि जब काम उपजै है तब पुरुषवेदकरि स्त्रीसहित रमनेकी अर स्त्रीवेदकरि पुरुषसहित रमने की अर नपुंसकवेदकरि दोऊनिस्यों रमनेकी इच्छा हो है। तिसकरि अति व्याकुल हो है, आताप उपजै है, निर्लज्ज हो है, धन खर्चै है। अपजसको न गिनै है। परम्परा दुःख होइ वा दंडादिक होय ताकों न गिनै है। कामपीड़ातैं बाउला हो है, मरि जाय है। सो रसग्रंथनिविषैं काम की दश दशा कही हैं। तहाँ बाउला होना मरण होना लिख्या है। वैद्यक शास्त्रनिमें ज्वर के भेदनिविषै कामज्वर मरण का कारण लिख्या है। प्रत्यक्ष कामकरि मरणपर्यन्त होते देखिए है। कामांधकै किछू विचार रहता नाहीं। पिता पुत्री वा मनुष्य तिर्यंचणी इत्यादितैं रमने लगि जाय है। ऐसी काम की पीड़ा सो महादुःखस्वरूप है। या प्रकार कषाय वा नोकषायनिकरि अवस्था हो है। इहाँ ऐसा विचार आवै है जो इन अवस्थानिविषै न प्रवर्तै तो क्रोधादिक पीड़ैं अर इनि अवस्थानिविषै प्रवर्तै तो मरण पर्यंत कष्ट होइ। तहाँ मरण पर्यंत कष्ट तो कबूल करिए है अर क्रोधादिककी पीड़ा सहनी कबूल न करिए है। तातैं यह निश्चय भया जो मरणादिकतैं भी कषायनिकी पीड़ा अधिक है। बहुरि जब याकै कषायका उदय होइ तब कषाय किए बिना रह्या जाता नाहीं। बाह्य कषायनिके कारण आय मिलैं तो उनके आश्रय कषाय करै, न मिले तोआप कारण बनावै। जैसे व्यापारादि कषायनिका कारण न होइ तो जुआ खेलना वा अन्य क्रोधादिकके कारण अनेक ख्याल खेलना वा दुष्ट कथा कहनी सुननी इत्यादिक कारण बनावै है। बहुरि काम क्रोधादि पीड़े शरीरविषै तिनरूप कार्य करने की शक्ति न होइ तो औषधि बनावै, अन्य अनेक उपाय करै। बहुरि कोई कारण बनै नाहीं तो अपने उपयोग विषै कषायनिको कारणभूत पदार्थनिका चिंतवनकरि आप ही कषायरूप परिणमै। ऐसे यह जीव कषायभावनिकरि पीड़ित हुआ महान् दुःखी हो है। बहुरि जिस प्रयोजनको लिए कषायभाव भया है तिस प्रयोजनकी सिद्धि होय तो यह मेरा दुःख दूरि होय अर मोकूं सुख होय, ऐसे विचारि तिस प्रयोजनकी सिद्धि होने के अर्थि अनेक उपाय करना सो तिस दुःख दूर होने का उपाय मानै है। सो इहाँ कषायभावनितैं जो दुःख हो है सो तो सांचा ही है, प्रत्यक्ष आप ही दुःखी हो है। बहुरि यह उपाय करै है सो झूठा है। काहेतैं सो कहिए है- क्रोध विषै तो अन्यका बुरा करना, मानविषै औरनिकूं नीचा करि आप ऊँचा होना, मायाविषै छलकरि कार्य सिद्धि करना, लोभविषै इष्टका पावना, हास्यविषै विकसित होने का कारण बन्या रहना, रतिविषै इष्टसंयोग का बन्या रहना, अरतिविषै अनिष्टका दूर होना, शोकविषै शोकका कारण मिटना, भयविषै भयका मिटना, जुगुप्साविषै

जुगुप्साका कारण दूर होना, पुरुषवेदविषै स्त्रीस्यों रमना, स्त्रीवेदविषै पुरुषस्यों रमना, नपुंसकवेदविषै दोऊनिस्यों रमना, ऐसे प्रयोजन पाइए है। सो इनकी सिद्धि होय तो कषाय उपशमनेतैं दुःख दूरि होय जाय, सुखी होय परन्तु इनकी सिद्धि इनके किए उपायनिके आधीन नाहीं, भवितव्य के आधीन है। जातैं अनेक उपाय करते देखियै है अर सिद्धि न हो है। बहुरि उपाय बनना भी अपने आधीन नाहीं, भवितव्यके आधीन है। जातैं अनेक उपाय करना विचारै और एक भी उपाय न होता देखिए है। बहुरि काकतालीय न्यायकरि भवितव्य ऐसा ही होय, जैसा आपका प्रयोजन होय तैसा ही उपाय होय अर तातैं कार्य-सिद्धि भी होय जाय तो तिस कार्य सम्बन्धी कोई कषायका उपशम होय परन्तु तहाँ थम्भाव होता नाहीं। यावत् कार्य सिद्ध न भया तावत् तो तिस कार्य सम्बन्धी कषाय थी, जिस समय कार्य सिद्ध भया तिस ही समय अन्य कार्य सम्बन्धी कषाय होइ जाय। एक समय मात्र भी निराकुल रहै नाहीं। जैसे कोऊ क्रोधकरि काहूका बुरा विचारै था, वाका बुरा होय चुक्या तब अन्य सों क्रोधकरि वाका बुरा चाहने लाग्या अथवा थोरी शक्ति थी तब छोटेनिका बुरा चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़ेनिका बुरा चाहने लाग्या। ऐसे ही मानमाया लोभादिक करि जो कार्य विचारै था सो सिद्ध होय चुक्या तब अन्य विषै मानादिक उपजाय तिस की सिद्धि किया चाहै। थोरी शक्ति थी तब छोटे कार्य की सिद्धि किया चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़े कार्य की सिद्धि करने का अभिलाषी भया। कषायनिविषै कार्यका प्रमाण होइ तो तिस कार्यकी सिद्धि भए सुखी होइ जाय सो प्रमाण है नाहीं, इच्छा बधती ही जाय। सोई **आत्मानुशासनविषै** कह्या है-

आशागर्तः प्रतिप्राणी यस्मिन्विश्वमणूपमम्।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता।।३६।।

याका अर्थ- आशारूपी खाड़ा प्राणी-प्राणी प्रति पाइए है। अनंतानंत जीव हैं तिन सबनिकै ही आशा पाइए है। बहुरि वह आशारूपी खाड़ा कैसा है, जिस एक ही खाड़े विषै समस्त लोक अणुसमान है। अर लोक एक ही सो अब इहां कौन-कौनके कितना-कितना बटवारे* आवै। तुम्हारे यह विषयनिकी इच्छा है सो वृथा ही है। **इच्छा पूर्ण तो होती ही नाहीं।** तातैं कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर न होय अथवा कोई कषाय मिटै तिसही समय अन्य कषाय होइ जाय। जैसे काहूको मारनेवाले बहुत होय, जब कोई वाकूं न मारै तब अन्य मारने लगि जांय। तैसे जीवकों दुःख द्यावनेवाले अनेक कषाय हैं, जब क्रोध न होय तब मानादिक होइ जाय, जब मान न होइ तब क्रोधादिक होइ जाय। ऐसे कषायका सद्भाव रह्या ही करै कोई एक समय भी कषाय रहित होय नाहीं। तातैं कोई कषायका कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर कैसे होइ? बहुरि याकै अभिप्राय तो सर्वकषायनिका सर्वप्रयोजन सिद्ध करनेका है सो होइ तो सुखी होइ। सो तो कदाचित् होई सकै नाहीं। तातैं अभिप्राय विषै शाश्वत दुःखी ही रहै है। तातैं कषायनिका प्रयोजनकों साधि दुःख दूरिकरि सुखी भया चाहै है, सो यहु उपाय झूंठा ही है तो साँचा उपाय कहा है? **सम्यग्दर्शनज्ञानतैं यथावत् श्रद्धान वा जानना होइ तब इष्ट अनिष्ट बुद्धि मिटै। बहुरि तिनहीके बलकरि चारित्रमोहका**

* बांटमें-हिस्से में।

अनुभाग हीन होय। ऐसे होते कषायनिका अभाव होइ तब तिनकी पीड़ा दूर होय। तब प्रयोजन भी किछू रहै नाहीं, निराकुल होने तैं महासुखी होइ। तातैं सम्यग्दर्शनादिक ही इस दुःख मेटनेका सांचा उपाय है।

अन्तराय से दुःख की प्राप्ति और उसकी निवृत्ति का सच्चा उपाय

बहुरि अन्तरायका उदयतैं जीवके मोहकरि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य शक्ति का उत्साह उपजै परन्तु होइ सकै नाहीं। तब परम आकुलता होइ सो यह दुःखरूप है ही, याका उपाय यह करै कि जो विघ्नके बाह्य कारण सूझै तिनके दूर करने का उद्यम करै सो यह उपाय झूठा है। उपाय किए भी अन्तरायका उदय होतैं विघ्न होता देखिए है। अन्तरायका क्षयोपशम भए उपाय बिना भी कार्यविषै विघ्न न हो है। तातैं विघ्नन का मूलकारण अंतराय है। बहुरि जैसे कूकराकै पुरुषकरि वाही हुई लाठी लागी, वह कूकरा लाठीस्यौं वृथा ही द्वेष करै है। तैसे जीवके अन्तरायकरि निमित्तभूत किया बाह्य चेतन अचेतन द्रव्यकरि विघ्न भया। यह जीव तिन बाह्य द्रव्यनिसौं वृथा द्वेष करै है। अन्यद्रव्य याकै विघ्न किया चाहै अर याकै न होइ। बहुरि अन्य द्रव्य विघ्न किया न चाहै अर याकै होइ। तातैं जानिए है, **अन्य द्रव्यका किछु वश नाहीं, जिनका वश नाहीं तिनिसौं काहेको लरिये**। तातैं यह उपाय झूंठा है। सो सांचा उपाय कहा है? मिथ्यादर्शनादिकतैं इच्छाकरि उत्साह उपजै था सो सम्यग्दर्शनादिककरि दूर होय अर सम्यग्दर्शनादिक ही करि अंतरायका अनुभाग घटै तब इच्छा तो मिटि जाय, शक्ति बधि जाय तब वह दुःख दूर होइ निराकुल सुख उपजै। तातैं सम्यग्दर्शनादिक ही सांचा उपाय है।

बहुरि वेदनीयके उदयतैं दुःख - सुखके कारण का संयोग हो है। तहाँ केई तो शरीर विषै ही अवस्था हो हैं। केई शरीर की अवस्था को निमित्तभूत बाह्य संयोग हो है, केई बाह्य ही वस्तूनिका संयोग हो है। तहाँ असाताके उदयकरि शरीर विषै तो क्षुधा, तृषा, उस्वास, पीड़ा, रोग इत्यादि हो हैं। बहुरि शरीर की अनिष्ट अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य अति शीत उष्ण पवन बंधनादिकका संयोग हो है। बहुरि बाह्य शत्रु कुपुत्रादिक वा कुवर्णादिक सहित स्कंधनिका संयोग हो है। सो मोहकरि इन विषै अनिष्ट बुद्धि हो है। जब इनका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आवै जाकरि परिणामनिमें महाव्याकुल होइ इनको दूर किया चाहै। यावत् ए दूर न होय तावत् दुःखी रहै सो इनके होतैं तो सर्व ही दुःख माने है; बहुरि साता के उदयकरि शरीरविषै आरोग्यवानपनो बलवानपनो इत्यादि हो है। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य खानपानादिक वा सुहावना पवनादिकका संयोग हो है। बहुरि बाह्य मित्र सुपुत्र स्त्री किंकर हस्ती घोटक धन-धान्य मन्दिर वस्त्रादिकका संयोग हो है सो मोहकरि इनविषै इष्टबुद्धि हो है। जब इनका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आवे जाकरि परिणामनिमें चैन मानै। इनकी रक्षा चाहै, यावत् रहै तावत् सुख मानै। सो यह सुख मानना ऐसा है जैसे कोऊ घने रोगनिकरि बहुत पीड़ित होय रह्या था ताकै कोई उपचारकरि कोई एक रोगकी कितेक काल किछू उपशांतता भई तब वह पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपको सुखी कहै, परमार्थतैं सुख है नाहीं। तैसे यहु जीव घने दुःखनिकरि बहुत पीड़ित होई रह्या था ताकै कोई प्रकार करि कोऊ एक दुःखकी कितेक काल किछु उपशांतता भई। तब यहु पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपको सुखी कहै है, परमार्थतैं सुख है नाहीं। बहुरि याको असाताका उदय होतैं जो होय ताकरि तो दुःख भासै

है तातैं ताके दूर करनेका उपाय करै है अर साताका उदय होतैं जो होय ताकरि सुख मानै है तातैं ताके होनेका उपाय करै है। सो यहु उपाय झूठा है। प्रथम तो याका उपाय याके आधीन नाहीं, वेदनीयकर्मका उदयके आधीन है। असाताके मेटनेके अर्थि साताकी प्राप्ति के अर्थितो सर्वहीकै यत्न रहै हैं परन्तु काहूके थोरा यत्न किए भी वा न किए भी सिद्धि होइ जाय, काहूके बहुत यत्न किए भी सिद्धि न होय, तातैं जानिए है याका उपाय याके आधीन नाहीं; बहुरि कदाचित् उपाय भी करै अर तैसा ही उदय आवै तो थोरे काल किंचित् काहू प्रकार की असाताका कारण मिटै अर साता का कारण होय, तहाँ भी मोहके सद्भावतैं तिनको भोगनेकी इच्छाकरि आकुलित होय। एक भोग्यवस्तुको भोगनेकी इच्छा होय, वह यावत् न मिलै तावत् तो वाकी इच्छाकरि आकुलित होय अर वह मिल्या अर उसही समय अन्यको भोगने की इच्छा होइ जाय, तब ताकरि आकुलित होइ। जैसे काहूको स्वाद लेनेकी इच्छा भई थी, वाका आस्वाद जिस समय भया तिसही समय अन्य वस्तुका स्वाद लेनेकी वा स्पर्शनादि करनेकी इच्छा उपजै है। अथवा एक ही वस्तुको पहिलै अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होइ, वह यावत् न मिलै तावत् वाकी आकुलता रहै अर वह भोग भया अर उसही समय अन्य प्रकार भोगने की इच्छा होय। जैसे स्त्रीको देख्या चाहै था, जिस समय अवलोकन भया उस ही समय रमने की इच्छा हो है। बहुरि ऐसे भोग भोगतैं ही तिनके अन्य उपाय करनेकी आकुलता हो है सो तिनको छोरि अन्य उपाय करने को लागै है। तहाँ अनेक प्रकार आकुलता हो है। देखो एक धनका उपाय करनेमें व्यापारादिक करते बहुरि वाकी रक्षा करने में सावधानी करते केती आकुलता हो है। बहुरि क्षुधा तृषा शीत उष्ण मल श्लेष्मादि असाताका उदय आया ही करै, ताका निराकरण करि सुख मानै सो काहेका सुख है, यह तो रोगका प्रतिकार है। यावत् क्षुधादिक रहै तावत् तिनको मिटावनेकी इच्छाकरि आकुलता होय, वह मिटै तब कोई अन्य इच्छा उपजै ताकी आकुलता होय, बहुरि क्षुधादिक होय तब उनकी आकुलता होइ आवै। ऐसा याके उपाय करतैं कदाचित् असाता मिटि साता होई तहाँ भी आकुलता रह्या ही करै, तातैं दुःख ही रहै है। बहुरि ऐसे भी रहना तो होता नाहीं, आपको उपाय करते-करते ही कोई असाताका उदय ऐसा आवै ताका किछु उपाय वनि सकै नाहीं अर ताकी पीड़ा बहुत होय, सही जाय नाहीं; तब ताकी आकुलताकरि विह्वल होइ जाय तहाँ महादुःखी होय। सो इस संसार में साताका उदय तो कोई पुण्यका उदयकरि काहूकै कदाचित् ही पाइए है, घने जीवनिकै बहुत काल असाताहीका उदय रहै है। तातैं उपाय करै सो झूठा है। अथवा बाह्य सामग्रीतैं सुख - दुःख मानिए है सो ही भ्रम है। सुख दुःख तो साता असाताका उदय होतैं मोहका निमित्ततैं हो है सो प्रत्यक्ष देखिये है।

विशेष-परम पूज्य धवल ग्रन्थराज (पुस्तक १५ पृ. ८०-८१) पर लिखा है कि सातावेदनीय के वेदक स्तोक हैं। उनसे असातावेदनीय के वेदक संख्यातगुणे हैं अर्थात् कुल संसारी जीवों के संख्यातवें भाग प्रमाण जीव ही सुखी मिलते हैं। यह सामान्य विवेचन है। गत्यनुसार विवेचन करने पर नरक में साता के वेदकों से असंख्यातगुणे, असाता के वेदक नित्य मिलते हैं। द्रव्य, क्षेत्र,काल, भाव का परिणमन इंद्रियों को सुख पहुँचाने के योग्य नहीं है, अतः वहाँ असाता के वेदक बहुसंख्यक हैं (ति.प. दूसरा अधिकार) परन्तु मनुष्य या त्रस तिर्यंच या देवों में असाता के वेदक स्तोक हैं। साता

के वेदक असाताके वेदकों से संख्यातगुणे हैं अर्थात् नरक गति को छोड़ कर शेष गतियों में असातावान जीवों की अपेक्षा सातावान (इन्द्रिय सुख से सुखी) जीव बहुत अधिक (संख्यातगुणे) हैं परन्तु एकेन्द्रियों में साता वेदकों से असातावेदक संख्यातगुणे हैं। सारतः एकेन्द्रियों तथा नारकियों में तो दुःखी अधिक व सुखी जीव कम हैं। परन्तु शेष त्रसों में दुःखी कम, सुखी अधिक हैं। यह अकाट्य सत्य है।

लक्ष धनका धनीकै सहस्र धनका व्यय भया तब वह तो दुःखी है अर शत धनका धनीके सहस्रधन भया तब वह सुख मानै है; बाह्यसामग्री तो वाकै यातैं निन्याणवै गुणी है। अथवा लक्ष धन का धनीकै अधिक धन की इच्छा है तो वह दुःखी है अर शत धनका धनीकै सन्तोष है तो यहु सुखी है। बहुरि समान वस्तु मिले कोऊ सुख मानै है, कोऊ दुःख मानै है। जैसे काहूको मोटा वस्त्रका मिलना दुःखकारी होइ, काहूको सुखकारी होइ; बहुरि शरीर विषै क्षुधा आदि पीड़ा वा बाह्य इष्टका वियोग अनिष्टका संयोग भए काहू कै बहुत दुःख होइ काहूकै थोरा होइ, काहूकै न होइ **तातैं सामग्री के आधीन सुख-दुःख नाहीं। साताअसाता का उदय होतैं मोहपरिणमन के निमित्ततैं ही सुख दुःख मानिए है।**

इहाँ **प्रश्न**-जो बाह्य सामग्रीकी तो तुम कहो हो तैसे ही है परन्तु शरीरविषै तो पीड़ा भए दुःखी होय ही होय अर पीड़ा न भए सुखी होय सो यह तो शरीरअवस्था ही के आधीन सुख - दुःख भासै है।

ताका **समाधान**-आत्माका जो ज्ञान इन्द्रियाधीन है अर इन्द्रिय शरीरका अंग है, सो यामें जो अवस्था बीतै ताका जाननेरूप ज्ञान परिणमै ताकी साथ ही मोहभाव होइ ताकरि शरीर अवस्थाकरि सुख-दुःख विशेष जानिए है। बहुरि पुत्र धनादिकस्यों अधिक मोह होय तो अपना शरीर का कष्ट सहै ताका थोरा दुःख मानै, उनको दुःख भए वा संयोग मिटे बहुत दुःख मानै। अर मुनि है सो शरीरको पीड़ा होते भी किछू दुःख मानते नाहीं। **तातैं सुख दुःख मानना तो मोहही के आधीन है। मोहके अर वेदनीयके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है तातैं साता असाताका उदयतैं सुख-दुःखका होना भासै है।** बहुरि मुख्यपने केतीक सामग्री साताके उदयतैं हो है, केतीक असाताके उदयतैं हो है ताकरि सामग्रीनिकरि सुख-दुःख भासै है। परन्तु निर्द्धार किए मोहहीतैं सुख-दुःख का मानना हो है, औरनिकरि सुख-दुःख होने का नियम नाहीं। केवलीकै साता असाताका उदय भी है अर सुख-दुःख को कारण सामग्री का भी संयोग है परन्तु मोहका अभावतैं किंचिन्मात्र भी सुख दुःख होता नाहीं, तातैं **सुख दुःख मोहजनित ही मानना।** तातैं तू सामग्री के दूर करने का वा होने का उपायकरि दुःख मेट्या चाहै, सुखी भया चाहै सो यहु उपाय झूठा है, तो साँचा उपाय कहा है?

सम्यग्दर्शनादिकतैं भ्रम दूर होइ तब सामग्रीतैं सुख-दुःख भासै नाहीं, अपने परिणामहीतैं भासै; बहुरि यथार्थ विचारका अभ्यासकरि अपने परिणाम जैसे सामग्री के निमित्ततैं सुखी दुःखी न होय तैसे साधन करै। बहुरि सम्यग्दर्शनादि भावनाहीतैं मोह मंद होइ जाय तब ऐसी दशा होइ जाय तो अनेक कारण मिले आपको सुख दुःख होइ नाहीं। जब एक शांतदशारूप निराकुल होइ सांचासुखको अनुभवै तब सर्व दुःख मिटे

सुखी होय, यहु सांचा उपाय है। बहुरि आयुकर्म के निमित्ततैं पर्याय का धारना सो जीवितव्य है, पर्याय छूटना सो मरण है। बहुरि यह जीव मिथ्यादर्शनादिकतैं पर्यायहीको आपो अनुभवै है, तातैं जीवितव्य रहे अपना अस्तित्व मानै है, मरन भए अपना अभाव होना मानै है। इसही कारणतैं सदा काल याके मरनका भय रहै है, तिस भयकरि सदा आकुलता रहै है। जिनको मरनका कारण जानै तिनसौं बहुत डरै। कदाचित् उनका संयोग बनै तो महाविह्वल होइ जाय। ऐसे महा दुःखी रहै है। ताका उपाय यहु करै है जो मरने के कारणनिको दूर राखै है वा उनसो आप भागै है। बहुरि औषधादिकका साधन करै है। गढ़ कोट आदिक बनावै है इत्यादि उपाय करै है। सो यहु उपाय झूठा है, जातैं आयु पूर्ण भए तो अनेक उपाय करै है, अनेक सहाई होइ तो भी मरन होइ ही होइ, एक समय मात्र भी न जीवै। अर यावत् आयु पूरी न होइ तावत् अनेक कारण मिलो, सर्वथा मरन न होइ। तातैं उपाय किए मरन मिटता नाहीं। बहुरि आयुकी स्थिति पूर्ण होय ही होय तातैं मरन भी होय ही होय, याका उपाय करना झूठा ही है **तो साँचा उपाय कहा है?**

सम्यग्दर्शनादिकतैं पर्यायविषै अहंबुद्धि छूटे, अनादिनिधन आप चैतन्यद्रव्य है तिसविषै अहंबुद्धि आवै। पर्याय को स्वांग समान जानै तब मरणका भय रहै नाहीं। बहुरि सम्यग्दर्शनादिक हीतैं सिद्ध पद पावै तब मरणका अभाव ही होय। तातैं **सम्यग्दर्शनादिक ही सांचा उपाय है।**

बहुरि नामकर्म के उदयतैं गति जाति शरीरादिक निपजे हैं तिनविषै पुण्य के उदयतैं जे हो है ते तो सुख के कारण हो हैं। पापके उदयतैं हो हैं ते दुःख के कारण हो हैं। सो इहां सुख मानना भ्रम है; बहुरि यहु दुःखके कारण मिटावने का, सुखके कारण होनेका उपाय करै है सो झूठा है। सांचा उपाय सम्यग्दर्शनादिक है। सो जैसे वेदनीयका कथन करते निरूपण किया तैसे इहां भी जानना। वेदनीय अर नाम के सुख दुःख का कारणपनाकी समानतातैं निरूपणकी समानता जाननी। बहुरि गोत्र कर्मके उदयतैं ऊँचा नीचा कुलविषै उपजै है। तहाँ ऊँचा कुलविषै उपजैं आपको ऊँचा मानै है अर नीचा कुलविषै उपजै आपको नीचा मानै है; सो कुल पलटनेका उपाय तो याको भासै नाहीं तातैं जैसा कुल पाया तिसही कुल विषै आपो मानै है। सो कुल अपेक्षा आपको ऊँचा नीचा मानना भ्रम है। ऊँचा कुलका कोई निंद्य कार्य करै तो वह नीचा होइ जाय अर नीचा कुलविषै कोई श्लाघ्य कार्य करै तो वह ऊँचा होइ जाय। लोभादिकतैं नीच कुलवालेकी उच्चकुलवाला सेवा करने लगि जाय। बहुरि कुल कितेक काल रहै? पर्याय छूटे कुलकी पलटनि होइ जाय। तातैं ऊँचा नीचा कुलकरि आपकूं ऊँचा-नीचा मानै। ऊँचाकुल वालेको नीचा होनेके भयका अर नीचाकुल वालेको पाए हुए नीचापने का दुःख ही है तो याका साँचा उपाय यहु ही है सो कहिए है। **सम्यग्दर्शनादिकतैं ऊँचा नीचा कुलविषै हर्षविषाद न मानै।** बहुरि तिनहीतैं जाकी बहुरि पलटनि न हो ऐसा सर्वतैं **ऊँचा सिद्धपद पावै, तब सब दुःख मिटै, सुखी होय (तातैं सम्यग्दर्शनादिक दुःख मेटने अर सुख करने का सांचा उपाय है*)** या प्रकार कर्मका उदय की अपेक्षा मिथ्यादर्शनादिकके निमित्ततैं संसारविषै दुःख ही दुःख पाइए है; ताका वर्णन किया। अब इसही दुःखको पर्याय अपेक्षाकरि वर्णन करिए है।

---

* यह पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है।

एकेन्द्रिय जीवों के दुःख

इस संसारविषै बहुत काल तो एकेन्द्रिय पर्यायही विषै बीतै है। तातैं अनादिहीतैं तो नित्यनिगोद विषै रहना, बहुरि तहाँतैं निकसना ऐसे जैसे भाड़भुनतैं चणाका उछटि जाना सो तहाँतैं निकसि अन्य पर्याय धरै तो त्रसविषै तो बहुत थोरेही काल रहै, एकेन्द्रीही विषै बहुत काल व्यतीत करै है। तहाँ इतरनिगोदविषै बहुत रहना होइ। अर कितेक काल पृथिवी अप तेज वायु प्रत्येक वनस्पतीविषै रहना होइ। नित्य निगोदतैं निकसे पीछे त्रसविषै तो रहने का उत्कृष्ट काल साधिक दो हजार सागर ही है[1] अर एकेन्द्रियविषै उत्कृष्ट रहनेका काल असंख्यात पुद्गल परावर्तन मात्र है अरु **पुद्गल परावर्तनका काल ऐसा है जाका अनन्तवां भागविषै भी अनन्ते सागर हो हैं**। तातैं इस संसारी के मुख्यपने एकेन्द्रिय पर्यायविषै ही काल व्यतीत हो है। तहाँ एकेन्द्रियके ज्ञानदर्शन की शक्ति तो किंचिन्मात्र ही रहै है। एक स्पर्शन इन्द्रियके निमित्ततैं भया मतिज्ञान अर ताकै निमित्ततैं भया श्रुतज्ञान अर स्पर्शनइन्द्रियजनित अचक्षुदर्शन जिनकरि शीत उष्णादिकको किंचित् जानै देखै है, ज्ञानावरण दर्शनावरणके तीव्र उदयकरि यातैं अधिक ज्ञानदर्शन न पाइए है अर विषयनिकी इच्छा पाइए है तातैं महादुःखी है। बहुरि दर्शनमोहके उदयतैं मिथ्यादर्शन हो है ताकरि पर्यायहीको आपो श्रद्धहै है, अन्यविचार करने की शक्ति ही नाहीं। बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं तीव्र क्रोधादि कषायरूप परिणमै है जातैं उनके केवली भगवानने कृष्ण नील कापोत ए तीन अशुभ लेश्याही कही है। सो ए तीव्र कषाय होते ही हो हैं सो कषाय तो बहुत अर शक्ति सर्व प्रकारकरि महाहीन तातैं बहुत दुःखी होय रहे हैं, किछू उपाय कर सकते नाहीं।

इहाँ **कोऊ कहै**-ज्ञान तो किंचिन्मात्रही रह्या है, वे कहा कषाय करै है?

ताका **समाधान**-जो ऐसा तो नियम है नाहीं जेता ज्ञान होय तेता ही कषाय होय। ज्ञान तो क्षयोपशम जेता होय तेता हो है। सो जैसे कोऊ आँधा बहरा पुरुषकै ज्ञान थोरा होते भी बहुत कषाय होते देखिए है तैसे एकेन्द्रिय के ज्ञान थोरा होते भी बहुत कषायका होना मानना है। बहुरि बाह्य कषाय प्रगट तब हो है जब कषायके अनुसार किछु उपाय करै। सो वे शक्तिहीन हैं तातैं उपाय करि सकते नाहीं। तातैं उनकी कषाय प्रगट नाहीं हो है। जैसे कोऊ पुरुष शक्तिहीन है ताके कोई कारणतैं तीव्र कषाय होय परन्तु किछु करि सकते नाहीं। तातैं वाका कषाय बाह्य प्रगट नाहीं हो है, यूं ही अति दुःखी हो है। तैसे एकेन्द्रिय जीव शक्तिहीन हैं, तिनकै कोई कारणतैं कषाय हो है परन्तु किछु कर सकै नाहीं, तातैं उनकी कषाय बाह्य प्रगट नाहीं हो है; वे आप ही दुःखी हो हैं। बहुरि ऐसा जानना, जहाँ कषाय बहुत होय अर शक्ति हीन होय तहाँ घना दुःखी हो है। बहुरि जैसे कषाय घटती जाय, शक्ति बधती जाय तैसे दुःख घटता हो है। सो एकेन्द्रियनिके कषाय बहुत अर शक्ति हीन तातैं एकेन्द्रिय जीव महादुःखी हैं। उनके दुःख वे ही भोगवै हैं, अर केवली जानै है। जैसे सन्निपातीका ज्ञान घट जाय अर बाह्य शक्ति के हीनपनेतैं अपना दुःख प्रगट भी न करि सकै परन्तु वह महादुःखी है तैसे एकेन्द्रियका ज्ञान तो थोरा है अर बाह्य शक्तिहीनपनातैं अपना

१. इसका अभिप्राय यह है कि त्रस जीवों में जीव अधिक से अधिक पूर्व कोटी पृथक्त्व अधिक २००० सागर तक रहता है। इससे अधिक त्रस काय में रहना सम्भव नहीं। (धवला ४-४०८)

दुःखको प्रगट भी न करि सकै है परन्तु महादुःखी है। बहुरि अन्तरायके तीव्र उदयकरि बहुत बाधा होता नाहीं तातैं भी दुःखी ही हो है। बहुरि अघातिकर्मनिविषै विशेषपने पापप्रकृतिका उदय है तहाँ असातावेदनीयका उदय होतैं तिसके निमित्ततैं महादुःखी हो है। बहुरि वनस्पती है सो पवनतैं टूटे है, शीत उष्णकरि सूकि जाय है, जल न मिलै सूकि जाय है, अगनिकरि बलै है, ताकों कोऊ छेदै है, भेदै है, मसलै है, खाय है, तोरै है इत्यादि अवस्था होहै। ऐसे ही यथासम्भव पृथ्वी आदिविषै अवस्था हो हैं। तिन अवस्थाको होते वे महादुःखी हो हैं। जैसे मनुष्यके शरीर विषै ऐसी अवस्था भए दुःख हो है तैसे ही उनके हो है। तातैं इनका जानपना स्पर्शन इन्द्रियतैं हो है सो वाकै स्पर्शनइन्द्रिय है ही, ताकरि उनको जानि मोहके वशतैं महाव्याकुल हो हैं परन्तु भागनेकी वा लरने की वा पुकारनेकी शक्ति नाहीं तातैं अज्ञानी लोक उनके दुःखको जानते नाहीं। बहुरि कदाचित् किंचित् साताका उदय होय सो वह बलवान होता नाहीं। बहुरि आयुकर्मतैं इन एकेंद्रिय जीवनिविषै जे अपर्याप्त हैं तिनके तो पर्यायकी स्थिति उश्वासके अठारहवें भाग मात्र ही है अर पर्याप्तनिकी अन्तर्मुहूर्त आदि कितेक वर्ष पर्यंत है। सो आयु थोरा तातैं जन्ममरण हुवाही करै, ताकरि दुखी है।

बहुरि **नामकर्मविषै तिर्यंच** गति आदि पापप्रकृतिनि का ही उदय विशेषपने पाइए है। कोई हीन पुण्य प्रकृतिका उदय होइ ताका बलवानपना नाहीं तातैं तिनकरिभी मोहके वशतैं दुःखी हो है।

बहुरि **गोत्रकर्मविषै नीचगोत्रही का उदय है तातैं** महंतता होय नाहीं तातैं भी दुःखी हो हैं ऐसे एकेन्द्रिय जीव महादुःखी हैं अर इस संसार विषै जैसे पाषाण आधारविषै तो बहुत काल रहै है, निराधार आकाशविषै तो कदाचित् किंचिन्मात्रकाल रहै तैसे जीव एकेन्द्रिय पर्यायविषै बहुत काल रहै है, अन्य पर्यायविषै तो कदाचित् किंचिन्मात्र काल रहै है। तातैं यहु जीव संसारविषै महादुःखी है।

दो इन्द्रियादिक जीवों के दुःख

बहुरि द्वीन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असंज्ञीपंचेन्द्रिय पर्यायनिको जीव धरै तहाँ भी एकेन्द्रियवत् दुःख जानना। विशेष इतना-इहाँ क्रमतैं एक एक इन्द्रियजनित ज्ञानदर्शनकी वा किछु शक्तिकी अधिकता भई है, बहुरि बोलने-चालने की शक्ति भई है। तहाँ भी जे अपर्याप्त हैं वा पर्याप्त भी हीन शक्ति के धारक छोटे जीव हैं, तिनकी शक्ति प्रगट होती नाहीं। बहुरि केई पर्याप्त बहुत शक्तिके धारक बड़े जीव हैं, तिनकी शक्ति प्रगट हो है। तातैं ते जीव विषयनिका उपाय करै हैं, दुःख दूर होने का उपाय करै हैं। क्रोधादिककरि काटना, मारना, लरना, छलकरना, अन्नादिका संग्रह करना, भागना इत्यादि कार्य करै है। दुःखकरि तड़फड़ाट करना, पुकारना इत्यादि क्रिया करै है। तातैं तिनका दुःख किछु प्रगट भी हो है। सो लट कीड़ी आदि जीवन के शीत उष्ण छेदन भेदनादिकतैं वा भूख तृषा आदितैं परम दुःख देखिए है। जो प्रत्यक्ष दीसै ताका विचार करि लेना। इहाँ विशेष कहा लिखै। ऐसे द्वीन्द्रियादिक जीव भी महादुःखी ही जानने।

नरकगति के दुःख

बहुरि संज्ञीपंचेन्द्रियनिविषैं नारकी जीव हैं ते तो सर्व प्रकार घने दुःखी हैं। ज्ञानादिकी शक्ति किछू है परन्तु विषयनिकी इच्छा बहुत अर इष्टविषयनिकी सामग्री किंचित् भी न मिलै तातैं तिस शक्ति के होने

करि भी घने दुःखी हैं, बहुरि क्रोधादि कषायका अति तीव्रपना पाइए है, तातैं उनके कृष्णादि अशुभलेश्या ही हैं। तहाँ क्रोध मानकरि परस्पर दुःख देनेका निरन्तर कार्य पाइए है। जो परस्पर मित्रता करै तो यह दुःख मिट जाय। अर अन्य को दुःख दिए किछू उनका कार्य भी होता नाहीं परन्तु क्रोध मानका अति तीव्रपना पाइए है ताकरि परस्पर दुःख देनेहीकी बुद्धि रहै। विक्रियाकरि अन्यको दुःखदायक शरीर के अंग बनावै वा शस्त्रादि बनावै तिनकरि अन्यको आप पीड़ै, अर आपको कोई और पीड़ै कदाचित् कषाय उपशांत होय नाहीं। बहुरि माया लोभ की भी अति तीव्रता है परन्तु कोई इष्ट सामग्री तहाँ दीखै नाहीं। तातैं तिन कषायनिका कार्य प्रगट करि सकते नाहीं तिनकरि अंतरंगविषै महादुःखी हैं। बहुरि कदाचित् किंचित् कोई प्रयोजन पाय तिनका भी कार्य हो है। बहुरि हास्य रति कषाय हैं परन्तु बाह्य निमित्त नाहीं, तातैं प्रगट होते नाहीं, कदाचित् किंचित् किसी कारणतैं हो हैं। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सानिके बाह्य कारण बनि रहै हैं, तातैं ए कषाय तीव्र प्रकट होय हैं। बहुरि वेदनिविषै नपुंसकवेद है सो इच्छा तो बहुत अर स्त्री पुरुषस्यों रमनेका निमित्त नाहीं, तातैं महापीड़ित हैं। ऐसे कषायनिकरि अति दुःखी हैं। बहुरि वेदनीय विषै असाताहीका उदय है ताकरि तहाँ अनेक वेदनाका निमित्त है। शरीर विषै कोढ़ कास श्वासादि अनेकरोग युगपत् पाइए है अर क्षुधातृषा ऐसी हैं, सर्वका भक्षण-पान किया चाहै है अर तहांकी माटीहीका भोजन मिलै है सो माटीभी ऐसी है जो इहां आवै तो ताका दुर्गंधतैं केई कोसनिके मनुष्य मरि जाय। अर शीत उष्ण तहां ऐसा है जो लक्ष योजन का लोहका गोला होइ सो भी तिनकरि भस्म होय जाय। कहीं शीत है, कहीं उष्ण है। बहुरि तहाँ पृथ्वी शस्त्रनितैं भी महातीक्ष्ण कंटकनि कर सहित है। बहुरि तिस पृथ्वीविषै वन हैं सो शस्त्र की धारा समान पत्रादि सहित हैं। नदी है तो ताका स्पर्श भए शरीर खंड-खंड होइ जाय ऐसे जल सहित है। पवन ऐसा प्रचण्ड है जाकरि शरीर दग्ध हुवा जाय है। बहुरि नारकी नारकीको अनेक प्रकार पीड़ै, घाणीमें पेलै; खंड खंड करै, हांडीमें रांधै, कोरडा मारै, तप्त लोहादिकका स्पर्श करावै इत्यादि वेदना उपजावै। तीसरी पृथ्वी पर्यंत असुरकुमारदेव जाय ते आप पीड़ा दे वा परस्पर लड़ावै। ऐसी वेदना होते भी शरीर छूटै नाहीं, पारावत् खंड-खंड होई जाय तो भी मिल जाय, ऐसी महापीड़ा है। बहुरि साताका निमित्त तो किछु है नाहीं। कोई अंश कदाचित् कोईकै अपनी माननतैं कोई कारण अपेक्षा साताका उदय हो है सो बलवान नाहीं। बहुरि आयु तहाँ बहुत, जघन्य दशहजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर। इतने काल ऐसे दुःख तहाँ सहने होय। बहुरि नामकर्मकी **सर्वपापप्रकृतिनि ही का उदय है,** एक भी पुण्यप्रकृतिका उदय नाहीं, तिन करि महादुःखी हैं।

विशेष-नरकगति में पंचेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, अगुरुलघु, त्रस बादर पर्याप्त, स्थिर, शुभ, निर्माण, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, प्रत्येक शरीर, परघात, उच्छ्‌वास नामकर्म की इन प्रशस्त प्रकृतियों का उदय भी नारकियों के होता है। **(गो.क. २९०-९१, धवल ७/३२-३३)**। इस प्रकार नारकी के उक्त पुण्य प्रकृतियों का भी उदय आता है।

बहुरि गोत्रविषै नीचगोत्रहीका उदय है ताकरि महंतता न होइ तातैं दुःखी हो हैं; ऐसे नरकगतिविषै महादुःख जानने।

तिर्यंच गतिके दुःख

बहुरि तिर्यंचगतिविषै बहुत लब्धि अपर्याप्त जीव हैं तिनके तो उश्वास के अठारहवें भाग मात्र आयु है। बहुरि केई पर्याप्त भी छोटे जीव हैं सो इनकी शक्ति प्रगट भासै नाहीं। तिनके दुःख एकेन्द्रियवत् जानना। ज्ञानादिकका विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि बड़े पर्याप्त जीव केई सम्मूर्छन हैं, केई गर्भज हैं। तिनविषै ज्ञानादिक प्रगट हो है सो विषयनिकी इच्छाकरि आकुलित हैं। बहुतको तो इष्टविषयकी प्राप्ति नाहीं है, काहूको कदाचित् किंचित् हो है। बहुरि मिथ्यात्व भावकरि अतत्त्व श्रद्धानी होय ही रहे हैं। बहुरि कषाय मुख्यपने तीव्र ही पाइए है। क्रोध मानकरि परस्पर लरै हैं भक्षण करै हैं, दुःखदेय हैं, माया लोभकरि छल करै हैं, वस्तुको चाहै हैं, हास्यादिककरि तिन कषायनिका कार्यनिविषै न प्रवर्त्तै हैं। बहुरि काहूकै कदाचित्‌मंदकषाय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै हो है तातैं मुख्यता नाहीं। बहुरि वेदनीयविषै मुख्य असाताका उदय है ताकरि रोग पीड़ा क्षुधा तृषा छेदन भेदन बहुत भारवहन शीत उष्ण अंगभंगादि अवस्था हो है ताकरि दुःखी होते प्रत्यक्ष देखिए है। तातैं बहुत न कह्या है। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिके हो है, मुख्यता नाहीं। बहुरि आयु अन्तर्मुहूर्त आदि कोटिवर्ष पर्यंत है। तहाँ घने जीव स्तोक आयुके धारक हो हैं। तातैं जन्म-मरणका दुःख पावै हैं। बहुरि भोगभूमियों की बड़ी आयु है अर उनकै साताकाभी उदय है सो वे जीव थोरे हैं। बहुरि नामकर्मकी मुख्यपने तो तिर्यंचगति आदि पापप्रकृतिनिकाही उदय है। काहूकै कदाचित् कोई पुण्य प्रकृतिनिका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै थोरा हो है, मुख्यता नाहीं। बहुरि गोत्रविषै नीच गोत्रहीका उदय है तातैं हीन होय रहे हैं। ऐसे तिर्यंचगतिविषै महादुःख जानने।

मनुष्यगतिके दुःख

बहुरि मनुष्यगतिविषै असंख्याते जीव तो लब्धि अपर्याप्त हैं ते सम्मूर्छन ही हैं, तिनकी तो आयु उश्वासके अठारहवें भागमात्र है। बहुरि केई जीव गर्भ में आय थोरे ही कालमें मरण पावै हैं तिनकी तो शक्ति प्रगट भासै नाहीं है। तिनके दुःख एकेंद्रियवत् जानना। विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि गर्भजनिकै कितेक काल गर्भमें रहना पीछे बाह्य निकसना हो है। सो तिनका दुःख का वर्णन कर्म अपेक्षा पूर्वे वर्णन किया है तैसे जानना। वह सर्व वर्णन गर्भज मनुष्यनिकै सम्भवै है अथवा तिर्यंचनिका वर्णन किया है तैसें जानना। विशेष यहै है इहां कोई शक्ति विशेष पाइए है वा राजादिकनिकै विशेष साताका उदय हो है वा क्षत्रियादिकनिकै उच्चगोत्रका भी उदय हो है। बहुरि धन कुटम्बादिकका निमित्त विशेष पाइए है इत्यादि विशेष जाननां। अथवा गर्भ आदि अवस्था के दुःख प्रत्यक्ष भासै हैं। जैसे विष्टाविषै लट उपजै तैसे गर्भमें शुक्र शोणितका बिन्दुको अपना शरीररूपकरि जीव उपजै। पीछे तहां क्रमतैं ज्ञानादिककी वा शरीरकी वृद्धि होइ। गर्भका दुःख बहुत है। संकोचरूप औंधेमुख क्षुधातृषादि सहित तहां काल पूरण करै। बहुरि बाह्य निकसै तब बाल्य अवस्था में महा दुःख हो है। कोऊ कहै- बाल्यावस्था में दुःख थोरा है सो नाहीं है। शक्ति थोरि है तातैं व्यक्त न होय सकै है। पीछे व्यापारादि वा विषयइच्छा आदि दुःखनिकी प्रगटता हो है। इष्ट अनिष्ट जनित आकुलता रहवो ही करै। पीछे वृद्ध होइ तब शक्तिहीन होइ जाय तब परमदुःखी हो है। सो ए दुःख प्रत्यक्ष होते देखिए है। हम बहुत कहा कहैं। प्रत्यक्ष जाको न भासै सो कह्या कैसे सुनै। काहूकै

कदाचित् किंचित् साताका उदय हो है सो आकुलतामय है। अर तीर्थंकरादि पद मोक्षमार्ग पाए बिना होय नाहीं। ऐसे मनुष्य पर्यायविषै दुःख ही हैं। **एक मनुष्य पर्यायविषै कोई अपना भला होनेका उपाय करै तो होय सकै है।** जैसे काना साँठा* की जड़ वा बांड○ तो चूसने योग्य नाहीं अर बीचकी पेली कानी सो भी चूसी जाय नाहीं। कोई स्वादका लोभी वाकूं बिगारै तो बिगारो। अर जो वाको बोई दे तो वाके बहुत सांठे होइ, तिनका स्वाद बहुत मीठा आवै। तैसे मनुष्यपर्यायका बालकवृद्धपना तो सुख भोगने योग्य नाहीं अर बीचकी अवस्था सो रोग क्लेशादिकरि युक्त तहां सुख होइ सकै नाहीं। कोई विषय सुखका लोभी याको बिगारै तो बिगारो। अर जो वाको धर्मसाधनविषै लगावै तो बहुत ऊँचे पदको पावै। तहां सुख बहुत निराकुल पाइए। **तातैं इहां अपना हित साधना, सुख होने का भ्रमकरि वृथा न खोवना।**

देवगतिके दुःख

बहुरि देवपर्यायविषै ज्ञानादिककी शक्ति किछु औरनितैं विशेष है। मिथ्यात्वकरि अतत्त्वश्रद्धानी होय रहे हैं। बहुरि तिनकै कषाय किछु मंद है; तहां भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्कनिकै कषाय बहुत मन्द नाहीं अर उपयोग तिनका चंचल बहुत अर किछू शक्ति भी है सो कषायनिके कार्यनिविषै प्रवर्तै है। कौतूहल विषयादि कार्यनिविषै लगि रहै है सो तिस आकुलताकर दुःखी हो हैं। बहुरि वैमानिकनिकै उपरि-उपरि विशेष मंद कषाय है अर शक्ति विशेष है तातैं आकुलता घटनेतैं दुःख भी घटता है। इहां देवनिके क्रोध मान कषाय है परन्तु कारन थोरा है। तातैं तिनके कार्य की गौणता है। काहूका बुरा करना वा काहूको हीन करना इत्यादि कार्य निकृष्ट देवनिकै तो कौतूहलादिकरि होइ है अर उत्कृष्ट देवनिकै थोरा हो है, मुख्यता नाहीं। बहुरि माया लोभ कषायनिके कारण पाइए हैं। तातैं तिनके कार्य की मुख्यता है तातैं छल करना विषयसामग्रीकी चाह करनी इत्यादि कार्य विशेष हो है। सो भी ऊँचे-ऊँचे देवनिकै घाटि+ है। बहुरि हास्य रति कषायके कारन घने पाइए है तातैं इनके कार्यनिकी मुख्यता है। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सा इनके कारण थोरे हैं तातैं तिनके कार्यनिकी गौणता है। बहुरि स्त्रीवेद पुरुषवेदका उदय है अर रमनेका भी निमित्त है सो कामसेवन करै है। ए भी कषाय उपरि उपरि मन्द है। अहमिन्द्रनिके वेदनिकी मंदताकरि कामसेवन का अभाव है। ऐसे देवनिकै कषायभाव है। सो **कषायहीतैं दुःख है।** अर इनके कषाय जेता थोरा है तितना दुःख भी थोरा है तातैं औरनिकी अपेक्षा इनको सुखी कहिए है। परमार्थतैं कषायभाव जीवै है ताकरि दुःखी ही हैं। बहुरि वेदनीयविषै साताका उदय बहुत है। तहां भवनत्रिककै तो थोरा है। वैमानिकनिकै तो उपरि-उपरि विशेष है। इष्ट शरीर की अवस्था स्त्रीमंदिरादि सामग्री का संयोग पाइए है। बहुरि कदाचित् किंचित् असाताका भी उदय कोई कारणकरि हो है। तहां निकृष्टदेवनिकै किछु प्रगट भी है अर उत्कृष्ट देवनिकै विशेष प्रगट नाहीं है। बहुरि आयु बड़ी है। जघन्य दसहजार वर्ष उत्कृष्ट ३१ सागर है। अर ३१ सागर से अधिक आयुका धारी मोक्षमार्ग पाए बिना होता नाहीं। सो इतना काल विषय सुखमें मगन रहै है। **बहुरि नामकर्मकी देवगति आदि सर्व पुण्य प्रकृतिनिही का उदय है तातैं सुख का कारण हैं।**

* गन्ना　　○ गन्ने के ऊपरका फीका भाग। + कम है।

विशेष-देवगति में अस्थिर, अशुभ व उपघात-नाम कर्म की इन अशुभ प्रकृतियों का भी उदय होता है। (गो.क. ४३-४४) (धवल ७/५८) परन्तु अस्थिर तथा अशुभ प्रकृतियों के ध्रुवोदयी होने से (गो.क. ५८८) तथा शरीरग्रहण के काल से लेकर उपघात का उदय अवश्यम्भावी रूप से बना रहने से इनकी यहाँ विवक्षा नहीं की है, इतना विशेष जानना चाहिए।

अर गोत्र विषै उच्च गोत्रहीका उदय है तातैं महंतपदको प्राप्त हैं। ऐसे इनके पुण्यउदयकी विशेषताकरि इष्ट सामग्री मिली है अर कषायनिकरि इच्छा पाइए है तातैं तिनके भोगनेविषै आसक्त होय रहे हैं परन्तु इच्छा अधिक ही रहै है तातैं सुखी होते नाहीं। ऊँचे देवनिके उत्कृष्ट पुण्य का उदय है, कषाय बहुत मंद है तथापि तिनकै भी इच्छाका अभाव होता नाहीं, तातैं परमार्थतैं दुःखी ही हैं। ऐसे सर्वही संसारविषै दुःख ही दुःख पाइए है। ऐसे पर्याय अपेक्षा दुःखका वर्णन किया।

दुःखका सामान्य स्वरूप

अब इस सर्व दुःखका सामान्यस्वरूप कहिए है। दुःखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता इच्छा होते हो है। सो इस संसारी-जीवकै इच्छा अनेक प्रकार पाइए है। एक तो इच्छा विषय ग्रहण की है सो देख्या जान्या चाहै। जैसे वर्ण देखनेकी, राग सुनने की, अव्यक्तको जानने इत्यादिकी इच्छा हो है। सो तहाँ अन्य किछु पीड़ा नाहीं परन्तु यावत् देखे जानै नाहीं तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छाका नाम विषय है। बहुरि एक इच्छा कषाय भावनिके अनुसारि कार्य करने की है सो कार्य किया चाहै। जैसे बुरा करनेकी, हीन करने की इत्यादि इच्छा हो है। सो इहाँ भी अन्य कोई पीड़ा नाहीं। परन्तु यावत् वह कार्य न होइ तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छा का नाम कषाय है। बहुरि एक इच्छा पापके उदयतैं शरीरविषै या बाह्य अनिष्ट कारण मिलैं तब उनके दूरि करने की हो है। जैसे रोग पीड़ा क्षुधा आदिका संयोग भए उनके दूरि करनेकी इच्छा हो है। सो इहाँ यहु ही पीड़ा मानै है। यावत् वह दूरि न होइ तावत् महाव्याकुल रहै। इस इच्छाका नाम पापका उदय है। ऐसे इन तीन प्रकारकी इच्छा होते सर्व ही दुःख मानै है सो दुःख ही है। बहुरि एक इच्छा बाह्य निमित्ततैं बनै है सो इन तीन प्रकार ही इच्छानिके अनुसारि प्रवर्तने की इच्छा ही है। सो तीन प्रकार इच्छानिविषै एक-एक प्रकार की इच्छा अनेक प्रकार है। तहां केई प्रकार की इच्छा पूरण होने का कारण पुण्यउदयतैं मिलै। तिनिका साधन युगपत् होइ सकै नाहीं। तातैं एक को छोरि अन्यको लागै, आगै भी वाको छोरि अन्य को लागै। जैसे काहूकै अनेक सामग्री मिली है, वह काहूको देखै है, वाको छोरि राग सुनै है, वाको छोरि काहूका बुरा करने लगि जाय, वाको छोरि भोजन करै है अथवा देखने विषै ही एक को देखि अन्यको देखै है। ऐसे ही अनेक कार्यनिकी प्रवृत्ति विषै इच्छा हो है सो इस इच्छा का नाम पुण्य का उदय है। याको जगत् सुख मानै है सो सुख है नाहीं, दुःख ही है। काहेतैं-प्रथम तो सर्वप्रकार इच्छा पूरन होने के कारण काहूकै भी न बनै। अर कोई प्रकार इच्छा पूरन करने के कारण बनै तो युगपत् तिनका साधन न होय। सो एकका साधन यावत् न होय तावत् वाकी आकुलता रहै है, वाका साधन भए उस ही समय अन्यका साधन की इच्छा हो है तब वाकी आकुलता होय। एक समय भी निराकुल न रहै, तातैं दुःख

ही है। अथवा तीन प्रकार इच्छा रोग के मिटावने का किंचित् उपाय करै है, तातैं किंचित् दुःख घाटि हो है, सर्व दुःखका तो नाश न होइ तातैं दुःख ही है। ऐसे संसारी जीवनिकै सर्वप्रकार दुःख ही है। बहुरि यहाँ इतना जानना-तीन प्रकार इच्छानिकरि सर्वजगत पीड़ित ही है अर चौथी इच्छा तो पुण्यका उदय आए होइ सो पुण्यका बंध धर्मानुरागतैं होइ सो धर्मानुरागविषै जीव थोरा लागै। जीव तो बहुत पाप क्रियानिविषै ही प्रवर्तै है। तातैं चौथी इच्छा कोई जीवकै कदाचित् कालविषै ही हो है। बहुरि इतना जानना-जो समान इच्छावान जीवनिकी अपेक्षा तो चौथी इच्छावालाकै किछु तीन प्रकार इच्छा के घटनेतैं सुख कहिये है। बहुरि चौथी इच्छावालाकी अपेक्षा महान् इच्छावाला चौथी इच्छा होतैं भी दुःखी हो है। काहूकै बहुत विभूति है अर वाकै इच्छा बहुत है तो वह बहुत आकुलतावान है। अर जाकै थोरी विभूति है अर वाकै इच्छा थोरी है तो वह थोरा आकुलतावान है। अथवा कोऊकै अनिष्ट सामग्री मिली है, ताकै उसके दूर करने की इच्छा थोरी है तो वह थोड़ा आकुलतावान है। बहुरि काहूकै इष्ट सामग्री मिली है परन्तु ताकै उनके भोगने की वा अन्य सामग्री की इच्छा बहुत है तो वह जीव घना आकुलतावान है। तातैं सुखी दुःखी होना इच्छा के अनुसार जानना; बाह्य कारणके आधीन नाहीं है। नारकी दुःखी अर देव सुखी कहिए है सो भी इच्छा ही की अपेक्षा कहिए है। तातैं नारकीनिकै तीव्र कषायतैं इच्छा बहुत है। देवनिकै मन्द कषायतैं इच्छा थोरी है। बहुरि मनुष्य तिर्यंच भी सुखी-दुःखी इच्छा ही की अपेक्षा जानने। तीव्र कषायतैं जाकै इच्छा बहुत ताको दुःखी कहिए है। मंद कषायतैं जाकै इच्छा थोरी ताको सुखी कहिए है। परमार्थतैं दुःख ही घना वा थोरा है, सुख नाही हैं, देवादिककै भी सुख मानिए है सो भ्रम ही है। उनकै चौथी इच्छाकी मुख्यता है तातैं आकुलित है। या प्रकार जो इच्छा हो है सो मिथ्यात्व अज्ञान असंयमतैं हो है। बहुरि इच्छा है सो आकुलतामय है अर आकुलता है सो दुःख है। ऐसे सर्व संसारी जीव नाना दुःखनिकरि पीड़ित ही होइ रहे हैं।

दुःख-निवृत्तिका उपाय

अब जिन जीवनिको दुखतैं छूटना होय सो इच्छा दूर करने का उपाय करो। बहुरि इच्छा दूर तब ही होइ जब मिथ्यात्व अज्ञान असंयमका अभाव होइ अर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति होय। तातैं इस ही कार्य का उद्यम करना योग्य है। ऐसा साधन करते जेती जेती इच्छा मिटै तेता तेताही दुःख दूर होता जाय। बहुरि जब मोहके सर्वथा अभावतैं सर्व इच्छा का अभाव होइ तब सर्व दुःख मिटै, सांचा सुख प्रगटै। बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तरायका अभाव होय तब इच्छा का कारण क्षयोपशम ज्ञानदर्शनका वा शक्तिहीनपनाका भी अभाव होय। अनंतज्ञानदर्शनवीर्यकी प्राप्ति होय। बहुरि केतेक काल पीछै अघाति कर्मनिकाभी अभाव होय, तब इच्छा के बाह्य कारण तिनका भी अभाव होय। सो मोह गए पीछै एक समय मात्र भी किछू इच्छा उपजावने को समर्थ थे नाहीं, मोह ही तैं कारण थे तातैं कारण कहे हैं सो इनका भी अभाव भया तब सिद्धपदको प्राप्त हो है। तहाँ दुःखका वा दुःख के कारणनिका सर्वथा अभाव होने तैं सदा काल अनौपम्य अखंडित सर्वोत्कृष्ट आनन्दसहित अनन्तकाल विराजमान रहे हैं। सोई दिखाइए है-

सिद्ध अवस्था में दुःख के अभावकी सिद्धि

ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम होतैं वा उदय होतैं मोह करि एक-एक विषय देखने जानने की

इच्छा करि महाव्याकुल होता था सो अब मोहका अभावतैं इच्छा का भी अभाव भया। तातैं दुःखका अभाव भया है। बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण का क्षय होनेतैं सर्व इन्द्रियनिको सर्वविषयनिका युगपत् ग्रहण भया, तातैं दुःखका कारण भी दूर भया है सोई दिखाइए है-जैसे नेत्रकरि एक विषयको देख्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोक के सर्व वर्णनिको युगपत् देखै है। कोऊ बिना देख्या रह्या नाहीं, जाके देखने की इच्छा उपजै। ऐसे ही स्पर्शनादिककरि एक एक विषय को ग्रह्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोक के सर्व स्पर्श रस गंध शब्दनिको युगपत् ग्रहै है। कोऊ बिना ग्रह्या रह्या नाहीं, जाके ग्रहण की इच्छा उपजै।

इहां कोऊ कहै, शरीरादिक बिना ग्रहण कैसे होइ?

ताका समाधान-इन्द्रियज्ञान होतैं तो द्रव्यइन्द्रियादि बिना ग्रहण न होता था। अब ऐसा स्वभाव प्रगट भया जो बिनाही इन्द्रिय ग्रहण हो है। इहाँ कोऊ कहै, जैसे मनकरि स्पर्शादिकको जानिए है तैसे जानना होता होगा। त्वचा जीभ आदि करि ग्रहण हो है तैसे न होता होगा। सो ऐसे नाहीं है। मनकरि तो स्मरणादि होते अस्पष्ट जानना किछु हो है। इहाँ तो स्पर्शरसादिकको जैसे त्वचा जीभ इत्यादि करि स्पर्शै स्वादै सूंघै देखै सुनै जैसा स्पष्ट जानना हो है तिसतैं भी अनन्त गुणा स्पष्ट जानना तिनकै हो है। विशेष इतना भया है-वहाँ इन्द्रिय विषयका संयोग होते ही जानना होता था, इहाँ दूर रहे भी वैसा ही जानना हो है। सो यहु शक्तिकी महिमा है। बहुरि मनकरि किछु अतीत अनागतको व अव्यक्तको जान्या चाहै था, अब सर्वही अनादितैं अनंतकालपर्यन्त जे सर्व पदार्थनिके द्रव्य क्षेत्र काल भाव तिनको युगपत् जानै है। कोऊ बिना जान्या रह्या नाहीं, जाके जानने की इच्छा उपजै। ऐसे इन दुःख और दुःखनिके कारण तिनका अभाव जानना। बहुरि मोहके उदयतैं मिथ्यात्व वा कषाय भाव होते थे तिनका सर्वथा अभाव भया तातैं दुःखका अभाव भया। बहुरि इनके कारणनिका अभाव भया तातैं दुःख के कारणका भी अभाव भया। सो कारणका अभाव दिखाइए है।

सर्व तत्त्व यथार्थ प्रतिभासै, अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व कैसे होइ? कोऊ अनिष्ट रह्या नाहीं, निंदक स्वयमेव अनिष्ट पावै ही है, आप क्रोध कौनसों करै? सिद्धनितैं ऊँचा कोई है नाहीं। इन्द्रादिक आपहीतैं नमै हैं इष्ट पावै हैं? तो कौनसों मान करै? सर्व भवितव्य भासि गया, कोऊ कार्य रह्या नाहीं, काहूसो प्रयोजन रह्या नाहीं, काहेका लोभ करै? कोऊ अन्य इष्ट रह्या नाहीं, कौन कारणतैं हास्य होइ? कोऊ अन्य इष्ट प्रीति करने योग्य है नाहीं, इहाँ कहा रति करै? कोऊ दुःखदायक संयोग रह्या नाहीं, कहा अरति करै? कोऊ इष्ट अनिष्ट संयोग वियोग होता नाहीं, काहेका शोक करै? कोऊ अनिष्ट करने वाला कारण रह्या नाहीं, कौनका भय करै? सर्ववस्तु अपने स्वभाव लिए भासै, आपको अनिष्ट नाहीं, कहा जुगुप्सा करै? कामपीड़ा दूर होनेतैं स्त्री पुरुष उभयसौं रमनेका किछु प्रयोजन रह्या नाहीं, काहेको पुरुष स्त्री नपुंसकवेद रूप भाव होई? ऐसे मोह उपजनेके कारणनिका अभाव जानना। बहुरि अंतरायके उदयतैं शक्तिहीनपनाकरि पूरण न होती थी, अब ताका अभाव भया, तातैं दुःख का अभाव भया। बहुरि अनंत शक्ति प्रगट भई, तातैं दुःखके कारणका भी अभाव भया।

इहाँ कोऊ कहै, दान लाभ भोग उपभोग तो करते नाहीं, इनकी शक्ति कैसे प्रगट भई?

ताका समाधान-ए कार्य रोगके उपचार थे। जब रोग ही नाहीं तब उपचार काहेको करै। तातैं इन कार्यनिका सद्भाव तो नाहीं। अर इनका रोकनहारा कर्मका अभाव भया, तातैं शक्ति प्रगटी कहिए है। जैसे कोऊ (नाहीं) गमन किया चाहै ताको काहूनै रोक्या था तब दुःखी था। जब वाकै रोकना दूर भया अर जिस कार्यके अर्थि गया चाहै था सो कार्य न रह्या तब गमन भी न किया। तब वाकै गमन न करते भी शक्ति प्रगटी कहिए। तैसे ही इहाँ भी जानना।[1] बहुरि ज्ञानादि की शक्तिरूप अनंतवीर्य प्रगट उनके पाइए है। बहुरि अघाति कर्मनि विषै मोहतैं पाप प्रकृतिनिका उदय होतैं दुःख मानै था, पुण्यप्रकृतिनि का उदय होतैं सुख मानै था, परमार्थतैं आकुलताकरि सर्व दुःख ही था। अब मोहके नाशतैं सर्व आकुलता दूर होनेतैं सर्व दुःखका नाश भया। बहुरि जिन कारणनिकरि दुःख मानै था, ते तो कारण सर्व नष्ट भए। अर जिनकरि किंचित् दुःख दूर होनेतैं सुख मानै था, सो अब मूलहीमें दुःख रह्या नाहीं। तातैं तिन दुःखके उपचारनिका किछु प्रयोजन रह्या नाहीं, जो तिनकरि कार्यकी सिद्धि किया चाहै। ताकी स्वयमेव ही सिद्धि होय रही है। इसहीका विशेष दिखाइये है-

वेदनीय विषै असाताका उदयतैं दुःखके कारण शरीर विषै रोग क्षुधादिक होते थे। अब शरीर ही नाहीं तब कहां होय? अर शरीरकी अनिष्ट अवस्थाको कारण आतापादिक थे सो अब शरीर बिना कौन को कारण होय? अर बाह्य अनिष्ट निमित्त बनै था सो अब इनके अनिष्ट रह्या ही नाहीं। ऐसे दुःखका कारण का तो अभाव भया। बहुरि साताके उदयतैं **किंचित् दुःख मेटनेके कारण औषधि भोजनादिक थे** तिनका प्रयोजन रह्या नाहीं। अर इष्ट कार्य पराधीन रह्या नाहीं, तातैं बाह्य भी मित्रादिकको इष्ट मानने का प्रयोजन रह्या नाहीं। इन करि दुःख मेट्या चाहै था वा इष्ट किया चाहै था सो अब सम्पूर्ण दुःख नष्ट भया अर सम्पूर्ण इष्ट पाया। बहुरि आयुके निमित्ततैं मरण जीवन था तहां मरणकरि दुःख मानै था सो अविनाशी पद पाया, तातैं दुःख का कारण रह्या नाहीं। बहुरि द्रव्य प्राणनिको धरे कितेक काल जीवनतैं सुख मानै था, तहाँ भी नरक पर्याय विषै दुःखकी विशेषताकरि तहाँ जीवना न चाहै था, सो अब इस सिद्धपर्याय विषै द्रव्यप्राण बिना ही अपने चैतन्य प्राणकरि सदाकाल जीवै है अर तहाँ दुःख का लवलेश भी न रह्या है। बहुरि नामकर्मतैं अशुभ गति जाति आदि होते दुःख मानै था सो अब तिन सबनिका अभाव भया, दुःख कहाँतैं होय? अर शुभगति जाति आदि होते किंचित् दुःख दूर होनेतै सुख मानै था, सो अब तिन बिना ही सर्व दुःख का नाश अर सर्व सुख का प्रकाश पाइए है। तातैं तिनका भी किछु प्रयोजन रह्या नाहीं। बहुरि गोत्र

---

१. **शंका:** यदि क्षायिक दान आदि भावों के निमित्त से अभयदानादि कार्य होते हैं तो सिद्धों में भी उनका प्रसंग प्राप्त होता है?

समाधान: यह कोई दोष नहीं क्योंकि इन अभयदान आदि के होने में शरीर नाम कर्म तथा तीर्थंकर नाम कर्म के उदय की अपेक्षा रहती है, परन्तु सिद्धों के शरीर नामकर्म तथा तीर्थंकर नामकर्म नहीं होते अतः उनके अभयदानादि नहीं प्राप्त होते।

शंका: फिर सिद्धों के क्षायिक दानादि का सद्भाव कैसे माना जावे?

समाधान: जिस प्रकार सिद्धों के केवलज्ञान रूप से अनन्त वीर्य का सद्भाव माना है, उसी प्रकार परमानन्द के अव्याबाध रूप से ही उनका सिद्धों के सद्भाव है। (सर्वार्थसिद्धि २/४ पृष्ठ १०९ ज्ञानपीठ)

के निमित्ततैं नीचकुल पाए दुःख मानै था सो ताका अभाव होने तैं दुःखका कारण रह्या नाहीं। बहुरि उच्चकुल पाए सुख मानै था सो अब उच्चकुल बिनाही त्रैलोक्यपूज्य उच्चपदको प्राप्त है, या प्रकार सिद्धनिके सर्वकर्मके नाश होनेतैं सर्व दुःख का नाश भया है।

दुःखका तो लक्षण आकुलता है सो आकुलता तब ही हो है जब इच्छा होय। सो इच्छा का वा इच्छा के कारणनिका सर्वथा अभाव भया तातैं निराकुल होय सर्व दुःखरहित अनन्त सुखको अनुभवै है, जातैं निराकुलपना ही सुख का लक्षण है। संसारविषै भी कोई प्रकार निराकुलित होइ तब ही सुख मानिए है। जहाँ सर्वथा निराकुल भया तहाँ सुख सम्पूर्ण कैसे न मानिए? या प्रकार सम्यग्दर्शनादि साधनतैं सिद्ध पद पाए सर्व दुःख का अभाव हो है, सर्व सुख प्रगट हो है।

अब इहाँ उपदेश दीजिए है-हे भव्य! हे भाई! जो तोकूं संसार के दुःख दिखाए, ते तुझ विषै बीते हैं कि नाहीं सो विचारि! अर तू उपाय करै है ते झूठे दिखाए सो ऐसे ही है कि नाहीं सो विचारि। अर सिद्धपद पाए सुख होय कि नाहीं सो विचारि। जो तेरे प्रतीति जैसे कही है तैसे ही आवै है तो तू संसारतैं सिद्धपद पावने का हम उपाय कहै हैं सो करि, विलम्ब मति करै। यह उपाय किए तेरा कल्याण होगा।

इति श्री मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसार-दुःखका वा मोक्षसुखका निरूपक तृतीय अधिकार पूर्ण भया ।।३।।

卐 卐 卐

卐

卐 चौथा अधिकार 卐

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरूपण

❀ दोहा ❀

इस भवके सब दुःखनिके, कारण मिथ्याभाव।
तिनकी सत्ता नाश करि, प्रगटै मोक्ष उपाव।।1।।

अब इहां संसार दुःखनिके बीजभूत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र हैं तिनका स्वरूप विशेष निरूपण कीजिए है। जैसे वैद्य है सो रोगके कारणनिका विशेष कहै तो रोगी कुपथ्य सेवन न करै तब रोगरहित होय, तैसे इहां संसारके कारणनिका विशेष निरूपण करिए तो संसारी मिथ्यात्वादिकका सेवन न करै तब संसार रहित होय। तातैं मिथ्यादर्शनादिकनिका स्वरूप विशेष कहिए है-

मिथ्यादर्शनका स्वरूप

यहु जीव अनादितैं कर्मसम्बन्धसहित है। याकै दर्शनमोहके उदयतैं भया जो अतत्त्व श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है। जातैं तद्भाव तत्त्व। जो श्रद्धान करनेयोग्य अर्थ है ताका जो भाव अथवा स्वरूप ताका नाम तत्त्व है। तत्त्व नाहीं, ताका नाम अतत्त्व है। अर जो अतत्त्व है सो असत्य है, तातैं इसीका नाम मिथ्या है। बहुरि ऐसे ही यहु है, ऐसा प्रतीति भाव ताका नाम श्रद्धान है। इहाँ श्रद्धान ही का नाम दर्शन है। यद्यपि दर्शन शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकन है तथापि इहां प्रकरणके वशतैं इस ही धातुका अर्थ श्रद्धान जानना। सो ऐसे ही सर्वार्थसिद्धि नाम सूत्रकी टीकाविषै कह्या है। जातैं सामान्यअवलोकन संसारमोक्षको कारण होइ नाहीं। **श्रद्धान ही संसार मोक्षको कारण है,** तातैं संसार-मोक्षका कारणविषै दर्शनका अर्थ श्रद्धान ही जानना। बहुरि मिथ्यारूप जो दर्शन कहिए श्रद्धान ताकानाम मिथ्यादर्शन है। जैसे वस्तुका स्वरूप नाहीं तैसे मानना, जैसे है तैसे न मानना ऐसा विपरीताभिनिवेश कहिए विपरीत अभिप्राय ताको लिये मिथ्यादर्शन हो है।

इहाँ **प्रश्न**-जो केवलज्ञान बिना सर्व पदार्थ यथार्थ भासै नाहीं अर यथार्थ भासै बिना यथार्थ श्रद्धान न होइ; तातैं मिथ्यादर्शनका त्याग कैसे बनै?

ताका **समाधान**-पदार्थनिका जानना, न जानना, अन्यथा जानना तो ज्ञानावरण के अनुसार है। बहुरि प्रतीति हो है सो जाने ही हो है, बिना जाने प्रतीति कैसे आवै? यहु तो सत्य है। परन्तु जैसे कोऊ

पुरुष है सो जिनसों प्रयोजन नाहीं, तिनको अन्यथा जाने वा यथार्थ जाने, बहुरि जैसे जाने तैसे ही माने, किछु वाका बिगार सुधार है नाहीं, तातैं बाउला स्याना नाम पावै नाहीं। बहुरि जिनसों प्रयोजन पाइए है, तिनको जो अन्यथा जानै अर तैसे मानै तो बिगार होइ तातैं वाको बाउला कहिए। बहुरि तिनको जो यथार्थ जानै अर तैसे ही मानै तो सुधार होइ तातैं वाको स्याना कहिए। तैसे ही जीव है सो जिनस्यों प्रयोजन नाहीं, तिनको अन्यथा जानो वा यथार्थ जानो बहुरि जैसे जानै तैसे ही श्रद्धान करै, किछु याका बिगार सुधार नाहीं तातैं मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि नाम पावै नाहीं। बहुरि जिनस्यों प्रयोजन पाइए है तिनको जो अन्यथा जानै अर तैसे ही श्रद्धान करै तो बिगार होइ तातैं याको मिथ्यादृष्टि कहिए। बहुरि तिनको जो यथार्थ जानै अर तैसे ही श्रद्धान करै तो सुधार होइ तातैं याको सम्यग्दृष्टि कहिए। इहाँ इतना जानना कि अप्रयोजनभूत वा प्रयोजनभूत पदार्थनिका न जानना वा यथार्थ अयथार्थ जानना जो होइ तामें ज्ञानकी हीनताअधिकता होना, इतना जीवका बिगार-सुधार है। ताका निमित्त तो ज्ञानावरण कर्म है। बहुरि तहां प्रयोजनभूत पदार्थनिको अन्यथा वा यथार्थ श्रद्धान किए जीवका किछु और भी बिगार-सुधार हो है। तातैं याका निमित्त दर्शनमोह नामा कर्म है।

इहाँ **कोऊ कहै** कि जैसा जानै तैसा श्रद्धान करै तातैं ज्ञानावरणही के अनुसारि श्रद्धान भासै है, इहां दर्शनमोहका विशेष निमित्त कैसे भासै?

ताका **समाधान**-प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धान करने योग्य ज्ञानावरणका क्षयोपशम तो सर्व संज्ञी पंचेन्द्रियनिकै भया है। परन्तु द्रव्यलिंगी मुनि ग्यारह अंग पर्यंत पढ़ै वा ग्रैवेयकके देव अवधिज्ञानादियुक्त हैं तिनकै ज्ञानावरणका क्षयोपशम बहुत होते भी प्रयोजनभूत जीवादिका श्रद्धान न होइ। अर तिर्यचादिककै ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होतैं भी प्रयोजनभूत जीवादिकका श्रद्धान होइ, तातैं जानिए है ज्ञानावरणहीके अनुसारि श्रद्धान नाहीं। कोई जुदा कर्म है सो दर्शनमोह है। याके उदयतैं जीवकै मिथ्यादर्शन हो है तब प्रयोजनभूत जीवादितत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान करै है।

प्रयोजन-अप्रयोजनभूत पदार्थ

इहां **कोऊ पूछै** कि प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ कौन-कौन हैं?

ताका **समाधान**-इस जीवके प्रयोजन तो एक यहु ही है कि दुःख न होय, सुख होय। अन्य किछू भी कोई ही जीवकै प्रयोजन है नाहीं। बहुरि दुःख का न होना, सुख का होना एक ही है, जातैं दुःख का अभाव सोई सुख है। सो इस प्रयोजन की सिद्धि जीवादिकका सत्य श्रद्धान किए हो है। कैसे? सो कहिए है।

प्रथम तो दुःख दूर करने विषै आपापरका ज्ञान अवश्य चाहिए। जो आपापरका ज्ञान नाहीं होय तो आपको पहिचाने बिना अपना दुःख कैसे दूरि करै। अथवा आपापरको एक जानि अपना दुःख दूर करनेके अर्थि परका उपचार करै तो अपना दुःख दूर कैसे होइ? अथवा आपतैं पर भिन्न अर यहु परविषै अहंकार ममकार करै तातैं दुःख ही होय। आपापरका ज्ञान भए ही दुःख दूर हो है। बहुरि आपापरका ज्ञान

जीव अजीवका ज्ञान भए ही होय। जातैं आप जीव है, शरीरादिक अजीव है। जो लक्षणादिककरि जीव अजीव की पहिचान होइ तो आपापरको भिन्नपनो भासै। तातैं जीव अजीवको जानना अथवा जीव अजीवका ज्ञान भए जिन पदार्थनिका अन्यथा श्रद्धानतैं दुःख होता था तिनका यथार्थ ज्ञान होनेतैं दुःख दूरि होइ तातैं जीव अजीवको जानना। बहुरि दुःखका कारन तो कर्मबन्धन है अर ताका कारण मिथ्यात्वादिक आस्रव है। सो इनको न पहिचानै, इनको दुःख का मूल कारन न जानै तो इनका अभाव कैसे करै? अर इनका अभाव न करै तब कर्मबन्ध कैसे न होइ, तातैं दुःख ही होय। अथवा मिथ्यात्वादिक भाव हैं सो ए दुःखमय हैं सो इनको जैसे के तैसे न जानै तो इनका अभाव न करै तब दुःखी ही रहै, तातैं आस्रवको जानना। बहुरि समस्त दुःखका कारण कर्मबन्धन है सो याको न जानै तब यातैं मुक्त होनेका उपाय न करै तब ताकै निमित्ततैं दुःखी होइ तातैं बंधको जानना। बहुरि आस्रवका अभाव करना सो संवर है, याका स्वरूप न जानै तो या विषै न प्रवर्तै तब आस्रव ही रहै तातैं वर्तमान या आगामी दुःख ही होइ तातैं संवरको जानना। बहुरि कथंचित् किंचित् कर्मबंधका अभाव करना ताका नाम निर्जरा है सो याको न जानै तब याकी प्रवृत्ति का उद्यमी न होइ। तब सर्वथा बंध ही रहै तातैं दुःख ही होइ तातैं निर्जराको जानना। बहुरि सर्वथा सर्वकर्मबंधका अभाव होना ताका नाम मोक्ष है। सो याको न पहिचानै तो याका उपाय न करै, तब संसारविषै कर्मबंधतैं निपजै दुःखनिहीको सहै तातैं मोक्षको जानना। ऐसे जीवादि सप्त तत्त्व जानने। बहुरि शास्त्रादिक करि कदाचित् तिनको जानै अर ऐसे ही हैं ऐसी प्रतीति न आई तो जाने कहा होय तातैं तिनका श्रद्धान करना कार्यकारी है। ऐसे जीवादि तत्त्वनिका सत्यश्रद्धान किए ही दुःख होनेका अभावरूप प्रयोजन की सिद्धि हो है। तातैं जीवादिक पदार्थ हैं ते ही प्रयोजनभूत जानने। बहुरि इनके विशेषभेद पुण्यपापादिकरूप तिनका भी श्रद्धान प्रयोजनभूत है जातैं सामान्यतैं विशेष बलवान है। ऐसे ये पदार्थ तो प्रयोजनभूत हैं तातैं इनका यथार्थ श्रद्धान किए तो दुःख न होय, सुख होय अर इनको यथार्थ श्रद्धान किए बिना दुःख हो है, सुख न हो है। बहुरि इन बिना अन्य पदार्थ हैं, ते अप्रयोजनभूत हैं। जातैं तिनको यथार्थश्रद्धान करो वा मति करो, उनका श्रद्धान किछू सुख दुःखको कारण नाहीं।

इहाँ **प्रश्न** उपजै है, जो पूर्वे जीव अजीव पदार्थ कहे तिनविषै तो सर्व पदार्थ आय गए, तिन बिना अन्य पदार्थ कौन रहे जिनको अप्रयोजनभूत कहे।

ताका **समाधान**-पदार्थ तो सर्व जीव अजीवविषै ही गर्भित हैं परन्तु तिनजीव अजीवनिके विशेष बहुत हैं। तिन विषै जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवको यथार्थ श्रद्धान किये स्व-परका श्रद्धान होय, रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ, तातैं सुख उपजै; अयथार्थ श्रद्धान किए स्व-परका श्रद्धान न होइ, रागादिक दूर करनेका श्रद्धान न होइ, तातैं दुःख उपजै, तिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीव पदार्थ तो प्रयोजनभूत जानने। बहुरि जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवको यथार्थ श्रद्धान किए वा न किए स्व-परका श्रद्धान होइ वा न होइ अर रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ वा न होइ, किछू नियम नाहीं, तिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीव पदार्थ अप्रयोजनभूत जानने। जैसे जीव अर शरीरका चैतन्य मूर्तत्वादिक विशेषनिकरि श्रद्धान करना तो प्रयोजनभूत है अर मनुष्यादि-पर्यायनिका वा घटपटादिककी

अवस्था का आकारादिक विशेषनिकरि श्रद्धान करना अप्रयोजनभूत है। ऐसे ही अन्य जानने। या प्रकार कहे जे प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्व तिनका अयथार्थ श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन जानना।

अब संसारी जीवनिकै मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति कैसे पाइए है सो कहिए है। इहाँ वर्णन तो श्रद्धानका करना है परन्तु जानै तब श्रद्धान करै, तातैं जानने की मुख्यताकरि वर्णन करिए है।

मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति

अनादितैं जीव है सो कर्मके निमित्ततैं अनेक पर्याय धरै है तहाँ पूर्व पर्यायको छोरै नवीन पर्याय धरै, बहुरि वह पर्याय है सो एक तो आप आत्मा अर अनन्त पुद्‌गलपरमाणुमय शरीर तिनका एक पिंड बंधानरूप है। बहुरि जीवकै तिस पर्यायविषै यह मैं हूँ, ऐसे अहंबुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताका स्वभाव तो ज्ञानादिक है अर विभाव क्रोधादिक है अर पुद्‌गल परमाणुनिके वर्ण गंध रस स्पर्शादि स्वभाव है तिन सबनिको अपना स्वरूप मानै है। ए मेरे हैं, ऐसे मम बुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताके ज्ञानादिककी वा क्रोधादिककी अधिक हीनतारूप अवस्था हो है अर पुद्‌गलपरमाणुनिकी वर्णादि पलटने रूप अवस्था हो है तिन सबनिको अपनी अवस्था मानै है। ए मेरी अवस्था है, ऐसे मम बुद्धि करै है। बहुरि जीवकै अर शरीरकै निमित्त-नैमित्तिक संबंध है तातैं जो क्रिया हो है ताको अपनी मानै है। अपना दर्शनज्ञानस्वभाव है, ताकी प्रवृत्तिको निमित्त मात्र शरीरका अंगरूप स्पर्शनादि द्रव्यइन्द्रिय है यहु तिनको एक मान ऐसे मानै है जो हस्तादि स्पर्शनकरि मैं स्पर्श्या, जीभकरि चाख्या, नासिकाकरि सूंघ्या, नेत्रकरि देख्या, काननिकरि सुन्या, ऐसे मानै है। मनोवर्गणारूप आठ पाँखुडीका फूल्या कमल के आकार हृदय स्थानविषै द्रव्यमन है, दृष्टिगम्य नाहीं ऐसा है सो शरीर का अंग है, ताका निमित्त भए स्मरणादिरूप ज्ञान की प्रवृत्ति हो है। यहु द्रव्यमनको अर ज्ञानको एक मानि ऐसे मानै है कि मैं मनकरि जान्या। बहुरि अपने बोलने की इच्छा हो है तब अपने प्रदेशनिको जैसे बोलना बनै तैसे हलावै, तब एकक्षेत्रावगाह सम्बन्धतैं शरीर के अंग भी हालै, ताके निमित्ततैं भाषा वर्गणारूप पुद्‌गल वचनरूप परिणमै। यहु सबको एक मानि ऐसे मानै जो मैं बोलूं हूं। बहुरि अपने गमनादि क्रियाकी वा वस्तुग्रहणादिक की इच्छा होय तब अपने प्रदेशनिको जैसे कार्य बने तैसे हलावै, तब एकक्षेत्रावगाहतैं शरीर के अंग हालै तब वह कार्य बनै। अथवा अपनी इच्छा बिना शरीर हालै तब अपने प्रदेश भी हालै, यहु सबको एक मानि ऐसे मानै, मैं गमनादि कार्य करूँ हूँ वा वस्तु ग्रहूं हूँ वा मैं किया है इत्यादिरूप मानै है। बहुरि जीवकै कषायभाव होय तब शरीरकी ताके अनुसार चेष्टा होइ जाय। जैसे क्रोधादिक भए नेत्रादि रक्त होइ जाय, हास्यादि भए प्रफुल्लित वदनादि होइ जाय, पुरुषवेदादि भए लिंगकाठिन्यादि होइ जाय। यहु सबको एक मानि ऐसा मानै कि ए सर्व कार्य मैं करूं हूँ। बहुरि शरीर विषै शीत उष्ण क्षुधा तृषा रोग इत्यादि अवस्था हो है ताके निमित्ततैं मोहभावकरि आप सुख-दुःख मानै। इन सबनि को एक जानि शीतादिकको वा सुख-दुःख को अपने ही भए मानै है। बहुरि शरीरका परमाणूनिका मिलना बिछुरनादि होनेकरि वा तिनकी अवस्था पलटनेकरि वा शरीर स्कंध का खंडादि होनेकरि स्थूल कृशादिक वा बाल वृद्धादिक वा अंगहीनादिक होय अर ताके अनुसार अपने प्रदेशनिका

संकोच विस्तार होय। यहु सबको एक मानि मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ, मैं बालक हूँ ,मैं वृद्ध हूँ, मेरे इन अंगनिका भंग भया है इत्यादि रूप मानै है। बहुरि शरीर की अपेक्षा गतिकुलादिक होइ तिनको अपने मानि मैं मनुष्य हूँ, मैं तिर्यंच हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हूँ इत्यादि रूप मानै है। बहुरि शरीरसंयोग होने छूटनेकी अपेक्षा जन्म-मरण होय तिनको अपना जन्म मरण मानि मैं उपज्या, मैं मरूंगा ऐसा मानै है। बहुरि शरीर ही की अपेक्षा अन्य वस्तुनिस्यों नाता मानै है। जिनकरि शरीर निपज्यातिनको अपने माता-पिता मानै है। जो शरीरको रमावै ताको अपनी रमणी मानै है। जो शरीरकरि निपज्या ताको अपना पुत्र मानै है। जो शरीरको उपकारी ताको मित्र मानै है। जो शरीर का बुरा करै ताको शत्रु मानै है इत्यादिरूप मानि हो है। बहुत कहा कहिए जिस तिस प्रकारकरि आप अर शरीरको एक ही मानै है। इन्द्रादिक का नाम तो इहां कह्या है। याको तो किछू गम्य नाहीं। अचेत हुआ पर्यायविषै अंहबुद्धि धारै है। सो कारण कहा है? सो कहिए है।

इस आत्माकै अनादितैं इन्द्रियज्ञान है ताकरि आप अमूर्तीक है सो तो भासै नाहीं अर शरीर मूर्तीक है सो ही भासै। अर आत्मा काहूको आपो जानि अहंबुद्धि धारै ही धारै सो आप जुदा न भास्या तब तिनका समुदायरूप पर्यायविषै ही अहंबुद्धि धारै है। **बहुरि आपकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध घना ताकरि भिन्नता भासै नाहीं।** बहुरि जिस विचारकरि भिन्नता भासै सो मिथ्यादर्शनके जोर तैं होइ सकै नाहीं **तातैं पर्याय ही विषै अहंबुद्धि पाइए है।** बहुरि मिथ्यादर्शनकरि यहु जीव कदाचित् बाह्य सामग्रीका संयोग होतैं तिनको भी अपनी मानै है। पुत्र, स्त्री, धन, धान्य, हाथी, घोड़े, मन्दिर, किंकरादिक प्रत्यक्ष आपतैं भिन्न अर सदा काल अपने आधीन नाहीं, ऐसे आपको भासै तो भी तिन विषै ममकार करै है पुत्रादिकविषै ए हैं सो मैं ही हूँ, ऐसी भी कदाचित् भ्रमबुद्धि हो है। बहुरि मिथ्यादर्शनतैं शरीरादिकका स्वरूप अन्यथा ही भासै है। अनित्यको नित्य मानै, भिन्नको अभिन्न मानै, दुःख के कारणको सुखका कारण मानै, दुःखको सुख मानै इत्यादि विपरीत भासै है। ऐसे जीव अजीव तत्त्वनिका अयथार्थज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतैं मिथ्यात्व कषायादिक भाव हो हैं। तिनको अपना स्वभाव मानै है, कर्म उपाधितैं भए न जानै है। दर्शन ज्ञान उपयोग अर ए आस्रवभाव तिनको एक मानै है। जातैं इनका आधारभूत तो एक आत्मा अर इनका परिणमन एकै काल होइ, तातैं याकों भिन्नपनो न भासै अर भिन्नपनो भासनेका कारण जो विचारै है सो मिथ्यादर्शनके बलतैं होइ सकै नाहीं। बहुरि ए मिथ्यात्व कषायभाव आकुलता लिये हैं, तातैं वर्तमान दुःखमय हैं अर कर्मबंधके कारण हैं, तातैं आगामी दुःख उपजावैंगे, तिनको ऐसे न मानै है। आप भला जानि इन भावनिरूप होइ प्रवर्तै है। बहुरि यह दुःखी तो अपने इन मिथ्यात्व कषायभावनितैं होइ अर वृथा ही औरनिको दुःख उपजावनहारे मानै है। जैसे दुःखी तो मिथ्यात्वश्रद्धानतैं होइ अर अपने श्रद्धानके अनुसार जो पदार्थ न प्रवर्तै ताको दुःखदायक मानै। **बहुरि दुःखी तो क्रोधतैं होइ। अर जासौं क्रोध किया होय ताको दुःखदायक मानै। दुःखी तो लोभतैं होइ अर इष्ट वस्तुकी अप्राप्तिको दुःखदायक मानै, ऐसे ही अन्यत्र जानना।** बहुरि इन भावनिका जैसा फल लागै तैसा न भासै है। इनकी तीव्रताकरि नरकादिक हो है, मन्दताकरि स्वर्गादिक हो है। तहां घनी थोरी आकुलता हो है सो भासै नाहीं,

तातैं बुरे न लागै है। कारण कहा है- ए आपके किये भासै तिनको बुरे कैसे मानै? बहुरि ऐसे ही आस्रव तत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इन आस्रवभावनिकरि ज्ञानावरणादिकर्मनिका बंध हो है। तिनका उदय होतैं ज्ञान-दर्शन का हीनपना होना, मिथ्यात्वकषायरूप परिणमन, चाह्या न होना, सुख-दुःखका कारन मिलना, शरीर संयोग रहना, गतिजाति शरीरादिकका निपजना, नीचा ऊँचा कुल पावना होय। सो इनके होनेविषै मूल कारन कर्म है। ताको तो पहिचानै नाहीं, जातैं यहु सूक्ष्म है, याको सूझता नाहीं। अर वह आपको इन कार्यनिका कर्त्ता दीसै नाहीं, तातैं इनके होनेविषै कै तो आपको कर्त्ता मानै, कै काहू और को कर्त्ता मानै। अर आपका वा अन्यका कर्त्तापना न भासै तो गहलरूप होइ भवितव्य मानै। ऐसे बंधतत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि **आस्रवका अभाव होना सो संवर है**। जो आस्रवको यथार्थ न पहिचानै, ताकै संवरका यथार्थ श्रद्धान कैसे होइ? जैसे काहूकै अहित आचरण है, वाकों वह अहित न भासै तो ताकै अभावको हितरूप कैसे मानै? तैसे ही जीवकै आस्रव की प्रवृत्ति है। याको यहु अहित न भासै तो ताकै अभावरूप संवरको कैसे हित मानै। बहुरि अनादितैं इस जीवकै आस्रवभाव ही भया, संवर कबहू न भया, तातैं संवर का होना भासै नाहीं। संवर होतै सुख हो है सो भासै नाहीं। संवरतैं आगामी दुःख न होसी सो भासै नाहीं। तातैं आस्रवका तो संवर करै नाहीं अर तिन अन्य पदार्थनिको दुःखदायक मानै है। तिनहीके न होने का उपाय किया करै है सो वे अपने आधीन नाहीं, वृथा ही खेदखिन्न हो है। ऐसे संवर तत्त्वका अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि **बंध का एकदेश अभाव होना सो निर्जरा है**। जो बंधको यथार्थ न पहिचानै, ताकै निर्जराका यथार्थ श्रद्धान कैसे होय? जैसे भक्षण किया हुवा विष आदिकतैं दुःख होना न जानै तो ताके उषाल* का उपायको कैसे भला जानै। तैसे बंधनरूप किए कर्मनितैं दुःख होना न जानै तो तिनकी निर्जरा का उपाय को कैसे भला जानै। बहुरि इस जीवकै इन्द्रियनितैं सूक्ष्मरूप जे कर्म तिनका तो ज्ञान होता नाहीं। बहुरि तिनविषै दुःखकूं कारणभूत शक्ति है ताका ज्ञान नाहीं। तातैं अन्य पदार्थनिहीके निमित्तको दुःखदायक जानि तिनके ही अभाव करनेका उपाय करै है सो वे अपने आधीन नाहीं। बहुरि कदाचित् दुःख दूरि करनेके निमित्त कोई इष्ट संयोगादि कार्य बनै है सो वह भी कर्मके अनुसार बनै है। तातैं तिनका उपायकरि वृथा ही खेद करै है। ऐसे निर्जरातत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि **सर्व कर्मबंधका अभाव ताका नाम मोक्ष है**। जो बंधको वा बंधजनित सर्व दुःखनिको नाहीं पहिचानै, ताके मोक्षका यथार्थ श्रद्धान कैसे होइ। जैसे काहूकै रोग है, वह तिस रोगको वा रोगजनित दुःखको न जानै तो सर्वथा रोग के अभावको कैसे भला जानै? तैसे याकै कर्मबन्धन है, यहु तिस बंधनको वा बंधजनित दुःखको न जानै तो सर्वथा बंधके अभावको कैसे भला जानै? बहुरि इस जीवके कर्मका वा तिनकी शक्तिका तो ज्ञान नाहीं, तातैं बाह्यपदार्थनिको दुःखका कारन जानि तिनके सर्वथा अभाव करनेका उपाय करै

---

* नष्ट करना

है। अर यहु तो जानै, सर्वथा दुःख दूर होनेका कारन इष्ट सामग्रीनिको मिलाय सर्वथा सुखी होगा सो कदाचित् होय सकै नाहीं। यहु वृथा ही खेद करै है। ऐसे मिथ्यादर्शनतैं मोक्षतत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होनेतैं अयथार्थ श्रद्धान है। या प्रकार यहु जीव मिथ्यादर्शनतैं जीवादि सप्त तत्त्व जे प्रयोजनभूत हैं तिनका अयथार्थ श्रद्धान करै है। बहुरि पुण्यपाप हैं ते इनहीके विशेष है। सो इन पुण्यपापनिकी एक जाति है तथापि **मिथ्यादर्शनतैं पुण्यको भला जानै है, पापको बुरा जानै है**। पुण्यकरि अपनी इच्छाके अनुसार किंचित् कार्य बनै है, ताको भला जानै है। पापकरि इच्छाके अनुसार कार्य न बनै ताको बुरा जानै सो दोनों ही आकुलता के कारण हैं, तातैं बुरे ही हैं। बहुरि यहु अपनी मानितैं तहाँ सुख-दुःख मानै है। परमार्थतैं **जहाँ आकुलता है तहाँ दुःख ही है**। तातैं पुण्यपापके उदयको भला बुरा जानना भ्रम ही है। बहुरि कोई जीव कदाचित् पुण्यपापके कारन जे शुभ अशुभ भाव तिनको भले बुरे जाने है सो भी भ्रम ही है, जातैं दोऊ ही कर्मबन्धन के कारण हैं। ऐसे पुण्यपापका अयथार्थज्ञान होतैं अयथार्थश्रद्धान हो है। या प्रकार अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यादर्शनका स्वरूप कह्या। यहु असत्यरूप है तातैं याहीका नाम मिथ्यात्व है। बहुरि यहु सत्यश्रद्धानतैं रहित है तातैं याहीका नाम अदर्शन है।

विशेष-उपर्युक्त कथन कथञ्चित् ठीक है। तथापि कथञ्चित् निम्नलिखित व्याख्यान भी शिरोधार्य करना चाहिए-हेतु और कार्य की विशेषता होने से पुण्य तथा पाप में अन्तर है। पुण्य का हेतु शुभ भाव है और पाप का हेतु अशुभ भाव है। पुण्य का कार्य सुख है और पाप का कार्य दुःख है। **(अमृतचन्द्राचार्य)** मूलवाक्य : हेतुकार्यविशेषाभ्यां विशेषः पुण्यपापयोः। हेतुशुभाशुभौ भावौ, कार्ये च सुखासुखे। **तत्त्वार्थसार ४/१०३**। इस प्रकार अमृतचन्द्राचार्य ही पुण्य तथा पाप में भेद का व्याख्यान करते हैं।

कुन्दकुन्दाचार्य ने भी कहा है-वर वयतवेहिं सग्गो मा दुक्खं होउ णिरय इयरेहिं। छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं। **(मो.पा. गाथा २५)** अर्थः- जिस प्रकार छाया तथा आतप में स्थित पथिकों के प्रतिपालक कारणों में बड़ा भेद है, उसी प्रकार पुण्य व पाप में भी बड़ा भेद है। व्रत तप आदि रूप पुण्य श्रेष्ठ है क्योंकि उससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है और उससे विपरीत अव्रत तथा अतप आदि रूप पाप श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि उससे नरक की प्राप्ति होती है।

स्वामी वीरसेन कहते हैं कि तीर्थङ्कर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और विद्याधरों की ऋद्धियाँ पुण्य के फल हैं **(धवल १/१०५)**। **जिनसेन स्वामी** कहते हैं कि हे पण्डितजन! चक्रवर्ती की विभूति को पुण्य के उदय से उत्पन्न हुई मानकर उस पुण्य का संचय करो जो समस्त सुखसम्पदाओं की खान है **(महापुराण ३७/२००)** –

ततः पुण्योदयोद्भूतां मत्वा चक्रभृतः श्रियं।
चिनुध्वं भो! बुधाः पुण्यं यत् पण्यः सुखसम्पदाम् ।।२००।।

आत्मानुशासनकार कहते हैं कि अपने निर्मल परिणामों द्वारा पाप का नाश और पुण्य का उपार्जन भली प्रकार करना चाहिए।। **श्लोक २३।।** (आत्मानुशासन पृ. १५ स्वयं पण्डित टोडरमलजी कृत टीका, गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान प्रकाशन)

पद्मनन्दी आचार्य लिखते हैं - "अतः हे पण्डितजनो ! निर्मलपुण्यराशि के भाजन होओ अर्थात् पुण्य उपार्जन करो।" **(प. पंच.१/१८८)**

जीवकाण्ड की **मुख्तारी टीका** के पृष्ठ ७०० से ७०२ भी देखें।

मिथ्याज्ञानका स्वरूप

अब मिथ्याज्ञानका स्वरूप कहिए है-प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वनिका अयथार्थ जानना ताका नाम मिथ्याज्ञान है। ताकरि तिनके जाननेविषै संशय विपर्यय अनध्यवसाय हो है। तहाँ ऐसे है कि ऐसे है, ऐसा परस्पर विरुद्धता लिए दोयरूप ज्ञान ताका नाम संशय है, जैसे 'मैं आत्मा हूँ कि शरीर हूँ' ऐसा जानना। बहुरि ऐसे ही है, ऐसा वस्तुस्वरूपतैं विरुद्धता लिए एकरूप ज्ञान ताका नाम विपर्यय है, जैसे 'मैं शरीर हूँ' ऐसा जानना। बहुरि किछु है, ऐसा निर्धाररहित विचार ताका नाम अनध्यवसाय है जैसे 'मैं कोई हूँ' ऐसा जानना। या प्रकार प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वनिविषै संशय विपर्यय अनध्यवसायरूप जो जानना होय ताका नाम मिथ्याज्ञान है। बहुरि अप्रयोजनभूत पदार्थनिको यथार्थ जानै वा अयथार्थ जानै ताकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम नाहीं है। जैसे मिथ्यादृष्टि जेवरीको जेवरी जानै तो सम्यग्ज्ञान नाम न होय अर सम्यग्दृष्टि जेवरीको सांप जानै तो मिथ्याज्ञान नाम न होय।

इहाँ **प्रश्न**-जो प्रत्यक्ष साँचा झूठा ज्ञानको सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञान कैसे न कहिए?

ताका **समाधान**-जहाँ जाननेहीका, साँचा झूठा निर्द्धार करनेही का प्रयोजन होय तहाँ तो कोई पदार्थ है ताका साँचा झूठा जानने की अपेक्षा ही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पावै है। जैसे प्रत्यक्ष परोक्षप्रमाणका वर्णनविषै कोई पदार्थ है ताका सांचा जानने रूप सम्यग्ज्ञानका ग्रहण किया है। संशयादिरूप जाननेको अप्रमाणरूप मिथ्याज्ञान कह्या है। बहुरि इहाँ संसार मोक्षके कारणभूत सांचा झूठा जाननेका निर्द्धार करना है सो जेवरी सर्पादिकका यथार्थ वा अन्यथा ज्ञान संसार मोक्षका कारण नाहीं। तातैं तिनकी अपेक्षा इहां मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान न कह्या। इहाँ प्रयोजनभूत जीवादिकतत्त्वनिहीका जाननेकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान कह्या है। इस ही अभिप्रायकरि सिद्धान्तविषै मिथ्यादृष्टिका तो सर्वजानना मिथ्याज्ञान ही कह्या अर सम्यग्दृष्टि का सर्वजानना सम्यग्ज्ञान कह्या।

इहाँ **प्रश्न**-जो मिथ्यादृष्टिकै जीवादि तत्त्वनिका अयथार्थ जानना है ताको मिथ्याज्ञान कहो। जेवरी सर्पादिकके यथार्थ जाननेको तो सम्यग्ज्ञान कहो?

ताका **समाधान**-मिथ्यादृष्टि जानै है, तहाँ वाकै सत्ता असत्ता का विशेष नाहीं है। तातैं कारणविपर्यय वा स्वरूपविपर्यय वा भेदाभेद विपर्ययको उपजावै है। तहाँ ताको जानै है ताका मूल कारणको नहि पहिचानै।

अन्यथा कारण मानै सो तो कारण विपर्यय है। बहुरि जाको जानै ताका मूलवस्तु तत्त्वस्वरूप ताको नाहीं पहिचानै, अन्यथा स्वरूप मानै सो स्वरूप विपर्यय है। बहुरि जाको जानै ताको यहु इनतैं भिन्न है, यहु इनतैं अभिन्न है ऐसा न पहिचानै, अन्यथा भिन्न अभिन्नपनो मानै सो भेदाभेदविपर्यय है। ऐसे मिथ्यादृष्टिकै जाननेविषै विपरीतता पाइए है। जैसे मतवाला माताको भार्या मानै, भार्याको माता मानै, तैसे मिथ्यादृष्टिकै अन्यथा जानना है। बहुरि जैसे काहूकालविषै मतवाला माताको माता व भार्याको भार्या भी जानै तो भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान लिये जानना न हो है। तातैं वाकै यथार्थज्ञान न कहिए। तैसे मिथ्यादृष्टि काहू काल विषै किसी पदार्थको सत्य भी जानै तो भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान लिये जानना न हो है। अथवा सत्य भी जानै परन्तु तिनकरि अपना प्रयोजन तो अयथार्थ ही साधै है तातैं वाकै सम्यग्ज्ञान न कहिए। ऐसे मिथ्यादृष्टिकै ज्ञानको मिथ्याज्ञान कहिए है।

इहां **प्रश्न**-जो इस मिथ्याज्ञानका कारण कौन है?

ताका **समाधान**-मोहके उदयतैं जो मिथ्यात्वभाव होय, सम्यक्त्व न होय सो इस मिथ्याज्ञान का कारण है। जैसे विष के संयोगतैं भोजन भी विषरूप कहिए। तैसे मिथ्यात्व के सम्बन्धतैं ज्ञान है सो मिथ्याज्ञान नाम पावै है।

मिथ्याज्ञान में ज्ञानावरण कारण नहीं है

इहाँ **कोऊ कहै**-ज्ञानावरणका निमित्त क्यों न कहो?

ताका **समाधान**- ज्ञानावरणके उदयतैं तो ज्ञानका अभावरूप अज्ञानभाव हो है। बहुरि क्षयोपशमतैं किंचित् ज्ञानरूप मति आदि ज्ञान हो है। जो इनविषै काहूको मिथ्याज्ञान काहूको सम्यग्ज्ञान कहिए तो ए दोऊही भाव मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टिकै पाइए है तातैं तिन दोऊनिकै मिथ्याज्ञान वा सम्यग्ज्ञानका सद्भाव होइ जाय तो सिद्धान्तविषै विरुद्ध होइ। तातैं ज्ञानावरणका निमित्त बनै नाहीं।

बहुरि इहां **कोऊ पूछै** कि जेवरी सर्पादिक के अयथार्थज्ञानका कौन कारण है तिसहीको जीवादि तत्त्वनिका अयथार्थ यथार्थ ज्ञान का कारण कहो?

ताका उत्तर-जो जाननेविषै जेता अयथार्थपना हो है तेता तो ज्ञानावरणका उदयतैं हो है। अर जेता यथार्थपना हो है तेता ज्ञानावरणका क्षयोपशमतैं हो है जैसे जेवरी को सर्प जान्या सो यथार्थ जानने की शक्तिका घानक उदयतैं तातैं अयथार्थ जानै है। बहुरि जेवरी को जेवरी जानी नहीं। यथार्थ जाननेकी शक्तिका कारण क्षयोपशम है तातैं यथार्थ जानै है। तैसे ही जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ जानने की शक्ति होने वा न होने विषै तो ज्ञानावरणहीका निमित्त है परन्तु जैसे काहू पुरुषकै क्षयोपशमतैं दुःखको वा सुखको कारणभूत पदार्थनिको यथार्थ जाननेकी शक्तिहोय तहाँ जाकै असातावेदनीयका उदय होय सो दुःखको कारणभूत जो होय तिसहीको वेदै, सुखका कारणभूत पदार्थनिको न वेदै अर जो सुखका कारणभूत पदार्थको वेदै तो सुखी हो जाय। सो असाताका उदय होतैं होय सकै नाहीं। तातैं इहां दुःखको कारणभूत अर सुखको कारणभूत पदार्थ वेदनेविषै ज्ञानावरणका निमित्त नाहीं, असाता साता का उदय ही कारणभूत है। तैसे ही जीवकै

प्रयोजनभूत जीवादिकतत्त्व, अप्रयोजनभूत अन्य तिनके यथार्थ जानने की शक्ति होय। तहाँ जाकै मिथ्यात्वका उदय होय सो जे अप्रयोजनभूत होय तिनहीको वेदै, जानै, प्रयोजनभूतको न जानै। जो प्रयोजनभूतको जानै तो सम्यग्दर्शन होय जाय सो मिथ्यात्वका उदय होतैं होइ सकै नाहीं। तातैं इहाँ प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ जाननेविषै ज्ञानावरण का निमित्त नाहीं, मिथ्यात्वका उदय अनुदय ही कारणभूत है। इहाँ ऐसा जानना-जहाँ एकेन्द्रियादिकके जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति ही न होय तहाँ तो ज्ञानावरणका उदय अर मिथ्यात्वका उदयतैं भया मिथ्यादर्शन इन दोऊनिका निमित्त है। बहुरि जहाँ संज्ञी मनुष्यादिकै क्षयोपशमादि लब्धि होतैं शक्ति होय अर न जानै तहाँ मिथ्यात्वके उदयहीका निमित्त जानना। याहीतैं मिथ्याज्ञानका मुख्य कारण ज्ञानावरण न कह्या, मोहका उदयतैं भया भाव सो ही कारण कह्या है।

मिथ्यादर्शन और ज्ञान का पौर्वापर्य

बहुरि इहाँ **प्रश्न**-जो ज्ञान भए श्रद्धान हो है तातैं पहलै मिथ्याज्ञान कहो, पीछै मिथ्यादर्शन कहो?

ताका **समाधान**-है तो ऐसे ही, जानै बिना श्रद्धान कैसे होय। परन्तु मिथ्या अर सम्यक् ऐसी संज्ञा ज्ञानकै मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शनके निमित्ततैं हो है। जैसे मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टि सुवर्णादि पदार्थनिको जानै तो समान है परन्तु सो ही जानना मिथ्यादृष्टिके मिथ्याज्ञान नाम पावै, सम्यग्दृष्टिकै सम्यग्ज्ञान नाम पावै। ऐसेही सर्वमिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानको कारण मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शन जानना। तातैं जहाँ सामान्यपने ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहाँ तो ज्ञान कारणभूत है ताको पहिले कहना अर श्रद्धान कार्यभूत है ताको पीछे कहना। बहुरि जहाँ मिथ्या सम्यग्ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहाँ श्रद्धान कारणभूत है ताको पहले कहना, ज्ञान कार्यभूत है ताको पीछे कहना।

बहुरि **प्रश्न**-जो ज्ञान श्रद्धान तो युगपत् हो है, इन विषै कारण कार्यपनो कैसे कहो हो?

ताका **समाधान**- वह होय तो वह होय इस अपेक्षा कारण-कार्यपना हो है। जैसे दीपक अर प्रकाश युगपत् हो है तथापि दीपक होय तो प्रकाश होय, तातैं दीपक कारण है, प्रकाश कार्य है। तैसे ही ज्ञान श्रद्धान कै वा मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञानकै वा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान कै कारण- कार्यपना जानना।

बहुरि **प्रश्न**-जो मिथ्यादर्शन के संयोगतैं ही मिथ्याज्ञान नाम पावै है तो एक मिथ्यादर्शन ही संसारका कारण कहना था, मिथ्याज्ञान जुदा काहेको कह्या?

ताका **समाधान**-ज्ञानहीकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टि कै क्षयोपशमतैं भया यथार्थ ज्ञान तामें किछु विशेष नाहीं अर यहु ज्ञान केवलज्ञानविषै भी जाय मिलै है, जैसे नदी समुद्र में मिलै। तातैं ज्ञानविषै किछु दोष नाहीं परन्तु क्षयोपशम ज्ञान जहाँ लागै तहाँ एक ज्ञेयविषै लागै सो यहु मिथ्यादर्शनके निमित्ततैं अन्य ज्ञेयनिविषै तो ज्ञान लागै अर प्रयोजनभूतजीवादि तत्त्वनिका यथार्थ निर्णय करनेविषै न लागै सो यहु ज्ञानविषै दोष भया। याको मिथ्याज्ञान कह्या। बहुरि जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ श्रद्धान न होय सो यहु श्रद्धान विषै दोष भया। याको मिथ्यादर्शन कह्या। ऐसे लक्षणभेदतैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान जुदा कह्या।

ऐसे मिथ्याज्ञान का स्वरूप कह्या। इसहीको तत्त्वज्ञानके अभावतैं अज्ञान कहिए हैं। अपना प्रयोजन न साधै तातैं याहीको कुज्ञान कहिए है।

मिथ्याचारित्रका स्वरूप

अब मिथ्याचारित्रका स्वरूप कहिए है-जो चारित्रमोहके उदयतैं कषाय भाव होइ ताका नाम मिथ्याचारित्र है। इहाँ अपने स्वभावरूप प्रवृत्ति नाहीं, झूठी परस्वभावरूप प्रवृत्ति किया चाहै सो बनै नाहीं, तातैं याका नाम मिथ्याचारित्र है। सोइ दिखाइए है-अपना स्वभाव तो दृष्टा ज्ञाता है सो आप केवल देखनहारा जाननहारा तो रहै नाहीं। जिन पदार्थनिको देखै जानै तिन विषै इष्ट अनिष्टपनो मानै तातैं रागी द्वेषी होय काहूका सद्भावको चाहै, काहूका अभावको चाहै सो उनका सद्भाव अभाव याका किया होता नाहीं। जातैं **कोई द्रव्य कोई द्रव्यका कर्ता हर्ता है नाहीं।** सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभावरूप परिणमै हैं। यहु वृथा ही कषाय भावकरि आकुलित हो है। बहुरि कदाचित् जैसे आप चाहै तैसे ही पदार्थ परिणमै तो अपना परिणमाया तो परिणम्या नाहीं। जैसे गाड़ी चालै है अर वाको बालक धकायकरि ऐसा मानै कि याको मैं चलाऊँ हूँ। सो वह असत्य मानै है; जो वाका चलाया चालै है तो वह न चालै तब क्यों न चलावै? तैसे पदार्थ परिणमै हैं अर उनको यहु जीव अनुसारी होय करि ऐसा मानै याको मैं ऐसे परिणमाऊँ हूँ। सो यहु असत्य मानै है। जो याका परिणमाया परिणमै तो वह तैसे न परिणमै तब क्यों न परिणमावै? सो जैसे आप चाहै तैसे तो पदार्थ का परिणमन कदाचित् ऐसे ही बनाव बनै तब हो है, बहुत परिणमन तो आप न चाहै तैसे ही होता देखिए है। तातैं यहु निश्चय है, **अपना किया काहू का सद्भाव अभाव होता नाहीं। बहुरि जो अपना किया सद्भाव अभाव होई ही नाहीं तो कषायभाव करनेतैं कहा होय?** केवल आप ही दुःखी होय। जैसे कोऊ विवाहादि कार्य विषै जाका किछु कह्या न होय अर वह आप कर्ता होय कषाय करै तो आप ही दुःखी होय तैसे जानना। तातैं कषायभाव करना ऐसा है जैसा जल का बिलोवना किछु कार्यकारी नाहीं। तातैं इन कषायनिकी प्रवृत्ति को मिथ्याचारित्र कहिए है। बहुरि कषायभाव हो है सो पदार्थनिकों इष्ट अनिष्ट माने ही है। सो इष्ट अनिष्ट मानना भी मिथ्या है। जातैं कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट है नाहीं। कैसे? सो कहिए है।

विशेष : इष्ट शब्द में इष् (इच्छा करना) धातु से क्त प्रत्यय होकर इष्ट शब्द बना है जिसका अर्थ है-इच्छित, अभिलषित या प्रिय या चाहा गया। अतः अनिष्ट यानी अनिच्छित, अनभिलषित, अप्रिय या नहीं चाहा गया। यहाँ पदार्थ को इष्ट या अनिष्ट मानना मिथ्या कहा गया है। पदार्थ इष्ट अनिष्ट नहीं होता। परन्तु ग्रन्थ में ही अन्यत्र कई जगह (पृ. ६०, ७६ से ७६, १०२, १५४, १७०, २५७, ३२५, ३३६, पर) स्वयं श्रद्धेय पण्डित जी ने इष्ट तथा अनिष्ट पदार्थ विषयक कथन किया है। एक कथन देखिए- **"इस लोकविषै तो इष्ट पदार्थ थोरे देखिए है, अनिष्ट घने देखिए हैं।" (पृ. १५४)**

(नोट-यह पृष्ठ संख्या सस्ती ग्रन्थमाला दिल्ली से प्रकाशित चतुर्थ संस्करण की है) इष्ट का

अर्थ ही वह है (इच्छित) जो मोह (लोभ) के रहते हुए ही बन सकता है क्योंकि इच्छा का अर्थ ही लोभ होता है (जयधवल १२/१६२) अतः इष्ट अनिष्ट (इच्छित-अनिच्छित) विकल्प भी लोभ कषाय के अस्तित्व तक ही हो सकते हैं, इससे आगे त्रिकाल में भी नहीं। आगम में चूंकि इष्ट वियोग तथा अनिष्ट संयोग आर्तध्यान प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक बताये हैं। (प्रमत्तसंयतानां तु निदानवर्ज्यमन्यदार्तत्रयं प्रमादोदयोद्रेकात्कदाचित् स्यात्-सर्वार्थसिद्धि ९/३४) अतः यह ध्रुव सत्य है कि करणानुयोग की दृष्टि से इष्टवियोग तथा अनिष्ट - संयोग का अस्तित्व भावलिंगी सन्तों के भी होता है। यहाँ जो सम्यक्त्वी के भी उसका निषेध किया उसका अभिप्राय यह है कि सम्यक्त्वी के परपदार्थ के प्रति आसक्ति समन्वित राग (इष्टता) तथा प्रतिशोध संयुक्त द्वेष नहीं होता। (पं. ध. २/४२७-२८) शेष सब सुगम है। द्रव्यानुयोग से करणानुयोग का कथन सूक्ष्म है। (देखो-इसी ग्रन्थ का 'द्रव्यानुयोग में व्याख्यान का विधान' प्रकरण)। द्रव्यानुयोग में सातवें से शुद्धोपयोग माना पर करणानुयोग में ११वें से माना। तथैव यहाँ इष्ट-अनिष्ट का विकल्प सम्यक्त्वी के निषिद्ध किया। करणानुयोग में उसे ही सातवें गुणस्थान से निषिद्ध किया।

इष्ट-अनिष्ट की कल्पना मिथ्या है

आपको सुखदायक उपकारी होय ताको इष्ट कहिए। आपको दुःखदायक अनुपकारी होय ताको अनिष्ट कहिए। सो लोक विषै सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभावही के कर्त्ता हैं। कोऊ काहूको सुखदुःखदायक उपकारी अनुपकारी है नाहीं। यह जीव ही अपने परिणामनिविषै तिनको सुखदायक उपकारी मानि इष्ट जानै है अथवा दुःखदायक अनुपकारी जानि अनिष्ट मानै है। जातैं एक ही पदार्थ काहूको इष्ट लागै है, काहूको अनिष्ट लागै है। जैसे जाको वस्त्र न मिले ताको मोटा वस्त्र इष्ट लागै अर जाको महीन वस्त्र मिलै ताको वह अनिष्ट लागै है। सूकरादिकको विष्टा इष्ट लागै है, देवादिकको अनिष्ट लागै है। काहूको मेघवर्षा इष्ट लागै है, काहूको अनिष्ट लागै है। ऐसे ही अन्य जानने। बहुरि याही प्रकार एक जीव को भी एक ही पदार्थ काहू कालविषै इष्ट लागै है, काहू कालविषै अनिष्ट लागै है। बहुरि यहु जीव जाको मुख्यपने इष्ट मानै सो भी अनिष्ट होता देखिए है, इत्यादि जानने। जैसे शरीर इष्ट है सो रोगादिसहित होय तब अनिष्ट होइ जाय। पुत्रादिक इष्ट है सो कारणपाय अनिष्ट होते देखिए है, इत्यादि जानने। बहुरि यहु जीव जाको मुख्यपने अनिष्ट मानै सो भी इष्ट होता देखिये है। जैसे गाली अनिष्ट है सो सासरे में इष्ट लागै है, इत्यादि जानने। ऐसे पदार्थविषै इष्ट अनिष्टपनो है नाहीं। जो पदार्थविषै इष्ट अनिष्टपनो होतो तो जो पदार्थ इष्ट होता सो सर्वको इष्ट ही होता, जो अनिष्ट होता सो अनिष्ट ही होता, सो है नाही। यहु जीव आप ही कल्पनाकरि तिनको इष्ट अनिष्ट मानै है सो यह कल्पना झूठी है। बहुरि पदार्थ है सो सुखदायक उपकारी वा दुःखदायक अनुपकारी हो है सो आपही नाहीं हो है, पुण्य पापके उदयके अनुसारि हो है। जाकै पुण्यका उदय हो है ताकै पदार्थनिका संयोग सुखदायक उपकारी हो है, जाकै पापका उदय हो है ताकै पदार्थनिका संयोग दुःखदायक अनुपकारी होहै सो प्रत्यक्ष देखिये है। काहूकै स्त्रीपुत्रादिक सुखदायक है, काहूकै दुःखदायक है;

व्यापार किए काहूकै नफा हो है, काहूकै टोटा हो है; काहूकै शत्रु भी किंकर हो है, काहूकै पुत्र भी अहितकारी हो है तातैं जानिए है, पदार्थ आप ही इष्ट अनिष्ट होते नाहीं, कर्म उदयके अनुसार प्रवर्तै है। जैसे काहूकै किंकर अपने स्वामी के अनुसार किसी पुरुषको इष्ट अनिष्ट उपजावै तो किछू किंकरनिका कर्त्तव्य नाहीं, उनके स्वामी का कर्त्तव्य है। जो किंकरनिहीको इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तैसे कर्म के उदयतैं प्राप्तभए पदार्थ कर्मके अनुसार जीवको इष्ट अनिष्ट उपजावे तो किछू पदार्थनिका कर्त्तव्य नाहीं, कर्म का कर्त्तव्य है। जो पदार्थनिहीको इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तातैं यहु बात सिद्ध भई कि पदार्थनिको इष्ट अनिष्ट मानि तिनविषै रागद्वेष करना मिथ्या है।

इहाँ **कोऊ कहै** कि बाह्य वस्तुनिका संयोग कर्म निमित्ततैं बनै है तो कर्मनिविषै तो रागद्वेष करना।

ताका **समाधान**-कर्म तो जड़ हैं, उनके किछू सुख-दुःख देने की इच्छा नाहीं।[1] बहुरि वे स्वयमेव तो कर्मरूप परिणमे नाहीं, याके भावनिकै निमित्ततैं कर्मरूप हो हैं; जैसे कोऊ अपने हाथकरि भाटा (पत्थर) लेई अपना सिर फोरै तो भाटाका कहा दोष है? तैसे जीव अपने रागादिक भावनिकरि पुद्गलको कर्मरूप परिणमाय अपना बुरा करै तो कर्मका कहा दोष है। तातैं कर्मस्यों भी राग द्वेष करना मिथ्या है। या प्रकार परद्रव्यनिको इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करना मिथ्या है। जो परद्रव्य इष्ट अनिष्ट होता अर तहाँ राग द्वेष करता तो मिथ्या नाम न पाता। वे तो इष्ट अनिष्ट हैं नाहीं अर यहु इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करै, तातैं इन परिणामनिको मिथ्या कह्या है। मिथ्यारूप जो परिणमन ताका नाम मिथ्याचारित्र है।

अब इस जीवके रागद्वेष होय है, ताका विधान वा विस्तार दिखाइए है-

राग-द्वेष की प्रवृत्ति

प्रथम तो इस जीवकै पर्यायविषै अहंबुद्धि है सो आपको वा शरीर को एक जानि प्रवर्तै है। बहुरि इस शरीरविषै आपको सुहावै ऐसी इष्ट अवस्था हो है तिसविषै राग करै है। आपको न सुहावै ऐसी अनिष्ट

कथंचित् दुःख का कारण कर्म हैं, कथंचित् नहीं हैं :

आठ द्रव्यकर्म दुःख के कारण हैं। ये जीव को संसार में रुलाते हैं अतः कर्म ही कथंचित् दुःख के कारण हैं।

प्रश्न - श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा की जयमाला में श्री रामचन्द्र जी ने लिखा है कि **"करम विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।**
अगनि सहै घनघात, लोह की संगति पाई ।।"

अतः कर्म सुख दुःख देते हैं, इस बात को पं. रामचन्द्र जी ने काट दिया है।

उत्तर- भैया, आप प्रायः हर प्रकरण अधूरा ही पढ़ कर निर्णय कर लेते हैं, अतः यह आक्षेपक स्थिति आपकी हुई है। पं. रामचन्द्र जी ने उसी जयमाला में लिखा है-

देखो करम अपार, सुभट जड़, चेतन नाहीं।
चेतन कूँ करि रंक, चोर जिय बाँधत जाही।
सातों अवनि मंझार, नरक दारुण दुःख देही।
कोऊ शरनो नाहीं, धरम बिन, निश्चै येही ।।६।।

अर्थ- पं. रामचन्द्र जी श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा की जयमाला में कहते हैं कि हे भव्यो ! देखो, ये कर्म अपार हैं, सुभट

हैं, तथा चेतन नहीं हैं- ये जड़ हैं तो भी चेतन आत्मा को रंक करके चोर के समान उसे बाँधते हैं तथा सातों नरकों के दारुण दुःख प्रदान करते हैं।

इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी ने तो कर्म कथंचित् दुःख देते हैं, कथंचित् नहीं देते, यह पूरा ही स्याद्वाद पत्र ५ व ११ में भर दिया है।और हम ऐसे हैं कि उस स्याद्वादी प्रकरण में से मात्र एक निश्चय पक्ष को ले लेते हैं तथा व्यवहार पक्ष का अपलाप कर देते हैं। इस पर पं. टोडरमल जी कहते हैं- जीव अपने अभिप्राय तैं निश्चय नय की मुख्यता करि जो कथन किया होय, ताही कौं ग्रहि करि मिथ्या दृष्टि को धारै है। (मो. मा. प्र. अधि. ७ पृ. २९१)

यह कथन करोड़ों ग्रन्थोंका सार है। श्रीमद्राजचन्द्र कहते हैं कि- "सर्व जीव हितकारी ज्ञानी पुरुष की वाणी को किसी भी एकान्त दृष्टि को ग्रहण करके अहितकारी अर्थ में न ले जाएँ, यह बात निरन्तर स्मरण रखने योग्य है। (श्रीमद् भाग २ पृ. ६८८ । प्रथम संस्करण, १९७४ ई.) यदि व्यवहार गलत हो तो "हमें अग्नि जलाती है" यह वाक्य व्यवहारनय का होने के कारण गलत ही ठहरा। कृपया अग्नि को स्पर्श करके देखें कि व्यवहार का कथन सत्य है या असत्य ? हे सत्पुरुषो ! महावीर के "व्यवहारनय" का अपलाप करना योग्य नहीं इसलिए व्यवहार का कथन होते हुए भी यह कथन उचित ही है कि द्रव्य कर्म दुःख देते हैं। कहा भी है-

कर्म महारिपु जोर, एक न कान करैजी ।
मनमाने दुःख देहिं काहूसों नाहिं डरै जी ।। ३ ।।
कबहूँ इतर निगोद कबहूँ नरक दिखावे ।
सुरनर पशु गति माहिं बहुविधि नाच नचावे ।। ४ ।।

X X X X X

मैं तो एक अनाथ ये मिलि दुष्ट घनेरे ।
कियो बहुत बेहाल सुनियो साहिब मेरे ।।
ज्ञानमहानिधि लूटि रंक निबल करि डार्यो ।
इनही तुम मुझ माँहि हे जिन अन्तर पार्यो ।। ८।। भूधरदास

श्री आदिनाथ पूजा में भी कहा है-

अष्ट कर्म, मैं एकलो, यह दुष्ट (कर्म) महादुःख देत हो।
कबहूँ इतर निगोद में मोकूं, पटकत करत अचेत हो ।।
म्हारी दीनतणी सुनो विनती।

ये सब कथन मिथ्या अपलाप नहीं हैं।

यदि यह कहा जाए कि जड़कर्म में जीव को-चेतनको पीड़ित करने की शक्ति कैसे मानी जा सकती है? तो उत्तर इस प्रकार है- वैज्ञानिक लोहे के एक टुकड़े के चारों ओर धातु का एक तार लपेट कर उस तार में विद्युत् प्रवाह छोड़ते हैं। ऐसा करने पर तत्काल वह लोहे का टुकड़ा चुम्बक बन जाता है। वैज्ञानिक इस यन्त्र से अनेक कार्य ले लेते हैं। परन्तु जैसे ही इस तार में विद्युत् प्रवाह बन्द कर देते हैं, उसी क्षण उस लोहे के चुम्बक की शक्ति समाप्त हो जाती है और वह लोहे का टुकड़ा केवल लोहा ही रह जाता है। फिर वह अपेक्षित कार्य नहीं कर पाता। इसी प्रकार जब हमारी आत्मा में रागद्वेष की भावनाएँ उठती हैं तो इन भावनाओं के फलस्वरूप आसपास की कार्मणवर्गणाएँ आत्मा की ओर आकृष्ट होती हैं और उन कार्मण वर्गणाओं में, आत्मा की भावनाओं के अनुसार सुख-दुःख देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। (सच्चे सुख का मार्ग पृ. १६५ तथा जयधवल १ प्रस्तावना पृ. ७५ तृतीय अनु. द्वितीय संस्करण)

अमितगति आचार्य कहते हैं कि विष तथा मदिरा अचेतन पदार्थ हैं किन्तु उनमें विकार करने की शक्ति पाई जाती है। फिर ऐसा कौन चतुर पुरुष होगा जो अचेतन कर्मों में कार्य करने की शक्ति को न माने?

विलोकमाना स्वयमेव शक्तिं, विकारहेतुं विषमद्यजाताम् ।
अचेतनं कर्म करोति कार्यं, कथं वदन्तीति कथं विदग्धाः ।। ७ । ६१।।

अवस्था हो है तिसविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीर की इष्ट अवस्था के कारणभूत बाह्य पदार्थनिविषै तो राग करै है अर ताकै घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीर की अनिष्ट अवस्था के कारणभूत बाह्यपदार्थनिविषै तो द्वेष करै है अर ताके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इन विषै जिन बाह्य पदार्थनिसों राग करै है तिनके कारणभूत अन्य पदार्थनिविषै राग करै है, तिनके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि जिन बाह्य पदार्थनिस्यों द्वेष करै है तिनके कारणभूत अन्य पदार्थनिविषै द्वेष करै है, तिनके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इन विषै भी जिनस्यों राग करै है तिनके कारण वा घातक अन्य पदार्थनिविषै राग वा द्वेष करै है अर जिनस्यों द्वेष करै है तिनके कारण वा घातक अन्य पदार्थनिविषै द्वेष वा राग करै है। ऐसे ही रागद्वेष की परम्परा प्रवर्तै है। बहुरि केई बाह्य पदार्थ शरीर की अवस्था को कारण नाहीं तिन विषै भी रागद्वेष करै है। जैसे गऊ आदि के पुत्रादिकतैं किछू शरीर का इष्ट होय नाहीं तथापि तहाँ राग करै है। जैसे कूकरा आदिके बिलाई आदिक तैं किछू शरीर का अनिष्ट होय नाहीं तथापि तहाँ द्वेष करै है। बहुरि केई वर्ण गन्ध शब्दादिकके अवलोकनादिकतैं शरीर का इष्ट होता नाहीं तथापि तिनविषै राग करैं है। केई वर्णादिकके अवलोकनादिकतैं शरीर का अनिष्ट होता नाहीं तथापि तिनविषै द्वेष करै है। ऐसे भिन्न बाह्य पदार्थनिविषै रागद्वेष हो है। बहुरि इनविषै भी जिनस्यों राग करै है तिनके कारण अर घातक अन्य पदार्थनिविषै राग वा द्वेष करै है अर जिनस्यो द्वेष करै है तिनके कारण वा घातक अन्यपदार्थ तिनविषै द्वेष वा राग करै है। ऐसे ही यहाँ भी रागद्वेष की परम्परा प्रवर्तै है।

प्रश्न- कर्म से विकार नहीं होता। विकार भी उस समय का स्वतन्त्र परिणमन है। मतलब विकारी पर्याय भी स्वतन्त्र परिणमन है। उस समय की पर्याय की वैसी ही योग्यता है। सचमुच तो चारित्रगुण की ही उस समय की योग्यता के कारण ही रागद्वेष होता है। कर्म कुछ नहीं करते।

उत्तर- यह कथन एकान्त विष से विषाक्त है। मोक्षमार्ग प्रकाशक में लिखा है कि रागादि का कारण तो द्रव्यकर्म है। मो.मा.प्र. पृ. १६ इस तरह आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी के वाक्य होने पर भी यदि रागादिक को अकारण मानते हैं तो रागादि के स्वभाव होने का प्रसग आएगा। क्योंकि **"पर निमित्त बिना होइ ताहि का नाम स्वभाव है।"** और वैसा होने पर सिद्धों में भी रागादि के होने का प्रसंग आएगा। अतः स्याद्वादी भव्यों का रागादि की उत्पत्ति में द्रव्यकर्म को कारण मानना चाहिए। ऐसा विपुलाचल पर्वत पर स्थित वर्धमान भट्टारक ने अपनी दिव्यध्वनि में बार-बार कहा था।

जिनको रागादि को स्वभाव मानना अनिष्ट होवे वे रागादि की उत्पत्ति में द्रव्यकर्म को भी कारण मानें और जिन्हें कर्मों की परतन्त्रता से जीव को पृथक् कर सर्वथा स्वतन्त्र बनाना इष्ट हो वे रागादि पर्यायों की परतन्त्रता भी स्वीकार करें। यदि रागादि पर्यायें स्वतन्त्र समुत्पन्न (स्व-अधीन सञ्जात) हों, अपने कारण से बनती हों तो फिर सिद्धों के भी उन सर्वथा स्वतन्त्र रागादि पर्यायों के अस्तित्व का प्रसंग आएगा।

भगवद् वीरसेन स्वामी कहते हैं कि **जीवस्स परतंत भावुप्पायणेण** अर्थात् **"(अभी) जीव परतन्त्र है।"** (धवला १२/३८१ आदि) फिर उसकी पर्याय स्वतन्त्र कैसी ?

कथंचित् द्रव्य कर्म फल नहीं देते, बल्कि भाव कर्म यानी जीव के भाव ही फल देते हैं। क्योंकि कर्मबन्ध भी तो भावों से होता है। तथा सुख-दुःख का निश्चय नय से सम्बन्ध तो जीव भाव से ही है। इस तरह एकद्रव्यग्राहीनय की अपेक्षा द्रव्यकर्म फल नहीं देते, भाव ही फल देते हैं। - स्याद्वाद, जवाहरलाल सि. शा. भीण्डर से साभार

इहाँ प्रश्न- जो अन्य पदार्थनिविषै तो रागद्वेष करने का प्रयोजन जान्या परन्तु प्रथम ही तो मूलभूत शरीर की अवस्थाविषै वा शरीर की अवस्थाको कारण नाहीं, तिन पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट मानने का प्रयोजन कहा है -

ताका **समाधान**- जो प्रथम मूलभूत शरीर की अवस्था आदिक है तिन विषै भी प्रयोजन विचार रागद्वेष करै तो मिथ्याचरित्र काहेको नाम पावैं। तिनविषै, बिना ही प्रयोजन रागद्वेष करै है अर तिनहीके अर्थि अन्यस्यों रागद्वेष करै है तातैं सर्व रागद्वेष परिणतिका नाम मिथ्याचारित्र कह्या है।

इहाँ **प्रश्न**-जो शरीरकी अवस्था वा बाह्य पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट मानने का प्रयोजन तो भासै नाहीं अर इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाहीं सो कारण कहा है?

ताका **समाधान**- इस जीवकै चारित्रमोह के उदयतैं रागद्वेषभाव होय सो ए **भाव कोई पदार्थका आश्रय बिना होय सकै नाहीं**। जैसे राग होय सो कोई पदार्थ विषै होय, द्वेष होय सो कोई पदार्थ विषै होय। ऐसे तिन **पदार्थनिकै अर रागद्वेषकै निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है**। तहाँ विशेष इतना जो केई पदार्थ तो मुख्यपने रागको कारण हैं, केई पदार्थ मुख्यपने द्वेष को कारण हैं। केई पदार्थ काहूको काहू काल विषै राग के कारण हो हैं, काहूको काहूकाल विषै द्वेष के कारण हो हैं। इहाँ इतना जानना- **एक कार्य होने विषै अनेक कारण चाहिए हैं** सो रागादिक होने विषै अंतरंग कारण मोहका उदय है सो तो बलवान है अर बाह्य कारण पदार्थ है सो बलवान नाहीं है। महामुनिनिकै मोह मन्द होतैं बाह्य पदार्थनिका निमित्त होतैं भी रागद्वेष उपजते नाहीं। पापी जीवनिकै मोह तीव्र होतैं बाह्यकारण न होतैं भी तिनका संकल्प ही करि रागद्वेष हो है। तातैं मोहका उदय होतैं रागादिक हो हैं तहाँ जिस बाह्यपदार्थ का आश्रय करि रागभाव होना होय, तिस विषै बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजन लिए इष्टबुद्धि हो है। बहुरि जिस पदार्थका आश्रय करि द्वेषभाव होना होय, तिस विषै बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजन लिए अनिष्ट बुद्धि हो है। तातैं मोहके उदयतैं पदार्थनिको इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाहीं। ऐसे पदार्थनि विषै इष्ट अनिष्ट बुद्धि होतैं जो रागद्वेष रूप परिणमन होय ताका नाम मिथ्याचारित्र जानना। बहुरि इन रागद्वेषनि ही के विशेष क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदरूप कषायभाव हैं। ते सर्व इस मिथ्याचारित्रहीके भेद जानने। इनका वर्णन पूर्वे किया ही है। बहुरि **इस मिथ्याचारित्रविषै स्वरूपाचरणचारित्रका अभाव है** तातैं याका नाम अचारित्र भी कहिए। बहुरि यहाँ परिणाम मिटै नाहीं अथवा विरक्तनाहीं, तातैं याहीका नाम असंयम कहिए है वा अविरति कहिए है जातैं पाँच इन्द्रिय अर मनके विषयनिविषै बहुरि पंचस्थावर अर त्रसकी हिंसा विषै स्वच्छन्दपना होय अर इनके त्यागरूप भाव न होय सोई असंयम वा अविरति बारह प्रकार कह्या है सो कषायभाव भए ऐसे कार्य हो हैं तातैं मिथ्याचारित्रका नाम असंयम वा अविरति जानना। बहुरि इसही का नाम अव्रत जानना। जातैं हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रह इन पाप कार्यनिविषै प्रवृत्तिका नाम अव्रत है। सो इनका मूलकारण प्रमत्तयोग कह्या है। प्रमत्तयोग है सो कषायमय है तातैं मिथ्याचारित्रका नाम अव्रत भी कहिए है। ऐसे मिथ्याचारित्र का स्वरूप कह्या।

या प्रकार संसारी जीवकै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्ररूप परिणमन अनादितैं पाइए है। सो ऐसा परिणमन एकेन्द्रिय आदि असंज्ञीपर्यंत तो सर्व जीवनिकै पाइए है। बहुरि संज्ञी पंचेन्द्रियनिविषै सम्यग्दृष्टी बिना अन्य सर्वजीवनिकै ऐसा ही परिणमन पाइए है। परिणमनविषै जैसा जहाँ सम्भवै तैसा तहाँ जानना। जैसे एकेन्द्रियादिककै इन्द्रियादिकनिकी हीनता अधिकता पाइए है वा धन-पुत्रादिकका सम्बन्ध मनुष्यादिककै ही पाइये है सो इनके निमित्ततैं मिथ्यादर्शनादि का वर्णन किया है। तिसविषै जैसा विशेष सम्भवै तैसा जानना। बहुरि एकेन्द्रियादिक जीव इन्द्रिय शरीरादिक का नाम जानै नाहीं है परन्तु तिस नाम का अर्थरूप जो भाव है तिसविषै पूर्वोक्त प्रकार परिणमन पाइए है। जैसे मैं स्पर्शनकरि स्पर्शूं हूँ, शरीर मेरा है ऐसा नाम न जानै है तथापि इसका अर्थरूप जो भाव है तिस रूप परिणमै है। बहुरि मनुष्यादिक केई नाम भी जानै है अर ताकै भावरूप परिणमै है, इत्यादि विशेष सम्भवै सो जान लेना। ऐसे ए मिथ्यादर्शनादिकभाव जीवकै अनादितैं पाइये हैं, नवीन ग्रहे नाहीं। देखो याकी महिमा कि जो पर्याय धरै है तहाँ बिना ही सिखाए मोहके उदयतैं स्वयमेव ऐसा ही परिणमन हो है। बहुरि मनुष्यादिककै सत्यविचार होने के कारण मिलै तो भी सम्यक् परिणमन होय नाहीं। अर श्रीगुरुके उपदेशका निमित्त बनै, वे बारबार समझावै, यहु कछु विचार करै नाहीं। बहुरि आपको भी प्रत्यक्ष भासै सो तो न मानै अर अन्यथा ही मानै। कैसे? सो कहिए है -

मरण होते शरीर आत्मा प्रत्यक्ष जुदा होहै। एक शरीर को छोरि आत्मा अन्य शरीर धरै है सो व्यंतरादिक अपने पूर्व भवका सम्बन्ध प्रगट करते देखिए है परन्तु याकै शरीरतैं भिन्नबुद्धि न होय सकै है। स्त्री-पुत्रादिक अपने स्वार्थके सगे प्रत्यक्ष देखिए हैं। उनका प्रयोजन न सधै तब ही विपरीत होते देखिए हैं। यहु तिन विषै ममत्व करै है अर तिनके अर्थि नरकादिकविषै गमनको कारण नाना पाप उपजावै है। धनादिक सामग्री अन्यकी होती देखिए है, यहु तिनको अपनी मानै है; बहुरि शरीर की अवस्था वा बाह्यसामग्री स्वयमेव होती विनशती दीसै है, यहु वृथा आप कर्ता हो है। तहाँ जो अपने मनोरथ अनुसार कार्य होय ताको तो कहै मैं किया अर अन्यथा होय ताको कहै मैं कहा करूँ? ऐसे ही होना था वा ऐसे क्यों भया ऐसा मानै है। सो कै तो सर्व का कर्ता ही होना था, कै अकर्ता रहना था सो विचार नाहीं। बहुरि **मरण अवश्य होगा ऐसा जानै परन्तु मरण का निश्चयकरि किछू कर्त्तव्य करै नाहीं, इस पर्याय सम्बन्धी ही यत्न करै है।** बहुरि मरणका निश्चयकरि कबहूं तो कहै मैं मरूंगा, शरीर को जलावेंगे। कबहुँ कहै मोको जलावेंगे। कबहुँ कहै जस रह्या तो हम जीवते ही हैं। कबहुँ कहै पुत्रादिक रहेंगे तो मैं ही जीऊंगा। ऐसे बाउलाकीसी नाईं बकै किछू सावधानी नाहीं। बहुरि आपको परलोकविषै प्रत्यक्ष जाता जानै, ताका तो इष्ट अनिष्ट का किछू ही उपाय नाहीं अर इहां पुत्र पोता आदि मेरी संततिविषै घनेकाल तांई इष्ट रह्या करै अनिष्ट न होइ, ऐसे अनेक उपाय करै है। काहूका परलोक भए पीछैं इस लोक की सामग्री करि उपकार भया देख्या नाहीं परन्तु याकै परलोक होने का निश्चय भए भी इस लोककी सामग्री ही का यतन रहै है। बहुरि विषयकषायकी प्रवृत्ति करि वा हिंसादि कार्यकरि आप दुःखी होय, खेदखिन्न होय, औरनिका वैरी

होय, इस लोकविषै निंद्य होय, परलोकविषै बुरा होय सो प्रत्यक्ष आप जानै तथापि तिनही विषै प्रवर्त्तै। इत्यादि अनेक प्रकार प्रत्यक्ष भासै ताकों भी अन्यथा श्रद्धहै जानै आचरै, सो यह मोहका माहात्म्य है ऐसे यहु मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्ररूप अनादितैं जीव परिणमै है। इस ही परिणमनकरि संसारविषै अनेक प्रकार दुःख उपजावनहारे कर्मनिका सम्बन्ध पाइये है। एई भाव दुःखनिके बीज हैं, अन्य कोई नाहीं। तातैं हे भव्य जो दुखतैं मुक्त भया चाहै तो इन मिथ्यादर्शनादिक विभावभावनिका अभाव करना, यहु ही कार्य है, इस कार्य के किए तेरा परमकल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै मिथ्यादर्शनज्ञान-
चारित्रका निरूपणरूप चौथा अधिकार सम्पूर्ण भया।।४।।

卐 卐 卐

जैं

卐 पाँचवाँ अधिकार 卐

विविध मत-समीक्षा

❀ दोहा ❀

बहुविधि मिथ्या गहनकरि, मलिन भयो निज भाव।
ताको होत अभाव है, सहजरूप दरसाव।।१।।

अथ यहु जीव पूर्वोक्त प्रकारकरि अनादिहीतैं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररूप परिणमै है ताकरि संसारविषै दुःख सहतो संतो कदाचित् मनुष्यादि पर्यायनि विषै विशेष श्रद्धानादि करने की शक्ति को पावै। तहाँ जो विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिकरि तिन मिथ्याश्रद्धानादिकको पोषै तो तिस जीवका दुःखतैं मुक्त होना अति दुर्लभ हो है। जैसे कोई पुरुष रोगी है सो किछू सावधनीको पाय कुपथ्य सेवन करै तो उस रोगी का सुलझना कठिन ही होय। तैसे यहु जीव मिथ्यात्वादि सहित है सो किछू ज्ञानादि शक्तिको पाय विशेष विपरीत श्रद्धानादिकके कारणनिका सेवन करै तो इस जीव का मुक्त होना कठिन ही होय। तातैं जैसे वैद्य कुपथ्यनिका विशेष दिखाय तिनके सेवनको निषेधै तैसे ही इहाँ विशेष मिथ्याश्रद्धानादिक के कारणनिका विशेष दिखाय तिनका निषेध करिए है। इहाँ अनादितैं जे मिथ्यात्वादि भाव पाइए हैं ते तो अगृहीतमिथ्यात्वादि जानने, जातैं ते नवीन ग्रहण किए नाहीं। बहुरि तिनके पुष्ट करने के कारणनिकरि विशेष मिथ्यात्वादिभाव होय ते गृहीतमिथ्यात्वादि जानने तहाँ अगृहीतमिथ्यात्वादिकका तो पूर्वे वर्णन किया है सो ही जानना अर गृहीतमिथ्यात्वादिकका अब निरूपण कीजिए है सो जानना।

गृहीत मिथ्यात्व का निराकरण

कुदेव कुगुरु कुधर्म अर कल्पिततत्त्व तिनका श्रद्धान सो तो मिथ्यादर्शन है। बहुरि जिन विषै विपरीत निरूपणकरि रागादि पोषे होय ऐसे कुशास्त्र तिनविषै श्रद्धानपूर्वक अभ्यास सो मिथ्याज्ञान है बहुरि जिस आचरणविषै कषायनिका सेवन होय अर ताको धर्म रूप अंगीकार करै सो मिथ्याचारित्र है। अब इनहीका विशेष दिखाइए है-इन्द्र लोकपाल इत्यादि, बहुरि अद्वैत ब्रह्म, राम, कृष्ण, महादेव, बुद्ध, खुदा, पीर, पैगम्बर इत्यादि; बहुरि हनुमान, भैंरू, क्षेत्रपाल, देवी, दिहारी, सती, इत्यादि; बहुरि गऊ, सर्प इत्यादि; बहुरि अग्नि, जल, वृक्ष इत्यादि; बहुरि शस्त्र, दावात, बासण इत्यादि अनेक तिनका अन्यथा श्रद्धानकरि नीको पूजै। बहुरि तिनकरि अपना कार्य सिद्ध किया चाहै सो वे कार्य सिद्धिके कारण नाहीं, तातैं ऐसे श्रद्धानको गृहीतमिथ्यात्व कहिए है। तहाँ तिनका अन्यथा श्रद्धान कैसे हो है सो कहिए है-

सर्वव्यापी अद्वैत ब्रह्म का निराकरण

अद्वैतब्रह्म[1] को सर्वव्यापी सर्वका कर्त्ता मानै सो कोई नाहीं। प्रथम वाको सर्वव्यापी मानै सो सर्व पदार्थ तो न्यारे न्यारे प्रत्यक्ष हैं वा तिनके स्वभाव न्यारे न्यारे देखिए है, इनको एक कैसे मानिए है? इनका मानना तो इनप्रकारनि करि है-एक प्रकार तो यहु है जो सर्व न्यारे-न्यारे है तिनके समुदायकी कल्पनाकरि ताका किछु नाम धरीए। जैसे घोटक हस्ती इत्यादि भिन्न-भिन्न हैं तिनके समुदाय का नाम सेना है, तिनतैं जुदा कोई सेना-वस्तु नाहीं। सो इस प्रकारकरि सर्वपदार्थनिका जो नाम ब्रह्म है तो ब्रह्म कोई जुदा वस्तु तो न ठहरया, कल्पना मात्र ही ठहरया। बहुरि एक प्रकार यहु है जो व्यक्ति अपेक्षा तो न्यारे न्यारे है तिनको जाति अपेक्षा कल्पना करि एक कहिए है। जैसे सौ घोटक (घोड़ा) हैं ते व्यक्ति अपेक्षा तो जुदे जुदे सौ ही हैं तिनके आकारादिककी समानता देखिए जाति कहैं, सो वह जाति तिनतैं जुदी ही तो कोई है नाहीं। सो इस प्रकार करि जो सबनिकी कोई एक जाति अपेक्षा एक ब्रह्म मानिए है तो ब्रह्म जुदा तो कोई न ठहरया, इहाँ भी कल्पना मात्र ही ठहरया। बहुरि एक प्रकार यहु है जो पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं तिनके मिलापतैं एक स्कंध होय ताकों एक कहिए। जैसे जलके परमाणु न्यारे-न्यारे हैं तिनका मिलाप भए समुद्रादि कहिए अथवा जैसे पृथ्वी के परमाणूनिका मिलाप भए घट आदि कहिए सो इहाँ समुद्रादि वा घटादिक हैं ते तिन परमाणूनितैं भिन्न कोई जुदा तो वस्तु नाहीं। सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं परन्तु कदाचित् मिलि एक हो जाय हैं सो ब्रह्म है ऐसे मानिए तो इनतैं जुदा तो कोई ब्रह्म न ठहरया। बहुरि एक प्रकार यहु है जो अंग तो न्यारे-न्यारे हैं अर जाके अंग हैं सो अंगी एक है। जैसे नेत्र, हस्त, पादादिक भिन्न-भिन्न हैं अर जाके ए हैं सो मनुष्य एक है। सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ तो अंग हैं अर जाके ए हैं सो अंगी ब्रह्म है। यहु सर्व लोक विराट स्वरूप ब्रह्म का अंग है, ऐसे मानिए तो मनुष्य के हस्तपादादिक अंगनिकै परस्पर अंतराल भए तो एकत्वपना रहता नाहीं। जुड़े रहै ही एक शरीर नाम पावै। सो लोकविषै तो पदार्थनिकै अंतराल परस्पर भासै है। याका एकत्वपना कैसे मानिए? अंतराल भए भी एकत्व मानिए तो भिन्नपना कहाँ मानिएगा।

इहाँ कोऊ कहै कि समस्त पदार्थनिकै मध्यविषै सूक्ष्मरूप ब्रह्म के अंग हैं तिनकरि सर्व जुरि रहै हैं, **ताको कहिए है-**

जो अंग जिस अंगतैं जुरया है, तिसहीतैं जुरया रहै है कि टूटि-टूटि अन्य-अन्य अंगनिस्यों जुरया करै है। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तो सूर्यादि गमन करै है, तिनकी साथि जिन सूक्ष्म अंगनितैं वह जुरै है ते भी

1. "सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म" छान्दोग्योपनिषद् प्र. ३ खं. १४ म. १।
"नेह नानास्ति किंचन" कठोपनिषद् अ. २ व. ४१ मं. ११।
ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।। मुण्डको. खंड २, मं. ११।

गमन करै। बहुरि उनको गमन करते वे सूक्ष्म अंग अन्य स्थूल अंगनितैं जुरे रहैं, ते भी गमन करै हैं सो ऐसे सर्व लोक अस्थिर होइ जाय। जैसे शरीर का एक अंग खींचे सर्व अंग खींचे जांय, तैसे एक पदार्थ को गमनादि करते सर्व पदार्थनिका गमनादि होय सो भासै नाहीं। बहुरि जो द्वितीय पक्ष ग्रहेगा तो अंग टूटनेतैं भिन्नपना होय ही जाय तब एकत्वपना कैसे रह्या? तातैं सर्वलोक के एकत्व को ब्रह्म मानना कैसे सम्भवै? बहुरि एक प्रकार यहु है जो पहलै एक था, पीछै अनेक भया बहुरि एक होय जाय तातैं एक है। जैसे जल एक था सो बासणनिमैं जुदा-जुदा भया बहुरि मिलै तब एक होय वा जैसे सोना का गदा[1] एक था सो कंकण कुंडलादिरूप भया, बहुरि मिलकरि सोनाका गदा होय जाय। तैसे ब्रह्म एक था पीछै अनेकरूप भया बहुरि एक होयगा तातैं एक ही है। इस प्रकार एकत्व मानै है तो जब अनेक रूपभया तब जुरया रह्या कि भिन्न भया। जो जुरया रह्या कहेगा तो पूर्वोक्त दोष आवेगा। भिन्न भया कहेगा तो तिस काल तो एकत्व न रह्या। बहुरि जल सुवर्णादिकको भिन्न भए भी एक कहिए है सो तो एक जाति अपेक्षा कहिए है सो सर्व पदार्थनि की एक जाति भासै नाहीं। कोऊ चेतन है, कोऊ अचेतन है इत्यादि अनेकरूप है तिनकी एक जाति कैसे कहिए? बहुरि पहिले एक था पीछै भिन्न भया मानै है तो जैसे एक पाषाण फूटि टुकड़े होय जाय है तैसे ब्रह्म के खंड होय गए, बहुरि तिनका एकट्ठा होना मानै है तो तहाँ तिनका स्वरूप भिन्न रहै है कि एक होइ जाय है। जो भिन्न रहै है तो तहाँ अपने-अपने स्वरूपकरि भिन्न ही है अर एक होइ जाय है तो जड़ भी चेतन होइ जाय वा चेतन जड़ होइ जाय। तहाँ अनेक वस्तुनिका एक वस्तु भया तब काहू कालविषै अनेक वस्तु, काहू कालविषै एक वस्तु ऐसा कहना बनै। अनादि अनन्त एक ब्रह्म है ऐसा कहना बनै नाहीं। बहुरि जो कहेगा लोकरचना होतैं वा न होतैं ब्रह्म जैसा का तैसा ही रहै है, तातैं ब्रह्म अनादि अनन्त है। सो हम पूछै हैं, लोकविषै पृथिवी जलादिक देखिए हैं ते जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं कि ब्रह्म ही इन स्वरूप भया है? जो जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं तो ए न्यारे भए, ब्रह्म न्यारा रहा, सर्वव्यापी अद्वैतब्रह्म न ठहरया। बहुरि जो ब्रह्म ही इन स्वरूप भया तो कदाचित् लोक भया, कदाचित् ब्रह्म भया तो जैसा का तैसा कैसे रह्या? बहुरि वह कहै है जो सब ही ब्रह्म तो लोकस्वरूप न हो है, वाका कोई अंश हो है। ताको कहिए है-जैसे समुद्रका एक बिन्दु विषरूप भया तहाँ स्थूलदृष्टिकरि तो गम्य नाहीं। परन्तु सूक्ष्मदृष्टि दिए तो एक बिन्दु अपेक्षा समुद्रकै अन्यथापना भया तैसे ब्रह्मका एक अंश भिन्न होय लोकरूप भया तहाँ स्थूल विचारकरि तो किछू गम्य नाहीं परन्तु सूक्ष्मविचार किए तो एक अंश अपेक्षा ब्रह्मकै अन्यथापना भया। यह अन्यथापना और तो काहूकै भया नाहीं। ऐसे सर्वरूप ब्रह्म को मानना भ्रम ही है।

बहुरि एक प्रकार यहु है जैसे आकाश सर्वव्यापी एक है तैसे ब्रह्म सर्वव्यापी एक है। जो इस प्रकार मानै है तो आकाशवत् बड़ा ब्रह्मको मानि वा जहाँ घटपटादिक हैं तहाँ जैसे आकाश है तैसे तहाँ ब्रह्म भी है ऐसा भी मानि। परन्तु जैसे घटपटादिकको अर आकाश को एक ही कहिए तो कैसे बनै? तैसे लोकको अर ब्रह्म को एक मानना कैसे सम्भवै? बहुरि आकाश का तो लक्षण सर्वत्र भासै है तातैं ताका तो सर्वत्र सद्भाव मानिए है। ब्रह्म का तो लक्षण सर्वत्र भासता नाहीं तातैं ताका सर्वत्र सद्भाव कैसे मानिए? ऐसे इस

---

१. डला वा पासा।

प्रकारकरि भी सर्वरूप एक ब्रह्म नाहीं है। ऐसे ही विचारकरतैं किसी भी प्रकारकरि एक ब्रह्म सम्भवै नाहीं। सर्व पदार्थ भिन्न-भिन्न ही भासै हैं।

इहाँ प्रतिवादी कहे है- जो सर्व एक ही है परन्तु तुम्हारे भ्रम है तातैं तुमको एक भासै नाहीं। बहुरि तुम युक्ति कही सो ब्रह्म का स्वरूप युक्तिगम्य नाहीं, वचन अगोचर है। एक भी है, अनेक भी है। जुदा भी है, मिल्या भी है। बाकी महिमा ऐसी ही है। ताको कहिए है-जो प्रत्यक्ष तुझको वा हमको वा सबनिको भासै, ताको तो तू भ्रम कहै अर युक्तिकरि अनुमान करिए सो तू कहे कि सांचा स्वरूप युक्तिगम्य है ही नाहीं। बहुरि वह कहै, सांचास्वरूप वचन अगोचर है तो वचन बिना कैसे निर्णय करै? बहुरि कहै-एक भी है अनेक भी है; जुदा भी है, मिल्या भी है सो तिनकी अपेक्षा बतावै नाहीं, बाउलेकीसी नाई ऐसे भी है, ऐसे भी है ऐसा कहि याकी महिमा बतावै। सो जहाँ न्याय न होय है तहां झूठे ऐसे ही वाचालपना करै है सो करो, न्याय तो जैसे सांच है तैसे ही होयगा।

ब्रह्म की इच्छा से जगत् के सृष्टि-कर्तृत्व का निराकरण

बहुरि अब तिस ब्रह्मको लोक का कर्त्ता मानै है ताको मिथ्या दिखाइए है-प्रथम तो ऐसा मानै है जो ब्रह्मकै ऐसी इच्छा भई कि "एकोऽहं बहुस्याम्" कहिए मैं एक हूँ सो बहुत होस्यूं। तहाँ पूछिए है-पूर्व अवस्था में दुःखी होय तब अन्य अवस्था को चाहै। सो ब्रह्म एकरूप अवस्थातैं बहुत रूप होने की इच्छा करी सो तिस एक रूप अवस्थाविषै कहा दुःख था? तब वह कहै है जो दुःख तो न था, ऐसा ही कौतूहल उपज्या। ताको कहिए है- जो पूर्वे थोरा सुखी होय अर कौतूहल किए घना सुखी होय सो कौतूहल करना विचारै। सो ब्रह्मकै एक अवस्थातैं बहुत अवस्थारूप भए घना सुख होना कैसे सम्भवै? बहुरि जो पूर्वे ही सम्पूर्ण सुखी होय तो अवस्था काहेको पलटै। प्रयोजन बिना तो कोई किछू कर्त्तव्य करै नाहीं। बहुरि पूर्वे भी सुखी होगा, इच्छा अनुसारि कार्य भए भी सुखी होगा परन्तु इच्छा भई तिस काल तो दुःखी होय। तब वह कहै है, ब्रह्मकै जिस काल इच्छा हो है तिस काल ही कार्य हो है तातैं दुःखी न हो है। तहाँ कहिए- स्थूलकाल की अपेक्षा तो ऐसे मानो परन्तु सूक्ष्मकाल की अपेक्षा तो इच्छा का अर कार्य का होना युगपत् सम्भवै नाहीं। **इच्छा तो तब ही होय जब कार्य न होय। कार्य होय तब इच्छा न रहै,** तातैं सूक्ष्मकाल मात्र इच्छा रही तब तो दुःखी भया होगा। **जातैं इच्छा है सो ही दुःख है, और कोई दुःख का स्वरूप है नाहीं।** तातैं ब्रह्मकै इच्छा कैसे बनै?

ब्रह्म की माया का निराकरण

बहुरि वे कहै हैं, इच्छा होतैं ब्रह्म की माया प्रगट भई सो ब्रह्मकै माया भई तब ब्रह्म भी मायावी भया, शुद्धस्वरूप कैसे रह्या? बहुरि ब्रह्मकै अर मायाकै दंडी-दंडवत् संयोग सम्बन्ध है कि अग्नि-उष्णवत् समवायसम्बन्ध है। जो संयोगसम्बन्ध है तो ब्रह्म भिन्न है, माया भिन्न है, अद्वैत ब्रह्म कैसे रह्या? बहुरि जैसे दंडी दंडको उपकारी जानि ग्रहै है तैसे ब्रह्म माया को उपकारी जानै है तो ग्रहै है, नाहीं तो काहेको ग्रहै? बहुरि जिस माया को ब्रह्म ग्रहै ताका निषेध करना कैसे सम्भवै वह तो उपादेय भई। बहुरि जो

समवायसम्बन्ध है तो जैसे अग्नि का उष्णत्व स्वभाव है तैसे ब्रह्मका मायास्वभाव ही भया। जो ब्रह्म का स्वभाव है ताका निषेध करना कैसे सम्भवै? यहु तो उत्तम भई।

बहुरि वे कहै हैं कि ब्रह्म तो चैतन्य है, माया जड़ है सो समवाय संबंधविषै ऐसे दोय स्वभाव सम्भवै नाहीं। जैसे प्रकाश अर अन्धकार एकत्र कैसे सम्भवै? बहुरि वह कहै है- मायाकरि ब्रह्म आप तो भ्रमरूप होता नाहीं, ताकी माया करि जीव भ्रमरूप हो है। ताको कहिए है- जैसे कपटी अपने कपट को आपजानै सो आप भ्रमरूप न होय, वाके कपटकरि अन्य भ्रम रूप होय जाय। तहाँ कपटी तो वाही को कहिए जानै कपट किया, ताके कपटकरि अन्य भ्रमरूप भए तिनकों तो कपटी न कहिए। तैसे ब्रह्म अपनी मायाको आप जानै सो आप तो भ्रमरूप न होय, वाकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप होय हैं। तहाँ मायावी तो ब्रह्म ही को कहिए, ताकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप भए तिनको मायावी काहेको कहिए है।

बहुरि पूछिए है, वे जीव ब्रह्म तैं एक हैं कि न्यारे हैं। जो एक हैं तो जैसे कोऊ आपही अपने अंगनिको पीड़ा उपजावै तो ताको बाउला कहिए है तैसे ब्रह्म आप-ही-आपतैं भिन्न नाहीं ऐसे अन्य जीव तिनको मायाकरि दुःखी करै है सो कैसे बनै? बहुरि जो न्यारे हैं तो जैसे कोऊ भूत बिना ही प्रयोजन औरनिको भ्रम उपजाय पीड़ा उपजावै तैसे ब्रह्म बिना ही प्रयोजन अन्य जीवनि को माया उपजाय पीड़ा उपजावै सो भी बनै नाहीं। ऐसे माया ब्रह्म की कहिए है सो कैसे सम्भवै?

जीवों की चेतना को ब्रह्म की चेतना मानने का निराकरण

बहुरि वे कहै हैं, माया होतें लोक निपज्या तहाँ जीवनिकै जो चेतना है सो तो ब्रह्मस्वरूप है। शरीरादिक माया है, तहाँ जैसे जुदे-जुदे बहुत पात्रनिविषैं जल भरया है; तिन सबनिविषै चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब जुदा-जुदा पड़ै है, चन्द्रमा एक है। तैसे जुदे-जुदे बहुत शरीरनिविषै ब्रह्म का चैतन्य प्रकाश जुदा-जुदा पाइए है। ब्रह्म एक है।[1]

तातैं जीवनिकै चेतना है सो ब्रह्म की है। सो ऐसा कहना भी भ्रम ही है जातैं शरीर जड़ है या विषै ब्रह्म का प्रतिबिंबतैं चेतना भई तो घट-पटादि जड़ हैं तिनविषै ब्रह्म का प्रतिबिंब क्यों न पड्या अर चेतना क्यों न भई? बहुरि वह कहै है शरीर को तो चेतन नाहीं करै है, जीवको करै है। तब वाको पूछिए है कि जीवका स्वरूप चेतन है कि अचेतन है। जो चेतन है तो चेतन का चेतन कहा करेगा। अचेतन है

[1] कपिल, आसुरि पंचशिख, पतंजलि आदि आचार्य, पुरुष की अनेकता का निरूपण करते हैं जबकि हरिहर, हिरण्यगर्भ, व्यास प्रभृति वेदवादी आचार्य सभी व्यक्तियों में एक ही आत्मा के अस्तित्व का प्रतिपादन करते हैं। उनका कथन है कि प्राणिमात्र में एक आत्मा वैसे ही प्रतिष्ठित है जैसे कि एक ही चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब अनेक जलाशयों में अनेक दिखता है-

एक एव हि भूतात्मा, भूते-भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥

-ब्रह्मबिन्दूपनिषद् १०२

तो शरीर की वा घटादिक की वा जीव की एक जाति भई। बहुरि वाकों पूछिए है- ब्रह्म की अर जीवनि की चेतना एक है कि भिन्न है। जो एक है तो ज्ञानका अधिकहीनपना कैसे देखिए है। बहुरि ए जीव परस्पर वह वाकी जानी को न जानै, वह वाकी जानी को न जानै सो कारण कहा? जो तू कहेगा, यहु घट उपाधि भेद है तो घट उपाधि होते तो चेतना भिन्न-भिन्न ठहरी। घट उपाधि मिटे याकी चेतना ब्रह्म में मिलेगी कै नाश हो जायगी? जो नाश हो जायगी तो यहु जीव तो अचेतन रह जायेगा। अर तू कहेगा जीव ही ब्रह्म में मिल जाय है तो तहाँ ब्रह्मविषै मिले याका अस्तित्व रहै है कि नाहीं रहै है। जो अस्तित्व रहै है तो यहु रह्या, याकी चेतना याकै रही, ब्रह्मविषै कहा मिल्या? अर जो अस्तित्व न रहै है तो ताका नाश ही भया, ब्रह्मविषै कौन मिल्या? बहुरि जो तू कहेगा- ब्रह्म की अर जीवनिकी चेतना भिन्न है तो ब्रह्म अर सर्वजीव आप ही भिन्न-भिन्न ठहरे। ऐसे जीवनि के चेतना है सो ब्रह्म की है, ऐसे भी बनै नाहीं।

शरीरादिक को मायारूप मानने का निराकरण

शरीरादिक माया के कहो हो सो माया ही हाड़-मांसादिरूप हो है कि माया के निमित्ततैं और कोई तिनरूप हो है। जो माया ही होय तो मायाकै वर्ण गंधादिक पूर्वै ही थे कि नवीन भए। जो पूर्वै ही थे तो पूर्वै तो माया ब्रह्मकी थी, ब्रह्म अमूर्त्तीक है तहाँ वर्णादि कैसे सम्भवै ? बहुरि जो नवीन भए तो अमूर्त्तीक का मूर्त्तीक भया तब अमूर्त्तीक स्वभाव शाश्वता न ठहरया। बहुरि जो कहेगा, माया के निमित्त तैं और कोई हो है तो और पदार्थ तो तू ठहरावतां ही नाहीं, भया कौन? जो तू कहेगा नवीन पदार्थ निपजे। तो ते मायातैं भिन्न निपजे कि अभिन्न निपजे। मायातैं भिन्न निपजे तो मायामयी शरीरादिक काहेको कहै, वे तो तिनपदार्थमय भए। अर अभिन्न निपजे तो माया ही तद्रूप भई, नवीन पदार्थ निपजे काहेको कहै; ऐसे शरीरादिक मायास्वरूप हैं, ऐसा कहना भ्रम है।

बहुरि वे कहै हैं, माया तैं तीन गुण निपजै-राजस १ तामस २ सात्विक ३। सो यहु भी कहना कैसे बनै? जातैं मानादि कषायरूप भावको राजस कहिए है, क्रोधादिकषायरूप भावको तामस कहिए है, मंदकषायरूप भावको सात्विक कहिए है। सो ए तो भाव चेतनमई प्रत्यक्ष देखिए है अर माया का स्वरूप जड़ कहो हो सो जड़तैं ए भाव कैसे निपजे। जो जड़के भी होई तो पाषाणादिककै भी होता सो तो चेतनास्वरूप जीव तिनहीके ए भाव दीसैं हैं। तातैं ए भाव मायातैं निपजे नाहीं। जो माया को चेतन ठहरावै तो यहु मानै। सो मायाको चेतन ठहराए शरीरादिक मायातैं निपजे कहेगा तो न मानेंगे तातैं निर्धारकर, भ्रमरूप माने नफा कहा है?

तीन गुणों से तीन देवों की उत्पत्ति का निराकरण

बहुरि वे कहै हैं तिन गुणनि तैं ब्रह्मा विष्णु महेश ए तीन देव प्रगट भए सो कैसे सम्भवै? जातैं गुणीतैं तो गुण होइ, गुणतैं गुणी कैसे निपजै। पुरुषतैं तो क्रोध होय, क्रोधतैं पुरुष कैसे निपजै। बहुरि इन गुणनिकी तो निन्दा करिए है। इनकरि निपजे ब्रह्मादिक तिनको पूज्य कैसे मानिए है। बहुरि गुण तो मायामई

अर इनको **'ब्रह्म के अवतार'**[1] कहिए है सो ए तो माया के अवतार भए, इनको ब्रह्म के अवतार कैसे कहिए है? बहुरि ए गुण जिनके थोरे भी पाइए तिनको तो इनके छुड़ावने का उपदेश दीजिए अर जे इनही की मूर्ति तिनको पूज्य मानिए, यह कहा भ्रम है। बहुरि तिनका कर्तव्य भी इनमेंही भासै है। कौतूहलादिक वा स्त्रीसेवनादिक वा युद्धादिक कार्य करै है सो तिन राजसादि गुणनिकर ही एक क्रिया हो है सो इनके राजसादिक पाइये है ऐसा कहा। इनको पूज्य कहना, परमेश्वर कहना तो बनै नाहीं। जैसे अन्य संसारी हैं तैसे ए भी हैं। बहुरि कदाचित् तू कहेगा, संसारी तो माया के आधीन हैं सो बिना जाने तिन कार्यनिको करै हैं। ब्रह्मादिक कै माया आधीन है सो ए जानते ही इन कार्यनिको करै है। सो यहु भी भ्रम ही है। जातैं माया के आधीन भए तो काम-क्रोधादिक ही निपजै है, और कहा हो है। सो ए ब्रह्मादिकनिकै तो काम क्रोधादिककी तीव्रता पाइए है। काम की तीव्रताकरि स्त्रीनिके वशीभूत भए नृत्यगानादि करते भए , विह्वल होते भए, नाना प्रकार कुचेष्टा करते भए, बहुरि क्रोध के वशीभूत भए अनेक युद्धादि कार्य करते भए, मान के वशीभूत भए आपकी उच्चता प्रगट करने के अर्थि अनेक उपाय करते भए, माया के वशीभूत भए अनेक छल करते भए, लोभ के वशीभूत भए परिग्रह का संग्रह करते भए इत्यादि बहुत कहा कहिए। ऐसे वशीभूत भए चीरहरणादि निर्लज्जनिकी क्रिया और दधि-लुन्टनादि चौरनिकी क्रिया अर रुंडमाला धारणादि बाउलेनिकी क्रिया[2] बहुरूपधारणादि भूतनिकीक्रिया, गउचारणादि नीच कुलवानों की क्रिया इत्यादिजे निंद्य क्रिया तिनकों तो करते भए, यातैं अधिक माया के वशीभूत भए कहा क्रिया हो है सो जानी न परी। जैसे कोऊ मेघपटलसहित अमावस्या की रात्रि को अंधकार रहित मानै तैसे बाह्य कुचेष्टा सहित तीव्र काम क्रोधादिकनिके धारी ब्रह्मादिकनिको मायारहित मानना है।

'लीला से सृष्टिरचना' का निराकरण

बहुरि वह कहै है कि इनको काम क्रोधादि व्याप्त नाहीं होता, यहु भी परमेश्वर की लीला है। याको कहिए है-ऐसे कार्य करै है ते इच्छाकरि करै है कि बिना इच्छा करै है। जो इच्छाकरि करै है तो स्त्रीसेवन की इच्छाही का नाम काम है, युद्ध करने की इच्छाही का नाम क्रोध है, इत्यादि ऐसे ही जानना। बहुरि जो बिना इच्छा करै है तो आप जाको न चाहै ऐसा कार्य तो परवश भए ही होय, सो परवशपना कैसे सम्भवै? बहुरि तू लीला बतावै है सो परमेश्वर अवतार धारि इन कार्यनिकरि लीला करै है तो अन्य जीवनिकों इन कार्यनितैं छुड़ाय मुक्त करने का उपदेश काहेको दीजिए है। क्षमा, सन्तोष, शील, संयमादिकका उपदेश सर्व झूठा भया।

१. ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों ब्रह्म की प्रधान शक्तियाँ हैं। -विष्णु पु. अ. २२-५८
कलिकाल के प्रारम्भ में परब्रह्म परमात्माने रजोगुण से उत्पन्न होकर ब्रह्मा बनकर प्रजा की रचना की। प्रलय के समय तमोगुण से उत्पन्न हो काल (शिव) बनकर उस सृष्टि को ग्रस लिया। उस परमात्मा ने सत्वगुण से उत्पन्न हो नारायण बनकर समुद्र में शयन किया। - वायु पु. अ. ७-६८, ६९।

२. नानारूपाय मुण्डाय वरुथपृथुदण्डिने।
नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने।। मत्स्य पु. अ. २५०, श्लोक २।

'जीवों के निग्रह-अनुग्रह के लिए सृष्टि-रचना' का निराकरण

बहुरि वह कहै है कि परमेश्वर को तो किछू प्रयोजन नाहीं। लोकरीतिकी प्रवृत्ति के अर्थि वा भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह ताके अर्थि अवतार धरै[1] है तो याको पूछिए है- **प्रयोजन बिना चींटी हू कार्य न करै,** परमेश्वर काहेको करै। बहुरि तैं प्रयोजन भी कह्या, लोकरीतिकी प्रवृत्ति के अर्थि करै है। सो जैसे कोई पुरुष आप कुचेष्टाकरि अपने पुत्रनिको सिखावै बहुरि वे तिस चेष्टा रूप प्रवर्तें तब उनको मारै तो ऐसे पिता को भला कैसे कहिए तैसे ब्रह्मादिक आप कामक्रोधरूप चेष्टाकरि अपने निपजाए लोकनिकों प्रवृत्ति करावै। बहुरि वे लोक तैसे प्रवर्तें तब उनको नरकादिक विषै डारै। नरकादिक इनही भावनिका फल शास्त्रविषै लिख्या है सो ऐसे प्रभुको भला कैसे मानिए? बहुरि तैं यहु प्रयोजन कह्या भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह करना। सो भक्तनिको दुखदायक जे दुष्ट भए ते परमेश्वर की इच्छाकरि भए कि बिना इच्छाकरि भए। जो इच्छाकरि भए तो जैसे कोऊ अपने सेवक को आप ही काहू को कहकरि मरावै बहुरि पीछे तिस मारने वाला को आप मारै सो ऐसे स्वामी को भला कैसे कहिए। तैसे ही जो अपने भक्तको आप ही इच्छाकरि दुष्टनिकरि पीड़ित करावै बहुरि पीछे तिन दुष्टनिकों आप अवतारधारि मारै तो ऐसे ईश्वर को भला कैसे मानिए? बहुरि जो तू कहेगा कि बिना इच्छा दुष्ट भए तो कै तो परमेश्वरकै ऐसा आगामी ज्ञान न होगा जो ए दुष्ट मेरे भक्तनिको दुःख देवेंगे, कै पहिलै ऐसी शक्ति न होगी जो इनको ऐसे न होने दे। बहुरि वाको पूछिए है जो ऐसे कार्य के अर्थि अवतार धार्या, सो कहा बिना अवतार धारे शक्ति थी कि नाहीं। जो थी तो अवतारकाहेको धारै अर न थी तो पीछे सामर्थ्य होने का कारण कहा भया। तब वह कहै है- ऐसे किए बिना परमेश्वर की महिमा प्रगट कैसे होय। याकों पूछिए है कि अपनी महिमा के अर्थि अपने अनुचरनिका पालन करै, प्रतिपक्षीनिका निग्रह करै सो ही राग द्वेष है। सो रागद्वेष तो लक्षण संसारी जीवका है। जो परमेश्वरकै भी रागद्वेष पाइए है तो अन्य जीवनिका रागद्वेष छोरि समता भाव करने का उपदेश काहेको दीजिए। बहुरि रागद्वेष के अनुसारि कार्य करना विचार्या सो कार्य थोरे वा बहुत काल लागे बिना होय नाहीं, तावत् काल आकुलता भी परमेश्वर कै होती होसी। बहुरि जैसे जिस कार्य को छोटा आदमी ही कर सकै तिस कार्य को राजा आप आय करै तो किछू राजा की महिमा होती नाहीं, निन्दा ही होय। तैसे जिस कार्य को राजा वा व्यंतरदेवादिक करि सकै तिस कार्यको परमेश्वर आप अवतार धारि करै ऐसा मानिए तो किछू परमेश्वर की महिमा होती नाहीं, निन्दा ही है। बहुरि महिमा तो कोई और होय ताको दिखाइए है। तू तो अद्वैत ब्रह्म मानै है, कौनको महिमा दिखावै है। अर महिमा दिखावने का फल तो स्तुति करावना है सो कौनपै स्तुति कराया चाहै है। बहुरि तू तो कहै है सर्व जीव परमेश्वर की इच्छा अनुसारि प्रवर्तें हैं अर आपके स्तुति करावने की इच्छा है तो सबकों अपनी स्तुतिरूप प्रवर्त्तावो, काहेको अन्य कार्य करना परै। तातैं महिमा के अर्थि भी कार्य करना न बनै।

बहुरि वह कहै है-परमेश्वर इन कार्यनिकों करता संता भी अकर्त्ता है, वाका निर्द्धार होता नाहीं।

१. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।८।। -गीता ४-८

याको कहिए है-तू कहेगा यह मेरी माता भी है अर बांझ भी है तो तेरा कह्या कैसे मानेंगे जो कार्य करै ताको अकर्त्ता कैसे मानिए। अर तू कहै निर्द्धार होता नाहीं सो निर्द्धार बिना मानि लेना ठहरया तो आकाश के फूल, गधे के सींग भी मानो, सो ऐसा असम्भव कहना युक्त नाहीं। ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश का होना कहै है सो मिथ्या जानना।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश का सृष्टिका कर्त्ता, रक्षक और संहारकपने का निराकरण

बहुरि वे कहै हैं-ब्रह्मा तो सृष्टिको उपजावै है, विष्णु रक्षा करै है, महेश संहार करै है सो ऐसा कहना भी न सम्भवै है। जातैं इन कार्यनिको करते कोऊ किछू किया चाहै कोऊ किछू किया चाहै तब परस्पर विरोध होय। अर जो तू कहेगा, ए तो एक परमेश्वरका ही स्वरूप है, विरोध काहेको होय। तो आप ही उपजावै, आप ही क्षपावै ऐसे कार्य में कौन फल है। जो सृष्टि आपको अनिष्ट है तो काहेको उपजाई अर इष्ट है तो काहे को क्षपाई। अर जो पहिले इष्ट लागी तब उपजाई, पीछे अनिष्ट लागी तब क्षपाई ऐसे है तो परमेश्वर का स्वभाव अन्यथा भया कि सृष्टि का स्वरूप अन्यथा भया। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तो परमेश्वर का एक स्वभाव न ठहरया। सो एक स्वभाव न रहने का कारण कौन है? सो बताय, बिना कारण स्वभाव की पलटनि काहेको होय। अर द्वितीय पक्ष ग्रहेगा तो सृष्टि तो परमेश्वर के आधीन थी, वाकों ऐसी काहेको होने दीनी जो आप को अनिष्ट लागै।

बहुरि हम पूछैं हैं-ब्रह्मा सृष्टि उपजावै है सो कैसे उपजावै है। एक तो प्रकार यहु है-जैसे मन्दिर चुननेवाला चूना पत्थर आदि सामग्री एकठी करि आकारादि बनावै है तैसे ही ब्रह्मा सामग्री एकठी करि सृष्टि रचना करै है तो ए सामग्री जहाँ तैं ल्याय एकठी करी सो ठिकाना बताय। अर एक ब्रह्मा ही एती रचना बनाई सो पहले पीछे बनाई होगी कै अपने शरीर के हस्तादि बहुत किए होंगे सो कैसे है सो बताय। जो बतावेगा तिसही में विचार किए विरुद्ध भासेगा।

बहुरि एक प्रकार यहु है- जैसे राजा आज्ञा करै ताकै अनुसार कार्य होय, तैसे ब्रह्मा की आज्ञाकरि सृष्टि निपजै है तो आज्ञा कौनको दई। अर जिनको आज्ञा दई वे कहांतैं सामग्री ल्याय कैसे रचना करै हैं सो बताय।

बहुरि एक प्रकार यहु है- जैसे ऋद्धिधारी इच्छा करै ताके अनुसारि कार्य स्वयमेव बनै। तैसे ब्रह्मा इच्छा करै ताके अनुसारि सृष्टि निपजै है तो ब्रह्मा तो इच्छाही का कर्त्ता भया, लोक तो स्वयमेव ही निपज्या। बहुरि इच्छा तो परमब्रह्म कीन्ही ही थी, ब्रह्माका कर्त्तव्य कहा भया जातैं ब्रह्मा को सृष्टि का निपजावनहारा कह्या। बहुरि तू कहेगा परमब्रह्म भी इच्छा करी अर ब्रह्मा भी इच्छा करी तब लोक निपज्या तो जानिए है केवल परमब्रह्मकी इच्छा कार्यकारी नाहीं। तहाँ शक्तिहीनपना आया।

बहुरि हम पूछै हैं- जो लोक बनाया हुवा बनै है तो बनावनहारा तो सुखके अर्थि बनावै सो इष्ट ही रचना करै। इस लोकविषै तो इष्ट पदार्थ थोरे देखिए हैं, अनिष्ट घने देखिए हैं। जीवनिविषै देवादिक बनाए सो तो रमनेके अर्थि वा भक्ति करावनेके अर्थि इष्ट बनाए अर लट कीड़ी कूकरे सूर सिंहादिक बनाए

सो किस अर्थि बनाए। ए तो रमणीक नाहीं, भक्ति करते नाहीं। सर्व प्रकार अनिष्ट ही हैं। बहुरि दरिद्री दुःखी नारकीनिको देखे आपको जुगुप्सा ग्लानि आदि दुःख ही उपजे ऐसे अनिष्ट काहेको बनाए। तहाँ वह कहै है-कि जीव अपने पापकरि लट कीड़ी दरिद्री नारकी आदि पर्याय भुगते हैं। वाको पूछिए है कि पीछै तो पापहीका फलतैं ए पर्याय भए कहो परन्तु पहिले लोकरचना करते ही इनको बनाए सो किस अर्थि बनाए। बहुरि पीछे जीव पापरूप परिणए सो कैसे परिणए। जो आपही परिणए कहोगे तो जानिए है ब्रह्मा पहले तो निपजाए पीछै वे याकै आधीन न रहे। इस कारणतैं ब्रह्माको दुःख ही भया। बहुरि जो कहोगे-ब्रह्माके परिणमाए परिणमै हैं तो तिनको पापरूप काहेको परिणमाए। जीव तो आपके निपजाए थे उनका बुरा किस अर्थि किया। तातैं ऐसे भी न बनै। बहुरि अजीवनिविषै सुवर्ण सुगन्धादि सहित वस्तु बनाए सो तो रमणेके अर्थि बनाए, कुवर्ण दुर्गन्धादिसहित वस्तु दुःखदायक बनाए सो किस अर्थि बनाए। इनका दर्शनादिकरि ब्रह्माकै किछू सुख तो नाहीं उपजता होगा। बहुरि तू कहेगा, पापी जीवनिको दुःख देने के अर्थि बनाए। तो आपहीके निपजाए जीव तिनस्यों ऐसी दुष्टता काहे को करी जो तिनको दुःखदायक सामग्री पहले ही बनाई। बहुरि धूलि पर्वतादिक वस्तु केतीक ऐसी हैं जे रमणीक भी नाहीं अर दुःखदायक भी नाहीं, तिनको किस अर्थि बनाए। स्वयमेव तो जैसे तैसे ही होय अर बनावनहारा तो जो बनावै सो प्रयोजन लिए ही बनावै। तातैं ब्रह्मा सृष्टिका कर्त्ता कैसे कहिए है?

बहुरि विष्णुको लोकका रक्षक कहै है। रक्षक होय सो तो दोय ही कार्य करै। एक तो दुःख उपजावने के कारण न होने दे अर एक विनशने के कारण न होने दे। सो तो लोकविषै दुःखही के उपजनेके कारण जहाँ-तहाँ देखिए हैं अर तिनकरि जीवनिको दुःख ही देखिए है। क्षुधा तृषादिक लगि रहे हैं। शीत उष्णादिक करि दुःख हो है। जीव परस्पर दुःख उपजावै हैं, शस्त्रादि दुःख के कारण बनि रहे हैं। बहुरि विनशने के कारण अनेक बन रहे हैं। जीवनिकै रोगादिक वा अग्नि विष शस्त्रादिक पर्यायके नाशके कारण देखिए हैं अर अजीवनिकै भी परस्पर विनशनेके कारण देखिए हैं। सो ऐसे दोय प्रकारहीकी रक्षा तो कीन्हीं नाहीं तो विष्णु रक्षक होय कहा किया। वह कहै है- विष्णु रक्षक ही है। देखो क्षुधा तृषादिकके अर्थि अन्न जलादिक किए हैं। कीड़ी को कण कुञ्जरको मण पहुँचावै है संकटमें सहाय करै है। मरणके कारण बने टीटोडी[1] की सी नाईं उबारै है। इत्यादि प्रकार करि विष्णु रक्षा करै है। याको कहिए है- ऐसे है तो जहाँ जीवनिकै क्षुधातृषादिक बहुत पीड़ैं अर अन्न - जलादिक मिलै नाहीं, संकट पड़े सहाय न होय, किंचित् कारण पाइ मरण होय जाय, तहाँ विष्णु की शक्ति हीन भई कि वाको ज्ञान ही न भया। लोकविषै बहुत तो ऐसे ही दुःखी हो हैं मरण पावै हैं, विष्णु रक्षा काहे को न करी। तब वह कहै है, यहु जीवनिके अपने कर्त्तव्य का फल है। तब वाको कहिए है कि जैसे शक्तिहीन लोभी झूठा वैद्य काहूकै किछू भला होइ ताको तो कहै, मेरा किया भया है अर जहाँ बुरा होय, मरण होय तब कहै याका ऐसा ही होनहार था। तैसे ही तू कहै है कि भला भया तहाँ तो विष्णु का किया भया अर बुरा भया सो याका कर्त्तव्य का फल भया।

---

१. एक प्रकार का पक्षी जो एक समुद्र के किनारे रहता था। उसके अंडे समुद्र बहा ले जाता था। सो उसने दुःखी होकर गरुड़ पक्षी की मार्फत विष्णु से अर्ज की तो उन्होंने समुद्र से अंडे दिलवा दिये। पुराणों में ऐसी कथा है।

ऐसी झूठी कल्पना काहेको कीजिए। कै तो बुरा वा भला दोऊ विष्णु का किया कहो, कै अपना कर्तव्यका फल कहो। जो विष्णु का किया भया तो घने जीव दुःखी अर शीघ्र मरते देखिए हैं सो ऐसा कार्य करै ताको रक्षक कैसे कहिए? बहुरि अपने कर्तव्य का फल है तो करेगा सो पावेगा, विष्णु कहा रक्षा करेगा? तब वह कहै है, जे विष्णु के भक्त हैं तिनकी रक्षा करै है। याको कहिए है कि जो ऐसा है तो कीड़ी कुन्जर आदि भक्त नाहीं उनकै अन्नादिक पहुँचावने विषै वा संकट में सहाय होने विषै वा मरण न होने विषै विष्णु का कर्त्तव्य मानि सर्व का रक्षक काहे को मानै, भक्तनिही का रक्षक मानि। सो भक्तनिका भी रक्षक दीसता नाहीं जातैं अभक्त हैं ते भक्त पुरुषनिको पीड़ा उपजावतै देखिए हैं। तब वह कहै है- घनी ही जायगा(जगह) प्रहलादादिककी सहाय करी है। याको कहै हैं- जहाँ सहाय करी तहाँ तो तू तैसे ही मानि परन्तु हम तो प्रत्यक्ष म्लेच्छ मुसलमान आदि अभक्त पुरुषनिकरि भक्त पुरुष पीड़ित होते देखि वा मन्दिरादिको विघ्न करते देखि पूछै हैं कि इहाँ सहाय न करै है सो शक्ति ही नाहीं, कि खबर ही नाहीं। जो शक्ति नाहीं तो इनतैं भी हीनशक्तिका धारक भया। खबर ही नाहीं तो जाको एती भी खबर नाहीं सो अज्ञान भया। अर जो तू कहेगा, शक्ति भी है अर जानै भी है, इच्छा ऐसी ही भई, तो फिर भक्तवत्सल काहेको कहै है। ऐसे विष्णु को लोक का रक्षक मानना बनता नाहीं।

बहुरि वे कहै हैं- महेश संहार करै है सो वाको पूछिए है। प्रथम तो महेश संहार सदा करै है कि महाप्रलय हो है तब ही करै है। जो सदा करै है तो जैसे विष्णु की रक्षा करनेकरि स्तुति कीनी, तैसे याको संहार करवेकरि निंदा करो। जातैं रक्षा अर संहार प्रतिपक्षी हैं। बहुरि यहु संहार कैसे करै है? जैसे पुरुष हस्तादिककरि काहूको मारै वा कहकरि मरावै तैसे महेश अपने अंगनिकरि संहार करै है वा आज्ञाकरि मरावै है। तो क्षण-क्षण में संहार तो घने जीवनिका सर्व लोक में हो है, यहु कैसे कैसे अंगनिकरि वा कौन कौनको आज्ञा देय युगपत् कैसे संहार करै है। बहुरि महेश तो इच्छा ही करै, याकी इच्छातैं स्वयमेव उनका संहार हो है। तो याके सदा काल मारने रूप दुष्ट परिणाम ही रह्या करते होंगे अर अनेक जीवनिके युगपत् मारने की इच्छा कैसे होती होगी। बहुरि जो महाप्रलय होतैं संहार करै है तो परमब्रह्मकी इच्छा भए करै है कि वाकी बिना इच्छा ही करै है। जो इच्छा भए करै है तो परमब्रह्म के ऐसा क्रोध कैसे भया जो सर्वका प्रलय करने की इच्छा भई। जातैं कोई कारण बिना नाश करने की इच्छा होय नाहीं। अर नाश करने की जो इच्छा ताहीका नाम क्रोध है सो कारन बताय। बहुरि तू कहेगा-परमब्रह्म यह ख्याल (खेल) बनाया था बहुरि दूर किया, कारन किछू भी नाहीं। तो ख्याल बनावने वाला को भी ख्याल इष्ट लागै तब बनावै है, अनिष्ट लागै है तब दूरकरै है। जो याको यहु लोक इष्ट अनिष्ट लागै है तो याके लोकस्यों रागद्वेष तो भया साक्षीभूत ब्रह्म का स्वरूप काहेको कहो हो, साक्षीभूत तो वाका नाम है जो स्वयमेव जैसे होय तैसे देख्या जान्या करै। जो इष्ट अनिष्ट मान उपजावै, नष्ट करै ताको साक्षीभूत कैसे कहिए, जातैं साक्षीभूत रहना अर कर्ता हर्त्ता होना ए दोऊ परस्पर विरोधी हैं। एककै दोऊ सम्भवै नाहीं। बहुरि परमब्रह्म के पहिले तो इच्छा यहु भई थी कि 'मैं एक हूँ सो बहुत होस्यूं' तब बहुत भया। अब ऐसी इच्छा भई होसी जो "मैं बहुत हूँ सो एक होस्यूं" सो जैसे कोऊ भोलपतैं कार्यकरि पीछे तिस कार्यको दूरकिया चाहै, तैसे परमब्रह्म भी बहुत होय एक

होने की इच्छा करी सो जानिये है कि बहुत होने का कार्य किया होय सो भोलप ही तैं किया, आगामी ज्ञान करि किया होता तो काहेको ताके दूरि करने की इच्छा होती।

बहुरि जो परमब्रह्म की इच्छा बिना ही महेश संहार करै है तो यहु परमब्रह्म का वा ब्रह्म का विरोधी भया। बहुरि पूछै हैं यहु महेश लोक को कैसे संहार करै है। अपने अंगनिहीकरि संहार करै है कि इच्छा होतैं स्वयमेव ही संहार होय है? जो अपने अंगनिकरि संहारकरै है तो सर्वका युगपत्संहार कैसे करै है? बहुरि याकी इच्छा होतैं स्वयमेव संहार हो है तो इच्छा तो परमब्रह्म कीन्हीं थी, यानैं संहार कहा किया?

बहुरि हम पूछै हैं कि संहार भए सर्व लोकविषै जीव अजीव थे ते कहाँ गए? तब वह कहै है- जीवनिविषै भक्त तो ब्रह्म विषै मिले, अन्य मायाविषै मिले। अब याको पूछिये है कि माया ब्रह्मतैं जुदी रहै है कि पीछै एक होय जाय है। जो जुदी रहै है तो ब्रह्मवत् माया भी नित्य भई। तब अद्वैतब्रह्म न रह्या। अर माया ब्रह्म में एक होय जाय है तो जे जीव माया में मिले थे तैं भी माया की साथि ब्रह्म में मिल गए तो महाप्रलय होतैं सर्वका परमब्रह्म में मिलना ठहरया ही तो मोक्ष का उपाय काहेको करिए। बहुरि जे जीव माया में मिले ते, बहुरि लोकरचना भए वे ही जीव लोकविषै आवेंगे कि वे तो ब्रह्म में मिल गए थे कि नए उपजेंगे। जो वे ही आवेंगे तो जानिए है जुदे-जुदे रहै हैं, मिले काहेको कहो। अर नए उपजेंगे तो जीवका अस्तित्व थोरा कालपर्यंत ही रहै, काहेको मुक्त होने का उपाय कीजिए।

बहुरि वह कहै है कि पृथिवी आदिक हैं ते मायाविषै मिले हैं सो माया अमूर्त्तीक सचेतन है कि मूर्त्तीक अचेतन है। जो अमूर्त्तीक सचेतन है तो अमूर्त्तीक में मूर्त्तीक अचेतन कैसे मिलै? अर मूर्त्तीक अचेतन है तो यहु ब्रह्म में मिलै है कि नाहीं। जो मिलै है तो याके मिलने तैं ब्रह्म भी मूर्त्तीक अचेतनकरि मिश्रित भया। अर न मिलै है तो अद्वैतता न रही। अर तू कहेगा ए सर्व अमूर्त्तीक अचेतन होइ जाय हैं तो आत्मा अर शरीरादिककी एकता भई, सो यहु संसारी एकता मानै ही है, याको अज्ञानी काहेको कहिए। बहुरि पूछै हैं-लोक का प्रलय होतैं महेश का प्रलय हो है कि न हो है। जो हो है तो युगपत् हो है कि आगे पीछै हो है। जो युगपत् हो है तो आप नष्ट होता लोक को नष्ट कैसे करै। अर आगे पीछै हो है तो महेश लोकको नष्टकरि आप कहाँ रह्या, आप भी तो सृष्टिविषै ही था, ऐसे महेश को सृष्टि का संहारकर्त्ता मानै हैं सो असम्भव है। या प्रकारकरि वा अन्य अनेक प्रकारनिकरि ब्रह्मा विष्णु महेश को सृष्टि का उपजावनहारा, रक्षा करनहारा, संहार करनहारा मानना न बनै, तातैं लोक को अनादिनिधन मानना।

लोक की अनादिनिधनता

इस लोकविषै जे जीवादि पदार्थ हैं ते न्यारे-न्यारे अनादिनिधन हैं। बहुरि तिनकी अवस्था की पलटनि हुवा करै है। तिस अपेक्षा उपजते विनशते कहिये है। बहुरि जे स्वर्ग नरक द्वीपादिक हैं ते अनादितैं ऐसे ही हैं अर सदाकाल ऐसे ही रहेंगे। कदाचित् तू कहेगा बिना बनाए ऐसे आकारादिक कैसे भए, सो भए होय तो बनाये ही होय। सो ऐसा नाहीं है जातैं अनादितैं ही जे पाइए तहाँ तर्क कहा। जैसे तू परमब्रह्म का स्वरूप अनादिनिधन मानै है तैसे ए जीवादिक वा स्वर्गादिक अनादिनिधन मानिए हैं। तू कहेगा जीवादिक

वा स्वर्गादिक कैसे भए? हम कहेंगे परमब्रह्म कैसे भया। तू कहेगा इनकी रचना ऐसी कौनकरी? हम कहेंगे परमब्रह्म को ऐसा कौन बनाया? तू कहेगा परमब्रह्म स्वयंसिद्ध है; हम कहे हैं जीवादिक वा स्वर्गादिक स्वयंसिद्ध हैं; तू कहेगा इनकी अर परब्रह्म की समानता कैसे सम्भवै? तो सम्भवनेविषै दूषण बताय। लोकको नवा उपजावना ताका नाश करना तिसविषै तो हम अनेक दोष दिखाये। लोकको अनादिनिधन मानने तैं कहा दोष है? सो तू बताय। जो तू परमब्रह्म मानै है सो जुदा ही कोई है नाहीं। ए संसारविषै जीव हैं ते ही यथार्थ ज्ञानकरि मोक्षमार्ग साधनतैं सर्वज्ञ वीतराग हो हैं।

इहाँ **प्रश्न**- जो तुम तो न्यारे-न्यारे जीव अनादिनिधन कहो हो। मुक्त भए पीछै तो निराकार हो है, तहाँ न्यारे-न्यारे कैसे सम्भवैं?

ताका **समाधान**-जो मुक्त भए पीछै सर्वज्ञको दीसै है कि नाहीं दीसै है। जो दीसै है तो किछू आकार दीसता ही होगा। बिना आकार देखे कहा देख्या, अर न दीसै है तो कै तो वस्तु ही नाहीं, कै सर्वज्ञ नाहीं। तातैं इन्द्रियज्ञानगम्य आकार नाहीं तिस अपेक्षा निराकार है अर सर्वज्ञ ज्ञानगम्य है तातैं आकारवान् हैं। जब आकारवान् ठहर्‌या तब जुदा-जुदा होय तो कहा दोष लागै? बहुरि जो तू जाति अपेक्षा एक कहै तो हम भी मानैं हैं। जैसे गेहूँ भिन्न-भिन्न हैं तिनकी जाति एक है ऐसे एक मानै तो किछू दोष है नाहीं। या प्रकार यथार्थ श्रद्धानकरि लोकविषै सर्व पदार्थ अकृत्रिम जुदे-जुदे अनादिनिधन मानने। बहुरि जो वृथा ही भ्रमकरि साँच झूंठ का निर्णय न करै तो तू जानै, तेरे श्रद्धान का फल तू पावेगा।

ब्रह्म से कुलप्रवृत्ति आदि का प्रतिषेध

बहुरि वे ही ब्रह्मतैं पुत्रपौत्रादिकरि कुलप्रवृत्ति कहै हैं। बहुरि कुलनिविषैं राक्षस मनुष्य देव तिर्यंचनिकै परस्पर प्रसूति भेद बतावै हैं। तहाँ देवतैं मनुष्य वा मनुष्यतैं देव वा तिर्यंचतैं मनुष्य इत्यादि कोई माता कोई पितातैं कोई पुत्रपुत्री का उपजना बतावै सो कैसे सम्भवै? बहुरि मनही करि वा पवनादिकरि वा वीर्य सूँघने आदिकरि प्रसूति होनी बतावै है सो प्रत्यक्षविरुद्ध भासै है। ऐसे होते पुत्रपौत्रादिक का नियम कैसे रह्या? बहुरि बड़े-बड़े महन्तनिको अन्य-अन्य माता-पितातैं भए कहै हैं। सो महंत पुरुष कुशीली माता-पिताकै कैसे उपजैं? यहु तो लोकविषै गालि है। ऐसा कहि उनकी महंतता काहेको कहिए है।

अवतार मीमांसा

बहुरि गणेशादिक की मैल आदि करि उत्पत्ति बतावै है वा काहूके अंग काहूकै जुरै बतावै है। इत्यादि अनेक प्रत्यक्ष विरुद्ध कहै है। बहुरि चौईस अवतार[1] भए कहै हैं, तहाँ केई अवतारनिको पूर्णावतार कहै हैं। केईनिको अंशावतार कहै हैं। सो पूर्णावतार भए तब ब्रह्म अन्यत्र व्यापक रह्या कि न रह्या। जो रह्या तो इन अवतारनिको पूर्णावतार काहे को कहो। जो (व्यापक) न रह्या तो एतावन्मात्र ही ब्रह्म रह्या।

१. सनत्कुमार १ शूकरावतार २ देवर्षि नारद ३ नर नारायण ४ कपिल ५ दत्तात्रय ६ यज्ञपुरुष ७ ऋषभावतार ८ पृथु अवतार ९ मत्स्य १० कच्छप ११ धन्वन्तरि १२ मोहिनी १३ नृसिंहावतार १४ वामन १५ परशुराम १६ व्यास १७ हंस १८ रामावतार १९ कृष्णावतार २० हयग्रीव २१ हरि २२ बुद्ध २३ और कल्कि ये २४ अवतार माने जाते हैं।

बहुरि अंशावतार भए तहाँ ब्रह्म का अंश तो सर्वत्र कहो हो, इन विषै कहा अधिकता भई? बहुरि कार्य तो तुच्छ तिस के वास्ते आप ब्रह्म अवतार धारया कहै सो जानिये है बिना अवतार धारै ब्रह्म की शक्ति तिस कार्य के करने की न थी। जातैं जो कार्य स्तोक उद्यमतैं होइ तहां बहुत उद्यम काहेको करिए? बहुरि अवतारनिविषै मच्छ कच्छादि अवतार भए सो किंचित् कार्य करने के अर्थि हीन तिर्यंच पर्यायरूप भए, सो कैसे सम्भवै? बहुरि प्रहलाद के अर्थि नरसिंह अवतार भए सो हरिणांकुशको ऐसा काहेको होने दिया अर कितेक काल अपने भक्त को काहेको दुःख द्याया। बहुरि ऐसा रूप काहेको धरया। बहुरि नाभिराजाकै वृषभावतार भया बतावै है सो नाभिको पुत्रपने का सुख उपजावने को अवतार धारया। घोर तपश्चरण किस अर्थि किया। उनको तो किछू साध्य था ही नाहीं। अर कहेगा जगत् के दिखावने को किया तो कोई अवतारतो तपश्चरण दिखावै, कोई अवतार भोगादिक दिखावै, जगत् किसको भला जानि लागै।

बहुरि (वह) कहै है- एक अरहंत नामका राजा भया[1] सो वृषभावतार का मत अंगीकार करि जैनमत प्रगट किया सो जैनविषै कोई एक अरहंत भया नाहीं। जो सर्वज्ञपद पाय पूजन योग्य होय ताहीका नाम अर्हन्त है। बहुरि रामकृष्ण इन दोउ अवतारनिको मुख्य कहै हैं सो रामावतार कहा किया। सीता के अर्थि विलापकरि रावणसों लरि वाकूं मारि राज किया। अर कृष्णावतार पहिलै गुवालिया होइ परस्त्री गोपिकानि के अर्थि नाना विपरीति निंद्य चेष्टाकरि,[2] पीछे जरासिंधु आदिको मारि राज किया। सो ऐसे कार्य करने में कहा सिद्धि भई। बहुरि रामकृष्णादिकका एक स्वरूप कहै। सो बीच में इतने काल कहाँ रहे? जो ब्रह्मविषै रहे तो जुदे रहे कि एक रहे। जुदे रहे तो जानिए है, ए ब्रह्मतैं जुदे रहै हैं। एक रहे तो राम ही कृष्ण भया सीता ही रुक्मणी भई इत्यादि कैसे कहिए है। बहुरि रामावतारविषै तो सीताको मुख्य करै अर कृष्णावतारविषै सीता को रुक्मणी भई कहै अर ताको तो प्रधान न कहै, राधिका कुमारी ताको मुख्य करै। बहुरि पूछै तब कहे राधिका भक्त थी, सो निजस्त्री को छोरि दासी का मुख्य करना कैसे बनै? बहुरि कृष्णकै तो राधिकासहित परस्त्री - सेवन के सर्व विधान भए सो यहु भक्ति कैसी करी, ऐसे कार्य तो महानिंद्य हैं। बहुरि रुक्मणी को छोरि राधा को मुख्य करी, सो परस्त्री-सेवनको भला जानि करी होसी। बहुरि एक राधा विषै ही आसक्त न भया, अन्य गोपिका कुब्जा[3] आदि अनेक परस्त्रीनिविषै भी आसक्त भया। सो यहु अवतार ऐसे ही कार्य का अधिकारी भया। बहुरि कहै-लक्ष्मी वाकी स्त्री है अर धनादिकको लक्ष्मी कहै सो ए तो पृथ्वी आदि विषै जैसे पाषाण धूलि है तैसे ही रत्न सुवर्णादि धन देखिए है। जुदी ही लक्ष्मी कौन जाका भर्तार नारायण है। बहुरि सीतादिकको माया का स्वरूप कहै सो इन विषै आसक्त भए तब मायाविषै आसक्त कैसे न भया। कहां ताईं कहिए जो निरूपणकरै सो विरुद्ध करै। परन्तु जीवनिको भोगादिक की वार्ता सुहावै, तातैं तिनका कहना वल्लभ लागै है। ऐसे अवतार कहै है, इनको ब्रह्मस्वरूप कहै हैं। बहुरि औरनिको भी

१. भागवत स्कंध ५ अ. ६, ७, ११।
२. विष्णु. पु. अ. १३ श्लोक ४५ से ६० तक।
ब्रह्मपुराण अ. १८९ और भागवतस्कंध १०, अ. ३०, ४८।
३. भागवतस्कन्ध १० अ. ४८, १-११।

ब्रह्मस्वरूप कहै हैं। एक तो महादेवको ब्रह्मस्वरूप मानै हैं ताको योगी कहै हैं, सो योग किस अर्थि गह्या। बहुरि मृगछाला भस्मी धारै है सो किस अर्थि धारी है। बहुरि रुण्डमाला पहरै है सो हाड़का छीवना भी निंद्य है ताको गले में किस अर्थि धारै है। सर्पादि सहित है सो यामें कौन बड़ाई है। आक धतूरा खाय है सो यामें कौन भलाई है। त्रिशूलादि राखै है सो कौनका भय है। बहुरि पार्वती संग लिए है सो योगी होय स्त्री राखै सो ऐसा विपरीतपना काहेको किया। कामासक्त था तो घर ही में रह्या होता बहुरि यानै नाना प्रकार विपरीत चेष्टा कीन्ही ताका प्रयोजन तो किछू भासै नाहीं। बाउले का सा कर्त्तव्य भासै ताको ब्रह्मस्वरूप कहै।

बहुरि कबहूँ कृष्ण को याका सेवक कहै, कबहूँ याको कृष्ण का सेवक कहै। कबहूँ दोऊनिको एक ही कहै, किछू ठिकाना नाहीं। बहुरि सूर्यादिकको ब्रह्मका स्वरूप कहै। बहुरि ऐसा कहै जो विष्णु कह्या सो धातुनिविषै सुवर्ण, वृक्षनिविषै कल्पवृक्ष, जूवा विषै झूंठ इत्यादि में मैं ही हूँ सो किछू पूर्वापर विचारै नाहीं। कोई एक अंगकरि केई संसारी जाको महंत मानै ताहीको ब्रह्मका स्वरूप कहैं। सो ब्रह्म सर्वव्यापी है तो ऐसा विशेष काहेको किया। अर सूर्यादिविषै वा सुवर्णादिविषै ही ब्रह्म है तो सूर्य उजारा करै है, सुवर्ण धन है इत्यादि गुणनिकरि ब्रह्म मान्या सो सूर्यवत् दीपादिक भी उजाला करै है, सुवर्णवत् रूपा लोहा आदि भी धन हैं, इत्यादि गुण अन्य पदार्थनिविषै भी हैं तिनको भी ब्रह्म मानो। बड़ा छोटा मानो परन्तु जाति तो एक भई। सो झूंठी महंतता ठहरावने के अर्थि अनेक प्रकार युक्ति बनावै है।

बहुरि अनेक ज्वालामालिनी आदि देवी तिनको माया का स्वरूप कहि हिंसादिक पाप उपजाय पूजना ठहरावै है सो माया तो निंद्य है ताका पूजना कैसे सम्भवै? अर हिंसादिक करना कैसे भला होय? बहुरि गऊ सर्प आदि पशु अभक्ष्य भक्षणादिसहित तिनको पूज्य कहै। अग्नि पवन जलादिको देव ठहराय पूज्य कहै। वृक्षादिकको युक्ति बनाय पूज्य कहै। बहुत कहा कहिए, पुरुषलिंगीनाम सहित जे होय तिनिविषै ब्रह्म की कल्पना करै अर स्त्रीलिंगी नाम सहित होय तिनि विषै माया की कल्पनाकरि अनेक वस्तुनिका पूजन ठहरावै है। इनके पूजे कहा होगा सो किछू विचार नाहीं। झूंठे लौकिक प्रयोजन के कारण ठहराय जगत् को भ्रमावै है। बहुरि वे कहै हैं- विधाता शरीर को घड़े है, बहुरि यम मारै है, मरते समय यम के दूत लेने आवै हैं, मूए पीछे मार्गविषै बहुत काल लागै है, बहुरि तहां पुण्य-पाप का लेखा करै है, बहुरि तहाँ दंडादिक देहै। सो ए कल्पित झूंठी युक्ति है। जीव तो समय-समय अनन्ते उपजै मरैं तिनका युगपत् ऐसे होना कैसे सम्भवै? अर ऐसे मानने का कोई कारण भी भासै नाहीं।

श्राद्धनिषेध

बहुरि मूए पीछै श्राद्धादिक करि वाका भला होना कहै सो जीवतां तो काहूके पुण्य - पापकरि कोई सुखी दुःखी होता दीसै नाहीं, मूए पीछै कैसे होइ। ए युक्ति मनुष्यनिको भ्रमाय अपने लोभ साधने के अर्थि बनाई है। कीड़ी पतंग सिंहादिक जीव भी तो उपजै मरै हैं, उनको प्रलय के जीव ठहरावै। सो जैसे मनुष्यादिक के जन्म मरण होते देखिए है, तैसे ही उनके होते देखिए है। झूंठी कल्पना किए कहा सिद्धि है? बहुरि वे शास्त्रनिविषै कथादिक निरूपै हैं तहाँ विचारकिए विरुद्ध भासै है।

यज्ञ में पशुहिंसा का प्रतिषेध

बहुरि यज्ञादिक करना धर्म ठहरावैं है। सो तहाँ बड़े जीव तिन का होम करै है, अग्न्यादिकका महा आरम्भ करै है, तहाँ जीवघात हो है सो उनही के शास्त्रविषै वा लोकविषै हिंसा का निषेध है सो ऐसे निर्दय हैं किछू गिनै नाहीं। अर कहै- "यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः" ए यज्ञ ही के अर्थि पशु बनाए हैं। तहाँ घात करने का दोष नाहीं। बहुरि मेघादिकका होना, शत्रु आदिका विनशना इत्यादि फल दिखाय अपने लोभ के अर्थि राजादिकनिको भ्रमावै। सो कोई विषतैं जीवना कहै सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। तैसे हिंसा किए धर्म अर कार्यसिद्ध कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है। परन्तु जिनकी हिंसा करनी कही, तिनकी तो किछू शक्ति नाहीं, उनकी काहूको पीर नाहीं। जो किसी शक्तिवान् का वा इष्ट का होम करना ठहराया होता तो ठीक पड़ता। बहुरि पाप का भय नाहीं तातैं पापी दुर्बल के घातक होय अपने लोभ के अर्थि अपना वा अन्य का बुरा करने विषै तत्पर भए हैं।

बहुरि ते मोक्षमार्ग भक्तियोग अर ज्ञानयोग करि दोय प्रकार प्ररूपै हैं। अब भक्तियोग करि मोक्षमार्ग कहैं ताका स्वरूप कहिये हैं-

भक्तियोग मीमांसा

तहां भक्ति निर्गुण सगुण भेदकरि दोय प्रकार कहै हैं। तहाँ अद्वैत परमब्रह्म की भक्ति करनी सो निर्गुणभक्ति है। सो ऐसे करै हैं- तुम निराकार हो, निरंजन हो, मन वचन के अगोचर हो, अपार हो, सर्वव्यापी हो, एक हो, सर्व के प्रतिपालक हो, अधमउधारक हो, सर्व के कर्त्ता हर्त्ता हो इत्यादि विशेषणनिकरि गुण गावै हैं। सो इन विषै केई तो निराकारादि विशेषण हैं सो अभावरूप है तिनको सर्वथा माने अभाव ही भासै। जातैं आकारादि बिना वस्तु कैसे होई। बहुरि केई सर्वव्यापी आदि विशेषण असम्भवी हैं सो तिनका असम्भवपना पूर्वे दिखाया ही है। बहुरि ऐसा कहै जो जीव बुद्धिकरि मैं तिहारा दास हूँ, शास्त्रदृष्टिकरि तिहारा अंश हूँ, तत्त्वबुद्धिकरि 'तू ही मैं हूँ' सो ए तीनों ही भ्रम हैं। यहु भक्तिकरनहारा चेतन है कि जड़ है। जो चेतन है तो यहु चेतना ब्रह्मकी है कि इसहीकी है। जो ब्रह्मकी है तो मैं दास हूँ ऐसा मानना तो चेतना ही के हो है सो चेतना ब्रह्म का स्वभाव ठहरया अर स्वभाव स्वभावीकै तादात्म्यसम्बन्ध है। तहाँ दास अर स्वामी का सम्बन्ध कैसे बनै? दास-स्वामी का सम्बन्ध तो भिन्न पदार्थ होय तब ही बनै। बहुरि जो यहु चेतना इसही की है तो यहु अपनी चेतना का धनी जुदा पदार्थ ठहरया तो मैं अंश हूँ वा 'जो तू है सो मैं हूँ' ऐसा कहना झूंठा भया। बहुरि जो भक्ति करणहारा जड़ है तो जड़कै बुद्धिका होना असम्भव है ऐसी बुद्धि कैसे भई। तातैं 'मैं दास हूँ' ऐसा कहना तो तब ही बनै जब जुदे-जुदे पदार्थ होय। अर 'तेरा मैं अंश हूँ' ऐसा कहना बनै ही नाहीं। जातैं 'तू' अर 'मैं' ऐसा तो भिन्न होय तब ही बनै, सो अंश अंशी भिन्न कैसे होय? अंशी तो कोई जुदा वस्तु है नाहीं, अंशनिका समुदाय सो ही अंशी है। अर तू है सो मैं हूँ, ऐसा वचन ही विरुद्ध है। एक पदार्थविषै आपो भी मानै अर वाको पर भी मानै सो कैसे सम्भवै? तातैं भ्रम छोड़ि निर्णय करना। बहुरि केई नाम ही जपै हैं सो जाका नाम जपै ताका स्वरूप पहिचाने बिना केवल

नामही का जपना कैसे कार्यकारी होय। जो तू कहेगा, नामहीका अतिशय है तो जो नाम ईश्वरका है सो ही नाम किसी पापी पुरुषका धरया, तहाँ दोऊनिका नाम उच्चारणविषै फलकी समानता होय सो कैसे बनै। तातैं स्वरूपका निर्णयकरि पीछै भक्ति करने योग्य होय ताकी भक्ति करनी। ऐसे निर्गुणभक्तिका स्वरूप दिखाया।

बहुरि जहाँ काम-क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिका वर्णनकरि स्तुत्यादि करिए ताको सगुणभक्ति कहै है। तहां सगुणभक्तिविषै लौकिक शृंगार वर्णन जैसे नायक नायिका का करिए तैसे ठाकुर-ठकुरानीका वर्णन करै है। स्वकीया परकीया स्त्रीसम्बन्धी संयोगवियोगरूप सर्वव्यवहार तहाँ निरूपै है। बहुरि स्नान करती स्त्रीनिका वस्त्र चुरावना, दधि लूटना, स्त्रीनिके पगां पड़ना, स्त्रीनिके आगै नाचना इत्यादि जिन कार्यनिको संसारी जीव भी करते लज्जित होय तिनि कार्यनिका करना ठहरावै है। सो ऐसा कार्य अतिकाम पीड़ित भएही बनै। बहुरि युद्धादिक किए कहै तो ए क्रोध के कार्य हैं। अपनी महिमा दिखावने के अर्थि उपाय किए कहै सो ए मान के कार्य हैं। अनेक छल किए कहै सो मायाके कार्य हैं। विषय-सामग्री प्राप्तिके अर्थि यत्न किए कहै सो ए लोभ के कार्य हैं। कौतूहलादिक किए कहै सो हास्यादिकके कार्य हैं। ऐसे ए कार्य क्रोधादिकरि युक्त भए ही बनै। या प्रकार काम-क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिको प्रगटकरि कहैं, हम स्तुति करै हैं। सो काम-क्रोधादिके कार्य ही स्तुतियोग्य भए तो निंद्य कौन ठहेरेंगे। जिनकी लोकविषै, शास्त्रविषै अत्यन्त निन्दा पाइए तिनि कार्यनिका वर्णनकरि स्तुति करना तो हस्तचुगलकासा कार्य भया। हम पूछै हैं- कोऊ किसीका नाम तो कहै नाहीं अर ऐसे कार्यनिहीका निरूपण करि कहै कि किसीने ऐसे कार्य किए हैं, तब तुम वाको भला जानो कि बुरा जानो। जो भला जानो तो पापी भले भए, बुरा कौन रह्या। बुरे जानो तो ऐसे कार्य कोई करो सो ही बुरा भया। पक्षपात रहित न्याय करो। जो पक्षपातिकरि कहोगे, ठाकुरका ऐसा वर्णन करना भी स्तुति है तो ठाकुर ऐसे कार्य किस अर्थि किए। ऐसे निंद्यकार्य करने में कहा सिद्धि भई? कहोगे, प्रवृत्ति चलावनेके अर्थि किए तो परस्त्रीसेवन आदि निंद्यकार्यनिकी प्रवृत्ति चलावनेमें आपकै वा अन्यकै कहा नफा भया। तातैं ठाकुरकै ऐसा कार्य करना सम्भव नाहीं। बहुरि जो ठाकुर कार्य न किए तुम ही कहो हो, तो जामें दोष न था ताको दोष लगाया, तातैं ऐसा वर्णन करना तो निंदा है, स्तुति नाहीं। बहुरि स्तुति करतै जिन गुणनिका वर्णन करिए तिस रूप ही परिणाम होय वा तिनही विषै अनुराग आवै। सो काम-क्रोधादि कार्यनिका वर्णन करता आप भी कामक्रोधादिरूप होय अथवा कामक्रोधादि विषै अनुरागी होय तो ऐसे भाव तो भले नाहीं। जो कहोगे, भक्त ऐसा भाव न करै हैं तो परिणाम भए बिना वर्णन कैसे किया। तिनका अनुराग भए बिना भक्ति कैसे करी। सो ए भाव ही भले होय तो ब्रह्मचर्यको वा क्षमादिकको भले काहेको कहिए। इनके तो परस्पर प्रतिपक्षीपना है। बहुरि सगुणभक्ति करने के अर्थि राम-कृष्णादिककी मूर्ति भी शृंगारादि किए वक्रत्वादिसहित स्त्री आदि संग लिए बनावै है, जाको देखते ही कामक्रोधादि भाव प्रगट होय आवै अर महादेवके लिंगहीका आकार बनावै है। देखो विडम्बना, जाका नाम लिए लाज आवै, जगत् जिसको ढाँक्या राखै ताके आकारका पूजन करावै है। कहा अन्य अंग वाके न थे? परन्तु घनी विडम्बना ऐसे ही किए प्रगट होय। बहुरि सगुणभक्तिके अर्थि नाना प्रकार विषयसामग्री भेली करै। बहुरि नाम तो

ठाकुरका करै अर तिनको आप भोगवै। भोजनादिक बनावै बहुरि ठाकुरको भोग लगाया कहै, पीछे आप ही प्रसादकी कल्पनाकरि ताका भक्षणादि करै। सो इहां पूछिये है, प्रथम तो ठाकुरकै क्षुधा तृषा पीड़ा होसी। न होइ तो ऐसी कल्पना कैसे सम्भवै। अर क्षुधादिकरि पीड़ित होय सो व्याकुल होइ तब ईश्वर दु:खी भया, औरका दु:ख कैसे दूरि करै। बहुरि भोजनादि सामग्री आप तो उनके अर्थि अर्पण करी, सो करी, पीछै प्रसाद तो ठाकुर देवै तब होय, आपही का तो किया न होय। जैसे कोऊ राजाको भेंट करि पीछे राजा बकसै तो वाको ग्रहण करना योग्य अर आप राजा की भेंट करै अर राजा तो किछू कहै नाहीं, आप ही 'राजा मोकूं बकसी' ऐसे कहि वाको अंगीकार करै तो यहु, ख्याल (खेल) भया। तैसे इहाँ भी ऐसे किए भक्ति तो भई नाहीं, हास्य करना भया। बहुरि ठाकुर अर तू दोय हो कि एक हो। दोय हो तो तैंने भेंट करी, पीछै ठाकुर बकसै सो ग्रहण कीजे, आप ही तैं ग्रहण काहेको करै है। अर तू कहेगा ठाकुरकी तो मूर्ति है तातैं मैं ही कल्पना करूं हूं, तो ठाकुरका करने का कार्य तैं ही किया तब तू ही ठाकुर भया। बहुरि जो एक हो तो भेंट करनी, प्रसाद कहना झूंठा भया। एक भए यहु व्यवहार सम्भवै नाहीं तातैं भोजनासक्त पुरुषनिकरि ऐसी कल्पना करिए है। बहुरि ठाकुरके अर्थि नृत्य - गानादि करावना, शील ग्रीष्म बसंत आदि ऋतुनिविषै संसारीनिकै सम्भवती ऐसी विषयसामग्री भेली करनी इत्यादि कार्य करै। तहाँ नाम तो ठाकुर का लेना अर इन्द्रियनिके विषय अपने पोषने सो विषयासक्त जीवनिकरि ऐसा उपाय किया है। बहुरि जन्म विवाहादिक की वा सोवना जागना इत्यादिककी कल्पना तहाँ करै है सो जैसे लड़की गुड्डागुड्डीनिका ख्याल बनाय करि कौतूहल करै, तैसे यहु भी कौतूहल करना है। किछू परमार्थरूप गुण है नाहीं। बहुरि लड़के ठाकुरका स्वांग बनाय चेष्टा दिखावै। ताकरि अपने विषय पोषै अर कहै यहु भी भक्ति है, इत्यादि कहा कहिए। ऐसी अनेक विपरीतता सगुण भक्ति विषै पाईए है। ऐसे दोय प्रकार भक्तिकरि मोक्षमार्ग कहै सो ताको मिथ्या दिखाया।

अब ज्ञानयोगकरि मोक्षमार्ग कहै है ताका स्वरूप कहिए है-

ज्ञानयोग मीमांसा

एक अद्वैत सर्वव्यापी परमब्रह्म को जानना ताको ज्ञान कहै है सो ताका मिथ्यापना तो पूर्वै कह्या ही है। बहुरि आपको सर्वथा शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मानना, कामक्रोधादिक व शरीरादिकको भ्रम जानना ताको ज्ञान कहै है सो यहु भ्रम है आप शुद्ध है तो मोक्षका उपाय काहेको करै है। आप शुद्धब्रह्म ठहरया तब कर्त्तव्य कहा रह्या? बहुरि प्रत्यक्ष आपकै कामक्रोधादिक होते देखिए है अर शरीरादिक का संयोग देखिए है सो इनका अभाव होगा तब होगा, वर्त्तमान विषै इनका सद्भाव मानना भ्रम कैसे भया? बहुरि कहै हैं, मोक्षका उपाय करना भी भ्रम है। जैसे जेवरी तो जेवरी ही है ताको सर्प जानै था सो भ्रम था-भ्रम मेटे जेवरी ही है। तैसे आप तो ब्रह्म ही है, आपको अशुद्ध जानै था सो भ्रम था, भ्रम मेटे आप ब्रह्म ही है। सो ऐसा कहना मिथ्या है। जो आप शुद्ध होय अर ताको अशुद्ध जानै तो भ्रम अर आप कामक्रोधादिसहित अशुद्ध होय रह्या ताको अशुद्ध जानै तो भ्रम कैसे होइ। शुद्ध जानै भ्रम होइ सो झूंठा भ्रम-करि आपको शुद्धब्रह्म मानै कहा सिद्धि है। बहुरि तू कहेगा, ए काम क्रोधादिक तो मनके धर्म हैं, ब्रह्म न्यारा है तो तुझकूं पूछिए है- मन तेरा स्वरूप है कि नाहीं। जो है तो काम-क्रोधादिक भी तेरे ही भए। अर नाहीं तो तू ज्ञानस्वरूप है कि

जड़ है। जो ज्ञानस्वरूप है तो तेरे तो ज्ञान मन वा इन्द्रिय द्वारा ही होता दीसै है। इनि बिना कोई ज्ञान बतावै तो ताको जुदा तेरा स्वरूप मानै सो भासता नाहीं। बहुरि 'मन् ज्ञाने' धातुतैं मन शब्द निपजै है सो मन तो ज्ञानस्वरूप है। सो यहु ज्ञान किसका है ताको बताय सो जुदा कोऊ भासै नाही। बहुरि जो तू जड़ है तो ज्ञान बिना अपने स्वरूपका विचार कैसे करै है, यहु बनै नाहीं । बहुरि तू कहै है, ब्रह्म न्यारा है सो वह न्यारा ब्रह्म तू ही है कि और है। जो तू ही है तो तेरे 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा मानने वाला जो ज्ञान है सो तो मन स्वरूप ही है, मनतैं जुदा नाहीं अर आपा मानना आप ही विषै होय। जाको न्यारा जाने तिसविषै आपा मान्यो जाय नाहीं। सो मनतैं न्यारा ब्रह्म है तो मनरूप ज्ञान ब्रह्मविषै आपा काहेको मानै है। बहुरि जो ब्रह्म और ही है तो तू ब्रह्मविषै आपा काहेको मानै तातैं भ्रम छोड़ि ऐसा जानि, जैसे स्पर्शनादि इन्द्रिय तो शरीर का स्वरूप है सो जड़ है, याके द्वारि जो जानपनो हो है सो आत्माका स्वरूप है; तैसे ही मन भी सूक्ष्म परमाणुनिका पुञ्ज है सो शरीर ही का अंग है, ताकै द्वारि जानपना हो है वा कामक्रोधादि भाव हो है सो सर्व आत्माका स्वरूप है। विशेष इतना- जानपनां तो निज स्वभाव है, काम-क्रोधादिक उपाधिक भाव हैं तिनकरि आत्मा अशुद्ध है। **जब काल पाय काम-क्रोधादि मिटैंगे अर जानपनांकै मन इन्द्रियका आधीनपना मिटेगा, तब केवलज्ञानस्वरूप आत्मा शुद्ध होगा।** ऐसे ही बुद्धि अहंकारादिक भी जानि लेने, जातैं मन अर बुद्धयादिक एकार्थ हैं अर अहंकारादिक हैं ते काम क्रोधादिकवत् उपाधिक भाव हैं। इनको आपतैं भिन्न जानना भ्रम है। इनको अपने जानि उपाधिक भावनिके अभाव करनेका उद्यम करना योग्य है। **बहुरि जिनतैं इनका अभाव न होय सकै अर अपनी महंतता चाहै ते जीव इनको अपने न ठहराय स्वच्छन्द प्रवर्तै हैं।** काम - क्रोधादिक भावनिको बधाय विषय-सामग्रीनिविषै वा हिंसादिकार्यनिविषै तत्पर हो हैं। बहुरि अहंकारादिक का त्यागको भी अन्यथा मानै है। सर्वको परमब्रह्म मानना, कहीं आपो न माननो ताको अहंकारका त्याग बतावै सो मिथ्या है जातैं कोई आप है कि नाहीं। जो है तो आपविषै आपो कैसे न मानिए, जो आप नाहीं है तो सर्वको ब्रह्म कौन मानै है? तातैं शरीरादि परविषै अहंबुद्धि न करनी, तहाँ कर्त्ता न होना सो अहंकार का त्याग है। आप विषै अहंबुद्धि करनेका दोष नाहीं। बहुरि सर्वको समान जानना, **कोई विषै भेद न करना ताको रागद्वेषका त्याग बतावै है सो भी मिथ्या है। जातैं सर्व पदार्थ समान हैं नाहीं। कोई चेतन है कोई अचेतन है, कोई कैसा है कोई कैसा है तिनको समान कैसे मानिए? तातैं परद्रव्यनिको इष्ट अनिष्ट न मानना सो रागद्वेषका त्याग है।** पदार्थनिका विशेष जानने में तो किछू दोष नाहीं। ऐसे ही अन्य मोक्षमार्गरूप भावनिकी अन्यथा कल्पना करै है। बहुरि ऐसी कल्पनाकरि कुशील सेवै है, अभक्ष्य भखै है, वर्णादि भेद नाहीं करै है, हीन क्रिया आचरै है इत्यादि विपरीतरूप प्रवर्तै है। जब कोऊ पूछै तब कहै, ए तो शरीरका धर्म है अथवा जैसी प्रालब्धि हैं तैसे हो है अथवा जैसे ईश्वर की इच्छा हो है, तैसे हो है, हमको तो विकल्प न करना। सो देखो झूंठ, आप जानि-जानि प्रवर्तै ताको तो शरीर का धर्म बतावै। आप उद्यमी होय कार्य करै ताको प्रालब्धि कहै। आप इच्छाकरि सेवै ताको ईश्वरकी इच्छा बतावै। विकल्प करै अर कहै हमको तो विकल्प न करना। सो धर्मका आश्रय लेय विषयकषाय सेवने, तातैं झूंठी युक्ति बनावै है। जो अपने परिणाम किछू भी न मिलावै तो हम याका कर्त्तव्य न मानै। जैसे आप ध्यान धरे तिष्ठै है, कोऊ अपने ऊपरि वस्त्र गेरि गया तहां आप किछू सुखी न भया, तहां तो ताका कर्त्तव्य नाहीं

सो सांच अर आप वस्त्रको अंगीकार करि पहरै, अपनी शीतादिक वेदना मिटाय सुखी होय, तहाँ जो अपना कर्तव्य मानै नाहीं सो कैसे संभवै। बहुरि कुशील सेवना, अभक्ष्य भखणा इत्यादि कार्य तो परिणाम मिले बिना होते ही नाहीं। तहाँ अपना कर्तव्य कैसे न मानिए। तातैं जो काम क्रोधादिका अभाव ही भया होय तो तहाँ किसी क्रियानिविषै प्रवृत्ति सम्भवै ही नाहीं। अर जो कामक्रोधादि पाइए है तो जैसे ए भाव थोरे होय तैसे प्रवृत्ति करनी। स्वच्छन्द होय इनिको बधावना युक्त नाहीं।

पवनादि साधन द्वारा ज्ञानी होने का प्रतिषेध

बहुरि केई जीव पवनादिकका साधनकरि आपको ज्ञानी मानै है तहाँ इडा पिंगला सुषुम्णारूप नासिकाद्वारकरि पवन निकसै, तहाँ वर्णादिक भेदनितैं पवन ही को पृथ्वी तत्त्वादिकरूप कल्पना करै है। ताका विज्ञानकरि किछू साधनतैं निमित्तका ज्ञान होय तातैं जगत् को इष्ट अनिष्ट बतावै, आप महंत कहावै सो यह तो लौकिक कार्य है, किछू मोक्षमार्ग नाहीं। जीवनिको इष्ट अनिष्ट बताय उनकै राग-द्वेष बधावै अर अपने मान लोभादिक निपजावै, यामें कहा सिद्धि है? बहुरि प्राणायामादिका साधन करै, पवन को चढ़ाय समाधि लगाई कहै, सो यहु तो जैसे नट साधनतैं हस्तादिक करि क्रिया करै तैसे यहाँ भी साधनतैं पवनकरि क्रिया करी। हस्तादिक अर पवन ए तो शरीर ही के अंग हैं। इनिके साधनतैं आत्महित कैसे सधै? बहुरि तू कहेगा- तहाँ मनका विकल्प मिटै है, सुख उपजै है, यम के वशीभूतपना न हो है सो यहु मिथ्या है। जैसे निद्राविषै चेतना की प्रवृत्ति मिटै है तैसे पवन साधनतैं यहाँ चेतना की प्रवृत्ति मिटै है। तहाँ मन को रोकि राख्या है, किछू वासना तो मिटी नाहीं। तातैं मनका विकल्प मिट्या न कहिए अर चेतना बिना सुख कौन भोगवै है तातैं सुख उपज्या न कहिए। अर इस साधनवाले तो इस क्षेत्रविषै भए हैं तिन विषै कोई अमर दीसता नाहीं। अग्नि लगाए ताका भी मरण होता दीसै है तातैं यमके वशीभूत नाहीं, यहु झूठी कल्पना है। बहुरि जहाँ साधन विषै किछू चेतना रहै अर तहाँ साधनतैं शब्द सुनै ताको अनहद नाद बतावै। सो जैसे वीणादिक के शबद सुननेतैं सुख मानना तैसे तिसके सुननेतैं सुख मानना है। इहां तो विषयपोषण भया, परमार्थतो किछू नाहीं। बहुरि पवन का निकसने पैठने विषै "सोहं" ऐसे शब्दकी कल्पनाकरि ताको 'अजपा जाप' कहै है। सो जैसे तीतरके शब्दविषै 'तू ही' शब्दकी कल्पना करै है, किछू तीतर अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं। तैसे यहां 'सोऽहं' शब्द की कल्पना है, किछू पवन अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं। बहुरि शब्द के जपने सुनने ही तैं तो किछु फलप्राप्ति नाहीं, अर्थ अवधारे फलप्राप्ति हो है। सो 'सोऽहं' शब्द का अर्थ यहु है 'सो हूँ छूँ' यहाँ ऐसी अपेक्षा चाहिए है, 'सो' कौन? तब ताका निर्णय किया चाहिए जातैं तत् शब्दकै अर यत् शब्दकै नित्य सम्बन्ध है। तातैं वस्तुका निर्णयकरि ताविषै अहंबुद्धि धारनेविषै 'सोऽहं' शब्द बनै। तहाँ भी आपको आप अनुभवै, तहाँ तो 'सोऽहं' शब्द सम्भवै नाहीं। परको अपने स्वरूप बतावने विषै 'सोऽहं' शब्द सम्भवै है। जैसे पुरुष आपको आप जानै तहाँ 'सो हूं छूं' ऐसा काहेको विचारै। कोई अन्य जीव आपको न पहचानता होय अर कोई अपना लक्षण न पहचानता होय, तब वाको कहिए 'जो ऐसा है सो मैं हूं' तैसे ही यहां जानना। बहुरि केई ललाट भौंहारा नासिका के अग्र के देखने का साधनकरि त्रिकुटी आदि का ध्यान भया कहि परमार्थ मानै सो नेत्र की पूतरी फिरे मूर्तीक वस्तु देखी,

यामें कहा सिद्धि है। बहुरि ऐसे साधननितैं किंचित् **अतीत अनागतादिक का ज्ञान होय वा वचनसिद्धि होय वा पृथ्वी आकाशादिविषै गमनादिक की शक्ति होय** वा शरीरविषै आरोग्यतादिक होय तो ए तो सर्व लौकिक कार्य हैं। देवादिककै स्वयमेव ही ऐसी शक्ति पाइए है। **इनितैं किछू अपना भला तो होता नाहीं, भला तो विषयकषायकी वासना मिटे होय।** सो ए तो विषयकषायपोषनेके उपाय हैं। तातैं ए सर्व साधन किछू हितकारी हैं नाहीं। इनिविषै कष्ट बहुत मरणादि पर्यन्त होय अर हित सधै नाहीं। तातैं ज्ञानी वृथा ऐसा खेद करै नाहीं। कषायी जीव ही ऐसे साधनविषै लागै हैं। बहुरि काहूको बहुत तपश्चरणादिककरि मोक्षका सांधन कठिन बतावै है। काहूको सुगमपने ही मोक्ष भया कहै। उद्धवादिकको परमभक्त कहै, तिनको तो तपका उपदेश दिया कहै, वेश्यादिककै बिना परिणाम (केवल) नामादिकहीतैं तरना बतावै, किछू थल है नाहीं। ऐसे मोक्षमार्ग को अन्यथा प्ररूपै है।

अन्यमत कल्पित मोक्षस्वरूप की मीमांसा

बहुरि मोक्षस्वरूप को भी अन्यथा प्ररूपै है। तहाँ मोक्ष अनेक प्रकार बतावै है। एक तो मोक्ष ऐसा कहै है-जो वैकुण्ठधामविषै ठाकुर ठकुराणीसहित नाना भोगविलास करै है तहाँ जाय प्राप्त होय अर तिनिकी टहल किया करै सो मोक्ष है। सो यहु तो विरुद्ध है। प्रथम तो ठाकुर भी संसारीवत् विषयासक्त होय रह्या है। तो जैसा राजादिक है तैसा ही ठाकुर भया। बहुरि अन्य पासि टहल करावनी भई तब ठाकुरकै पराधीनपना भया। बहुरि जो यहु मोक्षको पाय तहाँ टहल किया करै तो जैसे राजाकी चाकरी करनी तैसे यह भी चाकरी भई, तहाँ पराधीन भए सुख कैसे होय? तातैं यहु भी बनै नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै हैं-ईश्वर के समान आप हो है सो भी मिथ्या है। जो उसके समान और भी जुदा होय है तो बहुत ईश्वर भए। लोकका कर्त्ता हर्त्ता कौन ठहरेगा? सबही ठहरै तो भिन्न इच्छा भए परस्पर विरुद्ध होय। एक ही है तो समानता न भई। न्यून है ताकै नीचापने करि उच्च होने की आकुलता रही, तब सुखी कैसे होय? जैसे छोटा राजाकै बड़ा राजा संसारविषै हो है तैसे छोटा बड़ा ईश्वर मुक्तिविषै भी भया सो बनै नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै -जो वैकुण्ठविषै दीपककीसी एक ज्योति है, तहाँ ज्योतिविषै ज्योति जाय मिलै है सो यहु भी मिथ्या है। दीपककी ज्योति तो मूर्तीक अचेतन है, ऐसी ज्योति तहाँ कैसे सम्भवै? बहुरि ज्योति में मिलै यहु ज्योति रहै है कि विनशि जाय है। जो रहै है तो ज्योति बधती जायसी, तब ज्योतिविषै हीनाधिकपनो होसी। अर विनशि जाय है तो आपकी सत्ता नाश होय ऐसा कार्य उपादेय कैसे मानिए। तातैं ऐसे भी बनै नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै है-जो आत्मा ब्रह्म ही है, मायाका आवरण मिटे मुक्ति ही है सो यहु भी मिथ्या है। यहु माया का आवरणसहित था तब ब्रह्मस्यों एक था कि जुदा था। जो एक था तो ब्रह्मही मायारूप भया अर जुदा था तो माया दूरि भए ब्रह्मविषै मिलै है तब याका अस्तित्व रहै है कि नाहीं। जो रहै है तो सर्वज्ञको तो याका अस्तित्व जुदा भासै, तब संयोग होनेतैं मिल्या कहो परन्तु परमार्थतैं तो मिल्या नाहीं। बहुरि अस्तित्व नाहीं रहै है तो आपका अभाव होना कौन चाहै, तातैं यहु भी न बनै।

बहुरि एक प्रकार मोक्षको ऐसा भी केई कहै है जो बुद्धिआदिकका नाश भए मोक्ष हो है। सो शरीर के अंगभूत मन इन्द्रिय तिनके आधीन ज्ञान न रह्या। काम क्रोधादिक दूरि भए ऐसे कहना तो बनै है अर तहाँ चेतनताका भी अभाव भया मानिए तो पाषाणादि समान जड़ अवस्थाको कैसे भली मानिए। बहुरि भला साधन करतैं तो जानपना बधै है, बहुत भला साधन किए जानपनेका अभाव होना कैसे मानिए? बहुरि लोकविषै ज्ञानकी महंततातैं जड़पनाकी तो महंतता नाहीं, तातैं यहु बनै नाहीं। ऐसे ही अनेक प्रकार कल्पनाकरि मोक्षको बतावै सो किछू यथार्थ तो जानै नाहीं, संसार अवस्थाकी मुक्ति अवस्थाविषै कल्पनाकरि अपनी इच्छा अनुसारि बकै है। या प्रकार वेदांतादि मतनिविषै अन्यथा निरूपण करै है।

इस्लाममत सम्बन्धी विचार

बहुरि ऐसे ही मुसलमानों के मतविषै अन्यथा निरूपण करै है। जैसे वे ब्रह्मको सर्वव्यापी, एक, निरंजन, सर्वका कर्त्ता-हर्त्ता मानै है तैसे ए खुदाको मानै है। बहुरि जैसे वे अवतार भए मानै है तैसे ए पैगम्बर भए मानै हैं। जैसे वे पुण्य - पापका लेखा लेना, यथायोग्य दण्डादिक देना ठहरावै है तैसे ये खुदाकै ठहरावै है। बहुरि जैसे वे गऊ आदिको पूज्य कहे हैं तैसे ए सूअर आदिको कहै हैं, सर्व तिर्यंच आदिक हैं। बहुरि जैसे वे ईश्वर की भक्तितैं मुक्ति कहै हैं तैसे ए खुदा की भक्तितैं कहै हैं। बहुरि जैसे वे कहीं दया पोषै, कहीं हिंसा पोषै, तैसे ए भी कहीं मेहर करनी पोषै कहीं कतल करना पोषै। बहुरि जैसे वे कहीं तपश्चरण करन पोषै कहीं विषयासेवन पोषै तैसे ही ए भी पोषै हैं। बहुरि जैसे वे कहीं मांस मदिरा शिकार आदि का निषेध करै, कहीं उत्तम पुरुषोंकरि तिनिका अंगीकार करना बतावै हैं तैसे ए भी तिनिका निषेध वा अंगीकार करना बतावै है। ऐसे अनेक प्रकारकरि समानता पाइए है। यद्यपि नामादिक और और हैं तथापि प्रयोजनभूत अर्थकी एकता पाइए है। बहुरि ईश्वर खुदा आदि मूलश्रद्धानकी तो एकता है अर उत्तर श्रद्धानविषै घने ही विशेष हैं। तहाँ उनतैं भी ए विपरीतरूप विषयकषायके पोषक, हिंसादिपापके पोषक, प्रत्यक्षादि प्रमाणतैं विरुद्ध निरूपण करै हैं। तातैं मुसलमानों का मत महाविपरीतरूप जानना। या प्रकार इस क्षेत्रकालविषै जिनि मतनिकी प्रचुर प्रवृत्ति है ताका मिथ्यापना प्रगट किया।

इहाँ कोऊ कहै जो ए मत मिथ्या हैं तो बड़े राजादिक वा बड़े विद्यावान् इनि मतनिविषै कैसे प्रवर्तै हैं?

ताका समाधान-जीवनिकै मिथ्यावासना अनादितैं है सो इनिविषै मिथ्यात्व ही का पोषण है। बहुरि जीवनिकै विषयकषायरूप कार्यनिकी चाह वर्तै है सो इनि विषै विषयकषाय रूप कार्य हीका पोषण है। बहुरि राजादिकनिका वा विद्यावानोंका ऐसे धर्मविषै विषयकषायरूप प्रयोजनसिद्धि हो है। बहुरि जीव तो लोकनिंद्यपना को भी उलंघि, पाप भी जानि जिन कार्यनिको किया चाहै तिनि कार्यनिको करतै धर्म बतावै तो ऐसे धर्मविषै कौन न लागै। तातैं इनि धर्मनिकी विशेषप्रवृत्ति है। बहुरि कदाचित् तू कहैगा-इनि धर्मनिविषै विरागता दया इत्यादि भी तो कहे हैं, सो जैसे झोल बिना खोटा द्रव्य चालै नाहीं, तैसे साँच मिलाए बिना झूंठ चालै नाहीं परन्तु सर्वकै हित प्रयोजन विषै विषयकषायका ही पोषण किया है। जैसे गीताविषै उपदेश देय राड़ि(युद्ध)

करावने का प्रयोजन प्रगट किया, वेदान्तविषै शुद्ध निरूपणकरि स्वच्छन्द होने का प्रयोजन दिखाया। ऐसे ही अन्य जानने। बहुरि यहु काल तो निकृष्ट है सो इसविषै तो निकृष्ट धर्म ही की प्रवृत्ति विशेष होय है। देखो इस कालविषैं मुसलमान प्रधान हो गए, हिन्दू घटि गए। हिन्दूनिविषै और बधि गए जैनी घटि गए। सो यहु कालका दोष है, ऐसे इहाँ अबार मिथ्याधर्म की प्रवृत्ति बहुत पाइए है। अब पंडितपना के बलतैं कल्पितयुक्तिकरि नाना मत स्थापित भए हैं तिनिविषै जे तत्त्वादिक मानिए हैं तिनका निरूपण कीजिए है-

सांख्यमत निराकरण

तहाँ सांख्यमतविषै पच्चीस तत्त्व मानै हैं[1] सो कहिए हैं सत्त्व रज तम ए तीन गुण कहै। तहाँ सत्त्वकरि प्रसाद हो है, रजोगुणकरि चित्तकी चंचलता हो है, तमोगुणकरि मूढ़ता हो है, इत्यादि लक्षण कहै हैं। इनरूप अवस्था ताका नाम प्रकृति है। बहुरि तिसतैं बुद्धि निपजै है, याहीका नाम महत्तत्त्व है। बहुरि तिसतैं अहंकार निपजै है। बहुरि तिसतैं सोलहमात्रा हो हैं। तहाँ पाँच तो ज्ञानइन्द्रिय हो हैं-स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु श्रोत्र। बहुरि एक मन हो है। बहुरि पाँच कर्मइन्द्रिय हो हैं-वचन, चरण, हस्त, लिंग, पायु। बहुरि पाँच तन्मात्रा हो हैं- रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द। बहुरि रूपतैं अग्नि, रसतैं जल, गंधतैं पृथ्वी, स्पर्शतैं पवन, शब्दतैं आकाश, ऐसे भया कहै हैं। ऐसे चौईस तत्त्व तो प्रकृतिस्वरूप हैं। इनितैं भिन्न निर्गुण कर्त्ता भोक्ता एक पुरुष है। ऐसे पच्चीस तत्त्व कहै हैं सो ए कल्पित हैं।

विशेष : सांख्यदर्शन का यह एक मत है। इसके विपरीत वहीं पर दूसरा मत भी उपलब्ध है। सांख्यदर्शन का मुख्य ग्रन्थ **सांख्यकारिका** है। उस पर अनेक टीकायें उपलब्ध हैं। उनमें से वाचस्पति मिश्र तथा जयमंगलाकार आदि का मत है कि शब्द से आकाश, शब्द व स्पर्श से वायु; शब्द, स्पर्श व रूप से अग्नि; शब्द, स्पर्श, रूप व रस से जल तथा शब्द, स्पर्श, रूप व रस तथा गन्ध से पृथ्वी उत्पन्न होती है परन्तु गौड़पाद भाष्य तथा माठरवृत्ति की मान्यतानुसार शब्द से आकाश, स्पर्श से वायु, रूप से अग्नि, रस से जल तथा गन्ध से पृथ्वी उत्पन्न होती है। यानी ये शब्द आदि अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से आकाश आदि को उत्पन्न करते हैं। मूल में पण्डित टोडरमलजी ने मात्र गौड़पाद तथा माठर का मत लिखा है। **(देखें सांख्यकारिका २२ की विभिन्न**

जातैं राजसादिक गुण आश्रय बिना कैसे होय। इनका आश्रय तो चेतनद्रव्य ही सम्भवै है। बहुरि इनितैं बुद्धि भई कहै सो बुद्धि नाम तो ज्ञान का है। सो ज्ञानगुणका धारी पदार्थविषै ए होते देखिए हैं। इनितैं ज्ञान भया कैसे मानिए। कोई कहै-बुद्धि जुदी है, ज्ञान जुदा है तो मन तो आगै षोड़शमात्राविषै कह्या अर ज्ञान जुदा कहोगे तो बुद्धि किसका नाम ठहरेगा। बहुरि तिसतैं अहंकार भया कह्या सो परवस्तु विषै 'मैं करूँ

---

१. प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्यः पंचभूतानि।। - सांख्य का. १२।।

हूँ' ऐसा मानने का नाम अहंकार है। साक्षीभूत जानने करि तो अहंकार होता नाहीं तो ज्ञानकरि उपज्या कैसे कहिए है? बहुरि अहंकारकरि षोड़श मात्रा कही, तिनि विषै पाँच ज्ञानइन्द्रिय कही सो शरीरविषै नेत्रादि आकाररूप द्रव्येन्द्रिय हैं सो तो पृथ्वी आदिवत् जड़ देखिए है अर वर्णादिकके जाननेरूप भावइन्द्रिय है सो ज्ञानरूप है, अहंकारका कहा प्रयोजन है। अहंकार बुद्धिरहित कोऊ काहूको देखै है। तहाँ अहंकार करि निपजना कैसे सम्भवै? बहुरि मन कह्या सो इन्द्रियवत् ही मन है। जातैं द्रव्यमन शरीररूप है, भावमन ज्ञानरूप है। बहुरि पाँच कर्मइन्द्रिय कही सो ए तो शरीर के अंग हैं, मूर्तीक हैं अहंकार अमूर्तीक तैं इनिका उपजना कैसे मानिए। बहुरि कर्मइन्द्रिय पाँच ही तो नाहीं। शरीर के सर्व अंग कार्यकारी हैं। बहुरि वर्णन तो सर्व जीवाश्रित है,मनुष्याश्रित ही तो नाहीं, तातैं सूंडि पूंछ इत्यादि अंग भी कर्मइन्द्रिय है। पाँच ही की संख्या काहेको कहिए है। बहुरि स्पर्शादिक पाँच तन्मात्रा कही सो रूपादि किछू जुदे वस्तु नाहीं, ए तो परमाणूनिस्यों तन्मय गुण हैं। ए जुदे कैसे निपजे? बहुरि अहंकार तो अमूर्तीक जीवका परिणाम है। तातैं ए मूर्तीकगुण कैसे निपजे मानिए। बहुरि इनि पाँचनितैं अग्नि आदि निपजे कहै सो प्रत्यक्ष झूंठ है। रूपादिक अग्न्यादिककै तो सहभूत गुण-गुणी सम्बन्ध है। कहने मात्र भिन्न है, वस्तुविषै भेद नाहीं। किसी प्रकार कोऊ भिन्न होता भासै नाहीं, कहने मात्रकरि भेद उपजाइए है। तातैं रूपादि करि अग्न्यादि निपजे कैसे कहिए। बहुरि कहनेविषै भी गुणीविषै गुण हैं, गुणतैं गुणी निपज्या कैसे मानिए?

बहुरि प्रकृतितैं भिन्न एक पुरुष कहै है सो ताका स्वरूप अवक्तव्य कहि प्रत्युत्तर न करै तो कहा बूझै नाहीं। कैसा है, कहाँ है, कैसे कर्त्ता हर्त्ता है सो बताय। जो बतावेगा ताहीमें विचार किए अन्यथापनो भासेगा। ऐसे सांख्यमत करि कल्पित तत्त्व मिथ्या जानने।

बहुरि पुरुषको प्रकृतितैं भिन्न जाननेका नाम मोक्षमार्ग कहै है। सो प्रथम तो प्रकृति अर पुरुष कोई है ही नाहीं। बहुरि केवल जानने ही तैं तो सिद्धि होती नाहीं। जानिकरि रागादिक मिटाए सिद्धि होय। सो ऐसे जाने किछू रागादिक घटै नाहीं। प्रकृतिका कर्त्तव्य मानै, आप अकर्त्ता रहै, तब काहेको आप रागादि घटावै। तातैं यहु मोक्षमार्ग नाहीं है।

बहुरि प्रकृति, पुरुषका जुदा होना मोक्ष कहै है।[1] सो पच्चीस तत्त्वनिविषै चोईस तत्त्व तो प्रकृति सम्बन्धी कहे, एक पुरुष भिन्न कह्या। सो ए तो जुदे हैं ही अर जीव कोई पदार्थ पच्चीस तत्त्वनिविषै कह्या ही नाहीं। अर पुरुष ही को प्रकृति संयोग भए जीव संज्ञा हो है तो पुरुष न्यारे-न्यारे प्रकृति सहित हैं, पीछे साधनकरि कोई पुरुष प्रकृति रहित हो है, ऐसा सिद्ध भया- एक पुरुष न ठहरया।

सांख्यकारिका ४४ में कहा है-

धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण।
ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः।।

अर्थ- धर्म से ऊर्ध्वलोकों में गति होती है और अधर्म से अधोलोकों में। ज्ञान से मोक्ष होता है तथा उसके विपरीत अज्ञान से बन्ध होता है। (सांख्यकारिका २ की तत्त्वकौमुदी में श्रद्धा व भावना (चारित्र) समन्वित ज्ञान से मोक्ष कहा है। इतना विशेष है।)

बहुरि प्रकृति पुरुष की भूलि है कि कोई व्यंतरीवत् जुदी ही है जो जीवको आनि लागै है। जो याकी भूलि है तो प्रकृतितैं इन्द्रियादिक वा स्पर्शादिक तत्त्व उपजे कैसे मानिए? अर जुदी है तो वह भी एक वस्तु है, सर्व कर्त्तव्य वाका ठहर्‌या। पुरुषका किछू कर्त्तव्य ही रह्या नाहीं, तब काहेको उपदेश दीजिए है। ऐसे यहु मोक्ष मानना मिथ्या है। बहुरि तहाँ प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम ए तीन प्रमाण कहै हैं सो तिनिका सत्य असत्यका **निर्णय जैनके न्यायग्रन्थनितैं जानना।**

विशेष- सांख्यदर्शन में तो पुरुषबहुत्व माना ही है। सांख्यों के आचार्यों ने पुरुष की अनेकता का प्रतिपादन किया ही है। **सांख्यकारिका १८** में युक्ति के द्वारा पुरुष की अनेकता (बहुत्व) साधी ही है। वहाँ कहा है कि जन्म-मरण (भिन्न-भिन्न समय में होने से) तथा इन्द्रियों की (भिन्नतारूप) व्यवस्था के कारण, एक साथ सबकी प्रवृत्ति के अभाव के कारण तथा त्रिगुण की प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न स्थिति होने के कारण पुरुष (आत्मा) की अनेकता सिद्ध है। इस प्रकार सांख्यदर्शन तो अनेकपुरुषत्व स्वीकार करते ही हैं। परन्तु अद्वैतवादी वेदान्ती पुरुष (आत्मा) की एकता का प्रतिपादन करते हैं।

कपिल, आसुरि, पंचशिख तथा पतंजलि इत्यादि आचार्य पुरुष की अनेकता का निरूपण करते हैं जबकि हरिहर, हिरण्यगर्भ एवं व्यास आदि वेदवादी आचार्य सभी व्यक्तियों में एक ही आत्मा के अस्तित्व का प्रतिपादन करते हैं।

सांख्यदर्शन के आचार्यों का कथन है कि सांख्य के पुरुषबहुत्व और श्रुतियों के एकात्मवाद में मूलतः कोई विरोध नहीं है। क्योंकि श्रुतियों में आत्मा के एकत्व का प्रतिपादन जाति की दृष्टि से हुआ है। जैसे सभी प्रकार के वृक्षों के लिए जातिपरक एक ही शब्द 'वृक्ष' का प्रयोग होता है, उसी प्रकार अनन्त पुरुषों में भी पुरुषत्व वस्तुतः एक ही है। यानी जातितः आत्मा एक है अतः श्रुतिवचन ठीक है। तथा व्यक्तितः आत्मा अनेक हैं अतः सांख्यदर्शन का मत भी ठीक ही है। **(सांख्यतत्त्व कौमुदी प्रस्तावना पृ. ३८, मूल पृ. १०२ कारिका १८ की टीका : व्याख्याकार- डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय)**

बहुरि इस सांख्यमतविषै कोई ईश्वरको न मानै है। केई एक पुरुषको ईश्वर मानै हैं। केई शिवको, केई नारायणको देव मानै हैं। अपनी इच्छा अनुसारि कल्पना करै हैं, किछू निश्चय है नाहीं। बहुरि इस मतविषै केई जटा धारै हैं, केई चोटी राखै हैं, केई मुण्डित हो हैं, केई काथे वस्त्र पहरै हैं इत्यादि अनेक प्रकार भेष धारि तत्त्वज्ञानका आश्रयकरि महंत कहावै हैं। ऐसे सांख्यमतका निरूपण किया।

नैयायिक मत निराकरण

बहुरि शिवमतविषै दोय भेद हैं-नैयायिक, वैशेषिक। तहां नैयायिकमत विषै सोलह तत्त्व कहै हैं।

प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान। तहां प्रमाण च्यारि प्रकार कहै है। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमा। बहुरि आत्मा, देह, अर्थ, बुद्धि इत्यादि प्रमेय कहै हैं। बहुरि 'यहु कहा है' ताका नाम संशय है। जाके अर्थि प्रवृत्ति होय सो प्रयोजन है। जाको वादी प्रतिवादी मानै सो दृष्टांत है। दृष्टांतकरि जाको ठहराइए सो सिद्धान्त है। बहुरि अनुमान के प्रतिज्ञा आदि पंच अंग ते अवयव हैं। संशय दूरि भए किसी विचारतैं ठीक होय सो तर्क है। पीछै प्रतीतिरूप जानना सो निर्णय है। आचार्य शिष्यकै पक्ष प्रतिपक्षकरि अभ्यास सो वाद है। जाननेकी इच्छारूप कथाविषै जो छल जाति आदि दूषण होय सो जल्प है। प्रतिपक्ष-रहित वाद सो वितंडा है। सांचे हेतु नाहीं, ते असिद्ध आदि भेद लिए हेत्वाभास हैं। छललिये वचन सो छल हैं। सांचे दूषण नाहीं ऐसे दूषणाभास सो जाति है। जाकरि परवादी का निग्रह होय सो निग्रहस्थान है। या प्रकार संशयादि तत्त्व कहे सो ए तो कोई वस्तुस्वरूप तो तत्त्व है नाहीं। ज्ञान के निर्णय करने को वा वादकरि पांडित्य प्रगट करने को कारणभूत विचाररूप तत्त्व कहे सो इनितैं परमार्थ कार्य कहा होई? काम क्रोधादि भावको मेटि निराकुल होना सो कार्य है। सो तो इहां प्रयोजन किछु दिखाया ही नाहीं। पंडिताई की नाना युक्ति बनाई सो यहु भी एक चातुर्य्य है, तातैं ये तत्त्व तत्त्वभूत नाहीं। बहुरि कहोगे इनको जाने बिना प्रयोजनभूत तत्त्वनिका निर्णय न करि सकै, तातैं ए तत्त्व कहे हैं। सो ऐसी परम्परा तो व्याकरण वाले भी कहै हैं। व्याकरण पढ़े अर्थनिर्णय होइ वा भोजनादिक के अधिकारी भी कहै हैं कि भोजन किए शरीर की स्थिरता भए तत्त्वनिर्णय करने को समर्थ होय सो ऐसी युक्ति कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो कहोगे, व्याकरण भोजनादिक तो अवश्य तत्त्वज्ञानको कारण नाहीं, लौकिक कार्य साधने को भी कारण हैं, सो जैसे ये हैं तैसे ही तुम तत्त्व कहे, सो भी लौकिक (कार्य) साधनेको कारण हो हैं। जैसे इन्द्रियादिक के जाननेको प्रत्यक्षादि प्रमाण कहे वा स्थाणु पुरुषादिविषै संशयादिकका निरूपण किया। तातैं जिनको जाने अवश्य काम क्रोधादि दूरि होय, निराकुलता निपजै, वे ही तत्त्व कार्यकारी हैं। बहुरि कहोगे, जो प्रमेय तत्त्वविषै आत्मादिकका निर्णय हो है सो कार्यकारी है। सो प्रमेय तो सर्व ही वस्तु है। प्रमितिका विषय नाहीं, ऐसा कोई भी नाहीं, तातैं प्रमेय तत्त्व काहेको कह्या। आत्मा आदि तत्त्व कहने थे। बहुरि आत्मादिकका भी स्वरूप अन्यथा प्ररूपण किया सो पक्षपातरहित विचार किए भासै है। जैसे आत्माके दोय भेद कहै हैं-परमात्मा, जीवात्मा। तहां परमात्मा को सर्वका कर्त्ता बतावै हैं। तहाँ ऐसा अनुमान करै हैं जो यह जगत् कर्त्ताकरि निपज्या है, जातैं यह कार्य है। जो कार्य है सो कर्त्ताकरि निपज्या है, जैसे घटादिक। सो यह अनुमानाभास है। जातैं ऐसा अनुमानान्तर सम्भवै है। यह जगत् सर्व कर्ताकरि निपज्या नाहीं जातैं याविषै कोई अकार्यरूप भी पदार्थ है। जो अकार्य है सो कर्त्ताकरि निपज्या नाहीं, जैसे सूर्य्यबिम्बादिक। तातैं अनेक पदार्थनिका समुदायरूप जगत् तिसविषै कोई पदार्थ कृत्रिम हैं सो मनुष्यादिककरि किए होय हैं, कोई अकृत्रिम हैं सो ताका कर्त्ता नाहीं। यह प्रत्यक्षादि प्रमाण के अगोचर है तातैं ईश्वरको कर्ता मानना मिथ्या है। बहुरि जीवात्माको प्रति शरीर भिन्न कहै हैं। सो यहु सत्य है परन्तु मुक्त भए पीछै भी भिन्न ही मानना योग्य है। विशेष पूर्वै कह्या ही है। ऐसे ही अन्य तत्त्वनिको मिथ्या प्ररूपै हैं। बहुरि प्रमाणादिकका भी स्वरूप अन्यथा कल्पै है सो जैनग्रन्थनितैं परीक्षा किए भासै है। ऐसे नैयायिकमतविषै कहे कल्पित तत्त्व जानने।

वैशेषिकमत निराकरण

बहुरि वैशेषिकमतविषै छह तत्त्व कहे हैं। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। तहाँ द्रव्य नवप्रकार-पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन। तहां पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणु भिन्न-भिन्न हैं। ते परमाणु नित्य हैं। तिनकरि कार्यरूप पृथ्वी आदि हो है सो अनित्य है। सो ऐसा कहना प्रत्यक्षादितैं विरुद्ध है। ईंधन रूप पृथ्वी के परमाणु अग्निरूप होते देखिए है। अग्नि के परमाणु राखरूप पृथ्वी होते देखिए है। जलके परमाणु मुक्ताफल (मोती) रूप पृथ्वी होते देखिए है। बहुरि जो तू कहैगा, वे परमाणु जाते रहै हैं, और ही परमाणु तिनिरूप हो हैं सो प्रत्यक्षको असत्य ठहरावै है। ऐसी कोई प्रबलयुक्ति कहै तो ऐसे ही मानै, परन्तु केवल कहे ही तो ऐसे ठहरै नाहीं। तातैं सब परमाणूनिकी एक पुद्गलरूप मूर्त्तीक जाति है सो पृथ्वी आदि अनेक अवस्थारूप परिणमै है। बहुरि इन पृथ्वी आदिकका कहीं जुदा शरीर ठहरावै है, सो मिथ्या ही है। जातैं वाका कोई प्रमाण नाहीं। अर पृथ्वी आदि तो परमाणु पिंड है। इनका शरीर अन्यत्र, ए अन्यत्र ऐसा सम्भवै नाहीं तातैं यहु मिथ्या है। बहुरि जहाँ पदार्थ अटकै नाहीं, ऐसी जो पोलि ताको आकाश कहै हैं। क्षण पल आदिको काल कहै हैं। सो ए दोन्यों ही अवस्तु हैं। सत्तारूप ए पदार्थ नाहीं। पदार्थनिका क्षेत्रपरिणमनादिकका पूर्वापरविचार करने के अर्थि इनकी कल्पना कीजिए है। बहुरि दिशा किछू है ही नाहीं। आकाशविषै खंड कल्पनाकरि दिशा मानिए है; बहुरि आत्मा दोय प्रकार कहै है सो पूर्वं निरूपण किया ही है। बहुरि मन कोई जुदा पदार्थ नाहीं। भावमन तो ज्ञानरूप है सो आत्मा का स्वरूप है। द्रव्यमन परमाणूनिका पिंड है सो शरीर का अंग है। ऐसे ए द्रव्य कल्पित जानने। बहुरि गुण चौईस कहै हैं-स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, संख्या, विभाग, संयोग, परिमाण, पृथक्त्व, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, धर्म, अधर्म, प्रयत्न, संस्कार, द्वेष, स्नेह, गुरुत्व, द्रव्यत्व। सो इनिविषै स्पर्शादिक गुण तो परमाणुनिविषै पाइए है। परन्तु पृथ्वी को गन्धवती ही कहनी, जल को शीत स्पर्शवान ही कहना इत्यादि मिथ्या है, जातैं कोई पृथ्वी विषै गंध की मुख्यता न भासै है, कोई जल उष्ण देखिए है इत्यादि प्रत्यक्षादितैं विरुद्ध हैं। बहुरि शब्द को आकाशका गुण कहै सो मिथ्या है। शब्द तो भींति इत्यादिस्यों रुकै है, तातैं मूर्त्तीक है। आकाश अमूर्त्तीक सर्वव्यापी है। भींतिविषै आकाश रहे शब्दगुण न प्रवेशकरि सकै, यहु कैसे बनै? बहुरि संख्यादिक है सो वस्तुविषै तो किछू है नाहीं, अन्य पदार्थ अपेक्षा अन्य पदार्थ के हीनाधिक जानने को अपने ज्ञानविषै संख्यादिकको कल्पनाकरि विचार कीजिए है। बहुरि बुद्धि आदि हैं, सो आत्मा का परिणमन है। तहाँ बुद्धि नाम ज्ञान का है तो आत्मा का गुण है ही अर मन का नाम है तो मन तो द्रव्यनिविषै कह्या ही था, यहाँ गुण काहेको कह्या। बहुरि सुखादिक है सो आत्माविषै कदाचित् पाइए है, आत्मा के लक्षणभूत तो ए गुण है नाहीं, अव्याप्तपनेतैं लक्षणाभास है; बहुरि स्नेहादि पुद्गलपरमाणुविषै पाइए हैं सो स्निग्ध गुरु इत्यादि तो स्पर्शन इन्द्रियकरि जानिए तातैं स्पर्शगुणविषै गर्भित भए, जुदे काहेको कहै। बहुरि द्रव्यत्वगुण जलविषै कह्या, सो ऐसे तो अग्निआदिविषै ऊर्ध्वगमनत्व आदि पाइए है। कै तो सर्व कहने थे, कै सामान्यविषै गर्भित करने थे। ऐसे ए गुण कहे ते भी कल्पित हैं। बहुरि कर्म पाँच प्रकार कहै हैं-उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण, गमन। सो ए तो शरीरकी चेष्टा हैं। इनिको जुदा कहनेका अर्थ कहा। बहुरि एती ही

चेष्टा तो होती नाहीं, चेष्टा तो घनी ही प्रकारकी हो हैं। बहुरि जुदी ही इनको तत्त्वसंज्ञा कही;सो कै तो जुदा पदार्थ होय तो ताको जुदा तत्त्व कहना था, कै काम क्रोधादि मेटनेको विशेष प्रयोजनभूत होय तो तत्त्व कहना था; सो दोऊ ही नाहीं। अर ऐसे ही कहि देना तो पाषाणादिककी अनेक अवस्था हो हैं सो कह्या करो, किछू साध्य नाहीं। बहुरि सामान्य दोय प्रकार है-पर अपर। तहां पर तो सत्तारूप है, अपर द्रव्यत्वादिरूप है। बहुरि नित्य द्रव्यविषै प्रवृत्ति जिनकी होय ते विशेष हैं। बहुरि अयुतसिद्ध सम्बन्ध का नाम समवाय है। सो सामान्यादिक तो बहुतनिको एकप्रकारकरि वा एक वस्तुविषै भेदकल्पना करि वा भेद कल्पना अपेक्षा सम्बन्ध माननेकरि अपने विचारहीविषै हो है, कोई ए जुदे पदार्थ तो नाहीं। बहुरि इनिके जाने कामक्रोधादि मेटनेरूप विशेष प्रयोजनकी भी सिद्धि नाहीं, तातैं इनको तत्त्व काहेको कहै। अर ऐसे ही तत्त्व कहने थे तो प्रमेयत्वादि वस्तुके अनंतधर्म हैं वा सम्बन्ध आधारादिक कारकनिके अनेक प्रकार वस्तुविषै सम्भवै हैं। कै तो सर्व कहने थे, कै प्रयोजन जानि कहने थे। तातैं ए सामान्यादिक तत्त्व भी वृथा ही कहे। ऐसे वैशेषिकनिकरि कहे कल्पित तत्त्व जानने। बहुरि वैशेषिक दोय ही प्रमाण मानै हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिका सत्य असत्यका निर्णय जैनन्यायग्रन्थनितैं[1] जानना।

बहुरि नैयायिक तो कहै हैं-विषय, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर, सुख, दुःख इनिका अभावतैं आत्माकी स्थिति सो मुक्ति है। अर वैशेषिक कहै हैं-चौईस गुणनिविषै बुद्धि आदि नवगुण तिनिका अभाव सो मुक्ति है। सो इहां बुद्धिका अभाव कह्या सो बुद्धि नाम ज्ञानका है तो ज्ञानका अविनाभावी आत्माका लक्षण कह्या था, अब ज्ञानका अभाव भए लक्षणका अभाव होतैं लक्ष्यका भी अभाव होय, तब आत्माकी स्थिति कैसे रही। अर जो बुद्धि नाम मन का है तो भावमन तो ज्ञानरूप है ही अर द्रव्य मन शरीररूप है सो मुक्त भए द्रव्यमन का सम्बन्ध छूटै ही है सो द्रव्य-मन जड़ ताका नाम बुद्धि कैसे होय? बहुरि मनवत् ही इन्द्रिय जानने। बहुरि विषयका अभाव होय सो स्पर्शादि विषयनिका जानना मिटै है तो ज्ञान काहेका नाम ठहरेगा। अर तिनि विषयनिका ही अभाव होयगा तो लोकका अभाव होयगा। बहुरि सुखका अभाव कह्या सो सुख ही के अर्थ उपाय कीजिए है, ताका जहाँ अभाव होय सो उपादेय कैसे होय। बहुरि जो आकुलतामय इन्द्रियजनित सुखका तहाँ अभाव भया कहै तो यहु सत्य है। अर निराकुलता लक्षण अतीन्द्रियसुख तो तहाँ सम्पूर्ण सम्भवै है तातैं सुखका अभाव नाहीं। बहुरि शरीर दुःख द्वेषादिकका तहाँ अभाव कहै सो सत्य ही है।

बहुरि शिवमतविषै कर्त्ता निर्गुण ईश्वर शिव है ताको देव मानै है। सो याके स्वरूपका अन्यथापना पूर्वोक्त प्रकार जानना। बहुरि यहाँ भस्मी, कोपीन, जटा, जनेऊ, इत्यादि चिह्नसहित भेष हो है सो आचारादि भेदतैं च्यारि प्रकार हैं- शैव, पाशुपत, महाव्रती, कालमुख। सो ए रागादि सहित हैं तातैं सुलिंग नाहीं। ऐसे शिवमत का निरूपण किया।

१. देवागम, युक्त्यनुशासन, अष्टसहस्री, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रादि दार्शनिक ग्रन्थों से जानना चाहिए।

मीमांसकमत निराकरण

अब मीमांसक मत का स्वरूप कहिए है। मीमांसक दोय प्रकार हैं-ब्रह्मवादी, कर्मवादी। तहाँ ब्रह्मवादी तो सर्व यहु ब्रह्म है, दूसरा कोई नाहीं ऐसा वेदान्तविषै अद्वैत ब्रह्मको निरूपै हैं। बहुरि आत्माविषै लय होना सो मुक्ति कहै हैं। सो इनिका मिथ्यापना पूर्वै दिखाया है सो विचारना। बहुरि कर्मवादी क्रिया आचार यज्ञादिक कार्यनिका कर्तव्यपना प्ररूपै हैं सो इन क्रियानिविषै रागादिकका सद्भाव पाइए है, तातैं ए कार्य किछू कार्यकारी हैं नाहीं। बहुरि तहाँ 'भट्ट' अर 'प्रभाकर' करि करी हुई दोय पद्धति हैं। तहाँ भट्ट तो छह प्रमाण मानै हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान, वेद, उपमा, अर्थापत्ति, अभाव। बहुरि प्रभाकर अभाव बिना पाँच ही प्रमाण मानै है। सो इनिका सत्यासत्यपना जैनशास्त्रनितैं जानना। बहुरि तहाँ षट्कर्मसहित ब्रह्मसूत्रके धारक शूद्रका अन्नादिके त्यागि ते गृहस्थाश्रम है नाम जिनिका ऐसे भट्ट हैं। बहुरि वेदान्तविषै यज्ञोपवीतरहित विप्र अन्नादिक के ग्राही, भगवत् है नाम जिनका ऐसे च्यारि प्रकार हैं-कुटीचर, बहूदक, हंस, परमहंस। सो ए किछू त्यागकरि सन्तुष्ट भए हैं परन्तु ज्ञान श्रद्धानका मिथ्यापना अर रागादिकका सद्भाव इनके पाइए है। तातैं ए भेष कार्यकारी नाहीं।

जैमिनीयमत निराकरण

बहुरि यहाँ ही जैमिनीयमत सम्भवै है, सो ऐसे कहै है-

सर्वज्ञदेव कोई है नाहीं। नित्य वेद वचन हैं, तिनितैं यथार्थ निर्णय हो है। तातैं पहले वेदपाठकरि क्रिया प्रति प्रवर्त्तना सो तो नोदना (प्रेरणा) सोई है लक्षण जाका ऐसा धर्म, ताका साधन करना। जैसे कहै हैं **"स्वः कामोऽग्निं यजेत्"** स्वर्ग अभिलाषी अग्निको पूजै, इत्यादि निरूपण करै है।

यहाँ पूछिए है- शैव, सांख्य, नैयायिकादिक सब ही वेदको मानै हैं, तुम भी मानो हो। तुम्हारै वा उन सबनिकै तत्त्वादि निरूपणविषै परस्पर विरुद्धता पाइए है सो है कहा? जो वेद ही विषै कहीं किछू कहीं किछू निरूपण है तो वाकी प्रमाणता कैसे रही। अर जो मतवाले ही कहीं किछू कहीं किछू निरूपण करै हैं तो तुम परस्पर झगरिनिर्णय करि एकको वेदका अनुसारी अन्यको वेदतैं पराङ्मुख ठहरावो। सो हमको तो यहु भासै है, वेदहीविषै पूर्वापर विरुद्धतालिए निरूपण है। तिसतैं ताका अपनी-अपनी इच्छानुसारि अर्थ ग्रहण करि जुदे-जुदे मतके अधिकारी भए हैं। सो ऐसे वेदको प्रमाण कैसे कीजिए है। बहुरि अग्नि पूजै स्वर्ग होय, सो अग्नि मनुष्यतैं उत्तम कैसे मानिए? प्रत्यक्षविरुद्ध है। बहुरि वह स्वर्गदाता कैसे होय। ऐसे ही अन्य वेदवचन प्रमाणविरुद्ध हैं। बहुरि वेदविषै ब्रह्मा कह्या है, सर्वज्ञ कैसे न मानै है। इत्यादि प्रकारकरि जैमिनीय मत कल्पित जानना।

विशेष-अज्ञानी लोगों के द्वारा पूजी जाने वाली अग्नि (जिसे वे देवता कहते हैं) लोहे के पिण्ड के संसर्ग से घनों द्वारा पीटी जाती है, नीचे रखे हुए अहरन (निहाई) के ऊपर घन की चोट, संडासी से खींचना, चोट लगने से टूटना इत्यादि दुःखों को सहती है। (**परमात्मप्रकाश २/११४ पृ. २३४ रायचन्द्र शास्त्रमाला**) कहा भी है- 'अग्नि सहे घनघात, लोह की संगति पाई' ऐसी अग्नि पूज्य कैसे हो सकती है?

बौद्धमत निराकरण

अब बौद्ध मतका स्वरूप कहिए है-

बौद्धमतविषै च्यारि आर्यसत्य[1] प्ररूपै है दुःख, आयतन, समुदय, मार्ग। तहाँ संसारीकै स्कंधरूप सो दुःख है। सो पाँच प्रकार[2] है - विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार, रूप। तहाँ रूपादिकका जानना सो विज्ञान है, सुख दुःख का अनुभवना सो वेदना है, सूताका जागना सो संज्ञा है, पढ़्या था सो याद करना सो संस्कार है, रूपका धारना सो रूप।[3] सो यहाँ विज्ञानादिकको दुःख कह्या सो मिथ्या है। दुःख तो काम क्रोधादिक है, ज्ञान दुःख नाहीं। यह तो प्रत्यक्ष देखिए है। काहू के ज्ञान थोरा है अर क्रोध लोभादिक बहुत है सो दुःखी है। काहूकै ज्ञान बहुत है, काम क्रोधादि स्तोक है वा नाहीं है सो सुखी है। तातैं विज्ञानादिक दुःख नाहीं है। बहुरि आयतन बारह कहे हैं। पाँच तो इन्द्रिय अर तिनिके शब्दादिक पाँच विषय अर एक मन, एक धर्मायतन। सो ये आयतन किस अर्थि कहे। क्षणिक सबको कहै, इनिका कहा प्रयोजन है? बहुरि जातैं रागादिकका गण निपजै ऐसा आत्मा अर आत्मीय है नाम जाका सो समुदय है। तहां अहंरूप आत्मा अर ममरूप आत्मीय जानना, सो क्षणिक मानै इनिका भी कहने का किछु प्रयोजन नाहीं। बहुरि सर्व संस्कार क्षणिक हैं, ऐसी वासना सो मार्ग है सो प्रत्यक्ष बहुत काल स्थायी केई वस्तु अवलोकिए है। तू कहेगा एक अवस्था न रहै है तो यहु हम भी मानै हैं। सूक्ष्मपर्याय क्षणस्थायी है। बहुरि तिस वस्तु ही का नाश मानै, यहु तो होता न दीसै है, हम कैसे मानै? बहुरि बाल-वृद्धादि अवस्थाविषै एक आत्मा का अस्तित्व भासै है। जो एक नाहीं है तो पूर्व उत्तर कार्यका एक कर्त्ता कैसे मानै है। जो तू कहेगा संस्कारतैं है तो संस्कार कौन के हैं। जाके हैं सो नित्य है कि क्षणिक है। नित्य है तो सर्व क्षणिक कैसे कहै है। क्षणिक है तो जाका आधार ही क्षणिक तिस संस्कारकी परम्परा कैसे कहै है। बहुरि सर्व क्षणिक भया तब आप भी क्षणिक भया। तू ऐसी वासनाको मार्ग कहै है सो इस मार्गका फल को आप तो पावै ही नाहीं, काहेको इस मार्ग विषै प्रवर्तै। बहुरि तेरे मत विषै निरर्थक शास्त्र काहे को किए। उपदेश तो किछू कर्तव्यकरि फल पावै तिसके अर्थ दीजिए है। ऐसे यहु मार्ग मिथ्या है। बहुरि रागादिक ज्ञानसन्तान वासना का उच्छेद जो निरोध, ताको मोक्ष कहै है। सो क्षणिक भया तब मोक्ष कौनकै कहै। अर रागादिकका अभाव होना तो हम भी मानै हैं। अर ज्ञानादिक अपने स्वरूपका अभाव भए तो आपका अभाव होय ताका उपाय करना कैसे हितकारी होय।

---

१. दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः।।३६।। – वि.वि.

२. दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च।।३७।। – वि. वि.

३. रूपं पंचेन्द्रियाण्यर्थाः पंचाविज्ञप्तिरेव च।
तद्विज्ञानाश्रया रूपप्रसादाश्चक्षुरादयः।।६।।
वेदनानुभवः संज्ञा निमित्तोद्ग्रहणात्मिका।
संस्कारस्कंधश्चतुर्भ्योन्ये संस्कारास्त इमे त्रयः।।१५।।
विज्ञानं प्रति विज्ञप्ति....।।१६।। अ.को. (१)।

हिताहितका विचार करनेवाला तो ज्ञान ही है। सो आपका अभाव को ज्ञान हित कैसे मानै। बहुरि बौद्ध मतविषै दोय प्रमाण मानै हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिके सत्यासत्यका निरूपण जैनशास्त्रनितैं जानना। बहुरि जो ए दोय ही प्रमाण हैं, तो इनिके शास्त्र अप्रमाण भए, तिनिका निरूपण किस अर्थि किया। प्रत्यक्ष अनुमान तो जीव आप ही करि लेंगे, तुम शास्त्र काहे को किए। बहुरि तहाँ सुगतको देव मानै है सो ताका स्वरूप नग्न वा विक्रियारूप स्थापै है सो विडम्बनारूप है। बहुरि कमंडल रक्तांबर के धारी पूर्वाह्न विषै भोजन करै इत्यादि लिंगरूप बौद्धमत के भिक्षुक हैं सो क्षणिक को भेष धरने का कहा प्रयोजन? परन्तु महंतता के अर्थि कल्पित निरूपण करना अर भेष धरना हो है। ऐसे बौद्ध हैं ते च्यारि प्रकार हैं-वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार, मध्यम तहाँ वैभाषिक तो ज्ञानसहित पदार्थ को मानै हैं। सौत्रांतिक प्रत्यक्ष यहु देखिए है, सोई है, परै किछू नाहीं ऐसा मानै हैं। योगाचारनिकै आचारसहित बुद्धि पाईए है। मध्यम हैं ते पदार्थ का आश्रय बिना ज्ञानही को मानै हैं। सो अपनी-अपनी कल्पना करै हैं। विचार किए किछू ठिकानाकी बात नाहीं। ऐसे बौद्धमत का निरूपण किया।

चार्वाकमत निराकरण

अब चार्वाकमतका स्वरूप कहिये है-

कोई सर्वज्ञदेव धर्म अधर्म मोक्ष है नाहीं वा पुण्य-पाप का फल है नाहीं वा परलोक नाहीं, यह इन्द्रियगोचर जितना है सो ही लोक है; ऐसे चार्वाक कहै हैं सो तहाँ वाको पूछिए है-सर्वज्ञदेव इस कालक्षेत्र विषै नाहीं कि सर्वदा सर्वत्र नाहीं। इस कालक्षेत्रविषै तो हम भी नाहीं मानै हैं। अर सर्वकालक्षेत्रविषै नाहीं ऐसा सर्वज्ञ बिना जानना किसकै भया। जो सर्व क्षेत्रकालकी जानै सो ही सर्वज्ञ अर न जानै है तो निषेध कैसे करै है। बहुरि धर्म अधर्म लोकविषै प्रसिद्ध हैं। जो ए कल्पित होय तो सर्वजन सुप्रसिद्ध कैसे होय। बहुरि धर्म अधर्मरूप परणति होती देखिए है, ताकरि वर्तमान ही में सुखी दुःखी हो है। इनिको कैसे न मानिए। अर मोक्षका होना अनुमानविषै आवै है। क्रोधादिक दोष काहूकै हीन है, काहूकै अधिक है तो जानिए है काहूकै इनकी नास्ति भी होती होसी। अर ज्ञानादि गुण काहूकै हीन काहूकै अधिक भासै है, तातैं जानिए है काहूकै सम्पूर्ण भी होते होसी। ऐसे जाकै समस्तदोषकी हानि गुणनिकी प्राप्ति होय सोई मोक्ष अवस्था है। बहुरि पुण्य-पाप का फल भी देखिए है। कोऊ उद्यम करै तो भी दरिद्री रहै, कोऊकै स्वयमेव लक्ष्मी होय। कोऊ शरीरका यत्न करै तो भी रोगी रहै, काहूकै बिना ही यत्न निरोगता रहै। इत्यादि प्रत्यक्ष देखिए है सो याका कारण कोई तो होगा। जो याका कारण सोई पुण्य-पाप है। बहुरि परलोकभी प्रत्यक्ष अनुमानतैं भासै है। व्यंतरादिक हैं ते अवलोकिए हैं। मैं अमुक था सो देव भया हूँ। बहुरि तू कहैगा यहु तो पवन है सो हम तो 'मैं हूँ' इत्यादि चेतनाभाव जाकै आश्रय पाईए ताहीको आत्मा कहै है सो तू वाका नाम पवन कहि परन्तु पवन तो भींति आदिकरि अटकै है, आत्मा मूंधा (बंद) हुआ भी अटकै नाहीं, तातैं पवन कैसे मानिए है। बहुरि जितना इन्द्रियगोचर है तितना ही लोक कहै है। सो तेरी इन्द्रियगोचर तो थोरेसे भी योजन दूरिवर्ती क्षेत्र अर थोरासा अतीत अनागत काल ऐसा क्षेत्र कालवर्ती भी पदार्थ नाहीं होय सकै।

अर दूरि देशकी वा बहुतकालकी बातें परम्परातैं सुनिए ही हैं, तातैं सबका जानना तेरे नाहीं, तू इतना ही लोक कैसे कहै हैं?

बहुरि चार्वाकमतविषै कहै हैं कि पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश मिले चेतना होय आवै है। सो मरते पृथ्वी आदि यहाँ रही। चेतनावान् पदार्थ गया सो व्यंतरादि भया, प्रत्यक्ष जुदे-जुदे देखिए है। बहुरि एक शरीरविषै पृथ्वी आदि तो भिन्न-भिन्न भासै है, चेतना एक भासै है। जो पृथ्वी आदि के आधार चेतना होय तो हाड़ लोहू उश्वासादिककै जुदी-जुदी चेतना होय। बहुरि हस्तादिक काटे जैसे वाकी साथि वर्णादिक रहे तैसे चेतना भी रहै है। बहुरि अहंकार, बुद्धि तो चेतनाके है सो पृथ्वी आदि रूप शरीर तो यहाँ ही रह्या, व्यंतरादि पर्यायविषै पूर्वपर्याय का अहंपना मानना देखिए है सो कैसे हो है। बहुरि पूर्वपर्यायकै गुह्य समाचार प्रगट करै सो यहु जानना किसकी साथि गया, जाकी साथि जानना गया सोई आत्मा है।

बहुरि चार्वाकमतविषै खाना, पीना, भोग-विलास करना इत्यादि स्वच्छंद वृत्तिको उपदेशै है सो ऐसे तो जगत् स्वयमेव ही प्रवर्तै है। तहाँ शास्त्रादि बनाय कहा भला होनेका उपदेश दिया। बहुरि तू कहैगा, तपश्चरण शील संयमादि छुड़ावनेके अर्थि उपदेश दिया तो इनि कार्यनिविषै तो कषाय घटनेतैं आकुलता घटै है तातैं यहाँ ही सुखी होना हो है, बहुरि यश आदि हो है, तू इनिको छुड़ाय कहा भला करै है। विषयासक्त जीवनिको सुहावती बातैं कहि अपना वा औरनिका बुरा करनेका भय नाहीं, स्वच्छन्द होय विषय सेवने के अर्थि ऐसी झूठी युक्ति बनावै है। ऐसे चार्वाकमतका निरूपण किया।

विशेष : चार्वाक मत नास्तिक है। वह ईश्वर, परलोक को नहीं मानता। चार्वाक मत का कोई निजी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। चार्वाक का अभिप्राय वह व्यक्ति है जिसकी वाणी या वचन (वाक्) चारु या मनोहारिणी हो अर्थात् साधारण लोगों को पसन्द आने वाली हो। इस मत को लोकायत भी कहते हैं। चार्वाक मत के मुख्य मन्तव्य इस प्रकार हैं-१.**प्रत्यक्ष प्रमाणवाद**-प्रत्यक्ष ही एकमात्र विश्वसनीय प्रमाण है। २. **भौतिकवाद-भूतचैतन्यवाद**- आत्मा अर्थात् चैतन्य चार महाभूतों का विकार मात्र है यानी शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं है ३. **ऐहिक सुखवाद**-जीवन का ध्येय इसी जीवन का सुख है, अर्थात् स्वर्ग तथा मोक्ष का निषेध। चार्वाक मत के प्रवर्तक वृहस्पति थे। बृहस्पति द्वारा रचित सूत्र वार्हस्पत्य सूत्र कहलाते हैं। इस पर भागुरी टीका भी है। चार्वाक सिद्धान्त प्राचीन काल से प्रचलित है। चार्वाक दर्शन अनुमान प्रमाण को नहीं मानता अतः यह ईश्वर, आत्मा व परलोक को कैसे मानेगा? नहीं मानता। चार्वाक मत ने वेदों का खुला विरोध किया है। उन्होंने वेद-रचयिता को भांड, धूर्त और निशाचर कहा है। (भारतीय दर्शन पृ. १४४ से १५३ डॉ. एन. के. देवराज)

दिगम्बर जैन ग्रन्थ श्लोकवार्तिक भाग ६ पृष्ठ ४०८ (भाषा) में चार्वाकों को वैज्ञानिक (आधुनिक वैज्ञानिक) नाम दिया है।

अन्य मत निराकरण उपसंहार

इस ही प्रकार अन्य अनेक मत हैं ते झूंठी कल्पित युक्ति बनाय विषय-कषायासक्त पापी जीवनिकरि प्रगट किए हैं। तिनिका श्रद्धानादिकरि जीवनिका बुरा हो है। बहुरि एक जिनमत है सो ही सत्यार्थ का प्ररूपक है, सर्वज्ञ वीतरागदेवकरि भाषित है। तिसका श्रद्धानादिक करि ही जीवनिका भला हो है। सो जिनमतविषै जीवादि तत्त्व निरूपण किए हैं। प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण कहै हैं। सर्वज्ञ वीतराग अरहंत देव हैं। बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रंथ गुरु हैं सो **इनिका वर्णन इस ग्रन्थविषै आगे विशेष लिखेंगे सो जानना।**

यहाँ **कोऊ कहै**- तुम्हारे राग-द्वेष है; तातैं तुम अन्यमतका निषेध करि अपनें मतको स्थापो हो **ताको कहिए है-**

यथार्थ वस्तु के प्ररूपण करने विषै राग-द्वेष नाहीं। किछू अपना प्रयोजन विचारि अन्यथा प्ररूपण करै तो रागद्वेष नाम पावै।

बहुरि **वह कहै है**-जो रागद्वेष नाहीं है तो 'अन्यमत बुरे,जैनमत भला' ऐसा कैसे कहो हो? साम्यभाव होय तो सर्वको समान जानो, मतपक्ष काहेको करो हो।

याको कहिए है-बुराको बुरा कहै हैं, भला को भला कहै हैं, यामें रागद्वेष कहा किया? बहुरि बुरा-भलाको समान जानना तो अज्ञानभाव है, साम्यभाव नाहीं।

बहुरि **वह कहै है**- जो सर्वमतनिका प्रयोजन तो एक हो है तातैं सर्वको समान जानना।

ताको कहिए है- जो प्रयोजन एक होय तो नानामत काहेको कहिए। एक मतविषै तो एक प्रयोजन लिए अनेक प्रकार व्याख्यान हो है, ताको जुदा मत कौन कहै है। परन्तु प्रयोजन ही भिन्न-भिन्न है सो दिखाइए हैं-

अन्य मतों से जैनमतकी तुलना

जैनमतविषै एक वीतरागभाव पोषने का प्रयोजन है सो कथानिविषै वा लोकादिका निरूपण विषै वा आचरण विषै वा तत्त्वनिविषै जहाँ-तहाँ वीतरागताकी ही पुष्टता करी है। बहुरि अन्य मतनिविषै सरागभाव पोषने का प्रयोजन है। जातैं कल्पित रचना कषायी जीव ही करै सो अनेक युक्ति बनाय कषाय भाव ही को पोषै। जैसे अद्वैत ब्रह्मवादी सर्वको ब्रह्म मानने करि अर सांख्यमती सर्व कार्य प्रकृति का मानि आपको शुद्ध अकर्त्ता माननेकरि अर शिवमती तत्त्व जानने ही तैं सिद्धि होनी माननेकरि, मीमांसक कषायजनित आचरण को धर्म माननेकरि, बौद्ध क्षणिक माननेकरि, चार्वाक परलोकादि न माननेकरि विषयभोगादिरूप कषायकार्यनिविषै स्वच्छन्द होना ही पोषै है। यद्यपि कोई ठिकानै कोई कषाय घटावने का भी निरूपण करै, तो उस छलकरि अन्य कोई कषायका पोषण करै है। जैसे गृहकार्य छोड़ि परमेश्वरका भजन करना ठहराया अर परमेश्वर का स्वरूप सरागी ठहराय उनके आश्रय अपने विषय-कषाय पोषै। बहुरि जैनधर्मविषै देव गुरु धर्मादिकका

स्वरूप वीतराग ही निरूपणकरि केवल वीतराग ताहीको पोषै है सो यहु प्रगट है। हम कहा कहैं, अन्यमती भर्तृहरि ताहू ने वैराग्यप्रकरण विषै[1] ऐसा कह्या है-

> [2] एको रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो,
> नीरागेषु जिनो विमुक्तललनासंगो न यस्मात्परः।
> दुर्वारस्मरबाण-पन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः,
> शेषः कामविडंबितो हि विषयान् भोक्तुं न मोक्तुं क्षमः।।७१।।

या विषै सरागीनिविषै महादेवको प्रधान कह्या अर वीतरागीनिविषै जिनदेवको प्रधान कह्या है। बहुरि सरागभाव वीतरागभावनिविषै परस्पर प्रतिपक्षीपना है सो ये दोऊ भले नाहीं। इनविषै एक ही हितकारी है सो वीतराग भाव ही हितकारी है, जाके होतैं तत्काल आकुलता मिटै, स्तुतियोग्य होय। आगामी भला होना सब कहै। सरागभाव होतैं तत्काल आकुलता होय, निंदनीक होय, आगामी बुरा होना भासै तातैं जामैं वीतरागभावका प्रयोजन ऐसा जैनमत सो ही इष्ट है। जिनमें सरागभावके प्रयोजन प्रगट किए हैं ऐसे अन्यमत अनिष्ट हैं। इनको समान कैसे मानिए। बहुरि **वह कहै है**-जो यहु सांच परन्तु अन्यमतकी निन्दा किए अन्यमती दु:ख पावै, विरोध उपजै, तातैं काहेको निन्दा करिए। **तहाँ कहिए है**- जो हम कषायकरि निन्दा करैं वा औरनिकों दु:ख उपजावैं तो हम पापी ही हैं। अन्यमतके श्रद्धानादिककरि जीवनिकै अतत्त्वश्रद्धान दृढ़ होय, तातैं संसारविषै जीव दु:खी होय तातैं करुणा भावकरि यथार्थ निरूपण किया है। कोई बिनादोष दु:ख पावै, विरोध उपजावै तो हम कहा करैं। जैसे मदिराकी निन्दाकरतैं कलाल दु:ख पावै, कुशीलकी निन्दा करतैं वेश्यादिक दु:ख पावै, खोटा-खरा पहचाननेकी परीक्षा बतावतैं ठग दु:ख पावै तो कहा करिए। ऐसे जो पापीनिके भयकरि धर्मोपदेश न दीजिए तो जीवनिका भला कैसे होय? ऐसा तो कोई उपदेश नाहीं, जाकरि सर्व ही चैन पावै। बहुरि वह विरोध उपजावै सो विरोध तो परस्पर हो है। हम लरै नाहीं, वे आप ही उपशांत होय जाहिंगे। **हमको तो हमारे परिणामोंका फल होगा।**

बहुरि **कोऊ कहै**- प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान किए मिथ्यादर्शनादिक हो हैं, अन्यमतनिका श्रद्धान किए कैसे मिथ्यादर्शनादिक होय?

ताका **समाधान**-अन्यमतनिविषै विपरीत युक्ति बनाय जीवादिक तत्त्वनिका स्वरूप यथार्थ न भासै यहु ही उपाय किया है सो किस अर्थि किया है। जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ स्वरूप भासै तो वीतरागभाव भए ही महंतपनो भासै। बहुरि जे जीव वीतरागी नाहीं अर अपनी महंतता चाहै, तिनि सरागभाव होतैं महंतता

१. यह श्लोक 'वैराग्यप्रकरण' में नहीं किन्तु शृंगारप्रकरण में है।
२. रागी पुरुषों में तो एक महादेव शोभित होता है, जिसने अपनी प्रियतमा पार्वती को आधे शरीर में धारण कर रक्खा है और वीतरागियों में जिनदेव शोभित होते हैं, जिनके समान स्त्रियों का संग छोड़नेवाला दूसरा कोई नहीं है। शेष लोग तो दुर्निवार कामदेव के बाणरूप सर्पों के विषसे मूर्च्छित हुए हैं जो कामकी विडम्बना से न तो विषयों को भली भाँति भोग सकते हैं और न छोड़ ही सकते हैं।

मनावनेके अर्थि कल्पित युक्तिकरि अन्यथा निरूपण किया है। सो अद्वैतब्रह्मादिकका निरूपणकरि जीव अजीवका अर स्वच्छन्दवृत्ति पोषनेकरि आस्रव संवरादिकका अर सकषायीवत् वा अचेतनवत् मोक्षकहनेकरि मोक्षका अयथार्थ श्रद्धानको पोषै हैं। तातैं अन्यमतनिका अन्यथापना प्रगट किया है। इनिका अन्यथापना भासै तो तत्त्वश्रद्धानविषै रुचिवंत होय। उनकी युक्तिकर भ्रम न उपजै। ऐसे अन्यमतनिका निरूपण किया।

अन्य मत के ग्रन्थोद्धरणों से जैनधर्म की प्राचीनता और समीचीनता

अब अन्यमतनिके शास्त्रनिकी ही साखिकरि जिनमत की समीचीनता वा प्राचीनता प्रगट कीजिए है–

बड़ो योगवाशिष्ठ छत्तीस हजार श्लोकं प्रमाण, ताको प्रथम वैराग्यप्रकरण, तहाँ अहंकारनिषेध अध्यायविषै वशिष्ठ अर रामका संवादविषै ऐसा कह्या है–

रामोऽवाच–

"नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः ।
शांतिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा ।।८।।"[१]

या विषै रामजी जिनसमान होने की इच्छा करी तातैं रामजीतैं जिनदेवका उत्तमपना प्रगट भया अर प्राचीनपना प्रगट भया। बहुरि **'दक्षिणामूर्ति-सहस्रनाम'** विषै कह्या है–

शिवोऽवाच–

"जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः ।"

यहाँ भगवत् का नाम जैनमार्गविषै रत अर जैन कह्या, सो यामें जैनमार्ग की प्रधानता व प्राचीनता प्रगट भई। बहुरि **'वैशंपायन सहस्रनाम'** विषै कह्या है–

"कालनेमिर्म्महावीरः शूरः शौरिर्जिनेश्वरः।"

यहाँ भगवान का नाम जिनेश्वर कह्या, तातैं जिनेश्वर भगवान हैं। बहुरि दुर्वासाऋषि कृत **'महिम्नस्तोत्र'** विषै ऐसा कह्या है–

तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी।
कर्त्तार्हन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः ।।१।।

यहाँ 'अरहंत तुम हो' ऐसे भगवंत की स्तुति करी, तातैं अरहंतकै भगवंतपनो प्रगट भयो। बहुरि हनुमन्नाटकविषै ऐसे कह्या है–

१. अर्थात् मैं राम नहीं हूँ, मेरी कुछ इच्छा नहीं है और भावों वा पदार्थों में मेरा मन नहीं है। मैं तो जिनदेव के समान अपनी आत्मा में ही शान्ति-स्थापना करना चाहता हूँ।

"यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनः,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः,
सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथः प्रभुः।।१।।[1]

यहाँ छहों मतनिविषै एक ईश्वर कह्या तहाँ अरहंतदेव कै भी ईश्वरपना प्रगट किया।

यहाँ कोऊ कहै, जैसे यहाँ सर्वमतविषै एक ईश्वर कह्या तैसे तुम भी मानो।

ताको कहिए, तुमने यह कह्या है, हम तो न कह्या। तातैं तुम्हारे मतविषै अरहंतकै ईश्वरपना सिद्ध भया। हमारे मतविषै भी ऐसे ही कहै तो हम भी शिवादिकको ईश्वर मानैं। जैसे कोई व्यापारी सांचा रत्न दिखावै, कोई झूंठा रत्न दिखावै तहाँ झूंठा रत्नवाला तो सर्व रत्ननिको समान मोल लेने के अर्थि समान कहै। सांचा रत्नवाला कैसे समान मानै? तैसे जैनी सांचा देवादिको निरूपै, अन्यमती झूठा निरूपै। तहाँ अन्यमती अपनी समान महिमा के अर्थि सर्वको समान कहै-जैनी कैसे मानै? बहुरि 'रुद्रयामलतंत्र' विषै भवानीसहस्रनामविषै ऐसे कह्या है-

"कुण्डासना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी।
जिनमाता जिनेन्द्रा च शारदा हंसवाहिनी।।१३।।

यहाँ भवानी के नाम जिनेश्वरी इत्यादि कहे, तातैं जिन का उत्तमपना प्रगट किया। बहुरि 'गणेशपुराण' विषै ऐसे कह्या है-

"जैनं पाशुपतं सांख्यं।"

बहुरि व्यासकृत सूत्रविषै ऐसा कह्या है-

"जैना एकस्मिन्नेव वस्तुनि उभयं प्ररूपयन्ति स्याद्वादिनः।"[2]

इत्यादि तिनिके शास्त्रनिविषै जैन निरूपण है, तातैं जैनमतका प्राचीनपना भासै है। बहुरि भागवत का पंचमस्कंधविषै ऋषभावतार का वर्णन है।[3] तहाँ यहु करुणामय, तृष्णादिरहित ध्यानमुद्राधारी सर्वाश्रम करि पूजित कह्या है, ताके अनुसारि अरहंत राजा प्रवृत्ति करी ऐसा कहै है। सो जैसे राम कृष्णादिक अवतारनिके अनुसारि अन्यमत तैसे ऋषभावतार के अनुसारि जैनमत, ऐसे तुम्हारे मतहीकरि जैन प्रमाण भया। यहाँ इतना विचार और किया चाहिए-कृष्णादि अवतारनिके अनुसारि विषयकषायनिकी प्रवृत्ति हो है।

१. यह हनुमन्नाटक के मंगलाचरणका तीसरा श्लोक है। इसमें बताया है कि जिसको शैव लोग शिव कहकर, वेदान्ती ब्रह्म कहकर; बौद्ध बुद्धदेव कहकर, नैयायिक कर्त्ता कहकर, जैनी अर्हन् कहकर और मीमांसक कर्म कह कर उपासना करते हैं, वह त्रैलोक्यनाथ प्रभु तुम्हारे मनोरथों को सफल करे।

२. 'प्ररूपयन्ति स्याद्वादिनः' इति खरड़ा प्रती पाठः।

३. भागवत स्कन्ध ५ अ. ५, २९।

ऋषभावतार के अनुसारि वीतराग साम्यभावकी प्रवृत्ति हो है। यहाँ दोऊ प्रवृत्ति समान माने धर्म अधर्मका विशेष न रहै अर विशेष माने भली होय सो अंगीकार करनी। बहुरि **दशावतारचरित्र विषै- "बद्ध्वा पद्मासनं यो नयनयुगमिदं न्यस्य नासाग्रदेशे"** इत्यादि बुद्धावतार का स्वरूप अरहंत देव सारिखा लिख्या है, सो ऐसा स्वरूप पूज्य है तो अरहंतदेव पूज्य सहज ही भया।

बहुरि काशीखंडविषै देवदास राजा नै सम्बोधि राज्य छुड़ायो। तहाँ नारायण तो विनयकीर्ति यती भया, लक्ष्मीको विनयश्री आर्यिका करी, गरुड़को श्रावक किया, ऐसा कथन है। सो जहाँ सम्बोधन करना भया तहाँ जैनी भेष बनाया। तातैं जैन हितकारी प्राचीन प्रतिभासै है। बहुरि **'प्रभासपुराण'** विषै ऐसा कह्या हैं-

भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपःकृतम्।
तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः।।१।।
पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः।
नेमिनाथः शिवेत्येवं नामचक्रेऽस्य वामनः।।२।।
कलिकाले महाघोरे, सर्वपापप्रणाशकः।
दर्शनात्स्पर्शनादेव, कोटियज्ञफलप्रदः।।३।।

यहाँ वामनको पद्मासन दिगम्बर नेमिनाथ का दर्शन भया कह्या। वाहीका नाम शिव कह्या। बहुरि ताके दर्शनादिकतैं कोटियज्ञ का फल कह्या सो ऐसा नेमिनाथ का स्वरूप तो जैनी प्रत्यक्ष मानै हैं, सो प्रमाण ठहरया। बहुरि प्रभासपुराणविषै कह्या है-

"रैवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम्।।१।।"

यहाँ नेमिनाथ को जिनसंज्ञा कही, ताके स्थानको ऋषि का आश्रम मुक्तिका कारण कह्या अर युगादिके स्थानको भी ऐसा ही कह्या, तातैं उत्तम पूज्य ठहरे। बहुरि 'नगरपुराण' (नागपुराण) विषै भवावताररहस्यविषै ऐसा कह्या है-

"अकारादिहकारान्तमूर्द्ध्वाधोरेफसंयुतम्।
नादविन्दुकलाक्रान्तं चन्द्रमण्डलसन्निभम्।।१।।
एतद्देवि परं तत्त्वं यो विजानाति तत्त्वतः।
संसारबन्धनं छित्वा स गच्छेत्परमां गतिम्।।२।।

यहाँ 'अर्हं' ऐसे पदको परमतत्त्व कह्या। याके जाने परमगतिकी प्राप्ति कही सो 'अर्हं' पद जैनमत उक्त है। बहुरि नगरपुराणविषै कह्या है-

"दशभिर्भोजितैर्विप्रैः यत्फलं जायते कृते।
मुनेरर्हत्सुभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ।।१।।"

यहाँ कृतयुगविषै दश ब्राह्मणों को भोजन कराएका जेता फल कह्या, तेता फल कलियुगविषै अर्हतभक्तमुनिके भोजन कराएका कह्या, तातैं जैनीमुनि उत्तम ठहरे। बहुरि 'मनुस्मृति' विषै ऐसा कह्या है-

"कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः।
चक्षुष्मान् यशस्वी वाभिचन्द्रोऽथ प्रसेनजित्।।१।।
मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुलसत्तमाः।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरक्रमः।।२।।
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः।।३।।"

यहाँ विमलवाहनादिक मनु कहिए सो जैनविषै कुलकरनि के ए नाम कहे हैं अर यहाँ प्रथम जिन युग की आदिविषै मार्गका दर्शक अर सुरासुरकरि पूजित कह्या, सो ऐसे ही है तो जैनमत युगकी आदिहीतैं है अर प्रमाणभूत कैसे न कहिए। बहुरि ऋग्वेदविषै ऐसा कह्या है-

"ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये। ॐ पवित्रं नग्नमुपविस्पृसामहे एषां नग्नं येषां जातं येषां वीरं सुवीरं इत्यादि।

बहुरि यजुर्वेदविषै ऐसा कह्या है-

ॐ नमो अर्हतो ऋषभाय। बहुरि ऐसा कह्या है-

ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा। ॐ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदन्ति। अमृतारमिंद्रं हवे सुगतं सुपार्श्वमिंद्रं हवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमानपुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा। ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् स्वाहा। ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु दीर्घायुस्त्वायुबलायुर्वा शुभजातायु। ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमिः स्वाहा। वामदेव शान्त्यर्थमनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमिः स्वाहा।'[1]

सो यहाँ जैनतीर्थंकरनिके जे नाम हैं तिनका पूजनादि कह्या। बहुरि यहां यहु भास्या, जो इनके पीछे वेद रचना भई है। वे ऐसे अन्यमत के ग्रंथनिकी साक्षीतैं भी जिनमतकी उत्तमता अर प्राचीनता दृढ़ भई। अर जिनमतको देखें वे मत कल्पित ही भासै। तातैं जो अपना हित का इच्छुक होय सो पक्षपात छोरि साँचा जैनधर्मको अंगीकार करो। बहुरि अन्यमतनिविषै पूर्वापर विरोध भासै हैं। पहले अवतार वेदका उद्धार

---

१. यजुर्वेद अ. २५ म. १९। ऋग्वेद अष्ट १ अ. ६ वर्ग १६।

किया। तहाँ यज्ञादिकविषै हिंसादिक पोषे अर बुद्धावतार यज्ञ का निंदक होय हिंसादिक निषेधे। वृषभावतार वीतराग संयम का मार्ग दिखाया। कृष्णावतार परस्त्री रमणादि विषय कषायादिकनिका मार्ग दिखाया। सो अब यह संसारी कौनका कह्या करै, कौनके अनुसारि प्रवर्तै अर इन सब अवतारनिको एक बतावै सो एक ही कदाचित् कैसे, कदाचित् कैसे कहै वा प्रवर्ते तो याकै उनके कहने की वा प्रवर्तने की प्रतीति कैसे आवे? बहुरि कहीं क्रोधादिकषायनिका वा विषयनिका निषेध करैं, कहीं लरनेका वा विषयादिसेवनका उपदेश दें। तहाँ प्रारब्ध बतावैं सो बिना क्रोधादि भए आपहीतैं लरना आदि कार्य होय तो यहु भी मानिए सो तो होय नाहीं। बहुरि लरना आदि कार्य करतैं क्रोधादि भए न मानिए तो जुदे ही क्रोधादि कौन हैं जिनका निषेध किया। तातैं बनै नाहीं, पूर्वापर विरोध है गीतानिविषै वीतरागता दिखाय लरनेका उपदेश दिया सो यहु प्रत्यक्ष विरोध भासै है। बहुरि ऋषीश्वरादिकनिकरि श्राप दिया बतावै, सो ऐसा क्रोध किए निंद्यपना कैसे न भया? इत्यादि जानना। बहुरि **"अपुत्रस्य गतिर्नास्ति"** ऐसा भी कहै अर भारत विषै ऐसा भी कह्या है-

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि राजेन्द्र अकृत्वा कुलसन्ततिम्।।१।।

यहाँ कुमार ब्रह्मचारीनिको स्वर्ग गए बताए, सो यहु परस्पर विरोध है। बहुरि ऋषीश्वर भारतविषै ऐसा कह्या है-

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्।
ये कुर्वन्ति वृथास्तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः।।१।।
वृथा एकादशी प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः।
वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चान्द्रायणं वृथा।।२।।
चातुर्मास्ये तु सम्प्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चान्द्रायणशतैरपि।।३।।

इन विषै मद्य-मांसादिकका वा रात्रिभोजन का वा चौमासे में विशेषपने रात्रिभोजनका वा कंदफलभक्षण का निषेध किया। बहुरि बड़े पुरुषनिकै मद्यमांसादिकका सेवन करना कहै, व्रतादि विषै रात्रिभोजन स्थापै वा कंदादि भक्षण स्थापै, ऐसे विरुद्ध निरूपै है। ऐसे ही अनेक पूर्वापर विरुद्ध वचन अन्यमत के शास्त्रनिविषै हैं सो करै कहा, कहीं तो पूर्वपरम्परा जानि विश्वास अनावनेके अर्थि यथार्थ कह्या अर कहीं विषयकषाय पोषने के अर्थि अन्यथा कह्या। सो जहाँ पूर्वापर विरोध होय, तिनका वचन प्रमाण कैसे करिए। इहां जो अन्य मतनिविषै क्षमा शील सन्तोषादिक को पोषते वचन हैं सो तो जैनमतविषै पाइए है अर विपरीत वचन है सो उनका कल्पित है। जिनमत अनुसारि वचननिका विश्वासतैं उनका विपरीतवचन का श्रद्धानादिक होयजाय, तातैं अन्यमतका कोऊ अंग भला देखि भी तहां श्रद्धानादिक न करना। जैसे विषमिश्रित भोजन हितकारी नाहीं तैसे जानना। बहुरि जो कोई उत्तम धर्मका अंग जिनमतविषै न पाईए अर अन्यमत विषै पाईए, अथवा कोई निषिद्ध अधर्मका अंग जैनमत विषै पाईए अर अन्यत्र न पाईए, तो

अन्यमत को आदरौ सो सर्वथा होय नाहीं। जातैं सर्वज्ञका ज्ञानतैं किछू छिप्या नाहीं है। तातैं अन्यमतनिका श्रद्धानादिक छोरि जिनमतका दृढ़ श्रद्धानादिक करना।

बहुरि कालदोषतैं कषायी जीवनिकरि जिनमतविषै भी कल्पितरचना करी है, सो ही दिखाईए है-

श्वेताम्बर मत निराकरण

श्वेताम्बर मतवाले काहूने सूत्र बनाए, तिनको गणधर के किए कहै हैं। सो उनको पूछिए है-गणधरनै आचारांगादिक बनाए हैं सो तुम्हारै अबार पाईए है सो इतने प्रमाण लिए ही किए थे कि घना प्रमाण लिए किए थे। जो इतने प्रमाण लिए ही किए थे, तो तुम्हारे शास्त्रनि विषै आचारांगादिकनिके पदनिका प्रमाण अठारह हजार आदि कह्या है, सो तिनकी विधि मिलाय द्यो। पदका प्रमाण कहा? जो विभक्ति अंतको पद कहोगे, तो कहे प्रमाणतैं बहुत पद होइ जाहिंगे, अर जो प्रमाणपद कहोगे, तो तिस एकपद के साधिक इक्यावन कोड़ि श्लोक हैं। सो ए तो बहुत छोटे शास्त्र हैं सो बनै नाहीं। बहुरि आचारांगादिकतैं दशवैकालिकादिक का प्रमाण घाटि कह्या है। तुम्हारैं बधता है सो कैसे बनै? बहुरि कहोगे, आचारांगादिक बड़े थे, कालदोष जानि तिनही में स्यों केतेक सूत्र काढ़ि ए शास्त्र बनाए हैं। तो प्रथम तो टूटकग्रन्थ प्रमाण नाहीं। बहुरि यह प्रबन्ध है, जो बड़ा ग्रंथ बनावै तो वा विषै सर्व वर्णन विस्तार लिए करै अर छोटा ग्रन्थ बनावै तो तहाँ संक्षेप वर्णन करै परन्तु सम्बन्ध टूटै नाहीं। अर कोई बड़ा ग्रन्थ में थोरासा कथन काढ़ि लीजिए, तो तहाँ सम्बन्ध मिलै नाहीं-कथन का अनुक्रम टूटि जाय। सो तुम्हारे सूत्रनिविषै तो कथादिकका भी सम्बन्ध मिलता भासै है- टूटकपना भासै नाहीं। बहुरि अन्य कवीनितैं गणधरकी तौ बुद्धि अधिक होसी, ताके किए ग्रन्थनिमैं थोरे शब्द में बहुत अर्थ चाहिए सो तो अन्य कवीनिकीसी भी गम्भीरता नाहीं। बहुरि जो ग्रन्थ बनावै सो अपना नाम ऐसे धरै नाहीं जो 'अमुक कहै है,' 'मैं कहूँ हूँ' ऐसा कहै सो तुम्हारे सूत्रनिविषै 'हे गौतम' वा 'गौतम कहै है' ऐसे वचन हैं सो ऐसे वचन तो तब ही सम्भवैं जब और कोई कर्त्ता होय। तातैं ये सूत्र गणधरकृत नाहीं और के किए हैं। गणधर का नामकरि कल्पितरचना को प्रमाण कराया चाहै है। सो विवेकी तो परीक्षाकरि मानैं, कह्या ही तो न मानैं।

बहुरि वह ऐसा भी कहै हैं-जो गणधर सूत्रनिके अनुसार कोई दशपूर्वधारी भया है, ताने ए सूत्र बनाए हैं। तहाँ पूछिए है-जो नए ग्रन्थ बनाए हैं तो नवा नाम धरना था, अंगादिकके नाम काहेको धरे। जैसे कोई बड़ा साहूकारकी कोठी का नामकरि अपना साहूकारा प्रगट करै, तैसे यह कार्य भया। सांचेको तो जैसे दिगम्बरविषै ग्रन्थनिके और नाम धरे अर अनुसारी पूर्व ग्रन्थनिका कह्या, तैसे कहना योग्य था। अंगादिकका नाम धरि गणधर कृत का भ्रम काहे को उपजाया। तातैं गणधर के पूर्वाधारी के वचन नाहीं। बहुरि इन सूत्रनि विषै जो विश्वास अनावने के अर्थि जिनमत अनुसार कथन है सो तो सांच है ही, दिगम्बर भी तैसे ही कहै हैं। बहुरि जो कल्पित रचना करी है तामैं पूर्वापर विरुद्धपनो वा प्रत्यक्षादि प्रमाण में विरुद्धपनो भासै है, सो ही दिखाइए है-

अन्य लिंग से मुक्ति का निषेध

अन्य लिंगीकै वा गृहस्थकै वा स्त्रीकै वा चांडालादि शूद्रनिकै साक्षात् मुक्तिकी प्राप्ति होनी मानै है

सो बनै नाहीं। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता मोक्षमार्ग है। सो वे सम्यग्दर्शनका स्वरूप तो ऐसा कहै हैं-

अरहंतो महदेवो जावज्जीवं सुसाहणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं ए सम्मत्तं मए गहियं।।१।।

सो अन्य लिंगीकै अरहंतदेव, साधु, गुरु, जिनप्रणीत तत्त्व का मानना कैसे सम्भवै? तब सम्यक्त्व भी न होय, तो मोक्ष कैसे होय। जो कहोगे अंतरंग विषै श्रद्धान होनेतैं सम्यक्त्व तिनकै हो है, सो विपरीत लिंगधारक की प्रशंसादिक किए भी सम्यक्त्वको अतीचार कह्या है सो सांचा श्रद्धान भए पीछै आप विपरीत लिंगका धारक कैसे रहै। श्रद्धान भए पीछै महाव्रतादि अंगीकार किए सम्यक्चारित्र होय सो अन्यलिंगविषै कैसे बनै? जो अन्यलिंगविषै भी सम्यक्चारित्र हो है तो जैन लिंग अन्य लिंग समान भया, तातैं अन्य लिंगीको मोक्ष कहना मिथ्या है। बहुरि गृहस्थको मोक्ष कहै सो हिंसादिक सर्व सावद्ययोग का त्याग किए सामायिकचारित्र होय सो सर्वसावद्य योगका त्याग किए गृहस्थपनो कैसे सम्भवै? जो कहोगे-अंतरंग त्याग भया है तो यहाँ तो तीनों योगकरि त्याग करै हैं, कायकरि त्याग कैसे भया? बहुरि बाह्य परिग्रहादिक राखैं भी महाव्रत हो है, सो महाव्रतनिविषै तो बाह्य त्याग करने की ही प्रतिज्ञा करिए है, त्याग किए बिना महाव्रत न होय। महाव्रत बिना छठा आदि गुणस्थान न हो हैं, तो तब मोक्ष कैसे होय? तातैं गृहस्थको मोक्ष कहना मिथ्या वचन हैं।

स्त्रीमुक्ति का निषेध

बहुरि स्त्रीको मोक्ष कहै, सो जाकरि सप्तम नरक गमन योग्य पाप न होय सकै, ताकरि मोक्ष का कारण शुद्ध भाव कैसे होय? जातैं जाके भाव दृढ़ होय, सोही उत्कृष्ट पाप वा धर्म उपजाय सकै है। बहुरि स्त्रीकै निशंक एकांतविषै ध्यान धरना अर सर्व परिग्रहादिकका त्याग करना सम्भवै नाहीं। जो कहोगे, एक समयविषै पुरुषवेदी वा स्त्रीवेदी वा नपुसंकवेदीको सिद्धि होनी सिद्धान्तविषै कही है, तातैं स्त्रीको मोक्ष मानिए है। सो यहाँ ए भाववेदी है कि द्रव्यवेदी है, जो भाववेदी है तो हम मानै ही हैं। द्रव्यवेदी है तो पुरुषस्त्रीवेदी तो लोकविषै प्रचुर दीसै हैं, नपुंसक तो कोई विरला दीसै है। एक समयविषै मोक्ष जानेबाले इतने नपुंसक कैसे सम्भवै? तातैं द्रव्यवेद अपेक्षा कथन बनै नाहीं। बहुरि जो कहोगे, नवम गुणस्थानतांई वेद कहे हैं, सो भी भाववेद अपेक्षा ही कथन है। द्रव्यवेद अपेक्षा होय तो चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त वेदका सद्भाव कहना सम्भवै। तातैं स्त्रीकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

शूद्रमुक्ति का निषेध

बहुरि शूद्रनिको मोक्ष कहै। सो चांडालादिकको गृहस्थ सन्मानादिककरि दानादिक कैसे दे, लोकविरुद्ध होय। बहुरि नीचकुलवालों के उत्तम परिणाम न होय सकै। बहुरि नीचगोत्रकर्मका उदय तो पंचम गुणस्थान पर्यन्त ही है। ऊपरिके गुणस्थान चढ़े बिना मोक्ष कैसे होय। जो कहोगे-संयम धारे पीछे वाकै उच्चगोत्रही का उदय कहिए, तो संयम धारने न धारने की अपेक्षातैं नीच उच्च गोत्र का उदय ठहरया। ऐसे होते असंयमी मनुष्य तीर्थंकर क्षत्रियादिक तिनकै भी नीच गोत्रका उदय ठहरै। जो उनकै कुल अपेक्षा उच्चगोत्रका

उदय कहोगे तो चांडालादिकके भी कुल अपेक्षा ही नीच गोत्र का उदय कहो। ताका सद्भाव तुम्हारे सूत्रनिविषै भी पंचम गुणस्थान पर्यंत ही कह्या है। सो कल्पित कहनेमें पूर्वापर विरुद्ध होय ही होय। तातैं शूद्रनिकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

ऐसे तिनहूने सर्वकै मोक्षकी प्राप्ति कही, सो ताका प्रयोजन यहु है जो सर्वका भला मनावना, मोक्षका लालच देना अर अपना कल्पितमतकी प्रवृत्ति करनी। परन्तु विचार किए मिथ्या भासै है।

अछेरों का निराकरण

बहुरि तिनके शास्त्रनिविषै 'अछेरा' कहै हैं। सो कहै है-हुण्डावसर्पिणी के निमित्ततैं भए हैं, इनको छेड़ने नाहीं। सो कालदोषतैं केई बात होय परन्तु प्रमाणविरुद्ध तो न होय। जो प्रमाण विरुद्ध भी होय, तो आकाश के फूल, गधे के सींग इत्यादि होना भी बनै सो सम्भवै नाहीं। वे अछेरा कहै हैं सो प्रमाण विरुद्ध हैं। काहेतैं सो कहिए हैं-

वर्द्धमानजिन केतेककालि ब्राह्मणीके गर्भविषै रहे, पीछै क्षत्रियाणी के गर्भ विषै बधे, ऐसा कहै हैं। सो काहूका गर्भ काहूकै धरया प्रत्यक्ष भासै नाहीं, उन्मानादिकमैं आवै नाहीं। बहुरि तीर्थंकरके भया कहिए, तो गर्भकल्याणक काहूके घरि भया, जन्मकल्याणक काहूके घरि भया। केतेक दिन रत्नवृष्ट्यादिक काहूके घरि भए, केतेक दिन काहूके घरि भए। सोलह स्वप्न किसी को आए, पुत्र काहूकै भया इत्यादि असम्भव भासै। बहुरि माता तो दोय भई अर पिता तो एक ब्राह्मण ही रह्या। जन्म कल्याणादिविषै वाका सन्मान न किया, अन्य कल्पित पिताका सन्मान किया। सो तीर्थंकरकै दोय पिताका कहना महाविपरीत भासै है। सर्वोत्कृष्टपद के धारककै ऐसे वचन सुनने भी योग्य नाहीं। बहुरि तीर्थंकरके भी ऐसी अवस्था भई तो सर्वत्र ही अन्य स्त्रीका गर्भ अन्यस्त्रीकै धरि देना ठहरै। तो वैष्णव जैसे अनेक प्रकार पुत्र - पुत्रीका उपजना बतावै है, यहु कार्य भया। सो ऐसे निकृष्ट काल विषै तो ऐसे होय ही नाहीं, तहाँ होना कैसे सम्भवै? तातैं यहु मिथ्या है।

बहुरि मल्लि तीर्थंकरको कन्या कहै हैं। सो मुनि देवादिककी सभा विषै स्त्रीका स्थिति करना उपदेश देना न सम्भवै, वा स्त्रीपर्याय हीन है सो उत्कृष्ट तीर्थंकरपदधारककै न बनै। बहुरि तीर्थंकरकै नग्न लिंग ही कहै है सो स्त्रीकै नग्नपनो न सम्भवै। इत्यादि विचार किए असम्भव भासै है।

बहुरि हरिक्षेत्रका भोगभूमियाँको नरक गया कहै, सो बंध वर्णन विषै तो भोगभूमियाँकै देवगति देवायुहीका बंध कहै, नरक कैसे गया। सिद्धान्तविषै तो अनन्तकाल विषै जो बात होय, सो भी कहै जैसे तीसरे नरक पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका सत्त्व कह्या, भोगभूमियाँकै नरक आयु गतिका बंध न कह्या, सो केवली भूले तो नाहीं। तातैं यहु मिथ्या है। ऐसे सर्व अछेरे असम्भव जानने। बहुरि वे कहै हैं इनको छेड़ने नाहीं सो झूंठ कहनेवाला ऐसे ही कहै।

बहुरि जो कहोगे-दिगम्बरविषै जैसे तीर्थंकरकै पुत्री, चक्रवर्तीका मानभंग इत्यादि कार्य कालदोषतैं भया कहै हैं, तैसे ए भी भए। सो ये कार्य तौ प्रमाणविरुद्ध नाहीं। अन्यकै होते थे सो महंतनिकै भए तातैं कालदोष कह्या है। गर्भहरणादि कार्य प्रत्यक्ष अनुमानादितैं विरुद्ध, तिनका होना कैसे सम्भवै? बहुरि अन्य

भी घने ही कथन प्रमाणविरुद्ध कहै हैं। जैसे कहै हैं, सर्वार्थसिद्धि के देव मन ही तैं प्रश्न करै हैं, केवली मनहीतैं उत्तर दे हैं। सो सामान्य जीव के मन की बात मनःपर्ययज्ञानी बिना जानि सकै नाहीं। केवलीके मन की सर्वार्थसिद्धि के देव कैसे जानै? बहुरि केवलीकै भावमनका तो अभाव है, द्रव्यमन जड़ आकारमात्र है, उत्तर कौन दिया। तातैं मिथ्या है। ऐसे अनेक प्रमाणविरुद्ध कथन किए हैं, तातैं तिनके आगम कल्पित जानने।

केवली के आहार-नीहार का निराकरण

बहुरि ते श्वेताम्बर मतवाले देव गुरु धर्मका स्वरूप अन्यथा निरूपै है। तहाँ केवलीकै क्षुधादिक दोष कहै। सो यहु देवका स्वरूप अन्यथा है। काहे तैं, क्षुधादिक दोष होतैं आकुलता होय, तब अनन्त सुख कैसे बनै? बहुरि जो कहोगे, शरीर को क्षुधा लागै है, आत्मा तद्रूप न हो है, तो क्षुधादिकका उपाय आहारादिक काहेको ग्रहण किया कहो हो। क्षुधादिकरि पीड़ित होय, तब ही आहार ग्रहण करै। बहुरि कहोगे, जैसे कर्मोदयतैं विहार हो है, तैसे ही आहार ग्रहण हो है। सो विहार तो विहायोगति प्रकृतिका उदय तैं हो है अर पीड़ाका उपाय नहीं अर बिना इच्छा भी किसी जीवकै होता देखिए है। बहुरि आहार है सो प्रकृतिका उदयतैं नाहीं, क्षुधाकरि पीड़ित भए ही ग्रहण करै है। बहुरि आत्मा पवनादिको प्रेरै तब ही निगलना हो है, तातैं विहारवत् आहार नाहीं। जो कहोगे- सातावेदनीयके उदयतैं आहार ग्रहण हो है, सो बनै नाहीं। जो जीव क्षुधादिकरि पीड़ित होय, पीछै आहारादिक ग्रहणतैं सुख मानै, ताकै आहारादिक साताके उदयतैं कहिए। आहारादिका ग्रहण साता वेदनीयका उदयतैं स्वयमेव होय, ऐसे तो है नाहीं। जो ऐसे होय तो साता वेदनीय का मुख्यउदय देवनिके है, ते निरन्तर आहार क्यों न करै। बहुरि महामुनि उपवासादि करै तिनकैं साताका भी उदय अर निरन्तर भोजन करनेवालों कै असाताका भी उदय सम्भवै तातैं जैसे बिना इच्छा विहायोगतिके उदयतैं विहार सम्भवै, तैसे बिना इच्छा केवल सातावेदनीय ही के उदयतैं आहारका ग्रहण सम्भवै नाहीं।

बहुरि **वे कहै हैं** सिद्धान्त विषै केवली कै क्षुधादिक ग्यारह परीषह कहै हैं, तातैं तिनकै क्षुधाका सद्भाव सम्भवै है। बहुरि आहारादिक बिना तिनकी उपशांतता कैसे होय, तातैं तिनकै आहारादिक मानै है।

ताका **समाधान**- कर्मप्रकृतिनिका उदय मंद तीव्र भेद लिए हो है। तहाँ अतिमंद उदय होतैं तिस उदयजनित कार्य की व्यक्तता भासै नाहीं। तातैं मुख्यपने अभाव कहिए, तारतम्यविषै सद्भाव कहिए। जैसे नवम गुणस्थान विषै वेदादिकका उदय मन्द है, तहां मैथुनादि क्रिया व्यक्त नाहीं, तातैं तहाँ ब्रह्मचर्य्य ही कह्या। तारतम्य विषै मैथुनादिकका सद्भाव कहिए है। तैसे केवलीकै असाताका उदय अति मंद है। जातैं एक-एक कांडकविषै अनन्तवें भाग अनुभाग रहै, ऐसे बहुत अनुभागकांडकनि करि वा गुणसंक्रमणादिककरि सत्ता विषै असातावेदनीयका अनुभाग अत्यन्त मंद भया, ताका उदय विषै क्षुधा ऐसी व्यक्त होती नाहीं जो शरीरको क्षीण करै। अर मोहके अभावतैं क्षुधादिक जनित दुःख भी नाहीं, तातैं क्षुधादिकका अभाव कहिए। तारतम्यविषै तिनका सद्भाव कहिए है। बहुरि तैं कह्या-आहारादिक बिना तिनकी उपशांतता कैसे होय, सो आहारादिकरि उपशांत होने योग्य क्षुधा लागै तो मन्द उदय काहेका रह्या? देव भोगभूमियाँ आदिककै किंचित्

मंद उदय होतैं ही बहुत काल पीछै किंचित् आहार ग्रहण हो है तो इनकै तो अतिमंद उदय भया है, तातैं इनकै आहारका अभाव सम्भवै हैं।

बहुरि वह कहै है, देव भोगभूमियोंका तो शरीर ही वैसा है जाको भूख थोरी वा घने काल पीछै लागै, इनिका तो शरीर कर्मभूमिका औदारिक है। तातैं इनका शरीर आहार बिना देशोनकोटि पूर्व-पर्यन्त उत्कृष्टपने कैसे रहै?

ताका समाधान- देवादिकका भी शरीर वैसा है, सो कर्मके ही निमित्ततैं है। यहाँ केवलज्ञान भए ऐसा ही कर्म उदय भया, जाकरि शरीर ऐसा भया, जाकी भूख प्रगट होती ही नाहीं। जैसे केवलज्ञान भए पहलै केश नख बधै थे, अब बधै (बढे) नाहीं। छाया होती थी सो होती नाहीं। शरीर विषै निगोद थी, ताका अभाव भया। बहुत प्रकारकरि जैसे शरीर की अवस्था अन्यथा भई, तैसे आहार बिना ही शरीर जैसा का तैसा रहै ऐसी भी अवस्था भई। प्रत्यक्ष देखो, औरनिको जरा व्यापै तब शरीर शिथिल होय जाय, इनका आयुका अन्तपर्यन्त शरीर शिथिल न होय। तातैं अन्य मनुष्यनिका अर इनका शरीर की समानता सम्भवै नाहीं। **बहुरि जो तू कहैगा**-देवादिककै आहार ही ऐसा है जाकरि बहुत काल की भूख मिटै, इनकै भूख काहे तैं मिटी अर शरीर पुष्ट कैसे रह्या? **तो सुनि,** असाताका उदय मंद होनेतैं मिटी अर समय-समय परम औदारिक शरीर वर्गणा का ग्रहण हो है सो वह नोकर्म आहार है सो ऐसी-ऐसी वर्गणा का ग्रहण हो है जाकरि क्षुधादिक व्यापै नाहीं वा शरीर शिथिल होय नाही, सिद्धान्तविषै याही की अपेक्षा केवली को आहार कह्या है। अर अन्नादिकका आहार तो शरीर की पुष्टता का मुख्य कारण नाहीं। प्रत्यक्ष देखो, कोऊ थोरा आहार ग्रहै, शरीर पुष्ट बहुत होय; कोऊ बहुत आहार ग्रहै, शरीर क्षीण रहै। बहुरि पवनादि साधनेवाले बहुत काल तांई आहार न लें, शरीर पुष्ट रह्या करै वा ऋद्धिधारी मुनि उपवासादि करै, शरीर पुष्ट बन्या रहै। सो केवलीकै तो सर्वोत्कृष्टपना है उनकै अन्नादिक बिना शरीर पुष्ट बन्या रहै तो कहा आश्चर्य भया। बहुरि केवली कैसे आहारको जाँय, कैसे याचैं।

बहुरि वे आहारको जांय, तब समवसरण खाली कैसे रहै। अथवा अन्यका ल्याय देना ठहरावोगे तो कौन ल्याय दे, उनके मन की कौन जानै। पूर्व उपवासादिककी प्रतिज्ञा करी थी, ताका कैसे निर्वाह होय। जीव अन्तराय सर्व प्रतिभासै, कैसे आहार ग्रहैं? इत्यादि विरुद्धता भासै हैं। बहुरि वे कहै हैं- आहार ग्रहै है, परन्तु काहूको दीसै नाहीं। सो आहार-ग्रहणको निंद्य जान्या, तब ताका न देखना अतिशयविषै लिख्या। सो उनकै निंद्यपना रह्या अर और न देखै हैं तो कहा भया। ऐसे अनेक प्रकार विरुद्धता उपजै है।[1]

बहुरि अन्य अविवेकताकी बातें सुनो- केवलीकै नीहार कहै हैं, रोगादिक भया कहै हैं अर कहैं

---

१. केवली के आहार (कवलाहार) का खण्डन विस्तार से जानने हेतु ये ग्रन्थ भी देखने चाहिए - षड्दर्शनसमुच्चय ४६ प्रकरण ७८ पृ. २०४-५, धवल २/४४८, प्रवचनसार २० ता. वृ., गो. क. गाथा २७३, धवल १३/५३, गो.क. १६, योगमार्ग २८, रा. वार्तिक २/४/३/१०६, सर्वार्थसिद्धि २/४, गो.क. २७५, धवल २/४३७, बृहज्जिनोपदेश पृ. २३६ से २४४, ७४३ वाँ शंका-समाधान आदि।

काहुनै तेजोलेश्या छोरी, ताकरि वर्द्धमानस्वामीकै पेठूंगा का (पेचिसका) रोग भया, ताकरि बहुत बार नीहार होने लागा। सो तीर्थंकर केवलीकै भी ऐसा कर्मका उदय रह्या अर अतिशय न भया, तौ इन्द्रादिककरि पूज्यपना कैसे शोभै। बहुरि नीहार कैसे करै, कहाँ करै, कोऊ संभवती बातैं नाहीं। बहुरि जैसे रागादि युक्त छद्मस्थकै क्रिया होय, तैसे केवलीकै क्रिया ठहरावै है। वर्द्धमान स्वामी का उपदेश विषै 'हे गौतम' ऐसा बारम्बार कहना ठहरावै है, सो उनकै तो अपना कालविषै सहज दिव्यध्वनि हो है, तहाँ सर्वको उपदेश हो है, गौतम को संबोधन कैसे बनै? बहुरि केवलीकै नमस्कारादिक क्रिया ठहरावै है, सो अनुराग बिना वंदना संभवै नाहीं। बहुरि गुणाधिकको वंदना संभवै, उन सेती कोई गुणाधिक रह्या नाहीं। सो कैसे बनै? बहुरि हाटिविषै समवसरण उतरया कहै, सो इन्द्रकृत समवसरण हाटिविषै कैसे रहै? इतनी रचना तहाँ कैसे समावै। बहुरि हाटि विषै काहेको रहै? कहा इन्द्र हाटि सारिखी रचना करने को भी समर्थ नाहीं। जातैं हाटिका आश्रय लीजिए। बहुरि कहै-केवली उपदेश देने को गए। सो घरि जाय उपदेश देना अति रागतैं होय, सो मुनिकै भी संभवै नाहीं। केवलीकै कैसे बनै? ऐसे ही अनेक विपरीतता तहां प्ररूपै हैं। केवली शुद्ध केवलज्ञानदर्शनमय रागादि रहित भए हैं, तिनकै अघातिनिके उदयतैं संभवती क्रिया कोई हो है। केवलीकै मोहादिकका अभाव भया है तातैं उपयोग मिलै जो क्रिया होय सकै, सो संभवै नाहीं। पाप प्रकृति का अनुभाग अत्यन्त मंद भया है। ऐसा मंद अनुभाग अन्य कोईकै नाहीं। तातैं अन्यजीवनिकैं पापउदयतैं जो क्रिया होती देखिए है, सो केवलीकै न होय। ऐसे केवली भगवानकै सद्भाव कहि देव का स्वरूप को अन्यथा प्ररूपै है।

मुनि के वस्त्रादि उपकरणों का प्रतिषेध

बहुरि गुरु का स्वरूपको अन्यथा प्ररूपै है मुनि के वस्त्रादिक चौदह उपकरण[1] कहै है। सो हम पूछै हैं, मुनिको निर्ग्रन्थ कहै अर मुनिपद लेतैं नवप्रकार सर्वपरिग्रहका त्यागकरि महाव्रत अंगीकार करै, सो ए वस्त्रादिक परिग्रह है कि नाहीं। जो है तो त्याग किए पीछै काहेको राखै अर नाहीं हैं तो वस्त्रादिक गृहस्थ राखै ताको भी परिग्रह मति कहो। सुवर्णादिकहीको परिग्रह कहो। बहुरि जो कहोगे, जैसे क्षुधा के अर्थि आहार ग्रहण कीजिए है, तैसे शीत उष्णादिक के अर्थि वस्त्रादिक ग्रहण कीजिए हैं। सो मुनिपद अंगीकार करतैं आहार का त्याग किया नाहीं, परिग्रह का त्याग किया है। बहुरि अन्नादिकका तो संग्रह करना परिग्रह है, भोजन करने जाइये सो परिग्रह नाहीं। अर वस्त्रादिक का संग्रह करना वा पहरना सर्व ही परिग्रह है, सो लोकविषै प्रसिद्ध है। बहुरि कहोगे, शरीर की स्थिति के अर्थि वस्त्रादिक राखिए है-ममत्व नाहीं है, तातैं इनको परिग्रह न कहिए है। सो श्रद्धानविषै तो जब सम्यग्दृष्टि भया तब ही समस्त परद्रव्यविषै ममत्व का अभाव भया। तिस अपेक्षातैं चौथा गुणस्थान ही परिग्रह रहित कहो। अर प्रवृत्तिविषै ममत्व नाहीं तो कैसे ग्रहण करै है। तातैं वस्त्रादिक ग्रहण-धारण छूटेगा, तब ही निःपरिग्रह होगा। बहुरि कहोगे वस्त्रादिकको कोई लेय जाय तो क्रोध न करै वा क्षुधादिक लागै तो वे बेचै नाहीं वा वस्त्रादिक पहरि प्रमाद करै नाहीं,

---

१. पात्र १ पात्रबन्ध २ पात्र केसरिकर ३ पटलिकाएँ ४-५ रजस्त्राण ६ गोच्छक ७ रजोहरण ८ मुखवस्त्रिका ९ दो सूती कपड़े १०-११ एक ऊनी कपड़ा १२ मात्रक १३ चोलपट्ट १४, देखो बृहत्कल्प. सू. उ. ३ भा. गा. ३९६२ से ३९६५ तक।

परिणामनिकी थिरताकरि धर्म ही साधै हैं तातैं ममत्व नाहीं। सो बाह्य क्रोध मति करो परन्तु जाका ग्रहण विषै इष्ट बुद्धि होय तो ताका वियोगविषै अनिष्टबुद्धि होय ही होय। जो अनिष्टबुद्धि न भई तो ताके अर्थि यावना काहेको करिए है? बहुरि बेचते नाहीं, सो धातु राखनेतैं अपनी हीनता जानि नाहीं बेचिए है। जैसे धनादि राखने तैसे ही वस्त्रादि राखने। लोकविषै परिग्रह के चाहक जीवनिकै दोउनिकी इच्छा है। तातैं चौरादिक के भयादिकके कारण दोऊ समान हैं। बहुरि परिणामनि की थिरताकरि धर्मसाधनेही तैं परिग्रहपना न होय तो काहूको बहुत शीत लागेगा सो सौड़ि राखि परिणामनिकी थिरता करेगा अर धर्मसाधैगा तो वाको भी निःपरिग्रह कहौ। ऐसे गृहस्थधर्म मुनिधर्म विषय विशेष कहा रहेगा। **जाकै परिषह सहने की शक्ति न होय सो परिग्रह राखि धर्म साधै ताका नाम गृहस्थधर्म अर जाकै परिणाम निर्मल भए परीषहकरि व्याकुल न होय सो परिग्रह न राखै अर धर्म साधै ताका नाम मुनिधर्म**, इतना ही विशेष है। बहुरि कहोगे, **शीतादिकी परीषहकरि व्याकुल कैसे न होय।** सो व्याकुलता तो मोह के उदयके निमित्ततैं है, सो मुनिकै षष्ठादि गुणस्थाननिविषै तीन चौकड़ी का उदय नाहीं अर संज्वलन के सर्वघाती स्पर्द्धकनिका उदय नाहीं, देशघाती स्पर्द्धकनिका उदय है सो तिनका किछू बल नाहीं। जैसे वेदक सम्यग्दृष्टिकै सम्यक्मोहनीय का उदय है सो सम्यक्त्व को घात न करि सकै तैसे देशघाती संज्वलनका उदय परिणामनिको व्याकुल करि सकै नाहीं। अहो मुनिनिकै अर औरनिकै परिणामनिकी समानता है नाहीं। **और सबनिकै सर्वघाती का उदय है, इनिकै देशघाती का उदय है।** तातैं औरनिकै जैसे परिणाम होय तैसे उनके कदाचित् न होय। तातैं जिनकै सर्वघातीकषायनिका उदय होय ते गृहस्थ ही रहैं अर जिनकै देशघाती का उदय होय तैं मुनिधर्म अंगीकार करै। ताकै शीतादिककरि परिणाम व्याकुल न होय तातैं वस्त्रादिक राखै नाहीं।

विशेष : पूज्य जयधवलाजी में स्पष्ट लिखा है कि- **मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठित्ति ताव एदेसिं कम्माणमणुभागुदीरणा सव्वघादी देसघादी च होदि; संकिलेसविसोहिवसेण; संजदासंजदप्पहुडि उवरि सव्वथेव देसघादी होदि। तत्थ सव्वघादिउदीरणाए तग्गुणपरिणामेण विरोहादो त्ति** (ज.ध. ११/३६)।

अर्थ- मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक तो इन कर्मों की अनुभाग उदीरणा (अर्थात् वेदन) संक्लेश और विशुद्धि के वश से देशघाती और सर्वघाती दोनों प्रकार की होती है। फिर संयतासंयत गुणस्थान से लेकर आगे सर्वत्र देशघाती होती है। क्योंकि चार संज्वलन की सर्वघाती उदीरणा (वेदन) का संयमासंयम आदि गुणरूप परिणामों के साथ विरोध है।

जयधवल पु. १३ पृ. १५५, प्रस्तावना पृ. १६ तथा क.पा. सु. पृ. ६६७ आदि में भी लिखा है कि - **चदुसंजलण णवणोकसायाणं सव्वघादिफद्दयोदयक्खएण तेसिं चेव देसघादिफद्दयोदएण लद्धप्पसरूवत्तादो संजमासंजम लद्धि खओवसमिया त्ति।**

अर्थ- चार संज्वलन तथा ९ नोकषाय के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय का क्षय होने से और

उन्हीं के देशघाती स्पर्धकों का उदय होने से संयमासंयम लब्धि अपने स्वरूप को प्राप्त करती है, इसलिए यह संयमासंयमलब्धि क्षायोपशमिक है। **(जयधवला पुस्तक ११ की प्रस्तावना का पृष्ठ ३ भी देखें)**

कषायपाहुडसुत्त गाथा ६२ की टीका चूर्णिसूत्र में भी लिखा है कि **चदुसंजलणणवणोकसायाणमणुभागुदीरणा एइंदीए वि देसघादी होई।**

अर्थ- चार संज्वलन, ९ नोकषाय की अनुभाग उदीरणा एकेन्द्रिय जीव में भी देशघाती होती है। **पृष्ठ ५०२।** इसकी जयधवला में स्पष्ट लिखा है कि "ऐसा नहीं है कि संयतों के ही संज्वलन की देशघाती उदीरणा हो, नीचे भी होती है।"

रा.वा.२/५/८/१०८, धवला ७/९४, धवला ५/२० इन ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है कि संज्वलन के देशघाती उदय होने पर ही पंचम गुणस्थान होता है। सार यह निकला कि पंचमगुणस्थान में नियम से संज्वलन का देशघाती ही उदय है तथा पहले से चौथे में अनियम से देशघाती का उदय है, यह आगम है।

बहुरि कहोगे- जैन शास्त्रनिविषै चौदह उपकरण मुनि राखै, ऐसा कह्या है। सो तुम्हारे ही शास्त्रनिविषै कह्या है, दिगम्बरजैन शास्त्रनिविषै तो कहै नाहीं। तहाँ तो लंगोटमात्र परिग्रह रहे भी ग्यारही प्रतिमा का धारक को श्रावक ही कह्या। सो अब यहाँ विचारो, दोऊनि में कल्पित वचन कौन है? प्रथम तो कल्पित रचना कषायी होय सो करै। बहुरि कषायी होय सोही नीचापदविषै उच्चपनो प्रगट करै। सो यहाँ दिगम्बरविषै वस्त्रादि राखे धर्म होय ही नाहीं, ऐसा तो न कह्या। परन्तु तहाँ श्रावकधर्म कह्या। श्वेताम्बर विषै मुनिधर्म कह्या। सो यहाँ जाने नीची क्रिया होतैं उच्चत्व पद प्रगट किया सो ही कषायी है । इस कल्पित कहनेकरि आपको वस्त्रादि राखतैं भी लोक मुनि मानने लागै, तातैं मानकषाय पोष्या गया। अर औरनिको सुगमक्रियाविषै उच्चपद का होना दिखाया, तातैं घने लोक लगि गए। जे कल्पित मत भए हैं, ते ऐसे ही भए हैं। तातैं कषायी होई वस्त्रादि होतैं मुनिपना कह्या है, सो पूर्वोक्त युक्तिकरि विरुद्ध भासै है तातैं ए कल्पितवचन हैं, ऐसा जानना।

बहुरि कहोगे - दिगम्बरविषै भी शास्त्र, पीछी आदि उपकरण मुनिके कहे हैं तैसे हमारे चौदह उपकरण कहे हैं।

ताका समाधान - जाकरि उपकार होय ताका नाम उपकरण है। सो यहाँ शीतादिककी वेदना दूरि करनेतैं उपकरण ठहराईए, तो सर्वपरिग्रह सामग्री उपकरण नाम पावै। सो धर्मविषै इनिका कहा प्रयोजन? ए तो पापके कारण हैं। धर्मविषै तो धर्मका उपकारी जे होय तिनका नाम उपकरण है। सो शास्त्र ज्ञानको कारण, पीछी दयाको कारण, कमंडलु शौचको कारण, सो ए तो धर्मके उपकारी भए, वस्त्रादिक कैसे धर्मके उपकारी होय? वे तो शरीर का सुखहीके अर्थि धारिए है। बहुरि सुनो जो शास्त्र राखि महंतता दिखावै,

पीछीकरि बुहारी दे, कमंडलुकरि जलादिक पीवै वा मैल उतारै, तो शास्त्रादिक भी परिग्रह ही हैं। सो मुनि ऐसे कार्य करै नाहीं। तातैं धर्मके साधनको परिग्रह संज्ञा नाहीं। भोगके साधनको परिग्रह संज्ञा हो है, ऐसा जानना। बहुरि कहोगे कमंडलुतैं तो शरीरहीका मल दूरि करिए है, सो मुनि मल दूरि करने की इच्छाकरि कमंडलु नाहीं राखै हैं। शास्त्र बांचना आदि कार्य करै अर मललिप्त होय तो तिनका अविनय होय, लोकनिंद्य होय, तातैं इस धर्मके अर्थि कमंडलु राखिए है। ऐसे पीछी आदि उपकरण सम्भवैं, वस्त्रादिकी उपकरण संज्ञा सम्भवै नाहीं। काम अरति आदि मोहका उदयतैं विकार बाह्य प्रगट होय अर शीतादिक सहे न जांय तातैं विकार ढाँकनेको वा शीतादि मिटावनेको वस्त्रादिक राखै अर मानके उदयतैं अपनी महंतता भी चाहै तातैं कल्पित युक्तिकरि उपकरण ठहराए हैं। बहुरि घरि-घरि याचनाकरि आहार ल्यावना ठहरावै है। सो प्रथम तो यह पूछिए है, याचना धर्म का अंग है कि पापका अंग है। जो धर्मका अंग है तो मांगने वाले सर्व धर्मात्मा भए। अर पापका अंग है तो मुनिकै कैसे सम्भवै?

बहुरि जो तू कहेगा, लोभकरि किछू धनादिक याचै तो पाप होय, यहु तो धर्म-साधनके अर्थि शरीर की स्थिरता किया चाहै है तातैं आहारादिक याचै है।

ताका समाधान- आहारादिककरि धर्म होता नाहीं, शरीर का सुख हो है। सो शरीरका सुख के अर्थि अति लोभ भए याचना करिए है। जो अति लोभ न होता, तो आप काहेको मांगता। वे ही देते तो देते, न देते तो न देते। बहुरि अतिलोभ भए इहाँ ही पाप भया, तब मुनि धर्म नष्ट भया, और धर्म कहा साधेगा। **अब वह कहै है**-मनविषै तो आहारकी इच्छा होय अर याचै नाहीं तो मायाकषाय भया अर याचने में हीनता आवै है सो गर्वकरि याचै नाहीं तब मानकषाय भया। आहार लेना था सो मांगि लिया। यामैं अति लोभ कहा भया अर यातैं मुनिधर्म कैसे नष्ट भया सो कहो। **याको कहिए हैं-**

जैसे काहू व्यापारीके कुमावने की इच्छा मन्द है सो हाटि (दुकान) ऊपरि तो बैठै अर मनविषै व्यापार करने की इच्छा भी है परन्तु काहूको वस्तु लेनेदेनेरूप व्यापारके अर्थि प्रार्थना नाहीं करै है। स्वयमेव कोई आवै तो अपनी विधि मिले व्यापार करै है तो ताकै लोभ की मंदता है, माया वा मान नाहीं है। माया मानकषाय तो तब होय, जब छलकरने के अर्थि वा अपनी महंतताके अर्थि ऐसा स्वांग करै। सो भले व्यापारीकै ऐसा प्रयोजन नाहीं तातैं वाकै माया मान न कहिए। तैसे मुनिनकै आहारादिककी इच्छा मन्द है सो आहार लेनेको आवै अर मनविषै आहार लेने की इच्छा भी है परन्तु आहारके अर्थि प्रार्थना नाहीं करै है। स्वयमेव कोई दे तो अपनी विधि मिले आहार ले हैं तो उनकै लोभकी मंदता है, माया वा मान नाहीं है। माया मान तो तब होय जब छल करने के अर्थि वा महंतता के अर्थि ऐसा स्वांग करै। सो मुनिनकै ऐसा प्रयोजन है नाहीं तातैं इनिकै माया मान नाहीं है। जो ऐसे ही माया मान होय तो जे मनहीकरि पाप करै, वचनकायकरि न करै, तिन सबनिकै माया ठहरै। अर जे उच्चपदवीके धारक नीचवृत्ति अंगीकार नाहीं करै हैं, तिन सबनिकै मान ठहरै। ऐसे अनर्थ होय!

बहुरि तैं कहा- "आहार मांगने में अतिलोभ कहा भया? सो अतिकषाय होय तब लोकनिंद्य कार्य अंगीकारकरिकै भी मनोरथ पूर्ण किया चाहै। सो मांगना लोकनिंद्य है, ताको भी अंगीकारकरि आहारकी

इच्छा पूर्ण करने की चाहि भई। तातैं यहाँ अति लोभ भया। बहुरि तैं कह्या- "मुनिधर्म कैसे नष्ट भया" सो मुनिधर्म विषै ऐसी तीव्र कषाय सम्भवै नाहीं। बहुरि काहूका आहार देने का परिणाम न था, यानै वाका घर में जाय याचना करी। तहाँ वाकै सकुचना भया वा न दिए लोकनिंद्य होने का भय भया तातैं वाको आहार दिया। सो वाका अन्तरंग प्राण पीड़नेतैं हिंसाका सद्भाव आया। जो आप वाका घर में न जाते, उसी कै देने का उपाय होता तो देता, वाकै हर्ष होता। यहु तो दबाय करि कार्य करावना भया। बहुरि अपना कार्यके अर्थि याचनारूप वचन है सो पापरूप है। सो यहाँ असत्य वचन भी भया। बहुरि वाकै देने की इच्छा न थी, यानै याच्या, तब वानै अपनी इच्छातैं दिया नाहीं- सकुचिकरि दिया। तातैं अदत्त-ग्रहण भी भया। बहुरि गृहस्थ के घर में स्त्री जैसे तैसे तिष्ठै थी, यहु चल्या गया। तहाँ ब्रह्मचर्यकी बाड़िका भंग भया। बहुरि आहार ल्याय केतेक काल राख्या। आहारादि के राखनेको पात्रादिक राखे सो परिग्रह भया। ऐसे पाँच महाव्रतनिका भंग होनेतैं मुनिधर्म नष्ट हो है तातैं याचनाकरि आहार लेना मुनिको युक्त नाहीं।

बहुरि वह कहै है- मुनिकै बाईस परीषहनिविषै याचना परीषह कही है, सो मांगे बिना तिस परीषहका सहना कैसे होय?

ताका समाधान- याचना करने का नाम याचना परिषह नाहीं है। याचना न करनी, ताका नाम याचनापरीषह है। जातैं अरति करने का नाम अरति परीषह नाहीं, अरति न करनेका नाम अरति परीषह है, तैसे जानना। जो याचना करना परीषह ठहरै, तो रंकादि घनी याचना करै है, तिनकै घना धर्म होय। अर कहोगे, मान घटावनेतैं याको परीषह कहै है तो कोई कषायी कार्य के अर्थि कोई कषाय छोरे भी पापी ही होय। जैसे कोई लोभके अर्थि अपना अपमानको भी न गिनै, तो वाकै लोभ की तीव्रता है। उस अपमान करावनेतैं भी महापाप होय है। अर आपकै इच्छा किछू नाहीं कोई स्वयमेव अपमान करै है तो वाकै महाधर्म है। सो यहाँ तो भोजनका लोभके अर्थि याचना करि अपमान कराया तातैं पाप ही है, धर्म नाहीं। बहुरि वस्त्रादिक के भी अर्थि याचना करै है सो वस्त्रादिक कोई धर्मका अंग नाहीं है, शरीर सुखका कारण हैं। तातैं पूर्वोक्त प्रकार ताका निषेध जानना। देखो अपना धर्मरूप उच्चपद को याचना करि नीचा करै है सो यामें धर्म की हीनता हो है। इत्यादि अनेक प्रकार करि मुनिधर्म विषै याचना आदि नाहीं सम्भवै है। सो ऐसी असम्भवती क्रिया के धारक साधु गुरु कहै हैं। तातैं गुरु का स्वरूप अन्यथा कहै हैं।

धर्म का अन्यथा स्वरूप

बहुरि धर्मका स्वरूप अन्यथा कहै है। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इनकी एकता मोक्षमार्ग है, सो ही धर्म है, सो इनिका स्वरूप अन्यथा प्ररूपै हैं। सो ही कहिए है-

तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है, ताकी तो प्रधानता नाहीं। आप जैसे अरहंत देव साधु गुरु दया धर्मको निरूपै है, तिनका श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहै है। सो प्रथम तो अरहंतादिकका स्वरूप अन्यथा कहै। बहुरि इतने ही श्रद्धानतैं तत्त्व श्रद्धान भए बिना सम्यक्त्व कैसे होय तातैं मिथ्या कहै हैं। बहुरि तत्त्वनिका भी श्रद्धानको सम्यक्त्व कहै है तो प्रयोजन लिए तत्त्वनिका श्रद्धान नाहीं कहै है। गुणस्थान मार्गणादिरूप जीव

का, अणुस्कंधादिरूप अजीवका, पाप-पुण्यके स्थानिका, अविरति आदि आस्रवनिका, व्रतादिरूप संवरका, तपश्चरणादिरूप निर्जराका, सिद्ध होने के लिंगादिके भेदनिकरि मोक्षका स्वरूप जैसे उनके शास्त्र विषै कह्या है, तैसे सीखि लीजिए अर केवलीका वचन प्रमाण है, ऐसे तत्त्वार्थश्रद्धानकरि सम्यक्त्व भया मानै है। सो हम पूछै हैं, ग्रैवेयक जानेवाला द्रव्यलिंगी मुनिकै ऐसा श्रद्धान हो है कि नाहीं। जो हो है, तो वाको मिथ्यादृष्टि काहेको कहिए। अर न हो है, तो वानै तो जैनलिंग धर्मबुद्धि करि धर्या है, ताकै देवादिकी प्रतीति कैसे नाहीं भई? अर वाकै बहुत शास्त्राभ्यास है, सो वानै जीवादिके भेद कैसे न जाने। अर अन्यमतका लवलेश भी अभिप्रायमें नाहीं, ताकै अरहंत वचन की कैसे प्रतीति नाहीं भई। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान तो होय परन्तु सम्यक्त्व न भया। बहुरि नारकी भोगभूमियाँ तिर्यंच आदिकै ऐसा श्रद्धान होनेका निमित्त नाहीं अर तिनिकै बहुत कालपर्यंत सम्यक्त्व रहै है। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान नाहीं हो है, तो भी सम्यक्त्व भया। तातैं सम्यक्श्रद्धानका स्वरूप यहु नाहीं। साँचा स्वरूप है, **सो आगे वर्णन करेंगे,** सो जानना।

बहुरि जो उनके शास्त्रनिका अभ्यास करना ताको सम्यग्ज्ञान कहै है। सो द्रव्यलिंगी मुनिकै शास्त्राभ्यास होतैं भी मिथ्याज्ञान कह्या, असंयत सम्यग्दृष्टिकै विषयादिरूप जानना ताको सम्यग्ज्ञान कह्या। तातैं यहु स्वरूप नाहीं, सांचा स्वरूप **आगे कहेंगे** सो जानना। बहुरि उनकरि निरूपित अणुव्रत महाव्रतादिरूप श्रावक यतीका धर्म धारने करि सम्यक्चारित्र भया मानै। सो प्रथम तो व्रतादिका स्वरूप अन्यथा कहै, सो किछू पूर्वै गुरु वर्णन विषै कह्या है। बहुरि द्रव्यलिंगी कै महाव्रत होतैं भी सम्यक्चारित्र न हो है। अर उनका मत के अनुसारि गृहस्थादिकके महाव्रत आदि बिना अंगीकार किए भी सम्यक्चारित्र हो है, तातैं यह स्वरूप नाहीं। सांचा स्वरूप अन्य है, सो **आगे कहेंगे।**

यहाँ वे कहै हैं- द्रव्यलिंगी कै अन्तरंग विषै पूर्वोक्त श्रद्धानादिक न भए, बाह्य ही भए, तातैं सम्यक्त्वादि न भए।

ताका उत्तर- जो अंतरंग नाहीं अर बाह्य धारै, सो तो कपटकरि धारै। सो वाकै कपट होय तो ग्रैवेयक कैसे जाय, नरकादि विषै जाय। **बंध तो अंतरंग परिणामनितैं हो है। सो अंतरंग जिनधर्मरूप परिणाम भए बिना ग्रैवेयक जाना सम्भवै नाहीं।** बहुरि व्रतादिरूप शुभोपयोगहीतैं देव का बंध मानै अर याहीको मोक्षमार्ग मानै, सो बन्धमार्ग मोक्षमार्गको एक किया, सो यहु मिथ्या है। बहुरि व्यवहार धर्म विषै अनेक विपरीति निरूपै हैं। निंदकको मारने में पाप नाहीं, ऐसा कहै है। सो अन्यमती निंदक तीर्थंकरादिकके होतैं भी भए, तिनको इन्द्रादिक मारे नाहीं। सो पाप न होता, तो इन्द्रादिक क्यों न मारे। बहुरि प्रतिमाजीकै आभरणादि बनावै है, सो प्रतिबिम्ब तो वीतराग भाव बधावने को कारण स्थापन किया था। आभरणादि बनाए, अन्यमत की मूर्तिवत् यहु भी भए। इत्यादि कहाँ तौंई कहिए, अनेक अन्यथा निरूपण करै हैं। या प्रकार श्वेताम्बर मत कल्पित जानना। यहाँ सम्यग्दर्शन आदिका अन्यथा निरूपणतैं मिथ्यादर्शनादिकहीकी पुष्टता हो है तातैं याका श्रद्धानादि न करना।

ढूंढक मत निराकरण

बहुरि इन श्वेताम्बरनिविषै ही ढूंढिए प्रगट भए हैं, ते आपको सांचे धर्मात्मा मानै हैं, सो भ्रम है। काहैतैं सो कहिए है-

केई तो भेष धारि साधु कहावै है, सो उनके ग्रन्थनिके अनुसार भी व्रत समिति गुप्ति आदि का साधन नाहीं भासै हैं। बहुरि देखो मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि सर्व सावद्ययोग त्याग करने की प्रतिज्ञा करै, पीछे पाले नाहीं। बालकको वा भोलाको वा शूद्रादिकको ही दीक्षा दे। सो ऐसे त्याग करै अर त्याग करतैं ही किछू विचार न करै, जो कहा त्याग करूँ हूँ। पीछे पालै भी नाहीं अर ताको सर्व साधु मानै। बहुरि यह कहै -- पीछे धर्मबुद्धि हो जाय, तब तो याका भला हो है। सो पहले ही दीक्षा देने वाले ने प्रतिज्ञा भंग होती जानि प्रतिज्ञा कराई, बहुरि यानै प्रतिज्ञा अंगीकार करि भंग करी, सो यहु पाप कौनको लाग्या। पीछे धर्मात्मा होने का निश्चय कहा। बहुरि जो साधुका धर्म अंगीकार करि यथार्थ न पालै, ताको साधु मानिए कै न मानिए। जो मानिए तो जे साधु मुनि नाम धरावै हैं अर भ्रष्ट हैं, तिन सबनिको साधु मानो। न मानिए, तो इनकै साधुपना न रह्या। तुम जैसे आचरणतैं साधु मानो हो, ताका भी पालना कोऊ बिरलाकै पाइए है। सबनिको साधु काहेको मानो हो।

यहाँ कोऊ कहै-हम तो जाकै यथार्थ आचरण देखेंगे, ताको साधु मानेंगे, औरनिको न मानेंगे। **ताको पूछिए है-**

एक संघ विषै बहुत भेषी हैं। तहाँ जाकै यथार्थ आचरण मानो हो सो वह औरनिको साधु मानै है कि न मानै है। जो मानै है, तो तुमतैं भी अश्रद्धानी भया, ताको पूज्य कैसे मानो हो। अर न मानै है, तो उन सेती साधुका व्यवहार काहेको वर्त्तै है। बहुरि आप तो उनको साधु न मानै अर अपने संघविषै राखि औरनि पासि साधु मनाय औरनिको अश्रद्धानी करैं, ऐसा कपट काहेको करै। बहुरि तुम जाको साधु न मानोगे तब अन्य जीवनिको भी ऐसा ही उपदेश करोगे, इनको साधु मति मानो, ऐसे धर्म्मपद्धति विषै विरुद्ध होय। अर जाको तुम साधु मानो हो तिसतैं भी तुम्हारा विरुद्ध भया, जातैं वह वाको साधु मानै है। बहुरि तुम जाकै यथार्थ आचरण मानो हो, सो विचारकरि देखो, वह भी यथार्थ मुनि धर्म्म नाहीं पालै है।

कोऊ कहै-अन्य भेषधारीनितैं तो घने अच्छे हैं तातैं हम मानै हैं। सो अन्यमतीनि विषै तो नाना प्रकार भेष सम्भवै, जातैं तहाँ रागभावका निषेध नाहीं। इन जैनमतविषै तो जैसा कह्या, तैसा ही भए साधु संज्ञा होय।

यहाँ कोऊ कहै-शील संयमादि पालै है, तपश्चरणादि करै हैं, सो जेता करै तितना ही भला है।

ताका समाधान- यहु सत्य है, धर्म थोरा भी पाल्या हुआ भला ही है। परन्तु प्रतिज्ञा तो बड़े धर्मकी करिए अर पालिए थोरा, तो तहाँ प्रतिज्ञाभंगतैं महापाप हो है। जैसे कोऊ उपवासकी प्रतिज्ञाकरि एकबार भोजन करै तो वाकै बहुत बार भोजनका संयम होतैं भी प्रतिज्ञाभंगतैं पापी कहिए। तैसे मुनिधर्मकी प्रतिज्ञाकरि कोई किंचित् धर्म्म न पालै, तो वाको शीलसंयमादि होतैं भी पापी ही कहिए। अर जैसे एकंतकी

(एकासनकी) प्रतिज्ञाकरि एक बार भोजन करै, तो धर्मात्मा ही है तैसे अपना श्रावकपद धारि थोरा भी धर्मसाधन करै तो धर्मात्मा ही है। यहाँ तो ऊँचा नाम धराय नीची क्रिया करनेतैं पापीपना सम्भवै हैं। यथायोग्य नाम धराय धर्मक्रिया करते तो पापीपना होता नाहीं। जेता धर्म्म साधै, तितना ही भला है।

यहाँ कोऊ कहै- पंचमकाल का अन्तपर्यन्त चतुर्विध संघका सद्भाव कह्या है। इनको साधु न मानिए, तो किसको मानिए?

ताका उत्तर- जैसे इस कालविषै हंसका सद्भाव कह्या है अर गम्यक्षेत्रविषै हंस नाहीं दीसै है, तो औरनिको तो हंस माने जाते नाहीं, हंसका लक्षण मिले ही हंस माने जांय। तैसे इस कालविषै साधुका सद्भाव है अर गम्यक्षेत्रविषै साधु न दीसै है, तो औरनिको तो साधु माने जाते नाहीं, साधु लक्षण मिले ही साधु माने जांय। बहुरि इनका भी प्रचार थोरे ही क्षेत्रविषै दीसै है, तहाँतैं परे क्षेत्रविषै साधुका सद्भाव कैसे मानैं? जो लक्षण मिले मानै, तो यहाँ भी ऐसे ही मानो। अर बिना लक्षण मिले ही मानै तो तहाँ अन्य कुलिंगी हैं तिनहीको साधु मानो। ऐसे विपरीति होय, तातैं बनै नाहीं। कोऊ कहै-इस पंचमकालमें ऐसे भी साधुपद हो हैं; तो ऐसा सिद्धांतका वचन बताओ। बिना ही सिद्धान्त तुम मानो हो, तो पापी होगा। ऐसे अनेक युक्तिकरि इनिकै साधुपना बनै नाहीं। अर साधुपना बिना साधु मानि गुरु मानै मिथ्यादर्शन हो है, जातैं भले साधुको गुरु मानै ही सम्यग्दर्शन हो है।

प्रतिमाधारी श्रावक न होनेकी मान्यता का निषेध

बहुरि श्रावक धर्मकी अन्यथा प्रवृत्ति करावै है। त्रसकी हिंसा स्थूल मृषादिक होतैं भी जाका किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा किंचित् त्याग कराय वाको देशव्रती भया कहै। सो वह त्रसघातादिक जामें होय ऐसा कार्य करै। सो देशव्रत गुणस्थानविषै तो ग्यारह अविरति कहे हैं, तहाँ त्रसघात कैसे सम्भवै? बहुरि ग्यारह प्रतिमा भेद श्रावक के हैं तिन विषै दशमी ग्यारमी प्रतिमाधारक श्रावक तो कोई होता ही नाहीं अर साधु होय। पूछे, तब कहै- पडिमाधारी श्रावक अबार होय सकता नहीं। सो देखो, श्रावकधर्म्म तो कठिन अर मुनिधर्म्म सुगम-ऐसा विरुद्ध भासै है। बहुरि ग्यारमी प्रतिमा धारककै थोरा परिग्रह, मुनिकै बहुतपरिग्रह बतावै, सो सम्भवता वचन नाहीं। बहुरि कहै, ए प्रतिमा तो थोरे ही काल पालि छोड़ि दीजिए है। सो ए कार्य उत्तम है तो धर्म्म बुद्धि ऊँची क्रियाको काहेको छोरै अर नीचे कार्य हैं तो काहेको अंगीकार करै। यहु सम्भवै ही नाहीं।

बहुरि कुदेव कुगुरुको नमस्कारादिक करते भी श्रावकपना बतावै। कहै, धर्म्मबुद्धिकरि तो नाहीं बंदै हैं, लौकिक व्यवहार है। सो सिद्धांतविषै तो तिनिकी प्रशंसा-स्तवनको भी सम्यक्त्वका अतिचार कहै अर गृहस्थनिका भला मनावनेके अर्थि बंदना करतैं भी किछू न कहै। बहुरि कहोगे-भय लज्जा कुतूहलादिककरि बंदै हैं; तो इनिही कारणनिकरि कुशीलादि सेवन करतैं भी पाप मत कहो, अंतरंग विषै पाप जान्या चाहिए। ऐसे सर्व आचरनविषैविरुद्ध होगा। देखो मिथ्यात्वसारिखे महापाप की प्रवृत्ति छुड़ावनेकी तो मुख्यता नाहीं अर पवनकायकी हिंसा ठहराय उघारे मुख बोलना छुड़ावनेकी मुख्यता पाईए। सो क्रमभंग उपदेश है। बहुरि

धर्म्मके अंग अनेक हैं, तिनविषै एक परजीवकी दया ताको मुख्य कहै हैं ताका भी विवेक नाहीं। जलका छानना, अन्नका सोधना, सदोष वस्तुका भक्षण न करना, हिंसादिकरूप व्यापार करना इत्यादि याके अंगनिकी तो मुख्यता नाहीं।

मुँहपत्ति का निषेध

बहुरि पाटीका बाँधना, शौचादिक थोरा करना, इत्यादि कार्यनि की मुख्यता करै है। सो मैलयुक्त पाटी कै थूकका संबंधतैं जीव उपजै तिनका तो यत्न नाहीं अर पवनकी हिंसाका यत्न बतावै। सो नासिकाकरि बहुत पवन निकसै, ताका तो यत्न करते ही नाहीं। बहुरि जो उनका शास्त्रके अनुसारि बोलनेहीका यत्न किया, तो सर्वदा काहेको राखिए। बोलिए, तब यत्न कर लीजिए। बहुरि जो कहै-भूलि जाइए। तो इतनी भी याद न रहै, तो अन्य धर्मसाधन कैसे होगा; बहुरि शौचादिक थोरे करिए, तो सम्भवता शौच तो मुनि भी करै हैं। तातैं गृहस्थको अपने योग्य शौच करना। स्त्रीसंगमादिकरि शौच किए बिना सामायिकादि क्रिया करनेतैं अविनय विक्षिप्तताआदि करि पाप उपजै। ऐसे जिनकी मुख्यता करै, तिनका भी ठिकाना नाहीं अर केई दया के अंग योग्य पालै है, हरितकायका त्याग आदि करै, जल थोरा नाखै, तो इनका हम निषेध करते नाहीं।

मूर्तिपूजा निषेध का निराकरण

बहुरि इस अहिंसा का एकांत पकड़ि प्रतिमा चैत्यालयपूजनादि क्रियाका उत्थापन करै है। सो उनही के शास्त्रनिविषै प्रतिमाआदिका निरूपण है, ताको आग्रहकरि लोपै है। **भगवतीसूत्रविषै** ऋद्धिधारी मुनिका निरूपण है तहाँ मेरुगिरि आदिविषै जाय **"तत्थ चेययाइं वंदई"** ऐसा पाठ है। याका अर्थ यहु- तहाँ चैत्यनिको बंदै हैं। सो चैत्य नाम प्रतिमा का प्रसिद्ध है। बहुरि वे हठकरि कहै-चैत्य शब्दके ज्ञानादिक अनेक अर्थ निपजै हैं, सो अन्य अर्थ है, प्रतिमाका अर्थ नाहीं। याको पूछिए है- मेरुगिरि नन्दीश्वरद्वीपविषै जाय-जाय तहाँ चैत्यवंदनाकरी, सो वहाँ ज्ञानादिककी वंदना करने का अर्थ कैसे सम्भवै? ज्ञानादिक की वंदना तो सर्वत्र सम्भवै। जो वंदने योग्य चैत्य वहाँ सम्भवै अर सर्वत्र न सम्भवै, ताको तहाँ वंदना करने का विशेष सम्भवै, सो ऐसा सम्भवता अर्थ प्रतिमा ही है अर चैत्यशब्दका मुख्य अर्थ प्रतिमा ही है, सो प्रसिद्ध है। इस ही अर्थकरि चैत्यालय नाम सम्भवै है। याको हठकरि काहेको लोपिए।

बहुरि नन्दीश्वर द्वीपादिकविषै जाय, देवादिक पूजनादि क्रिया करै हैं, ताका व्याख्यान उनकै जहाँ-तहाँ पाइए है। बहुरि लोकविषै जहाँ तहाँ अकृत्रिम प्रतिमाका निरूपण है। सो या रचना अनादि है सो यहु रचना भोग कुतूहलादिकके अर्थि तो है नाहीं। अर इन्द्रादिकके स्थाननिविषै निःप्रयोजन रचना सम्भवै नाहीं। सो इन्द्रादिक तिनको देखि कहा करै है। कै तो अपने मन्दिरनिविषै निःप्रयोजन रचना देखि उसतैं उदासीन होते होंगे, तहाँ दुःखी होते होंगे, सो सम्भवै नाहीं। कै आछी रचना देखि विषय पोषते होंगे, सो अरहंत मूर्तिकरि सम्यग्दृष्टी अपना विषय पोषै, यहु भी सम्भवै नाहीं। तातैं तहाँ तिनकी भक्तिआदिक ही करै है यहु ही सम्भवै है। सो उनके सूर्याभदेवका व्याख्यान है। तहाँ प्रतिमाजी के पूजनेका विशेष वर्णन किया

है याको गोपने के अर्थि कहै हैं, देवनिका ऐसा ही कर्त्तव्य है। सो सांच, परन्तु कर्त्तव्यका तो फल होय ही होय। सो तहाँ धर्म हो है कि पाप हो है। जो धर्म हो है, तो अन्यत्र पाप होता था, यहाँ धर्म भया। याको औरनिके सदृश कैसे कहिए? यहु तो योग्य कार्य भया। अर पाप हो है तो तहाँ 'णमोत्थुणं' का पाठ पढ़्या, सो पापके ठिकाने ऐसा पाठ काहेको पढ़्या। बहुरि एक विचार यहाँ यहु आया, जो 'णमोत्थुणं' के पाठ विषै तो अरहंतकी भक्ति है। सो प्रतिमाजी के आगै जाय यहु पाठ पढ़्या, तातैं प्रतिमाजी के आगै जो अरहंतभक्तिकी क्रिया है सो करनी युक्त भई।

बहुरि जो वे ऐसा कहैं- देवनिकै ऐसा कार्य है, मनुष्यनिकै नाहीं; जातैं मनुष्यनिकै प्रतिमा आदि बनावने विषै हिंसा हो है। तो उनहीके शास्त्रनिविषै ऐसा कथन है, द्रौपदी राणी प्रतिमाजी का पूजनादिक जैसे सूर्याभदेव किया, तैसे करती भई। तातैं मनुष्यनिकै भी ऐसा कार्य कर्त्तव्य है। यहाँ एक यहु विचार आया-चैत्यालय प्रतिमा बनावने की प्रवृत्ति न थी, तो द्रौपदी कैसे प्रतिमाका पूजन किया। बहुरि प्रवृत्ति थी. तो बनावने वाले धर्मात्मा थे कि पापी थे। जो धर्मात्मा थे तो गृहस्थनिको ऐसा कार्य करना योग्य भया अर पापी थे तो तहाँ भोगादिकका प्रयोजन तो था नाहीं, काहेको बनाया। बहुरि द्रौपदी तहाँ 'णमोत्थुणं' का पाठ किया वा पूजनादि किया, सो कुतूहल किया कि धर्म किया। जो कुतूहल किया तो महापापिणी भई। धर्मविषै कुतूहल कहा। अर धर्म किया तो औरनिको भी प्रतिमाजी की स्तुति-पूजा करनी युक्त है।

बहुरि वे ऐसी मिथ्यायुक्ति बनावै हैं- जैसे इन्द्र की स्थापनातैं इन्द्रका कार्य सिद्ध नाहीं, तैसे अरहंत प्रतिमा करि कार्य-सिद्धि नाहीं। सो अरहंत आप काहूको भक्त मानि भला करते होय तौ ऐसे भी मानै। सो तो वे वीतराग हैं। यहु जीव भक्तिरूप अपने भावनितैं शुभफल पावै है। जैसे स्त्री का आकाररूप काष्ठ पाषाणकी मूर्ति देखि, तहाँ विकाररूप होय अनुराग करै तो ताकै पाप बंध होय। तैसे अरहंत का आकाररूप धातु पाषाणादिक की मूर्ति को देखि धर्मबुद्धितैं तहाँ अनुराग करै, तो शुभकी प्राप्ति कैसे न होइ। तहाँ वे कहै हैं, बिना प्रतिमा ही हम अरहंत विषै अनुराग करि शुभ उपजावेंगे। तो इनको कहिए है- आकार देखे जैसा भाव होय, तैसा परोक्ष स्मरण किए भाव होय नाहीं। याहीतैं लोकविषै भी स्त्रीका अनुरागी स्त्रीका चित्र बनावै है। तातैं प्रतिमाका आलंबनकरि भक्ति विशेष होने तैं विशेष शुभकी प्राप्ति हो है।

बहुरि कोऊ कहै-प्रतिमाको देखो, परन्तु पूजनादिक करने का कहा प्रयोजन है?

ताका उत्तर-जैसे कोऊ किसी जीव का आकार बनाय घात करै तो वाकै उस जीव की हिंसा किए का सा पाप निपजै वा कोऊ काहूका आकार बनाय द्वेषबुद्धितैं वाकी बुरी अवस्था करै तो जाका आकार बनाया वाकी बुरी अवस्था किए का सा फल निपजै। तैसे अरहंतका आकार बनाय रागबुद्धितैं पूजनादि करै तो अरहंतके पूजनादि किए का सा शुभ (भाव) निपजै वा तैसा ही फल होय। अति अनुराग भए प्रत्यक्ष दर्शन न होतैं आकार बनाय पूजनादि करिए हैं। इस धर्मानुरागतैं महापुण्य उपजै है।

बहुरि ऐसी कुतर्क करै है- जो जाकै जिस वस्तुका त्याग होय ताकै आगे तिस वस्तु का धरना हास्य करना है। तातैं वंदनादिकरि अरहंतका पूजन युक्त नाहीं।

ताका समाधान- मुनिपद लेते ही सर्व परिग्रहका त्याग किया था, केवलज्ञान भए पीछे तीर्थंकरदेवकै समवसरणादि बनाए, छत्र-चामरादि किए, सो हास्य करी कि भक्ति करी। हास्य करी तो इन्द्र महापापी भया, सो बनै नाहीं। भक्ति करी तो पूजनादिकविषै भी भक्ति ही करिए है। छद्मस्थके आगे त्याग करी वस्तुका धरना हास्य करना है, जातैं वाकै विक्षिप्तता होय आवै है। केवलीकै वा प्रतिमाके आगै अनुरागकरि उत्तम वस्तु धरने का दोष नाहीं। उनके विक्षिप्तता होय नाहीं। धर्मानुरागतैं जीवका भला होय।

बहुरि वे कहै हैं-प्रतिमा बनावने विषै चैत्यालयादि करावने विषै, पूजनादि करावने विषै हिंसा होय अर धर्म अहिंसा है। तातैं हिंसाकरि धर्म माननेतैं महापाप हो है, तातैं हम इन कार्यनिको निषेधै हैं।

ताका उत्तर-उनही के शास्त्रविषै ऐसा वचन हैं-

सुच्चा जाणइ कल्लाणं सुच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणए सुच्चा जं सेयं तं समायर।।१।।

यहाँ कल्याण, पाप, उभय ए तीन शास्त्र सुनिकरि जाणै, ऐसा कह्या। सो उभय तो पाप अर कल्याण मिले होय सो ऐसा कार्यका भी होना ठहर्‍या। तहाँ पूछिए है- केवल धर्म्मतैं तो उभय घाटि है ही अर केवल पापतैं उभय बुरा है कि भला है। जो बुरा है तो यामें तो किछू कल्याणका अंश मिल्या, पापतैं बुरा कैसे कहिए। भला है तो केवल पाप छोड़ ऐसा कार्य करना ठहर्‍या। बहुरि युक्तिकरि भी ऐसे ही सम्भवै है। कोऊ त्यागी होय, मन्दिरादिक नाहीं करावै है वा सामायिकादिक निरवद्य कार्यनिविषै प्रवर्तै है। ताको तो छोरि प्रतिमादि करावना वा पूजनादि करना उचित नाहीं। परन्तु कोई अपने रहनेके वास्ते मन्दिर बनावै, तिसतैं तो चैत्यालयादि करावनेवाला हीन नाहीं। हिंसा तो भई परन्तु वाकै तो लोभ पापानुराग की वृद्धि भई; याकै लोभ छूट्या, धर्म्मानुराग भया। बहुरि कोई व्यापारादि कार्य करै, तिसतैं तो पूजनादि कार्य करना हीन नाहीं। वहाँ तो हिंसादि बहुत हो है, लोभादि बंधै है, पापहीकी प्रवृत्ति है। यहाँ हिंसादिक भी किंचित् हो है, लोभादिक घटै है, धर्म्मानुराग बधै है। ऐसे जे त्यागी न होय, अपने धनको पापविषै खरचते होय तिनको चैत्यालयादि करावना। अर जे निरवद्य सामायिकादि कार्यनिविषै उपयोग को नाहीं लगाय सकै, तिनको पूजनादि करना निषेध नाहीं।

बहुरि तुम कहोगे- निरवद्य सामायिक आदि कार्य ही क्यों न करै, धर्मविषै काल गमावना तहाँ ऐसे कार्य काहेको करै?

ताका उत्तर - जो शरीरकरि पाप छोरे ही निरवद्यपना होय, तो ऐसे ही करै परन्तु परिणामनिविषै पाप छूटे निरवद्यपना हो है। सो बिना अवलम्बन सामायिकादिविषै जाका परिणाम लागै नाहीं सो पूजनादिकरि तहाँ अपना उपयोग लगावै है। तहाँ नानाप्रकार आलम्बनकरि उपयोग लगि जाय है। जो तहाँ उपयोग को न लगावै, तो पापकार्यनिविषै उपयोग भटकै तब बुरा होय। तातैं यहाँ प्रवृत्ति करनी युक्त है। **बहुरि तुम कहो हो-धर्म्म के अर्थि हिंसा किए तो महापाप हो है, अन्यत्र हिंसा किए थोरा पाप हो है।** सो यह प्रथम तो सिद्धान्त का वचन नाहीं अर युक्तितैं भी मिलैं नाहीं। **जातैं ऐसे मानै इन्द्र जन्मकल्याणकविषै**

बहुत जलकरि अभिषेक करै है, समवसरणविषै देव पुष्पवृष्टि चमर ढालना इत्यादि कार्य करै हैं, सो ये महापापी होय। जो तुम कहोगे, उनका ऐसा ही व्यवहार है, तो क्रिया का फल तो भए बिना रहता नाहीं। जो पाप है तो इन्द्रादिक तो सम्यग्दृष्टी है, ऐसा कार्य काहेको करे अर धर्म्म है तौ काहेको निषेध करो हो। बहुरि भला तुमहीको पूछै हैं- तीर्थंकर की वंदना को राजादिक गए, साधु की वंदना को दूरि भी जाईए है, सिद्धान्त सुनने आदि कार्य करने को गमनादि करिये है, तहाँ मार्गविषै हिंसा भई। बहुरि साधर्म्मी जिमाइए है, साधुका मरण भये ताका संस्कार करिये है, साधु होतैं उत्सव करिये हैं, इत्यादि प्रवृत्ति अब भी दीसै हैं। सो यहाँ भी हिंसा हो है। सो ये कार्य तो धर्म्म ही के अर्थि हैं, अन्य कोई प्रयोजन नाहीं। जो यहाँ महापाप उपजै हैं, तो पूर्वै ऐसे कार्य किये तिनका निषेध करो। अर अब भी गृहस्थ ऐसा कार्य करै हैं, तिनका त्याग करो। बहुरि जो धर्म्म उपजै है तो धर्म के अर्थि हिंसाविषै महापाप बताय काहेको भ्रमावो हो। तातैं ऐसे मानना युक्त है- जैसे थोरा धन ठिगाए बहुत धनका लाभ होय तो यह कार्य करना तैसे थोरा हिंसादिक पाप भये बहुत धर्म्म निपजै तो वह कार्य करना। जो थोरा धनका लोभकरि कार्य बिगारै तो मूर्ख है तैसे थोरी हिंसा का भयतैं बड़ा धर्म्म छोरै तो पापी ही होय। बहुरि कोऊ बहुत धन ठिगावै अर स्तोक धन उपजावै वा न उपजावै तो वह मूर्ख ही है। तैसे बहुत हिंसादिकरि बहुतपाप उपजावै अर भक्ति आदि धर्मविषै थोरा प्रवर्तै वा न प्रवर्तै तो वह पापी ही है। बहुरि जैसे बिना ठिगाए ही धन का लाभ होतैं ठिगावै तो मूर्ख है। तैसे निरवद्य धर्म्मरूप उपयोग होतैं सावद्य धर्मविषै उपयोग लगावना युक्त नाहीं। ऐसे अपने परिणामनिकी अवस्था देखि भला होय सो करना। एकांतपक्ष कार्यकारी नाहीं। बहुरि अहिंसा ही केवल धर्म्म का अंग नाहीं है। रागादिकनिका घटना धर्म्मका अंग मुख्य है। तातैं जैसे परिणामनिविषै रागादिक घटै सो कार्य करना।

बहुरि गृहस्थनिको अणुव्रतादिक का साधन भए बिना ही सामायिक, पडिकमणो, पोसह आदि क्रियानिका मुख्य आचरन करावै है। सो सामायिक तो रागद्वेषरहित साम्यभाव भए होय, पाठ मात्र पढ़े वा उठना बैठना किए ही तो होइ नाहीं। बहुरि कहोगे-अन्य कार्य करता तातैं तो भला है। सो सत्य, परन्तु सामायिक पाठ विषै प्रतिज्ञा तो ऐसी करै, जो मनवचनकरि सावद्य को न करूंगा न कराऊंगा अर मनविषै तो विकल्प हुआ ही करै। अर वचनकाय विषै भी कदाचित् अन्यथा प्रवृत्ति होय तहाँ प्रतिज्ञाभंग होय। सो प्रतिज्ञाभंग करने तैं न करनी भली। जातैं प्रतिज्ञाभंग का महापाप है।

बहुरि हम पूछै हैं - कोऊ प्रतिज्ञा भी न करै है अर भाषा पाठ पढै है, ताका अर्थ जानि तिस विषै उपयोग राखै है। कोऊ प्रतिज्ञा करै, ताको तो नीके पालै नाहीं अर प्राकृतादिक का पाठ पढै, ताकै अर्थका आपको ज्ञान नाहीं, बिना अर्थ जानै तहाँ उपयोग रहै नाहीं, तब उपयोग अन्यत्र भटकै। ऐसे इन दोऊनि विषै विशेष धर्मात्मा कौन? जो पहले को कहोगे, तो ऐसा ही उपदेश क्यों न दीजिए। दूसरे को कहोगे, तो प्रतिज्ञाभंग का पाप भया वा परिणामनिके अनुसार धर्मात्मापना न ठहरया। पाठादि करने के अनुसारि ठहरया। तातैं अपना उपयोग जैसे निर्मल होय सो कार्य करना। सधै सो प्रतिज्ञा करनी। जाका अर्थ जानिए सो पाठ पढ़ना। पद्धति करि नाम धरावने में नफा नाहीं।

बहुरि पडिकमणो नाम पूर्वदोष निराकरण करने का है। सो **'मिच्छा मे दुक्कडं'** इतना कहे ही तो दुष्कृत मिथ्या न होय, किया दुःकृत मिथ्या होने योग्य परिणाम भए होइ। तातैं पाठ ही कार्यकारी नाहीं। बहुरि पडिकमणाका पाठ विषै ऐसा अर्थ है, जो बारह व्रतादिकविषै जो दुष्कृत लाग्या होय सो मिथ्या होहु। सो व्रत धारै बिना ही तिनका पडिकमणा करना कैसे सम्भवै? जाकै उपवास न होय, सो उपवासविषै लाग्या दोषका निराकरण करै तो असम्भवपना होय। तातैं यह पाठ पढ़ना कौन प्रकार बनै? बहुरि पोसहविषै भी सामायिकवत् प्रतिज्ञाकरि नाहीं पालै है। तातैं पूर्वोक्त ही दोष है बहुरि पोसह नाम तो पर्वका है। सो पर्वके दिन भी केताइक कालपर्यंत पापक्रिया करै, पीछे पोसहधारी होय। सो जेते काल बनै तेते काल साधन करनेका तो दोष नाहीं। परन्तु पोसहका नाम करिए सो युक्त नाहीं। सम्पूर्ण पर्वविषै निरवद्य रहे ही पोसह होय। जो थोरा भी कालतैं पोसह नाम होय तो सामायिकको भी पोसह कहो, नाहीं शास्त्र विषै प्रमाण बतावो, जघन्य पोसहका इतना काल है। सो बड़ा नाम धराय लोगनिको भ्रमावना, यहु प्रयोजन भासै है। बहुरि आखड़ी लेनेका पाठ तो और पढ़ै, अंगीकार और करै। सो पाठविषै तो "मेरे त्याग है" ऐसा वचन है, तातैं जो त्याग करै सो ही पाठ पढै, यह चाहिए। जो पाठ न आवै तो भाषा ही तैं कहैं परन्तु पद्धतिके अर्थ यह रीति है।

बहुरि प्रतिज्ञा ग्रहण करने करावने की तो मुख्यता अर यथाविधि पालने की शिथिलता वा भाव निर्मल होने का विवेक नाहीं। आर्त्तपरिणामनिकरि वा लोभादिककरि भी उपवासादि करै, तहाँ धर्म्म मानै। सो फल तो परिणामनितैं हो है। इत्यादि अनेक कल्पित बातैं करै हैं, सो जैनधर्म्म विषै सम्भवै नाहीं। ऐसे यहु जैनविषै श्वेताम्बरमत है, सो भी देवादिकका वा तत्त्वनिका वा मोक्षमार्गादिकका अन्यथा निरूपण करै है। तातैं मिथ्यादर्शनादिकका पोषक है, सो त्याज्य है। **सांचा जिनधर्म्म का स्वरूप आगै कहै हैं।** ताकरि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तना योग्य है। तहाँ प्रवर्त्तै तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषै अन्यमत निरूपण

पाँचवाँ अधिकार समाप्त भया।।५।।

卐 卐 卐

ॐ

卐 छठा अधिकार 卐

कुदेव, कुगुरु और कुधर्म का प्रतिषेध

❋ दोहा ❋

मिथ्या देवादिक भजे, हो हैं मिथ्याभाव ।
तज तिनको सांचे भजौ, यह हितहेतु उपाव।।१।।

अथ-अनादितैं जीवनिकै मिथ्यादर्शनादिक भाव पाईए है, तिनिकी पुष्टताको कारण कुदेव कुगुरु कुधर्म्म का सेवन है। ताका त्याग भए मोक्षमार्गविषै प्रवृत्ति होय। तातैं इनका निरूपण कीजिए है।

कुदेव का निरूपण और उसके श्रद्धानादिक का निषेध

तहाँ जे हितका कर्त्ता नाहीं अर तिनको भ्रमतैं हितका कर्त्ता जानि सेइए सो कुदेव हैं। तिनका सेवन तीन प्रकार प्रयोजन लिए करिए है। कहीं तो मोक्षका प्रयोजन है। कहीं परलोक का प्रयोजन है। कहीं इस लोकका प्रयोजन है। सो ये प्रयोजन तो सिद्ध होय नाहीं। किछू विशेष हानि होय। तातैं तिनका सेवन मिथ्याभाव है। सोई दिखाईए है-

अन्यमतनिविषै जिनके सेवनतैं मुक्ति होनी कही है, तिनको केई जीव मोक्ष के अर्थ सेवन करै हैं। सो मोक्ष होय नाहीं। तिनका वर्णन पूर्वै अन्यमत अधिकारविषै कह्या ही है, बहुरि अन्यमत विषै कहे देव, तिनको केई परलोकविषै सुख होय, दुःख न होय ऐसे प्रयोजन लिए सेवै हैं। सो ऐसी सिद्धि तो पुण्य उपजाए अर पाप न उपजाए हो है। सो आप तो पाप उपजावै है अर कहै ईश्वर हमारा भला करेगा, तो तहाँ अन्याय ठहरया। काहूको पापका फल दे, काहूको न दे, सो ऐसे तो है नाहीं। जैसा अपना परिणाम करेगा तैसा ही फल पावेगा। काहूका बुरा भला करने वाला ईश्वर है नाहीं। बहुरि तिन देवनिका सेवन करतैं तिन देवनिका तो नाम करै अर अन्य जीवनिकी हिंसा करै वा भोजन नृत्यादिकरि अपनी इन्द्रियनिका विषय पोषै, सो पाप परिणामनिका फल तो लागे बिना रहने का नाहीं। हिंसा, विषय-कषायनिको सर्व पाप कहै है। अर पाप का फल भी खोटा ही सर्व मानै है। बहुरि कुदेवनिका सेवन विषै हिंसा विषयादिकही का अधिकार है। तातैं कुदेवनिका सेवनतैं परलोक विषै भला न हो है।

बहुरि घने जीव इस पर्याय सम्बन्धी शत्रुनाशादिक वा रोगादिक मिटवाना वा धनादिककी प्राप्ति वा पुत्रादिककी प्राप्ति इत्यादि दुःख मेटने का वा सुख पावनेका अनेक प्रयोजन लिए कुदेवनिका सेवन करै हैं। बहुरि हनुमानादिको पूजै हैं। बहुरि देवीनिको पूजै हैं। बहुरि गणगौर सांझी आदि बनाय पूजै हैं। चौथि शीतला दिहाड़ी आदिको पूजै हैं। बहुरि अऊत पितर व्यंतरादिकको पूजै हैं। बहुरि सूर्य चन्द्रमा शनिश्चरादि ज्योतिषीनिको पूजै हैं। बहुरि पीर पैगम्बरादिकनिको पूजै हैं। बहुरि गऊ घोटकादि तिर्यंचनिको पूजै हैं। अग्नि जलादिकको पूजै हैं। शस्त्रादिक को पूजै हैं। बहुत कहा कहिए, रोड़ी इत्यादिकको भी पूजै हैं। सो ऐसे कुदेवनिका सेवन मिथ्यादृष्टि तैं हो है। काहेतैं, प्रथम तो जिनका सेवन करै सो केई तो कल्पना मात्र ही देव हैं। सो तिनका सेवन कार्यकारी कैसे होय। बहुरि केई व्यंतरादिक हैं, सो ए काहूका भला बुरा करनेको समर्थ नाहीं। जो वे ही समर्थ होय, तो वे ही कर्त्ता ठहरैं। सो तो उनका किया किछू होता दीसता नाहीं। प्रसन्न होय धनादिक देय सकै नाहीं। द्वेषी होय बुरा कर सकते नाहीं।

इहाँ कोऊ कहै- दुःख तो देते देखिए है, मानेतैं दुःख देते रहि जाय हैं।

ताका **उत्तर**- याकै पापका उदय होय, तब ऐसी ही उनकै कुतूहल बुद्धि होय, ताकरि वे चेष्टा करैं। चेष्टा करतै यहु दुःखी होय। बहुरि वे कुतूहलतैं किछू कहैं, यहु कह्या करै तब वे चेष्टा करनेतैं रहि जाँय। बहुरि याको शिथिल जानि कुतूहल किया करैं। बहुरि जो याकै पुण्यका उदय होय तो किछू कर सकते नाहीं। सो भी देखिए हैं-

कोऊ जीव उनको पूजै नाहीं वा उनकी निन्दा करै वा वे भी उसतैं द्वेष करै परन्तु ताको दुःख देई सकै नाहीं। वा ऐसे भी कहते देखिए हैं, जो फलाना हमको मानै नाहीं परन्तु उसतैं किछू हमारा वश नाहीं। तातैं व्यन्तरादिक किछू करनेको समर्थ नाहीं। याका पुण्य पापहीतैं सुख-दुःख हो हैं। उनके मानै पूजै उलटा रोग लागै है, किछू कार्यसिद्धि नाहीं। बहुरि ऐसा जानना-जे कल्पित देव हैं, तिनका भी कहीं अतिशय चमत्कार होता देखिए है सो व्यंतरादिक करि किया हो है। कोई पूर्व पर्यायविषै उनका सेवक था, पीछै मरि व्यन्तरादि भया, तहाँ ही कोई निमित्ततैं ऐसी बुद्धि भई, तब वह लोकविषै तिनिके सेवने की प्रवृत्ति करावने के अर्थि कोई चमत्कार दिखावै है। जगत् भोला किंचित् चमत्कार देखि तिस कार्य विषै लग जाय है। जैसे जिन प्रतिमादिकका भी अतिशय होता सुनिए वा देखिए है सो जिनकृत नाहीं, जैनी व्यंतरादिकृत हो है। तैसे ही कुदेवनिका कोई चमत्कार होय, सो उनके अनुचरी व्यंतरादिकनिकरि किया हो है, ऐसा जानना।

बहुरि अन्यमतविषै भक्तनिकी सहाय परमेश्वर करी वा प्रत्यक्ष दर्शन दिए इत्यादि कहै हैं। तहां केई तो कल्पित बातें कही हैं। केई उनके अनुचरी व्यन्तरादिककरि किए कार्यनिको परमेश्वरके किए कहै हैं। जो परमेश्वरके किए होय तो परमेश्वर तो त्रिकालज्ञ छै। सर्व प्रकार समर्थ छै। भक्तको दुःख काहेको होने दे। बहुरि अबहू देखिए है। म्लेच्छ आय भक्तनिको उपद्रव करै हैं, धर्म विध्वंस करै हैं, मूर्तिको विघ्न करै हैं, सो परमेश्वरको ऐसे कार्यका ज्ञान न होय तो सर्वज्ञपनो रहै नाहीं। जाने पीछै सहाय न करै तो भक्तवत्सलता गई वा सामर्थ्यहीन भया। बहुरि साक्षीभूत रहै है तो आगै भक्तनिकी सहाय करी कहिए है सो झूंठ है। उनकी तो एकसी वृत्ति है। बहुरि जो कहोगे-वैसी भक्ति नाहीं है। तो म्लेच्छनितैं तो भले हैं वा मूर्ति आदि तो उनही

की स्थापना थी, तिनिका तो विघ्न न होने देना था। बहुरि म्लेच्छ पापीनिका उदय हो है, सो परमेश्वर का किया है कि नाहीं। जो परमेश्वरका किया है, तो निंदकनिको सुखी करै, भक्तनिको दुखदायक करै, तहाँ भक्तवत्सलपना कैसे रह्या? अर परमेश्वरका किया न हो है, तो परमेश्वर सामर्थ्यहीन भया। तातैं परमेश्वरकृत कार्य नाहीं। कोई अनुचरी व्यंतरादिक ही चमत्कार दिखावै है। ऐसा ही निश्चय करना।

बहुरि इहाँ कोऊ पूछै कि कोई व्यंतर अपना प्रभुत्व कहै वा अप्रत्यक्षको बताय दे, कोऊ कुस्थानवासादिक बताय अपनी हीनता कहै, पूछिए सो न बतावै, भ्रमरूप वचन कहै वा औरनिको अन्यथा परिणमावै, औरनिको दुःख दे, इत्यादि विचित्रता कैसे है?

ताका उत्तर-व्यंतरनिविषै प्रभुत्व की अधिक हीनता तो है परन्तु जो कुस्थान विषै वासादिक बताय हीनता दिखावै है सो तो कुतूहलतैं वचन कहै है। व्यंतर बालकवत् कुतूहल किया करै। सो जैसे बालक कुतूहलकरि आपको हीन दिखावै, चिडावै, गाली सुनै, बार पाडै (ऊँचे स्वरसे रोवै) पीछै हँसने लगि जाय, तैसे ही व्यंतर चेष्टा करै हैं। जो कुस्थानही के वासी होय, तो उत्तम स्थानविषै आवै हैं तहाँ कौनकै ल्याए आवै हैं। आप ही तैं आवै हैं, तो अपनी शक्ति होतैं कुस्थानविषै काहेको रहै? तातैं इनिका ठिकाना तो जहाँ उपजै हैं, तहाँ इस पृथ्वी के नीचे वा ऊपरि है सो मनोज्ञ है। कुतूहलके लिए चाहै सो कहै हैं। बहुरि जो इनको पीड़ा होती होय तो रोवते-रोवते हँसने कैसे लगि जाय हैं। इतना है, मन्त्रादिककी अचिंत्यशक्ति है सो कोई सांचा मन्त्रके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होय तो वाकै किंचित् गमनादि न होय सकै वा किंचित् दुःख उपजै वा कोई प्रबल वाको मनै करै तब रहि जाय वा आप ही रहि जाय। इत्यादि मन्त्रकी शक्ति है परन्तु जलावना आदि न हो है। मन्त्र वाला जलाया कहै; बहुरि वह प्रगट होय जाय, जातैं वैक्रियिक शरीरका जलावना आदि सम्भवै नाहीं। बहुरि व्यंतरनिकै अवधिज्ञान काहूकै स्तोक क्षेत्र काल जाननेका है, काहूकै बहुत है। तहाँ वाकै इच्छा होय अर आपकै बहुत ज्ञान होय तो अप्रत्यक्षको पूछै ताका उत्तर दें तथा आपकै स्तोक ज्ञान होय तो अन्य महत्ज्ञानीको पूछि आय करि जवाब दें। बहुरि आपकै स्तोक ज्ञान होय वा इच्छा न होय, तो पूछै ताका उत्तर न दे, ऐसा जानना। बहुरि स्तोकज्ञानवाला व्यंतरादिककै उपजता केतेक काल ही पूर्व जन्मका ज्ञान होय सकै, पीछे ताका स्मरण मात्र रहै है तातैं तहाँ कोई इच्छाकरि आप किछू चेष्टा करै तो करै। बहुरि पूर्व जन्मकी बातैं कहै। कोऊ अन्य वार्ता पूछै तो अवधि तो थोरा, बिना जाने कैसे कहै। बहुरि जाका उत्तर आप न देय सकै वा इच्छा न होय, तहाँ मान कुतूहलादिकतैं उत्तर न दे वा झूठ बोलै, ऐसा जानना। बहुरि देवनिमैं ऐसी शक्ति है, जो अपने वा अन्यके शरीरको वा पुद्गल स्कंधको जैसी इच्छा होय तैसे परिणमावै। तातैं नाना आकारादिरूप आप होय वा अन्य नाना चरित्र दिखावै। बहुरि अन्य जीवकै शरीर को रोगादियुक्त करै। यहाँ इतना है- अपने शरीरको वा अन्य पुद्गल स्कंधनिको तो जैती शक्ति होय तितने ही परिणमाय सकै; तातैं सर्व कार्य करने की शक्ति नाहीं। बहुरि अन्य जीवके शरीरादिकको वाका पुण्य पापके अनुसारि परिणमाय सकै। वाकै पुण्य उदय होय तो आप रोगादिरूप न परिणमाय सकै अर पाप उदय होय तो वाका इष्टकार्य न करि सकै। ऐसे व्यंतरादिकनिकी शक्ति जाननी।

यहाँ कोऊ कहै-इतनी जिनकी शक्ति पाईए, तिनके मानने-पूजने में दोष कहा?

ताका उत्तर-आपकै पाप उदय होतैं सुख न देय सकै, पुण्य उदय होतैं दुःख न देय सकै; बहुरि तिनके पूजनेतैं कोई पुण्यबंध होय नाहीं, रागादिककी वृद्धि होतैं पाप ही हो है। तातैं तिनका मानना पूजना कार्यकारी नाहीं-बुरा करने वाला है। बहुरि व्यंतरादिक मनावै हैं, पुजावै हैं, सो कुतूहल करै हैं, किछु विशेष प्रयोजन नाहीं राखै हैं। जो उनको मानै पूजै, तिस सेती कौतूहल किया करै। जो न मानै पूजै, तासो किछू न कहै। जो उनकै प्रयोजन ही होय, तो न मानने पूजने वाले को घना दुःखी करै। सो तो जिनकै न मानने पूजने का अवगाढ़ है, तासो किछू भी कहते दीसते नाहीं। बहुरि प्रयोजन तो क्षुधादिककी पीड़ा होय तो होय, सो उनकै व्यक्त होय नाहीं। जो होय, तो उनके अर्थि नैवेद्यादिक दीजिए ताको भी ग्रहण क्यों न करै वा औरनिके जिमावने आदि करनेही को काहेको कहै। तातैं उनके कुतूहल मात्र क्रिया है। सो आपको उनके कुतूहल का ठिकाना भए दुःख होय, हीनता होय तातैं उनको मानना पूजना योग्य नाहीं।

बहुरि **कोऊ पूछै** कि व्यंतर ऐसे कहै है-गया आदि विषै पिंडप्रदान करो तो हमारी गति होय,[१] हम बहुरि न आवै, सो कहा है।

ताका उत्तर- जीवनिकै पूर्व भवका संस्कार तो रहै ही है। व्यंतरनिकै पूर्व-भव का स्मरणादिकतैं विशेष संस्कार है। तातैं पूर्वभवके विषै ऐसी ही वासना थी, गयादिकविषै पिंडप्रदानादि किए गति हो है तातैं ऐसे कार्य करने को कहै हैं। जो मुसलमान आदि मरि व्यंतर हो है, ते तो ऐसे कहै नाहीं, वे तो अपने संस्कार रूप ही वचन कहै। तातैं सर्व व्यंतरनिकी गति तैसे ही होती होइ तो सर्व ही समान प्रार्थना करै सो है नाहीं, ऐसे जानना। ऐसे व्यंतरादिकनिका स्वरूप जानना।

सूर्य चन्द्रमादि ग्रह पूजा प्रतिषेध

बहुरि सूर्य चन्द्रमा ग्रहादिक ज्योतिषी हैं, तिनको पूजै हैं[२] सो भी भ्रम है। सूर्यादिकको परमेश्वरका अंश मानि पूजै हैं।[३] सो वाकै तो एक प्रकाशका ही आधिक्य भासै है। सो प्रकाशवान् अन्य रत्नादिकभी हो हैं। अन्य कोई ऐसा लक्षण नाहीं, जातैं वाको परमेश्वरका अंश मानिए। बहुरि चन्द्रमादिकको धनादिककी प्राप्ति के अर्थ पूजै हैं। सो उसके पूजनेतैं ही धन होता होय, तो सर्व दरिद्री इस कार्यको करैं। तातैं ए मिथ्याभाव है। बहुरि ज्योतिषके विचारतैं खोटा ग्रहादिक आए तिनिका पूजनादिक करै हैं, वाके अर्थ दानादिक दे हैं।[४] सो जैसे हिरणादिक स्वयमेव गमनादि करै है, पुरुषकै दाहिणै-बावै आए, सुख-दुःख होनेका आगामी ज्ञानको कारण हो हैं, किछू सुख-दुःख देनेको समर्थ नाहीं। तैसे ग्रहादिक स्वयमेव गमनादि करै हैं। प्राणीकै यथासम्भव योगको प्राप्त होतैं सुख-दुःख होने का आगामी ज्ञानको कारण हो हैं, किछू सुख-दुःख देनेको समर्थ नाहीं। कोई तो उनका पूजनादि करै, ताकै भी इष्ट न होय, कोई न करै ताकै भी इष्ट होय, तातैं तिनिका पूजनादि करना मिथ्याभाव है।

यहाँ **कोऊ कहै**- देना तो पुण्य है, सो भला ही है।

---

१. वायुपुराण अ. १०५ श्लोक १८।
२. अ.पु.अ. ७३।
३. वि.पु.अ. ८ श्लोक ५६।
३. अग्निपुराण अ. १६४ पृ. २१६।

ताका उत्तर-धर्म्मके अर्थि देना पुण्य है। यहु तो दुःखका भयकरि वा सुखका लोभकरि देहैं, तातैं पाप ही है। इत्यादि अनेक प्रकार ज्योतिषी देवनिको पूजै है, सो मिथ्यात्व है।

बहुरि देवी दिहाड़ी आदि हैं, ते केई तो व्यंतरी वा ज्योतिषणी हैं, तिनका अन्यथा स्वरूप मानि पूजनादि करै हैं। केई कल्पित हैं, सो तिनकी कल्पनाकरि पूजनादि करै हैं। ऐसे व्यंतरादिकके पूजने का निषेध किया।

यहाँ कोऊ कहै-क्षेत्रपाल दिहाड़ी पद्मावती आदि देवी, यक्ष-यक्षिणी आदि जे जिनमतको अनुसरै हैं, तिनके पूजनादि करने में तो दोष नाहीं।

ताका उत्तर-जिनमतविषै संयम धारे पूज्यपनो हो है। सो देवनिकै संयम होता ही नाहीं। बहुरि इनको सम्यक्त्वी मानि पूजिए है, सो भवनत्रिकमें सम्यक्त्वकी भी मुख्यता नाहीं। जो सम्यक्त्वकरिही पूजिए तो सर्वार्थसिद्धिके देव, लौकांतिकदेव तिनकोही क्यों न पूजिए। बहुरि कहोगे- इनकै जिनभक्ति विशेष है। सो भक्ति की विशेषता भी सौधर्म्म इन्द्रके है, वह सम्यग्दृष्टी भी है। वाको छोरि इनको काहेको पूजिए। बहुरि जो कहोगे, जैसे राजाकै प्रतीहारादिक हैं, तैसे, तीर्थंकरकै क्षेत्रपालादिक हैं। सो समवसरणादिविषै इनिका अधिकार नाहीं। यह झूंठी मानि है। बहुरि जैसे प्रतीहारादिकका मिलाया राजास्यों मिलिए, तैसे ये तीर्थंकरको मिलावते नाहीं। वहाँ तो जाकै भक्ति होय सोई तीर्थंकरका दर्शनादिक करो, किछू किसीके आधीन नाहीं। बहुरि देखो अज्ञानता, आयुधादिक लिए रौद्रस्वरूप जिनका, तिनकी गाय-गाय भक्ति करै। सो जिनमतविषै भी रौद्ररूप पूज्य भया, तो यहु भी अन्यमत ही के समान भया। तीव्र मिथ्यात्वभावकरि जिनमतविषै ऐसी ही विपरीत प्रवृत्तिका मानना हो है। ऐसे क्षेत्रपालादिकको भी पूजना योग्य नाहीं।

गौ सर्पादिककी पूजा का निराकरण

बहुरि गऊ सर्प्पादि तिर्यंच हैं, ते प्रत्यक्ष ही आपतैं हीन भासै हैं। इनिका तिरस्कारादिक करि सकिए है। इनकी निंद्यदशा प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि वृक्ष अग्नि जलादिक स्थावर हैं, ते तिर्यंचनिहूतैं अत्यन्त हीन अवस्थाको प्राप्त देखिए हैं। बहुरि शस्त्र दवात आदि अचेतन हैं, सो सर्वशक्तिकरि हीन प्रत्यक्ष भासै हैं; पूज्यपनेका उपचार भी सम्भवै नाहीं। तातैं इनका पूजना महा मिथ्याभाव है। इनको पूजे प्रत्यक्ष वा अनुमानकरि किछू भी फल-प्राप्ति नाहीं भासै है तातैं इनको पूजना योग्य नाहीं। या प्रकार सर्व ही कुदेवनिका पूजना मानना निषेध है। देखो मिथ्यात्व की महिमा, लोकविषै तो आपतैं नीचेको नमते आपको निंद्य मानै अर मोहित होय रोड़ी पर्यंतको पूजता भी निंद्यपनों न मानै। बहुरि लोकविषै तो जातैं प्रयोजन सिद्ध होता जानै, ताहीकी सेवा करै अर मोहित होय कुदेवनितैं मेरा प्रयोजन कैसे सिद्ध होगा; ऐसा बिना विचारे ही कुदेवनिका सेवन करै। बहुरि कुदेवनिका सेवन करते हजारों विघ्न होय ताको तो गिनै नाहीं अर कोई पुण्यके उदयतैं इष्ट कार्य होय जाय ताको कहै, इसके सेवनतैं यहु कार्य भया। बहुरि कुदेवादिकका सेवन किए बिना जे इष्ट कार्य होय, तिनको तो गिनै नाहीं अर कोई अनिष्ट होय तो कहै, याका सेवन न किया तातैं अनिष्ट भया। इतना नाहीं विचारै है, जो इनिही के आधीन इष्ट - अनिष्ट करना होय, तो जे पूजै तिनके इष्ट होइ, न पूजै तिनके अनिष्ट होय। सो तो दीसता नाहीं। जैसे काहूकै शीतलाको बहुत मानै भी

पुत्रादि मरते देखिए है। काहूकै बिना माने भी जीवते देखिए है। तातैं शीतला का मानना किछू कार्यकारी नाहीं। ऐसे ही सर्व कुदेवनिका मानना किछू कार्यकारी नाहीं।

इहाँ **कोऊ कहै**- कार्यकारी नाहीं तो मति होहु, किछू तिनके माननेतैं बिगार भी तो होता नाहीं।

ताका **उत्तर**- जो बिगार न होय, तो हम काहेको निषेध करैं। परन्तु एक तो मिथ्यात्वादि दृढ़ होने तैं मोक्षमार्ग दुर्लभ होय जाय है, सो यहु बड़ा बिगार है। एक पापबंध होनेतैं आगामी दुःख पाईए है, यहु बिगार है।

यहाँ **पूछै** कि मिथ्यात्वादिभाव तो अतत्त्व श्रद्धानादि भए होय है अर पापबंध खोटे कार्य किए होय हैं, सो तिनके मानने तैं मिथ्यात्वादिक वा पापबंध कैसे होय?

ताका **उत्तर**- प्रथम तो परद्रव्यनिको इष्ट-अनिष्ट मानना ही मिथ्या है, जातैं कोऊ द्रव्य काहूका मित्र शत्रु है नाहीं। बहुरि जो इष्ट अनिष्ट बुद्धि पाइए है, तो ताका कारण पुण्य-पाप है। तातैं जैसे पुण्यबंध होय, पापबंध न होय सो करै। बहुरि जो कर्मउदय का भी निश्चय न होय, इष्ट-अनिष्ट के बाह्य कारण तिनके संयोग वियोग का उपाय करै, सो सुदेव के मानने तैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि दूरि होती नाहीं, केवल वृद्धि को प्राप्त हो है। बहुरि पुण्यबंध भी होता नाहीं, पापबंध हो है। बहुरि कुदेव काहूको धनादिक देते खोसते देखे नाहीं। तातैं ए बाह्य कारण भी नाहीं। इनका मानना किसै अर्थि कीजिए हैं। जब अत्यन्त भ्रमबुद्धि होय, जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान का अंश भी न होय अर रागद्वेष की अति तीव्रता होय तब जे कारण नाहीं तिनको भी इष्ट अनिष्ट का कारण मानै। तब कुदेवनिका मानना हो है। ऐसा तीव्र मिथ्यात्वादि भाव भए मोक्षमार्ग अति दुर्लभ हो है।

कुगुरु का निरूपण और उसके श्रद्धानादिक का निषेध

आगे कुगुरु के श्रद्धानादिक को निषेधिए है-

जे जीव विषयकषायादि अधर्म्मरूप तो परिणमै अर मानादिकतैं आपको धर्म्मात्मा मनावै, धर्म्मात्मा योग्य नमस्कारादि क्रिया करावै अथवा किंचित् धर्म्मका कोई अंग धारि बड़े धर्म्मात्मा कहावै, बड़े धर्म्मात्मा योग्य क्रिया करावै; ऐसे धर्म्म का आश्रयकरि आपको बड़ा मनावै, ते सर्व कुगुरु जानने। जातैं धर्म्मपद्धतिविषै तो विषयकषायादि छूटे जैसा धर्म्मको धारै तैसा ही अपना पद मानना योग्य है।

कुल अपेक्षा गुरुपनेका निषेध

तहाँ केई तो कुलकरि आपको गुरु मानै हैं। तिनविषै केई ब्राह्मणादिक तो कहै हैं, हमारा कुल ही ऊँचा है तातैं हम सर्वके गुरु हैं। सो उस कुलकी उच्चता तो धर्म्म साधनतैं है। जो उच्च कुलविषै उपजि हीन आचरन करै, तो वाको उच्च कैसे मानिए। जो कुलविषै उपजनेहीतैं उच्चपना रहै, तो मांसभक्षणादि किए भी वाको उच्च ही मानो सो बनै नाहीं। 'भारत' विषै भी अनेक प्रकार ब्राह्मण कहै हैं। तहाँ "जो

ब्राह्मण होय चांडाल कार्य करै, ताको चांडाल ब्राह्मण कहिए" [1] ऐसा कह्या है। सो कुलहीतैं उच्चपना होय तो ऐसी हीनसंज्ञा काहेको दई है।

बहुरि वैष्णवशास्त्रनिविषै ऐसा भी कहै- वेदव्यासादिक मछली आदितैं उपजे[2]। तहाँ कुलका अनुक्रम कैसे रह्या? बहुरि मूलउत्पत्ति तो ब्रह्मातैं कहै हैं। तातैं सर्वका एक कुल है, भिन्न कुल कैसे रह्या? बहुरि उच्चकुल की स्त्रीकै नीचकुल के पुरुषतैं वा नीचकुलकी स्त्रीकै उच्चकुलके पुरुषतैं संगम होतैं संतति होती देखिए है। तहाँ कुलका प्रमाण कैसे रह्या? जो कदाचित् कहोगे, ऐसे है, तो उच्च नीच कुलका विभाग काहेको मानो हो। सो लौकिक कार्यनिविषै असत्य भी प्रवृत्तिसंभवै, धर्म्मकार्य्यविषै तो असत्यता संभवै नाहीं। तातैं धर्म्मपद्धतिविषै कुलअपेक्षा महंतपना नाहीं संभवै है। धर्म्मसाधनहीतैं महंतपना होय। ब्राह्मणादि कुलनिविषै महंतता है, सो धर्म्मप्रवृत्तितैं है। सो धर्म्मकी प्रवृत्ति को छोड़ि हिंसादिक पापविषै प्रवर्तै महंतपना कैसे रहै।

बहुरि केई कहै - जो हमारे बड़े, भक्त भए हैं, सिद्ध भए हैं, धर्म्मात्मा भए हैं। हम उनकी संततिविषै हैं, तातैं हम गुरु हैं। सो उन बड़ेनिके बड़े तो ऐसे उत्तम थे नाहीं। तिनकी संततिविषै उत्तमकार्य किये उत्तम मानो हो तो उत्तमपुरुषकी संततिविषै जो उत्तम कार्य न करै, ताको उत्तम काहेको मानो हो। बहुरि शास्त्रनिविषै. वा लोकविषै यहु प्रसिद्ध है कि पिता शुभ कार्यकरि उच्चपदको पावै, पुत्र अशुभकार्यकरि नीच पदको पावै वा पिता अशुभ कार्यकरि नीच पदको पावै, पुत्र शुभकार्यकरि उच्चपदको पावै। तातैं बड़ेनिकी अपेक्षा महंत मानना योग्य नाहीं। ऐसे कुलकरि गुरुपना मानना मिथ्याभाव जानना। बहुरि केई पट्टकरि गुरुपनो मानै हैं। कोई पूर्वै महंत पुरुष भया होय, ताके पाटि जे शिष्य प्रतिशिष्य होते आए, तहाँ तिन विषै तिस महंत पुरुष कैसे गुण न होते भी गुरुपनो मानिए, सो जो ऐसे ही होय तो उस पाटविषै कोई परस्त्रीगमनादि महापापकार्य करेगा, सो भी धर्मात्मा होगा, सुगति को प्राप्त होगा, सो संभवै नाहीं। अर वह पापी है, तो पाटका अधिकार कहाँ रह्या? जो गुरुपद योग्य कार्य करै सो ही गुरु है।

बहुरि केई पहले तो स्त्री आदि के त्यागी थे, पीछै भ्रष्ट होय विवाहादिक कार्यकरि गृहस्थ भए, तिनकी संतति आपको गुरु मानै है। सो भ्रष्ट भए पीछै गुरुपना कैसे रह्या? और गृहस्थवत् ए भी भए। इतना विशेष भया, जो ए भ्रष्ट होय गृहस्थ भए। इनको मूल गृहस्थधर्मी गुरु कैसे मानै? बहुरि केई अन्य तो सर्व पाप कार्य करै, एक स्त्री परणै नाहीं, इसही अंगकरि गुरुपनो मानै है। सो एक अब्रह्म ही तो पाप नाहीं, हिंसा परिग्रहादिक भी पाप हैं, तिनिको करतैं धर्मात्मा गुरु कैसे मानिए। बहुरि वह धर्मबुद्धितैं विवाहादिका त्यागी नाहीं भया है। कोई आजीविका वा लज्जा आदि प्रयोजन को लिए विवाह न करै है। जो धर्म्मबुद्धि होती, तो हिंसादिक को काहे को बधावता। बहुरि जाकै धर्म्मबुद्धि नाहीं, ताकै शीलकी भी दृढ़ता रहै नाहीं। अर विवाह करै नाहीं, तब परस्त्रीगमनादि महापापको उपजावै। ऐसी क्रिया होतैं गुरुपना मानना महा भ्रष्टबुद्धि है।

१. षडंग वेद, शास्त्र, पुराण और कुल में जन्म - ये सब बातें आचारहीन द्विज के व्यर्थ हैं। म.भा. २२/१२।

२. महाभारत आदि. प.अ. ६३।

बहुरि केई काहूप्रकार का भेषधारने तैं गुरुपनो मानै है। सो भेष धारै कौन धर्म्म भया, जातैं धर्मात्मा गुरु मानैं। तहाँ केई टोपी दे हैं, केई गूदरी राखै हैं, केई चोला पहरै हैं, केई चादर ओढ़ै हैं, केई लाल वस्त्र राखै हैं, केई श्वेतवस्त्र राखै हैं, केई भगवां राखै हैं, केई टाट पहरै हैं, केई मृगछाला राखै हैं, केई राख लगावै हैं, इत्यादि अनेक स्वाँग बनावै हैं। सो जो शीत उष्णादिक सहे न जाते थे, लज्जा न छूटै थी, तो पागजामा इत्यादि प्रवृत्तिरूप वस्त्रादिक-त्याग काहेको किया? उनको छोरि ऐसे स्वाँग बनावने में कौन धर्म का अंग भया। गृहस्थनिको ठिगने के अर्थि ऐसे भेष जानने। जो गृहस्थ सारिखा अपना स्वांग राखै, तो गृहस्थ कैसे ठिगावै। अर याको उनकरि आजीविका वा धनादिक वा मानादिकका प्रयोजन साधना, तातैं ऐसे स्वांग बनावै है। जगत् भोला, तिस स्वांगको देखि ठिगावै अर धर्म्म भया मानै, सो यहु भ्रम है। सोई कह्या है-

जह कुवि वेस्सारत्तो मुसिज्जमाणो विमण्णए हरिसं।
तह मिच्छवेसमुसिया गयं पि ण मुणंति धम्म-णिहिं।।१।।

(उपदेश सि. र. ५)

याका अर्थ - जैसे कोई वेश्यासक्त पुरुष धनादिक को मुसावता हुआ भी हर्ष मानै है, तैसे मिथ्याभेषकरि ठिगे गए जीव ते नष्ट होता धर्म धन को नाहीं जानै है। भावार्थ-यहु मिथ्या भेष वाले जीवनिकी शुश्रूषा आदितैं अपना धर्म धन नष्ट हो ताका विषाद नाहीं, मिथ्याबुद्धि तैं हर्ष करै हैं। तहाँ केई तो मिथ्याशास्त्रनिविषै भेष निरूपण किये है तिनको धारै है। सो उन शास्त्रनिका करणहारा पापी सुगम क्रिया कियेतैं उच्चपद प्ररूपण तैं मेरी मानि होइ वा अन्य जीव इस मार्ग विषै बहुत लागै, इस अभिप्रायतैं मिथ्या उपदेश दिया। ताकी परम्पराकरि विचार रहित जीव इतना तो विचारै नाहीं, जो सुगम क्रियातैं उच्चपद होना बतावै हैं, सो इहाँ किछू दगा है, भ्रमकरि तिनिका कह्या मार्गविषै प्रवर्तै हैं। बहुरि केई शास्त्रनिविषै तो मार्ग कठिन निरूपण किया सो तो सधै नाहीं अर अपना ऊँचा नाम धराए बिना लोक मानै नाहीं, इस अभिप्राय तैं यति मुनि आचार्य उपाध्याय साधु भट्टारक संन्यासी योगी तपस्वी नग्न इत्यादि नाम तो ऊँचा धरावै हैं अर इनिका आचारनिको नाहीं साधि सकै हैं तातैं इच्छानुसारि नाना भेष बनावै हैं। बहुरि केई अपनी इच्छा अनुसारि ही तो नवीन नाम धरावै हैं। अर इच्छानुसारि ही भेष बनावै हैं। ऐसे अनेक भेष धारने तैं गुरुपनो मानै हैं, सो यहु मिथ्या है।

इहाँ **कोऊ पूछै** कि भेष तो बहुत प्रकार के दीसै, तिन विषै साँचे झूठे की पहचानि कैसे होय ?

ताका **समाधान**- जिन भेषनिविषै विषयकषायका किछू लगाव नाहीं, ते भेष सांचे हैं। सो सांचे भेष तीन प्रकार हैं, अन्य सर्व भेष मिथ्या हैं। सो ही षट्पाहुड़विषै कुन्दकुन्दाचार्य करि कह्या है-

एगं जिणस्स रूवं विदियं उक्किट्ठ सावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंगदंसणं णत्थि।।

(द.पा. १८)

याका अर्थ- एक तो जिनका स्वरूप निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनिलिंग अर दूसरा उत्कृष्ट श्रावकनिका रूप

दसईं ग्यारहीं प्रतिमा का धारक श्रावकका लिंग अर तीसरा आर्यकानिका रूप यहु स्त्रीनिका लिंग, ऐसे ए तीन लिंग तो श्रद्धानपूर्वक हैं। बहुरि चौथा लिंग सम्यग्दर्शन स्वरूप नाहीं है। भावार्थ-यहु इन तीनलिंग बिना अन्यलिंग को मानै सो श्रद्धानी नाहीं, मिथ्यादृष्टी है। बहुरि इन भेषीनिविषै केई भेषी अपने भेष की प्रतीति करावने के अर्थि किंचित् धर्म का अंग को भी पालै हैं। जैसे खोटा रुपया चलावने वाला तिस विषै किछू रूपा का भी अंश राखै है, तैसे धर्म्म का कोऊ अंग दिखाय अपना उच्चपद मनावै हैं।

इहाँ कोऊ कहै कि जो धर्म्म साधन किया, ताका तो फल होगा।

ताका उत्तर- जैसे उपवास का नाम धराय कणमात्र भी भक्षण करै तो पापी है अर एकंत का (एकासनका) नाम धराय किंचित् ऊन भोजन करै तो भी धर्मात्मा है। तैसे उच्चपदवी का नाम धराय तामें किंचित् भी अन्यथा प्रवर्तै, तो महापापी है। अर नीचीपदवी का नाम धराय किछू भी धर्म्म साधन करै, तो धर्म्मात्मा है। तातैं धर्म्मसाधन तो जेता बनै तेता ही कीजिए, किछू दोष नाहीं। परन्तु ऊँचा धर्म्मात्मा नाम धराय नीची क्रिया किये महापाप ही हो है। सोई षट्पाहुड़विषै कुन्दकुन्दाचार्यकरि कह्या है-

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु।
जइ लेइ अप्प - बहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं।।१।।
(सूत्र पा. १८)

याका अर्थ- मुनि पद है, सो यथाजातरूप सदृश है। जैसा जन्म होतैं था, तैसा नग्न है। सो वह मुनि अर्थ जे धन वस्त्रादिक वस्तु तिनविषै तिलका तुषमात्र भी ग्रहण न करै। बहुरि जो कदाचित् अल्प वा बहुत वस्तु ग्रहै, तो तिसतैं निगोद जाय। सो इहाँ देखो, गृहस्थपने में बहुत परिग्रह राखि किछू प्रमाण करै तो भी स्वर्गमोक्ष का अधिकारी हो है। अर मुनिपने में किंचित् परिग्रह अंगीकार किये भी निगोद जाने वाला हो है। तातैं ऊँचा नाम धराय नीची प्रवृत्ति युक्त नाहीं।

देखो, हुंडावसर्प्पिणी कालविषै यहु कलिकाल प्रवर्तै है। ताका दोषकरि जिनमतविषै मुनि का स्वरूप तो ऐसा जहाँ बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह का लगाव नाहीं, केवल अपने आत्मा को आपो अनुभवते शुभाशुभभावनितैं उदासीन रहै है अर अब विषय-कषायासक्त जीव मुनिपद धारै, तहाँ सर्वसावद्य का त्यागी होय पंचमहाव्रतादि अंगीकार करै। बहुरि श्वेत रक्तादि वस्त्रनिको ग्रहै वा भोजनादिविषै लोलुपी होय वा अपनी पद्धति बधावने के उद्यमी होय वा केई धनादिक भी राखै वा हिंसादिक करै वा नाना आरम्भ करै। सो स्तोक परिग्रह ग्रहणे का फल निगोद कह्या है, तो ऐसे पापनिका फल तो अनंत संसार होय ही होय। बहुरि लोकनिकी अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी भी प्रतिज्ञा भंग करै, ताको तो पापी कहै अर ऐसी बड़ी प्रतिज्ञाभंग करते देखै बहुरि तिनको गुरु मानै, मुनिवत् तिनका सन्मानादि करै। सो शास्त्रविषै कृतकारित अनुमोदना का फल कह्या है तातैं इनको भी वैसा ही फल लागै है। मुनिपद लेने का तो क्रम यह है- पहलै तत्त्वज्ञान होय, पीछै उदासीन परिणाम होय, परिषहादि सहने की शक्ति होय, तब वह स्वयमेव मुनि भया चाहै। तब श्रीगुरु मुनिधर्म्म अंगीकार करावै। यहु कौन विपरीत जे तत्त्वज्ञानरहित विषयकषायासक्त जीव

तिनको मायाकरि वा लोभ दिखाय मुनिपद देना, पीछै अन्यथा प्रवृत्ति करावनी, सो यहु बड़ा अन्याय है। ऐसे कुगुरु का वा तिनके सेवन का निषेध किया। अब इस कथन के दृढ़ करने को शास्त्रनिकी साखि दीजिए है। तहाँ **उपदेशसिद्धान्त रत्नमाला** विषै ऐसा कह्या है-

गुरुणो भट्टा जाया सद्दे थुणिऊण लिंति दाणाइं।
दोण्णवि अमुणियसारा दूसमिसमयम्मि बुड्डंति।।३१।।

कालदोषतैं गुरु जे हैं, ते भाट भए। भाटवत् शब्दकरि दातार की स्तुति करिकै दानादि ग्रहै हैं। सो इस दुखमा कालविषै दोऊ ही दातार वा पात्र संसारविषै डूबै हैं। बहुरि तहाँ कह्या है-

सप्पे दिट्ठे णासइ लोओ णहि कोवि किंपि अक्खेइ।
जो चयइ कुगुरु सप्पं हा मूढा भणइ तं दुट्ठं।।३६।।

याका **अर्थ**- सर्पको देखि कोऊ भागै, ताको तो लोक किछू भी कहै नाहीं। हाय हाय देखो, जो कुगुरु सर्पको छोरै है, ताहि मूढ़ दुष्ट कहै, बुरा बोलै।

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइं।
तो वर सप्पं गहियं मा कुगुरुसेवणं भद्दं।।३७।।

अहो, सर्पकरि तो एक ही बार मरण होय अर कुगुरु अनंतमरण दे है-अनन्तबार जन्ममरण करावै है। तातैं हे भद्र, साँप का ग्रहण तो भला अर कुगुरु का सेवन भला नाहीं। और भी गाथा तहाँ इस श्रद्धान दृढ़ करने को कारण बहुत कही हैं सो तिस ग्रन्थतैं जानि लेनी। बहुरि **संघपट्टविषै** ऐसा कह्या है-

क्षुत्क्षामः किल कोपि रंकशिशुकः प्रव्रज्य चैत्ये क्वचित्,
कृत्वा किंचन पक्षमक्षतकलिः प्राप्तस्तदाचार्यकम्।
चित्रं चैत्यगृहे गृहीयति निजे गच्छे कुटुम्बीयति,
स्वं शक्रीयति बालिशीयति बुधान् विश्वं वराकीयति।।

याका **अर्थ**- देखो, क्षुधाकरि कृश कोई रंकका बालक सो कहीं चैत्यालयादिविषै दीक्षा धारि कोई पक्षकरि पापरहित न होता संता आचार्यपदको प्राप्त भया। बहुरि वह चैत्यालयविषै अपने गृहवत् प्रवर्तै है, निजगच्छविषै कुटुम्बवत् प्रवर्तै है, आपको इन्द्रवत् महान् मानै है, ज्ञानीनिको बालकवत् अज्ञानी मानै है, सर्वगृहस्थनिको रंकवत् मानै है सो यहु बड़ा आश्चर्य भया है। बहुरि **'यैर्जातो न च वर्द्धितो न च न च क्रीतो'** इत्यादि काव्य है। ताका अर्थ ऐसा है- जिनकरि जन्म न भया, बध्या नाहीं, मोल लिया नाहीं, देणदार भया नाहीं, इत्यादि कोई प्रकार सम्बन्ध नाहीं अर गृहस्थनिको वृषभवत् बहावै, जोरावरी दानादिक ले; सो हाय-हाय यहु जगत् राजाकरि रहित है, कोई न्याय पूछनेवाला नाहीं। ऐसे ही इस श्रद्धान के पोषक तहाँ काव्य हैं सो तिस ग्रन्थ तैं जानना।

यहाँ **कोऊ कहै**- ए तो श्वेतांबरविरचित उपदेश है तिनकी साक्षी काहेको दई?

ताका उत्तर- जैसे नीचा पुरुष जाका निषेध करै, ताका उत्तमपुरुषकै तो सहज ही निषेध भया। तैसे जिनकै वस्त्रादि उपकरण कहै, वे हू जाका निषेध करै, तो दिगम्बरधर्म्म विषै तो ऐसी विपरीतिका सहज ही निषेध भया। बहुरि दिगम्बर ग्रन्थनिविषै भी इस श्रद्धान के पोषक वचन हैं। तहाँ श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत षट्पाहुड़विषै (दर्शनपाहुड़ में) ऐसा कह्या है-

> दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
> तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो।।२।।

याका अर्थ-जिनवरकरि सम्यग्दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म्म उपदेश्या है। ताको सुनकरि हे कर्णसहित हो, यहु मानो-सम्यक्त्वरहित जीव वंदनेयोग्य नाहीं। जे आप कुगुरु ते कुगुरुका श्रद्धानसहित सम्यक्ती कैसे होय? बिना सम्यक्त अन्य धर्म्म भी न होय। धर्म्म बिना वंदने योग्य कैसे होय। बहुरि कहै हैं-

> जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।
> एदे भट्ठविभट्ठा सेसंपि जणं विणासंति।।८।। (द. पा.)

जे दर्शनविषै भ्रष्ट हैं, ज्ञानविषै भ्रष्ट हैं, चारित्रभ्रष्ट हैं, ते जीव भ्रष्टतैं भ्रष्ट हैं; और भी जीव जो उनका उपदेश मानै हैं, तिस जीव का नाश करै हैं, बुरा करै हैं। बहुरि कहै हैं-

> जे दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।
> ते हुंति लुल्लमूया बोही पुण दुल्लहा तेसिं।।१२।। (द.पा.)

जे आप तो सम्यक्ततैं भ्रष्ट हैं, अर सम्यक्त्वधारकनिको अपने पगो पड़ाया चाहै हैं, ते लूले गूंगे हो हैं; भाव यहु-स्थावर हो हैं। बहुरि तिनकै बोधि की प्राप्ति महादुर्लभ हो है।

> जे वि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जागारवभएण।
> तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं।।१३।। (द.पा.)

जो जानता हुवा भी लज्जागारवभयकरि तिनके पगां पड़ै हैं, तिनकै भी बोधि जो सम्यक्त सो नाहीं है। कैसे हैं ए जीव, पापकी अनुमोदना करते हैं। पापीनिका सम्मानादि किए तिस पापकी अनुमोदना का फल लागै है। बहुरि (सूत्र पाहुड़ में) कहै हैं -

> जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
> सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो।।१९।। (सूत्र पा.)

जिस लिंग के थोरा वा बहुत परिग्रह का अंगीकार होय सो जिनवचनविषै निंदा योग्य है। परिग्रहरहित ही अनगार हो है। बहुरि (भावपाहुड़ में) कहै हैं-

> धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो।
> णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण।।७१।। (भाव पा.)

याका **अर्थ**- जो धर्म्मविषै निरुद्यमी है, दोषनिका घर है, इक्षुफूल समान निष्फल है, गुण का आचरणकरि रहित है, सो नग्नरूपकरि नट श्रमण है, भांडवत् भेषधारी है। सो नग्न भए भांड का दृष्टांत सम्भवै है। परिग्रह राखै तो यह भी दृष्टांत बनै नाहीं।

जे पावमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि।।७८।। (मो.पा.)

याका **अर्थ**- पापकरि मोहित भई है बुद्धि जिनकी ऐसे जे जीव जिनवरनिका लिंग धारि पाप करै हैं, ते पापमूर्ति मोक्षमार्गविषै भ्रष्ट जानने। बहुरि ऐसा कह्या है।

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाही य जायणासीला।
आधाकम्मम्मिरया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि।।७६।। (मो.पा.)

याका **अर्थ**- जे पंचप्रकार वस्त्रविषै आसक्त हैं, परिग्रह के ग्रहणहारे हैं, याचनासहित हैं, अधःकर्म्म दोषनिविषै रत हैं, ते मोक्षमार्गविषै भ्रष्ट जानने। और भी गाथासूत्र तहाँ तिस श्रद्धानके दृढ़ करने को कारण कहे हैं ते तहांतैं जानने। बहुरि **कुन्दकुन्दाचार्यकृत लिंगपाहुड़ है,** तिसविषै मुनिलिंगधारि जो हिंसा, आरम्भ, यंत्रमंत्रादि करै हैं, ताका निषेध बहुत किया है। बहुरि **गुणभद्राचार्यकृत आत्मानुशासन** विषै ऐसा कह्या है-

इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावर्य्यां यथा मृगाः।
वनाद्वसन्त्युपग्रामं कलौ कष्टं तपस्विनः ।।१६७।।

याका **अर्थ**- कलिकालविषै तपस्वी मृगवत् इधर-उधरतैं भयवान होय बनतैं नगर के समीप बसै हैं, यहु महाखेदकारी कार्य भया है। यहाँ नगर-समीप ही रहना निषेध्या, तो नगरविषै रहना तो निषिद्ध भया ही।

विशेष- चतुर्थकाल में भी मुनिराज नगरों के समीप चातुर्मास स्थापित करते थे। सप्तर्षि चारण ऋद्धिधारी ने मथुरा नगरी के समीप वटवृक्ष के नीचे चातुर्मास स्थापित किया था। (**पद्म पुराण ६२/८**)। उस विशाल वटवृक्ष के नीचे उनका आश्रम था (**वही, ६२/२६**)। उस आश्रम में श्रावकों की दृष्टि से निर्मापित प्याऊ, धार्मिक नाटकगृह, धर्मसंगीतशाला भी थी। (**वही ६२/४३**)। इस प्रकार चतुर्थकाल में भी मथुरापुरी में सप्तर्षियों ने निवास किया था। (**६२/६१**) चतुर्थकाल में भी मुनिराज खाली घरों तथा मन्दिरों में अवश्य चातुर्मास करते थे। (**पद्मपुराण पर्व ६२ श्लोक १८-१६ तथा २२**)

मूलाचार ७८५ में कहा है कि "गामेयरादि णयरे पंचाहवासिणो धीरा। फासुविहारी विवित्तएगंत वासी य।" **अर्थ**- जो ग्राम में एक रात और नगर में पाँच दिन तक रहते हैं वे साधु धैर्यवान् प्रासुकविहारी हैं, स्त्री आदि से रहित एकान्त जगह में रहते हैं। **बोधपाहुड टीका ४२** में

लिखा है कि "वसिते वा ग्रामनगसदौ वा स्थातव्यम्, ग्रामे विशेषेण न स्थातव्यम्" अर्थ- अथवा वसतिका या ग्राम- नगरादि में ठहरना चाहिए। नगर में पाँच रात ठहरना चाहिए, ग्राम में विशेष नहीं ठहरना चाहिए। भगवती आराधना (गाथा ४२३ आचेलक्कु....) की विजयोदया टीका में कहा है कि छहों ऋतुओं में एक-एक मास तक ही एक स्थान पर रहना और अन्य समय में विहार करना नवम स्थितिकल्प है। पृष्ठ ३३३ जीवराज ग्रन्थमाला। पद्मपुराण १०६/३० में लिखा है कि "धनदत्तो....अस्तंगते भानौ श्रमणाश्रममागमत्" अर्थात् धनदत्त सूर्यास्त होने पर मुनियों के आश्रम में पहुँचा। (पृ. ३०१ भाग ३ ज्ञानपीठ प्रकाशन)

उक्त आगमों में स्पष्टतः नगर, ग्राम, आश्रम में मुनियों का रहना मूल में ही लिखा है। सारतः वनवासित्व तो साधु के लिए श्रेष्ठ ही है पर नगर, ग्राम अथवा आश्रम में वास करने से मुनिपना नष्ट हो जावे ऐसा नियम नहीं है। हीन सहंनन वाले साधु भले ही नगरादि में रहें, इसके लिए ऊपर लिखा आगम प्रमाण है।

वरं गार्हस्थ्यमेवाद्य तपसो भाविजन्मनः।
सुस्त्रीकटाक्षलुण्टाकलुप्तवैराग्यसम्पदः ।।२००।।

याका अर्थ- अबार होनहार है अनंतसंसार जातैं ऐसे तपतैं गृहस्थपना ही भला है। कैसा है वह तप, प्रभात ही स्त्रीनिके कटाक्षरूपी लुटेरेनिकरि लूटी है वैराग्य संपदा जाकी, ऐसा है। बहुरि योगीन्दुदेवकृत परमात्मप्रकाशविषै ऐसा कह्या है-

चिल्लाचिल्लीपुत्थयहिं, तूसइ मूढ णिभंतु।
एयहिं लज्जइ णाणियउ, बंधहहेउ मुणंतु।।२१४।।

चेला-चेली पुस्तकनिकरि मूढ़ संतुष्ट हो है। भ्रान्ति रहित ऐसा ज्ञानी उसे बंधका कारण जानता संता इनिकरि लज्जायमान हो है।

केणवि अप्पउ वंचियउ, सिरु लुंचि वि छारेण।
सयलु वि संग ण परिहरिय, जिणवरलिंगधरेण।।२१६।।

किसी जीवकरि अपना आत्मा ठिग्या। सो कौन? जिहिं जीव जिनवरका लिंग धारया अर राखकरि माथाका लोचकरि समस्त परिग्रह छांड्या नाहीं।

जे जिणलिंग धरेवि मुणि इट्ठपरिग्गह लिंति।
छद्दिकरेविणु ते वि जिय, सो पुण छद्दि गिलंति।।२१७।।

याका अर्थ- हे जीव! जे मुनि जिनलिंग धारि इष्ट परिग्रहको ग्रहै हैं, ते छर्दि करि तिस ही छर्दिकूं बहुरि भखै हैं। भाव- यहु निंदनीय है इत्यादि तहाँ कहे हैं।

ऐसे शास्त्रनिविषै कुगुरुका वा तिनके आचरनका वा तिनकी सुश्रूषाका निषेध किया है, सो जानना। बहुरि जहाँ मुनिकै धात्रीदूतआदि छयालीस दोष आहारादिविषै कहे हैं, तहाँ गृहस्थनिके बालकनिको प्रसन्न करना, समाचार कहना, मंत्र-औषधि-ज्योतिषादि कार्य बतावना इत्यादि, बहुरि किया कराया अनुमोद्या भोजन लेना इत्यादि क्रिया का निषेध किया है। सो अब कालदोषतैं इनही दोषनिको लगाय आहारादि ग्रहै हैं।

बहुरि पार्श्वस्थ कुशीलादि भ्रष्टाचारी मुनिनका निषेध किया है, तिन ही का लक्षणनिको धरै हैं। इतना विशेष-वे द्रव्यां तो नग्न रहै हैं, ए नाना परिग्रह राखै हैं। बहुरि तहाँ मुनिनकै भ्रमरी आदि आहार लेनेकी विधि कही है। ए आसक्त होय दातारके प्राण पीड़ि आहारादि ग्रहै हैं। बहुरि गृहस्थधर्म्मविषै भी उचित नाहीं वा अन्याय लोकनिंद्य पापरूप कार्य तिनको करते प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि जिनबिम्ब शास्त्रादिक सर्वोत्कृष्ट पूज्य तिनका तो अविनय करै है। बहुरि आप तिनतैं भी महंतता राखि ऊंचा बैठना आदि प्रवृत्तिको धारै हैं। इत्यादि अनेक विपरीतता प्रत्यक्ष भासै अर आपको मुनि मानै, मूलगुणादिकके धारक कहावै। ऐसे ही अपनी महिमा करावै। बहुरि गृहस्थ भोले उनकरि प्रशंसादिककरि ठिगे हुए धर्म्मका विचार करै नाहीं। उनकी भक्तिविषै तत्पर हो हैं। सो बड़े पापको बड़ा धर्म्म मानना, इस मिथ्यात्वका फल कैसे अनंत संसार न होय। एक जिनवचनको अन्यथा मानै महापापी होना शास्त्रविषै कह्या है। यहाँ तो जिनवचनकी किछू बात ही राखी नाहीं। इस समान और पाप कौन है?

अब यहाँ कुयुक्तिकरि जे तिनि कुगुरुनिका स्थापन करै हैं, तिनका निराकरण कीजिए है तहाँ **वह कहै है,**- गुरु बिना तो निगुरा होय अर वैसे गुरु अबार दीसै नाहीं। तातैं इनहीको गुरु मानना।

ताका उत्तर- निगुरा तो वाका नाम है, जो गुरु मानै ही नाहीं। बहुरि जो गुरु को तो मानै अर इस क्षेत्रविषै गुरुका लक्षण न देखि काहूको गुरु न मानै, तो इस श्रद्धानतैं तो निगुरा होता नाहीं। जैसे नास्तिक्य तो वाका नाम है, जो परमेश्वर को मानै ही नाहीं। बहुरि जो परमेश्वरको तो मानै अर इस क्षेत्रविषै परमेश्वरका लक्षण न देखि काहू को परमेश्वर न मानै, तो नास्तिक्य तो होता नाहीं। तैसे ही यहु जानना।

बहुरि **वह कहै है,** जैनशास्त्रनिविषै अबार केवलीका तो अभाव कह्या है, मुनिका तो अभाव कह्या नाहीं।

ताका उत्तर-ऐसा तो कह्या नाहीं, इनि देशनिविषै सद्भाव रहैगा : भरतक्षेत्रविषै कहै हैं, सो भरतक्षेत्र तो बहुत बड़ा है। कहीं सद्भाव होगा, तातैं अभाव न कह्या है। जो तुम रहो हो तिस ही क्षेत्रविषै सद्भाव मानोगे, तो जहाँ ऐसे भी गुरु न पावोगे, तहाँ जावोगे तब किसको गुरु मानोगे। जैसे हंसनिका सद्भाव अबार कह्या है अर हंस दीसते नाहीं, तो और पक्षीनिको तो हंस मान्या जाता नाहीं। तैसे मुनिनिका सद्भाव अबार कह्या है अर मुनि दीसते नाहीं, तो औरनिको तो मुनि मान्या जाय नाहीं।

बहुरि **वह कहै है,** एक अक्षर के दाता को गुरु मानै हैं। जे शास्त्र सिखावै वा सुनावै, तिनको गुरु कैसे न मानिए?

ताका उत्तर- गुरु नाम बड़े का है। सो जिस प्रकार की महंतता जाकै संभवै, तिस प्रकार ताकौं गुरुसंज्ञा संभवै। जैसे कुल अपेक्षा माता-पिताको गुरु संज्ञा है, तैसे ही विद्या पढ़ावनेवाले को विद्या अपेक्षा गुरु संज्ञा है। यहाँ तो धर्म्मका अधिकार है। तातैं जाकै धर्म्म अपेक्षा महंतता संभवै, सो गुरु जानना। सो धर्म्म नाम चारित्रका है। 'चारित्तं खलु धम्मो' [१] ऐसा शास्त्रविषै कह्या है। तातैं चारित्रका धारकहीको गुरु संज्ञा है। बहुरि जैसे भूतादिका भी नाम देव है, तथापि यहाँ देवका श्रद्धानविषै अरहंतदेव ही का ग्रहण है तैसे औरनिका भी नाम गुरु है, तथापि इहाँ श्रद्धानविषै निर्ग्रंथही का ग्रहण है। सो जिनधर्म्म विषै अरहंत देव निर्ग्रंथ गुरु ऐसा प्रसिद्ध वचन है।

यहाँ प्रश्न- जो निर्ग्रंथ बिना और गुरु न मानिए सो कारण कहा?

ताका उत्तर- निर्ग्रंथबिना अन्य जीव सर्व प्रकारकरि महंतता नाहीं धरै हैं। जैसे लोभी शास्त्रव्याख्यान करै, तहाँ वह वाको शास्त्र सुनावनेतैं महंत भया। वह वाको धनवस्त्रादि देनेतैं महंत भया। यद्यपि बाह्य शास्त्र सुनावनेवाला महंत रहै तथापि अन्तरंग लोभी होय सो सर्वथा महंतता न भई।

यहाँ कोऊ कहै, निर्ग्रंथ भी तो आहार ले हैं।

ताका उत्तर- लोभी होय दातार की सुश्रूषाकरि दीनतातैं आहार न ले हैं। तातैं महंतता घटै नाहीं। जो लोभी होय सो ही हीनता पावै है। ऐसे ही अन्य जीव जानने। तातैं निर्ग्रंथ ही सर्वप्रकार महंततायुक्त है। बहुरि निर्ग्रंथ बिना अन्य जीव सर्वप्रकार गुणवान नाहीं। तातैं गुणनिकी अपेक्षा महंतता अर दोषनिकी अपेक्षा हीनता भासै, तब निःशंक स्तुति कीनी जाय नाहीं। बहुरि निर्ग्रंथ बिना अन्य जीव जो धर्म्म साधन करै, तैसा वा तिसतैं अधिक गृहस्थ भी धर्म्म साधन करि सकै। तहाँ गुरु संज्ञा किसको होय? तातैं बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ मुनि है, सोई गुरु जानना।

यहाँ कोऊ कहै, ऐसे गुरु तो अबार यहाँ नाहीं, तातैं जैसे अरहंत की स्थापना प्रतिमा है, तैसे गुरुनिकी स्थापना ए भेषधारी हैं-

ताका उत्तर- जैसे राजाकी स्थापना चित्रामादिककरि करै तो राजा का प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य मनुष्य आपको राजा मनावै तो राजाका प्रतिपक्षी हो है। तैसे अरहंतादिककी पाषाणादि विषै स्थापना बनावै तो तिनका प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य मनुष्य आपको मुनि मनावै तो वह मुनिनका प्रतिपक्षी भया। ऐसे भी स्थापना होती होय तो अरहंत भी आपको मनावो। बहुरि जो उनकी स्थापना भए है तो बाह्य तो वैसे ही भए चाहिए। वे निर्ग्रंथ, ए बहुत परिग्रहके धारी, यह कैसे बनै?

बहुरि कोई कहै है- अब श्रावक भी तो जैसे सम्भवै तैसे नाहीं। तातैं जैसे श्रावक तैसे मुनि।

ताका उत्तर- श्रावकसंज्ञा तो शास्त्रविषै सर्व गृहस्थ जैनीको है। श्रेणिक भी असंयमी था, ताको उत्तरपुराणविषै श्रावकोत्तम कह्या। बारहसभाविषै श्रावक कहे, तहाँ सर्व व्रतधारी न थे। जो सर्वव्रतधारी होते, तो असंयत मनुष्यनिकी जुदी संख्या कहते, सो कही नाहीं। तातैं गृहस्थ जैनी श्रावक नाम पावै है अर

---

१. प्रवचनसार १/७।

मुनिसंज्ञा तो निर्ग्रन्थ बिना कहीं-कही नाहीं। बहुरि **श्रावककै तो आठ मूलगुण कहे हैं।**[1] सो मद्य मांस मधु पंचउदंबरादि फलनिका भक्षण श्रावकनिकै है नाहीं, तातैं काहू प्रकारकरि श्रावकपना तो सम्भवै भी है। अर मुनिकै अट्ठाईस मूलगुण हैं, सो भेषीनिकै दीसते ही नाहीं। तातैं मुनिपनो काहू प्रकार सम्भवै नाहीं। बहुरि गृहस्थ अवस्थाविषै तो पूर्वे जम्बूकुमारादिक बहुत हिंसादि कार्य किये सुनिए हैं। मुनि होयकरि तो काहूने हिंसादिक कार्य किए नाहीं, परिग्रह राखे नाहीं, तातैं ऐसी युक्ति कार्यकारी नाहीं। बहुरि देखो, आदिनाथजी के साथ च्यारि हजार राजा दीक्षा लेय बहुरि भ्रष्ट भए, तब देव उनको कहते भए, जिनलिंगी होय अन्यथा प्रवर्त्तोगे तो हम दंड देंगे। जिनलिंग छोरि तुम्हारी इच्छा होय, सो तुम जानो। तातैं जिनलिंगी कहाय अन्यथा प्रवर्तै, ते तो दंड योग्य हैं। वंदनादि योग्य कैसे होय? अब बहुत कहा कहिए, जिनमत विषै कुभेष धारै हैं ते महापाप उपजावै हैं। अन्य जीव उनकी सुश्रूषा आदि करै हैं, ते भी पापी हो हैं। **पद्मपुराणविषै** यह कथा है-जो श्रेष्ठी धर्मात्मा चारण मुनिनिको भ्रमतैं भ्रष्ट जानि आहार न दिया तो **प्रत्यक्ष भ्रष्ट तिनको दानादिक देना कैसे सम्भवै?**

विशेष-पद्मपुराण में यह कथा **पर्व ६२** में आई है। इसका विशिष्ट कथन इस प्रकार है-

(१) यद्यपि धर्मात्मा श्रेष्ठी ने भ्रम से भ्रष्ट जान कर उन मुनियों को आहार नहीं दिया परन्तु उन्हीं मुनियों को उसी समय धर्मात्मा सेठ अर्हद्दत्त की सम्यग्दृष्टि (गृहीतार्था) पत्नी ने तो आहार दिया ही था। **(प.पु. ६२/२१)**

(२) उक्त धर्मात्मा श्रेष्ठी अर्हद्दत्त को बाद में उसी दिन जब यह ज्ञात हुआ कि "वे तो महासम्यक्त्वी तथा चारणऋद्धिधारी थे, अतः मथुरा में चातुर्मासरत होने पर भी आकाशमार्ग से अयोध्या में आहार हेतु आगये थे" तो ऐसा ज्ञात होने पर उस धर्मात्मा श्रेष्ठी की जो मनोदशा हुई,

१. **आचार्य समन्तभद्र** ने **रत्नकरण्ड श्रावकाचार** में पाँच अणुव्रत-पालन तथा मद्य-मांस-मधु का त्याग, इस तरह आठ मूलगुण कहे हैं। (र.क.श्रा. ६६) **चारित्रसार** में पाँच अणुव्रत तथा मद्य-मांस-द्यूत (जुआ) को आठ मूलगुण कहा है। (चारित्रसार पृ. ३० श्रीमहावीरजी प्रकाशन) **आचार्य पद्मनन्दी** ने मद्य-मांस-मधु तथा पंच उदुम्बर फलों के त्याग को ८ मूलगुण कहा है। (प.पं. ६/२३)। **शिवकोटि** ने रत्नमाला में मद्य-मांस-मधु के त्याग के साथ पाँच अणुव्रत-पालन को अष्ट मूलगुण कहा है। उन्होंने यह भी कहा है कि पाँच उदुम्बरों के त्याग सहित मद्य-मांस-मधु के त्याग रूप ८ मूलगुण तो बालकों के लिए है। (पञ्चोदुम्बरैस्वाभ्रकेष्वपि) **पण्डित आशाधरजी** ने कहा है कि

मद्यपलमधुनिशासन-पंचफलीविरति-पंचकाप्तनुती ।
जीवदयाजलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः ।।

– सागरधर्मामृत २/१८ पृ. ६३ ज्ञानपीठ

अर्थ : मद्य-मांस-मधु का त्याग, रात्रिभोजनत्याग, पंच उदुम्बर फलत्याग, त्रिकाल देव-वन्दना, जीवदया तथा छना पानी पीना – ये आठ मूलगुण हैं।

जिन धर्माचार्यों ने आज के श्रावक को लक्ष्य कर ये ८ मूलगुण कहे हैं, उन्होंने यह भी कहा है कि इनमें से एक के बिना भी गृहस्थ कहलाने का पात्र नहीं है। (सा.ध. २/१८ टीका का श्लोक) अर्थात् वह श्रावक कहलाने का पात्र नहीं है।

उसको उसीके शब्दों में पढ़िए-"यथार्थ अर्थ को नहीं समझने वाले मुझ (श्रेष्ठी) मिथ्यादृष्टि को धिक्कार हो। मेरा यह अनिष्ट आचरण अयुक्त था, अनुचित था, मेरे समान दूसरा अधार्मिक नहीं है। इस समय मुझसे बढ़कर दूसरा मिथ्यादृष्टि कौन होगा जिसने उठ कर मुनियों की पूजा नहीं की तथा नमस्कार कर उन्हें आहार से सन्तुष्ट नहीं किया। जो मुनिको देख कर आसन नहीं छोड़ता है तथा देख कर उनका अपमान करता है, वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है। मैं पापी हूँ, पापकर्मा हूँ, पाप का पात्र हूँ अथवा जिनागम की श्रद्धा से दूर रहने वाला जो कोई निन्द्यतम है, वह मैं हूँ। **मैंने यह पाप अहंकार से किया है।** (प. पु. ९२/३२-३७) इस प्रकार अर्हद्दत्त सेठ बहुत ही खिन्न हो पश्चात्ताप से सन्तप्त हो गया। (प. पु. ९२/३१)।

(३) मान्य व्रती विद्वान् पूज्य **डॉ. पण्डित पन्नालाल जी साहित्याचार्य, जबलपुर** लिखते हैं कि मुनियों की परीक्षा करना अनुचित नहीं है परन्तु निर्णय लेने में उतावली (जल्दी) नहीं करनी चाहिए। ये मुनि वर्षाऋतु में विहार करते हैं, मात्र इतना ही देख कर उनकी भक्ति नहीं की। परन्तु बाद में आचार्य द्युति भट्टारक के कहने से उन्हें चारण ऋद्धि वाले जानकर पछताया।

परीक्षा में इतना विचार करना पर्याप्त होता है कि ये मुनि मिथ्यात्व के पोषक तथा पञ्च पापों के समर्थक तो नहीं हैं? परीक्षा में पन्थवाद का उपयोग श्रेयस्कर नहीं जान पड़ता। (पत्र, दिनांक १९-९-९२ ई.)

(४) **पद्मपुराण** में तो यह भी लिखा है कि "साधु में यदि यथार्थ दोष भी देखा हो तो भी जैनी को नहीं कहना चाहिए और कोई दूसरा उसे कहता भी हो तो उसे सब प्रकार से रोकना चाहिए।" **ये वचन सकलभूषण केवली के हैं।** (प.पु. १०६/२३२ पृ. ३१५ ज्ञानपीठ) मूल इस प्रकार है-

दृष्टः सत्योऽपि दोषो न वाच्यो जिनमतश्रिता।
उच्यमानो च वान्येन, वार्यः सर्वप्रयत्नतः।।

.....इति श्रुत्वा मुनीन्द्रस्य भाषितं....... (पद्मपुराण १०६/२३२ से २३६)

(५) सीता के जीव ने वेदवती नामक स्त्री की पर्याय में एक मुनि को अकेली आर्यिका के पास बैठे हुए तथा बात करते हुए देखा। फिर उस वेदवती ने लोगों के सामने उक्त मुनि की निन्दा की (कि सुन्दर स्त्री से एकान्त में बात कर रहे हैं, इत्यादि)। जिसके फलस्वरूप उसी वेदवती के जीव को सीता (राम की पत्नी) की पर्याय में इतने बड़े कलंक का भाजन बनना पड़ा कि युगों बाद आज भी जगत् जानता है। (पद्मपुराण १०६/२२४ से २३१ पृ. ३१५ भाग ३ ज्ञानपीठ)

यहाँ कोऊ कहै, हमारे अंतरंग विषै श्रद्धान तो सत्य है परन्तु बाह्य लज्जादिकरि शिष्टाचार करै हैं, सो फल तो अंतरंग का होगा?

ताका उत्तर-षट्पाहुडविषै लज्जादिकरि वन्दनादिकका निषेध दिखाया था, सो पूर्वै ही कह्या था, बहुरि कोऊ जोरावरी मस्तक नमाय हाथ जुड़ावै, तब तो यह सम्भवै जो हमारा अन्तरंग न था। अर आप ही मानादिकतैं नमस्कारादि करै, तहाँ अन्तरंग कैसे न कहिए। जैसे कोई अंतरंग विषै तो मांसको बुरा जानै अर राजादिकका भला मनावनेको मांस भक्षण करै, तो वाको व्रती कैसे मानिए? तैसे अंतरंगविषै तो कुगुरुसेवनको बुरा जानै अर तिनका वा लोकनिका भला मनावनेको सेवन करै, तो श्रद्धानी कैसे कहिए। जातैं बाह्यत्याग किए ही अंतरंग त्याग सम्भवै है। तातैं जे श्रद्धानी जीव हैं, तिनको काहू प्रकारकरि भी कुगुरुनिकी सुश्रूषाआदि करनी योग्य नाहीं। या प्रकार कुगुरुसेवनका निषेध किया।

यहाँ कोई कहै- काहू तत्त्वश्रद्धानीको कुगुरु-सेवनतैं मिथ्यात्व कैसे भया?

ताका उत्तर- जैसे शीलवती स्त्री परपुरुषसहित भर्तारवत् रमण क्रिया सर्वथा करै नाहीं, तैसे तत्त्वश्रद्धानी पुरुष कुगुरु सहित सुगुरुवत् नमस्कारादिक्रिया सर्वथा करै नाहीं। काहेतैं, यह तो जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धानी भया है। तहाँ रागादिकको निषिद्ध श्रद्धहै है, वीतराग भाव को श्रेष्ठ मानै है। तातैं जिनकै वीतरागता पाईए, ऐसेही गुरुको उत्तम जानि नमस्कारादि करै है। जिनकै रागादिक पाईए, तिनको निषिद्ध जानि नमस्कारादि कदाचित् करै नाहीं।

कोऊ कहै-जैसे राजादिकको करै, तैसे इनको भी करै है।

ताका उत्तर- राजादिक धर्म्मपद्धति विषै नाहीं। गुरुका सेवन धर्म्मपद्धतिविषै है। सो राजादिकका सेवन तो लोभादिकतैं हो है। तहाँ चारित्रमोह ही का उदय सम्भवै है। अर गुरुनिकी जायगा कुगुरुनिको सेए, वहाँ तत्त्वश्रद्धान के कारण गुरु थे, तिनतैं प्रतिकूली भया। सो लज्जादिकतैं जानै कारणविषै विपरीतता निपजाई, ताकै कार्यभूत तत्त्व श्रद्धानविषै दृढ़ता कैसे सम्भवै? तातैं तहाँ दर्शनमोहका उदय सम्भवै है। ऐसे कुगुरुनिका निरूपण किया।

कुधर्म का निरूपण और उसके श्रद्धानादिकका निषेध

अब कुधर्म्मका निरूपण कीजिए है-

जहाँ हिंसादिक पाप उपजै वा विषयकषायनिकी वृद्धि होय, तहाँ धर्म मानिए, सो कुधर्म जानना। तहाँ यज्ञादिक क्रियानिविषै महा हिंसादिक उपजावै, बड़े जीवनिका घात करै अर तहाँ इन्द्रियनिके विषय पोषै। तिन जीवनिविषै दुष्ट बुद्धिकरि रौद्रध्यानी होय तीव्रलोभतैं औरनिका बुरा करि अपना कोई प्रयोजन साध्या चाहै, ऐसा कार्य करि तहाँ धर्म मानै सो कुधर्म है। बहुरि तीर्थनिविषै वा अन्यत्र स्नानादि कार्य करै, तहाँ बड़े छोटे घने जीवनिकी हिंसा होय, शरीर को चैन उपजै, तातैं विषयपोषण होय, तातैं कामादिक बधै, कुतूहलादिक करि तहाँ कषाय भाव बधावै, बहुरि तहां धर्म मानै सो यह कुधर्म है। बहुरि संक्रांति, ग्रहण,

व्यतीपातादिक (श्राद्ध) विषै दान दे वा खोटा ग्रहादिक के अर्थि दान दे, बहुरि पात्र जानि लोभी पुरुषनिको दान दे, बहुरि दान देनेविषै सुवर्ण हस्ती घोड़ा तिल आदिक वस्तुनिको दे, सो संक्रांति आदि पर्व धर्मरूप नाहीं। ज्योतिषी संचारादिककरि संक्रांतिआदि हो है। बहुरि दुष्टग्रहादिकके अर्थि दिया, सो तहाँ भय लोभादिकका आधिक्य भया। तातैं तहाँ दान देनेमें धर्म नाहीं। बहुरि लोभी पुरुष देने योग्य पात्र नाहीं। जातैं लोभी नाना असत्ययुक्ति करि ठिगै हैं। किछू भला करते नाहीं। भला तो तब होय, जब याका दान का सहाय करि वह धर्म साधै। सो वह तो उलटा पापरूप प्रवर्तै। पापका सहाईका भला कैसे होय? सो ही रयणसार शास्त्रविषै कह्या है-

सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणं फलाण सोहं वा।
लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा - सवं जाणे।।२६।।

याका अर्थ- सत्पुरुषनिको दान देना कल्पवृक्षनिके फलनिकी शोभा समान है, शोभा भी है अर सुखदायक भी है बहुरि लोभी पुरुषनिको दान देना जो होय, सो शव जो मरद्या ताका विमान जो चकडोल ताकी शोभा समान जानहु। शोभा तो होय परन्तु धनीको परम दुःखदायक हो है। तातैं लोभी पुरुषनिको दान देनेमें धर्म नाहीं, बहुरि द्रव्य तो ऐसा दीजिए, जाकरि वाकै धर्म बधै। सुवर्ण हस्तीआदि दीजिए, तिनिकरि हिंसादिक उपजै वा मान लोभादिक बधै। ताकरि महापाप होय। ऐसी वस्तुनिका देने वाला को पुन्य कैसे होय। बहुरि विषयासक्त जीव रतिदानादिकविषै पुण्य ठहरावै है। सो प्रत्यक्ष कुशीलादिक पाप जहाँ होय, तहाँ पुण्य कैसे होय। अर युक्ति मिलावनेको कहै जो वह स्त्री सन्तोष पावै है। तो स्त्री तो विषयसेवन किए सुख पावै ही पावै, शीलका उपदेश काहेको दिया। रतिसमय बिना भी वाका मनोरथ अनुसार न प्रवर्ते दुःख पावै। सो ऐसी असत्य युक्ति बनाय विषयपोषनेका उपदेश दे हैं। ऐसे ही दयादान वा पात्रदान बिना अन्य दान देय धर्म मानना सर्व कुधर्म है।

बहुरि व्रतादिक करिकै तहाँ हिंसादिक वा विषयादिक बधावै है। सो व्रतादिक तो तिनको घटावनेके अर्थि कीजिए है। बहुरि जहाँ अन्नका तो त्याग करै अर कंदमूलादिकनिका भक्षण करै, तहाँ हिंसा विशेष भई- स्वादादिकविषय विशेष भए। बहुरि दिवस विषै तो भोजन करै नाहीं अर रात्रिविषै करै। सो प्रत्यक्ष दिवसभोजनतैं रात्रिभोजनविषै हिंसा विशेष भासै, प्रमाद विशेष होय। बहुरि व्रतादिकरि नाना शृंगार बनावै, कुतूहल करै, जूवा आदि रूप प्रवर्तै, इत्यादि पापक्रिया करै। बहुरि व्रतादिकका फल लौकिक इष्टकी प्राप्ति, अनिष्टका नाशको चाहै, तहाँ कषायनिकी तीव्रता विशेष भई। ऐसे व्रतादिकरि धर्म मानै है, सो कुधर्म है।

मिथ्या व्रत, भक्ति, तपादि का निषेध

बहुरि भक्त्यादिकार्यनिविषै हिंसादिक पाप बधावै वा गीत - नृत्यगानादिक वा इष्ट भोजनादिक वा अन्य सामग्रीनिकरि विषयनिको पोषै, कुतूहल प्रमादादिरूप प्रवर्तै। तहाँ पाप तो बहुत उपजावै अर धर्मका किछू साधन नाहीं, तहाँ धर्म मानै सो सब कुधर्म है।

बहुरि केई शरीरको तो क्लेश उपजावै अर तहाँ हिंसादिक निपजावै वा कषायादिरूप प्रवर्तै। जैसे

पंचाग्नि तापै, सो अग्निकरि बड़े छोटे जीव जलै, हिंसादिक बधै, यामैं धर्म कहा भया। बहुरि औंधेमुख झूलै, ऊर्ध्व बाहु राखै, इत्यादि साधन करै तहाँ क्लेश ही होय; किछू ए धर्म के अंग नाहीं। बहुरि पवन साधन करै, तहाँ नेती धोती इत्यादि कार्यनिविषै जलादिक करि हिंसादिक उपजै, चमत्कार कोई उपजै, तातैं मानादिक बधै, किछू तहाँ धर्मसाधन नाहीं। इत्यादि क्लेश करै, विषयकषाय घटावनेका कोई साधन करै नाहीं। अंतरंग विषै क्रोध मान माया लोभ का अभिप्राय है, वृथा क्लेशकरि धर्म मानै है, सो कुधर्म है।

आत्मघात से धर्म का निषेध

बहुरि केई इस लोक विषै दुःख सह्या न जाय वा परलोकविषै इष्ट की इच्छा वा अपनी पूजा बढ़ावने के अर्थि वा कोई क्रोधादिकरि अपघात करै। जैसे पतिवियोगतैं अग्निविषै जलकरि सती कहावै है वा हिमालय गलै है, काशीकरोत ले है, जीवित मांही ले है, इत्यादि कार्यकरि धर्म मानै है। सो अपघातका तो बड़ा पाप है। जो शरीरादिकतैं अनुराग घट्या था तो तपश्चरणादि किया होता, मरि जाने में कौन धर्म का अंग भया। तातैं अपघात करना कुधर्म है। ऐसे ही अन्य भी घने कुधर्मके अंग हैं। कहाँ ताईं कहिए, **जहाँ विषय कषाय बधै अर धर्म मानिए, सो सर्व कुधर्म जानने।**

जैनधर्म में कुधर्म-प्रवृत्ति का निषेध

देखो कालका दोष, जैनधर्म विषै भी कुधर्मकी प्रवृत्ति भई। जैनमतविषै जे धर्मपर्व कहे हैं, तहाँ तो विषय कषाय छोरि संयमरूप प्रवर्त्तना योग्य है। ताको तो आदरै नाहीं अर व्रतादिकका नाम धराय तहाँ नाना शृंगार बनावै वा इष्ट भोजनादि करै वा कुतूहलादि करै वा कषाय बधावनेके कार्य करै, जूवा इत्यादि महापाप रूप प्रवर्तै।

बहुरि पूजनादि कार्यनिविषै उपदेश तो यहु था **'सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ दोषाय नालं'**[1] पापका अंश बहुत पुण्य समूहविषै दोषके अर्थ नाहीं। इस छलकरि पूजाप्रभावनादि कार्यनिविषै रात्रि विषै दीपकादिकरि वा अनन्तकायादिकका संग्रहकरि वा अयत्नाचार प्रवृत्तिकरि हिंसादिरूप पाप तो बहुत उपजावै अर स्तुति भक्ति आदि शुभ परिणामनिविषै प्रवर्तै नाहीं वा थोरे प्रवर्तै, सो टोटा घना नफा थोरा वा नफा किछू नाहीं। ऐसा कार्य करने में तो बुरा ही दीखना होय।

बहुरि जिनमंदिर तो धर्मका ठिकाना है। तहाँ नाना कुकथा करनी, सोवना इत्यादिक प्रमाद रूप प्रवर्तै वा तहाँ बाग-बाड़ी इत्यादि बनाय विषयकषाय पोषै। बहुरि लोभी पुरुषनिको गुरु मानि दानादिक दें वा तिनकी असत्य स्तुतिकरि महंतपनो मानै, इत्यादि प्रकार करि विषयकषायनिको तो बधावै अर धर्म मानै। सो जिनधर्म तो वीतरागभावरूप है। तिस विषै ऐसी विपरीत प्रवृत्ति कालदोषतैं ही देखिए है। या प्रकार कुधर्म सेवन का निषेध किया।

---

१. पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य, सावद्यलेशोबहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ।। - बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र।।५८।।

कुधर्मसेवन से मिथ्यात्वभाव

अब इस विषै मिथ्यात्वभाव कैसे भया, सो कहिए है--

तत्त्वश्रद्धान करनेविषै प्रयोजनभूत एक यह है, रागादिक छोड़ना। इस भाव का नाम धर्म्म है। जो रागादिक भावनिको बधाय धर्म्म मानै, तहाँ तत्त्व श्रद्धान कैसे रह्या? बहुरि जिन आज्ञातैं प्रतिकूली भया। बहुरि रागादिक भाव तो पाप है तिनको धर्म्म मान्या, सो यह झूंठ श्रद्धान भया। तातैं कुधर्म सेवनविषै मिथ्यात्व भाव है। ऐसे कुदेव कुगुरु कुशास्त्र सेवन विषै मिथ्यात्व भावकी पुष्टता होती जानि याका निरूपण किया। सोई **षट्पाहुड़ (मोक्खपा.) विषै कह्या है-**

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो दु।।९२।।

याका अर्थ- जो लज्जातैं वा भयतैं वा बड़ाईतैं भी कुत्सित देवको वा कुत्सित धर्म्मको वा कुत्सित लिंगको वंदै है सो मिथ्यादृष्टी हो है। तातैं जो मिथ्यात्वका त्याग किया चाहैं, सो पहले कुदेव कुगुरु कुधर्म्मका त्यागी होय। सम्यक्त्व के पच्चीस मलनिके त्याग विषै भी अमूढ़दृष्टि विषै वा षडायतनविषै इनहीका त्याग कराया है। तातैं इनका अवश्य त्याग करना। बहुरि कुदेवादिकके सेवनतैं जो मिथ्यात्वभाव हो है, सो यह हिंसादिक पापनितैं बड़ा पाप है। या के फलतैं निगोद नरकादि पर्याय पाईए है। तहाँ अनंतकाल पर्यंत महासंकट पाईए है। सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति महादुर्लभ होय जाय है। सो ही **षट्पाहुड़ विषै (भावपाहुड़ में)** कह्या है-

कुच्छियधम्मम्मि-रओ, कुच्छिय पासंडि भत्तिसंजुत्तो।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छिय गइभायणो होइ।।१४०।।

याका अर्थ- जो कुत्सितधर्म्मविषै रत है, कुत्सित पाखंडीनिकी भक्तिकरि संयुक्त है, कुत्सित तपको करता है, सो जीव कुत्सित जो खोटी गति ताको भोगनहारा हो है। सो हे भव्य हो, किंचिन्मात्रलोभतैं वा भयतैं कुदेवादिकका सेवनकरि जातैं अनन्तकालपर्यंत महादुःख सहना होय ऐसा मिथ्यात्वभाव करना योग्य नाहीं। जिनधर्म्म विषै यह तो आम्नाय है, पहलै बड़ा पाप छुड़ाय पीछै छोटा पाप छुड़ाया। सो इस मिथ्यात्वको सप्तव्यसनादिकतैं भी बड़ा पाप जानि पहलै छुड़ाया है। तातैं जे पापके फलतैं डरै हैं, अपने आत्माको दुःख समुद्र में न डुबाया चाहै हैं, ते जीव इस मिथ्यात्वको अवश्य छोड़ो। निन्दा प्रशंसादिकके विचारतैं शिथिल होना योग्य नाहीं। जातैं नीति विषै भी ऐसा कह्या है-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वास्तु मरणं तु युगान्तरे वा, न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।१।।

(नीतिशतक८४)

जे निन्दै हैं ते निन्दो अर स्तवै हैं तो स्तवो, बहुरि लक्ष्मी आवो वा जहाँ तहाँ जावो, बहुरि अब

ही मरण होहु वा युगांतर विषै होहु परन्तु नीतिविषै निपुण पुरुष न्यायमार्गतैं पैंडहु चलै नाहीं। ऐसा न्याय विचारि निन्दा प्रशंसादिकका भयतैं लोभादिकतैं अन्यायरूप मिथ्यात्व प्रवृत्ति करनी युक्त नाहीं। अहो! देव गुरु धर्म्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं। इनके आधारि धर्म है। इन विषै शिथिलता राखै अन्य धर्म कैसे होई तातैं बहुत कहनेकरि कहा, सर्वथा प्रकार कुदेव कुगुरु कुधर्म्मका त्यागी होना योग्य है। कुदेवादिकका त्याग न किए मिथ्यात्व भाव बहुत पुष्ट हो है। अर अबार इहां इनकी प्रवृत्ति विशेष पाईए है। तातैं इनिका निषेधरूप निरूपण किया है। ताको जानि मिथ्यात्व भाव छोड़ि अपना कल्याण करो।

इति मोक्षमार्गप्रकाशकशास्त्रविषै कुदेव-कुगुरु-कुधर्म-निषेध वर्णन रूप छठा अधिकार समाप्त भया।।६।।

卐 卐 卐

ॐ

卐 सातवाँ अधिकार 卐

जैन मतानुयायी मिथ्यादृष्टिका स्वरूप

❁ दोहा ❁

इस भव तरुका मूल इक, जानहु मिथ्या भाव।
ताकों करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाव।।१।।

अथ- जे जीव जैनी हैं, जिन आज्ञाको मानै हैं अर तिनके भी मिथ्यात्व रहै है ताका वर्णन कीजिए है जातैं इस मिथ्यात्व वैरी का अंश भी बुरा है, तातैं सूक्ष्मिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है। तहां जिन आगम विषै निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है। तिन विषै यथार्थका नाम निश्चय है, उपचार का नाम व्यवहार है। सो इनका स्वरूपको न जानते अन्यथा प्रवर्तै हैं, सोई कहिए है-

केवल निश्चयनयावलम्बी जैनाभास का निरूपण

केई जीव निश्चयको न जानते निश्चयाभासके श्रद्धानी होइ आपको मोक्षमार्गी मानै हैं। अपने आत्माको सिद्ध समान अनुभवै हैं। सो आप प्रत्यक्ष संसारी हैं। भ्रमकरि आपको सिद्ध मानै सोई मिथ्यादृष्टि है।[1] शास्त्रनिविषै जो सिद्ध समान आत्माको कह्या है सो द्रव्यदृष्टि करि कह्या है, पर्याय अपेक्षा समान नाहीं है। जैसे राजा अर रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं, राजापना रंकपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। तैसे सिद्ध अर संसारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा समान हैं, सिद्धपना संसारीपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। यहु जैसे सिद्ध शुद्ध है, तैसे ही आपको शुद्ध मानै। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इस पर्याय अपेक्षा समानता मानिए, सो यहु मिथ्यादृष्टि है। बहुरि आपकै केवलज्ञानादिकका सद्भाव मानै सो आपकै तो क्षयोपशमरूप मतिश्रुतादि ज्ञानका सद्भाव है। क्षायिकभाव तो कर्म्मका क्षय भए होइ है। यह भ्रमतैं कर्म्मका क्षय भए बिना ही क्षायिकभाव मानै। सो यहु मिथ्यादृष्टि है। शास्त्रविषै सर्वजीवनिका

१. पद्मपुराण में भी लिखा है कि -

सुखासनविहारः सन् सदाभक्ष्यविभूषणकांक्षी: ।
सिद्धंमन्यो विमूढात्मा जनोऽयं स्वस्य वञ्चकः।।११/१२१।।

अर्थ - जो सुखपूर्वक उठता-बैठता तथा विहार करता है तथा सदा जो भोजन और वस्त्रों में बुद्धि लगाये रखता है, फिर भी अपने आपको सिद्ध समान मानता है, वह मूर्ख अपने आपको धोखा देता है।।१२१।।

केवलज्ञानस्वभाव कह्या है, सो शक्तिअपेक्षा कह्या है। सर्वजीवनिविषै केवलज्ञानादिरूप होने की शक्ति है। **वर्तमान व्यक्तता तो व्यक्त भए ही कहिए।**

आत्मा के प्रदेशों में केवलज्ञान का निषेध

कोऊ ऐसा मानै है- आत्माके प्रदेशनिविषै तो केवलज्ञान ही है, ऊपरी आवरणतैं प्रगट न हो है सो यहु भ्रम है। जो केवलज्ञान होइ तो वज्रपटलादि आड़े होते भी वस्तुको जानै। कर्मको आड़े आए कैसे अटकै। तातैं कर्मके निमित्ततैं केवलज्ञानका अभाव ही है। जो याका सर्वदा सद्‌भाव रहै है तो याको पारिणामिकभाव कहते, सो यहु तो क्षायिकभाव है। सर्वभेद जामैं गर्भित ऐसा चैतन्यभाव सो पारिणामिक भाव है। याकी अनेक अवस्था मतिज्ञानादिरूप वा केवलज्ञानादिरूप है, सो ए पारिणामिकभाव नाहीं। तातैं केवलज्ञानका सर्वदा सद्‌भाव न मानना। बहुरि **जो शास्त्रनिविषै सूर्यका दृष्टान्त दिया है, ताका इतना ही भाव लेना, जैसे मेघपटल होतैं सूर्य प्रकाश प्रगट न हो है, तैसे कर्मउदय होतैं केवलज्ञान न हो है। बहुरि ऐसा भाव न लेना, जैसे सूर्यविषै प्रकाश रहै है, तैसे आत्मविषै केवलज्ञान रहै है।** जातैं दृष्टांत सर्व प्रकार मिलै नाहीं। जैसे पुद्‌गल विषै वर्ण गुण है, ताकी हरित पीतादि अवस्था है। सो वर्तमान विषै कोई अवस्था होतैं अन्य अवस्थाका अभाव है। तैसे आत्मविषै चैतन्यगुण है, ताकी मतिज्ञानादिरूप अवस्था है। सो वर्तमान कोई अवस्था होतैं अन्य अवस्थाका अभाव ही है।

बहुरि **कोऊ कहै** कि आवरण नाम तो वस्तु के आच्छादनेका है, केवलज्ञान सद्‌भाव नाहीं है तो केवलज्ञानावरण काहेको कहो हो?

ताका **उत्तर**-यहाँ शक्ति है ताको व्यक्त न होने दे, इस अपेक्षा आवरण कह्या है। जैसे देशचारित्रका अभाव होतैं शक्ति घातने की अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरण कषाय कह्या तैसे जानना। बहुरि ऐसे जानो-वस्तु विषै जो परनिमित्ततैं भाव होय ताका नाम औपाधिकभाव है अर **पर निमित्त बिना जो भाव होय ताका नाम स्वभाव भाव है।** सो जैसे जलकै अग्निका निमित्त होतैं उष्णपनो भयो, तहाँ शीतलपना का अभाव ही है। परन्तु अग्निका निमित्त मिटे शीतलता ही होय जाय तातैं सदाकाल जलका स्वभाव शीतल कहिए, जातैं ऐसी शक्ति सदा पाईए है। बहुरि व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए। कदाचित् व्यक्तरूप हो है। तैसे **आत्माकै कर्म्मका निमित्त होतैं अन्य रूप भयो, तहाँ केवलज्ञानका अभाव ही है।** परन्तु कर्म्म का निमित्त मिटे सर्वदा केवलज्ञान होय जाय। तातैं सदाकाल आत्माका स्वभाव केवलज्ञान कहिए है। जातैं ऐसी शक्ति सदा पाईए है। व्यक्त भए, स्वभाव व्यक्त भया कहिए। बहुरि जैसे शीतल स्वभावकरि उष्ण जल को शीतल मानि पानादि करै, तो दाझना ही होय। तैसे केवलज्ञान स्वभावकरि अशुद्ध आत्माको केवलज्ञानी मानि अनुभवै, तो दुःखी ही होय। **ऐसे जे केवलज्ञानादिकरूप आत्माको अनुभवै हैं, ते मिथ्यादृष्टि हैं।**

रागादिक के सद्‌भाव में आत्मा को रागरहित मानने का निषेध

बहुरि रागादिक भाव आपकै प्रत्यक्ष होतैं भ्रमकरि आत्माको रागादिरहित मानै। सो पूछिए है- ए रागादिक तो होते देखिए हैं, ए किस द्रव्य के अस्तित्वविषै हैं। जो शरीर वा कर्मरूपपुद्‌गलके अस्तित्वविषै

होय तो ए भाव अचेतन वा मूर्तीक होय। सो तो ए रागादिक प्रत्यक्ष चेतनता लिए अमूर्तीक भाव भासै हैं। तातैं ए भाव आत्मा ही के हैं। सोई समयसारके कलशविषै कह्या है-

कार्यत्वादकृतं न कर्म्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात् कृतिः।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्त्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत् पुद्गलः।।

(सर्ववि. अधिकार कलश २०३)

याका **अर्थ**-यहु रागादिरूप भावकर्म है, सो काहूकरि न किया, ऐसा नहीं है, जातैं यह कार्यभूत है। बहुरि जीव अर कर्म्मप्रकृति इन दोऊनिका भी कर्तव्य नाहीं जातैं ऐसे होय तो अचेतन कर्म्मप्रकृतिकै भी तिस भावकर्मका फल सुख-दुःख ताका भोगवना होइ, सो असंभव है। बहुरि एकली कर्म्मप्रकृतिका भी यहु कर्त्तव्य नाहीं, जातैं वाकै अचेतनपनो प्रगट है। तातैं इस रागादिक का जीव ही कर्त्ता है अर सो रागादिक जीव ही का कर्म है। जातैं भावकर्म्म तो चेतना का अनुसारी है, चेतना बिना न होइ। अर पुद्गल ज्ञाता है नाहीं। ऐसे रागादिकभाव जीव के अस्तित्वविषै हैं। अब जो रागादिक भावनिका निमित्त कर्म्महीं को मानि आपको रागादिकका अकर्त्ता मानै है, सो कर्त्ता तो आप अर आपको निरुधमी होय प्रमादी रहना, तातैं कर्म्म ही का दोष ठहरावै हैं। सो यहु दुःखदायक भ्रम है। सोई समयसारका कलशा विषै कह्या है-

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः।।

(सर्व वि. अधिकार कलश २२१)

याका **अर्थ**- जे जीव रागादिककी उत्पत्तिविषै परद्रव्यहीको निमित्तपनो मानै हैं, ते जीव शुद्ध ज्ञानकरि रहित हैं अंधबुद्धि जिनकी ऐसे होत संते मोहनदीको नाहीं उतरै है। बहुरि समयसारका 'सर्वविशुद्धिअधिकार' विषै जो आत्मा को अकर्त्ता मानै है अर यहु कहै है- कर्म ही जगावै सुवावै है, परघात कर्मतैं हिंसा है, वेदकर्मतैं अब्रह्म है, तातैं कर्म ही कर्त्ता है; तिस जैनीको सांख्यमती कह्या है। जैसे सांख्यमती आत्माको शुद्ध मानि स्वच्छन्द हो है, तैसे ही यहु भया। बहुरि इस श्रद्धानतैं यहु दोष भया, **जो रागादिक अपने न जानै आपको अकर्त्ता मान्या, तब रागादिक होने का भय रह्या नाहीं वा रागादिक मेटने का उपाय करना रह्या नाहीं, तब स्वच्छन्द होय खोटे कर्म बाँधि अनंत संसारविषै रुलै है।**

यहाँ **प्रश्न** - जो समयसारविषै ही ऐसा कह्या है-

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
भिन्ना भावाः सर्व्व एवास्य पुंसः।[1]

---

१. वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्नाः भावाः सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात्।। (जीवाजी. कलश ३७)

याका **अर्थ**- वर्णादिक वा रागादिकभाव हैं, ते सर्व ही इस आत्मातैं भिन्न हैं। बहुरि तहाँ ही रागादिकको पुद्गलमय कहे हैं। बहुरि अन्य शास्त्रनिविषै भी रागादिकतैं भिन्न आत्मा को कह्या है, सो यहु कैसे है?

ताका **उत्तर**-रागादिक भाव परद्रव्य के निमित्ततैं औपाधिकभाव हो है अर यहु जीव तिनिको स्वभाव जानै है। जाको स्वभाव जानै, ताको बुरा कैसे मानै वा ताके नाश का उद्यम काहेको करै। सो यहु श्रद्धान भी विपरीत है। ताके छुड़ावने को स्वभाव की अपेक्षा रागादिक को भिन्न कहै हैं अर निमित्त की मुख्यताकरि पुद्गलमय कहे हैं। जैसे वैद्य रोग मेट्या चाहै है; जो शीतका आधिक्य देखै तो उष्ण औषधि बतावै अर आतापका आधिक्य देखै तो शीतल औषधि बतावै तैसे श्रीगुरु रागादिक छुड़ाया चाहै है। जो रागादिक परका मानि स्वच्छन्द हो निरुद्यमी होय, ताको उपादान कारण की मुख्यताकरि रागादिक आत्मा का है, ऐसा श्रद्धान कराया। बहुरि जो रागादिक आपका स्वभावमानि तिनिका नाश का उद्यम नाहीं करै है ताको निमित्त कारण की मुख्यताकरि रागादिक परभाव है, ऐसा श्रद्धान कराया है। दोऊ विपरीत श्रद्धानतैं रहित भए सत्य श्रद्धान होय तब मानै-ए रागादिक भाव आत्मा का स्वभाव तो नाहीं हैं, कर्म के निमित्ततैं आत्मा के अस्तित्वविषै विभावपर्याय निपजै है। निमित्त मिटे इनका नाश होतैं स्वभावभाव रहि जाय है। तातैं इनिके नाश का उद्यम करना।

यहाँ **प्रश्न**-जो कर्म का निमित्त तैं ए हो हैं, तो कर्म का उदय रहै तावत् ए विभाव दूरि कैसे होय? तातैं याका उद्यम करना तो निरर्थक है।

ताका **उत्तर**- **एक कार्य होनेविषै अनेक कारण चाहिए है**। तिनविषै जे कारण बुद्धिपूर्वक होय, तिनको तो उद्यम करि मिलावै अर अबुद्धिपूर्वक कारण स्वयमेव मिलै तब कार्यसिद्धि होय। जैसे पुत्र होने का कारण बुद्धिपूर्वक तो विवाहादिक करना है अर अबुद्धिपूर्वक भवितव्य है। तहाँ पुत्र का अर्थी विवाहादिकका तो उद्यम करै अर भवितव्य स्वयमेव होय, तब पुत्र होय। तैसे विभाव दूरि करने के कारण बुद्धिपूर्वक तो तत्त्वविचारादिक हैं अर अबुद्धिपूर्वक मोहकर्म का उपशमादिक है। सो ताका अर्थी तत्त्वविचारादिकका तो उद्यम करै अर मोहकर्म का उपशमादिक स्वयमेव होय, तब रागादिक दूरि होय।

यहाँ **ऐसा कहै है** कि जैसे विवाहादिक भी भवितव्य आधीन है, तैसे तत्त्वविचारादिक भी कर्म का क्षयोपशमादिक के आधीन हैं, तातैं उद्यम करना निरर्थक है।

ताका **उत्तर**-ज्ञानावरण का तो क्षयोपशम तत्त्वविचारादिक करने योग्य तेरे भया है। याहीतैं उपयोग को यहाँ लगावने का उद्यम कराइए है। असंज्ञी जीवनिकै क्षयोपशम नाहीं है, तो उनको काहेको उपदेश दीजिए है।

बहुरि **वह कहै है**- होनहार होय तो तहाँ उपयोग लागै, बिना होनहार कैसे लागै?

ताका **उत्तर**- जो ऐसा श्रद्धान है तो सर्वत्र कोई ही कार्य का उद्यम मति करै। तू खानपान व्यापारादिकका तो उद्यम करै अर यहाँ होनहार बतावै। सो जानिए है, तेरा अनुराग यहाँ नाहीं। मानादिक

करि ऐसी झूंठी बातैं बनावै है। या प्रकार जे रागादिक होतैं तिन करि रहित आत्मा को मानै हैं, ते मिथ्यादृष्टी जानने।

आत्मा को कर्म-नोकर्म से अबद्ध मानने का निषेध

बहुरि कर्म नोकर्म का सम्बन्ध होतैं आत्मा को निर्बन्ध मानै, सो प्रत्यक्ष इनिका बंधन देखिए है। ज्ञानावरणादिकतैं ज्ञानादिकका घात देखिए है। शरीरकरि ताकै अनुसारि अवस्था होती देखिए है। बंधन कैसे नाहीं। जो बन्धन न होय तो मोक्षमार्गी इनके नाश का उद्यम काहेको करै।

यहाँ कोऊ कहै- शास्त्रनिविषै आत्मा को कर्म-नोकर्म तैं भिन्न अबद्धस्पृष्ट कैसे कह्या है?

ताका उत्तर- सम्बन्ध अनेक प्रकार है। तहाँ तादात्म्य संबंध अपेक्षा आत्माको कर्म-नोकर्मतैं भिन्न कह्या है। जातैं द्रव्य पलटकरि एक नाहीं होय जाय है। अर इस ही अपेक्षा अबद्धस्पृष्ट कह्या है। बहुरि निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध अपेक्षा बन्धन है ही। उनके निमित्ततैं आत्मा अनेक अवस्था धरै ही है। तातैं सर्वथा निर्बन्ध आपको मानना मिथ्यादृष्टि है।

यहाँ कोऊ कहै- हमको तो बंध-मुक्ति का विकल्प करना नाहीं, जातैं शास्त्रविषै ऐसा कह्या है-

"जो बंधउ मुक्कउ मुणइ, सो बंधइ णिभंतु।"

याका अर्थ- जो जीव बंध्या अर मुक्त भया मानै है, सो निःसन्देह बंधै है ताको कहिए है- जे जीव केवल पर्यायदृष्टि होय बन्ध मुक्त अवस्था ही को मानै हैं, द्रव्य स्वभाव का ग्रहण नाहीं करै हैं, तिनको ऐसा उपदेश दिया है; जो द्रव्य-स्वभाव को न जानता जीव बंध्या मुक्त भया मानै, सो बंधै है। बहुरि जो सर्वथा ही बन्ध मुक्ति न होय, तो सो जीव बंधै है, ऐसा काहेको कहै। अर बन्ध के नाश का, मुक्त होने का उद्यम काहेको करिए है। काहेको आत्मानुभव करिये है। तातैं द्रव्यदृष्टि करि एक दशा है, पर्यायदृष्टिकरि अनेक अवस्था हो है, ऐसा मानना योग्य है।

अपेक्षा न समझने से मिथ्याप्रवृत्ति

ऐसे ही अनेकप्रकारकरि केवल निश्चय नय का अभिप्रायतैं विरुद्ध श्रद्धानादिक करै है। जिनवाणीविषै तो नाना नय अपेक्षा कहीं कैसा कहीं कैसा निरूपण किया है। यह अपने अभिप्रायतैं निश्चयनय की मुख्यताकरि जो कथन किया होय, ताहीको ग्रहिकरि मिथ्यादृष्टि को धारै है। बहुरि जिनवाणी विषै तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता भए मोक्षमार्ग कह्या है। सो याकै सम्यग्दर्शन ज्ञान विषै सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान वा जानना भया चाहिए, सो तिनका विचार नाहीं। अर चारित्रविषै रागादिक दूरि किया चाहिए, ताका उद्यम नाहीं। एक अपने आत्मा को शुद्ध अनुभवना इसहीको मोक्षमार्ग जानि सन्तुष्ट भया है। ताका अभ्यास करने को अंतरंगविषै ऐसा चिंतवन किया करै है- मैं सिद्ध समान शुद्ध हूँ, केवलज्ञानादि सहित हूँ, द्रव्यकर्म नोकर्म रहित हूँ, परमानन्दमय हूँ, जन्म-मरणादि दुःख मेरे नाहीं, इत्यादि चिंतवन करै है। सो यहाँ पूछिए है- यहु चिंतवन जो द्रव्यदृष्टिकरि करो हो, तो द्रव्य तो शुद्ध अशुद्ध सर्वपर्यायनिका समुदाय

है। तुम शुद्ध ही अनुभवन काहेको करो हो। अर पर्यायदृष्टि करि करो हो, तो तुम्हारै तो वर्तमान अशुद्ध पर्याय है। तुम आपको शुद्ध कैसे मानो हो? बहुरि जो शक्ति अपेक्षा शुद्ध मानो हो, तो मैं ऐसा होने योग्य हूँ ऐसा मानो। मैं ऐसा हूँ ऐसे काहेको मानो हो। तातैं आपको शुद्धरूप चिंतवन करना भ्रम है। काहेतैं- तुम आपको सिद्धसमान मान्या, तो यहु संसार अवस्था कौनकी है। अर तुम्हारै केवलज्ञानादिक हैं, तो ये मतिज्ञानादिक कौनके हैं। अर द्रव्यकर्म नोकर्मरहित हो, तो ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यों नहीं? परमानन्दमय हो, तो अब कर्त्तव्य कहा रह्या? जन्म - मरणादि दुःख ही नाहीं, तो दुःखी कैसे होते हो? तातैं अन्य अवस्थाविषै अन्य अवस्था मानना भ्रम है।

यहाँ **कोऊ कहै**- शास्त्रविषै शुद्ध चिंतवन करनेका उपदेश कैसे दिया है?

ताका **उत्तर**- एक तो द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्याय अपेक्षा शुद्धपना है। तहाँ द्रव्यअपेक्षा तो **परद्रव्यतैं भिन्नपनो वा अपने भावनितैं अभिन्नपनो ताका नाम शुद्धपना है।** अर पर्यायअपेक्षा औपाधिकभावनिका अभाव होना, ताका नाम शुद्धपना है। **सो शुद्ध चिंतवनविषै द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है।** सोई समयसारव्याख्या विषै कह्या है-

एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते।

(समयसार आत्मख्याति टीका गाथा. ६)

याका **अर्थ**-जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नाहीं है, सो यहु ही समस्त परद्रव्यनिके भावनितैं भिन्नपनेकरि सेया हुआ शुद्ध ऐसा कहिए है। बहुरि तहाँ ही ऐसा कह्या है।

सकलकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूतिमात्रत्वाच्छुद्धः।

(समयसार आत्मख्याति टीका गाथा. ७३)

याका **अर्थ**- समस्त ही कर्त्ता कर्म आदि कारकनिका समूहकी प्रक्रियातैं पारंगत ऐसी जो निर्मल अनुभूति जो अभेद ज्ञान तन्मात्र है, तातैं शुद्ध है।

तातैं ऐसे शुद्ध शब्द का अर्थ जानना। बहुरि ऐसे ही केवल शब्द का अर्थ जानना। जो परभावतैं भिन्न निष्केवल आप ही ताका नाम केवल है। ऐसे ही अन्य यथार्थ अर्थ अवधारना। पर्याय अपेक्षा शुद्धपनो माने वा केवली आपको माने महाविपरीत होय। तातैं **आपको द्रव्यपर्यायरूप अवलोकना। द्रव्यकरि सामान्यस्वरूप अवलोकना, पर्यायकरि अवस्था विशेष अवधारना। ऐसे ही चिंतवन किए सम्यग्दृष्टी हो है।** जातैं साँचा अवलोके बिना सम्यग्दृष्टी कैसे नाम पावै।

शास्त्राभ्यास की निरर्थकता का निषेध

बहुरि मोक्षमार्गविषै तो रागादिक मेटनेका श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है सो तो विचार ही नाहीं। आपका शुद्ध अनुभवनतैं ही आपको सम्यग्दृष्टी मानि अन्य सर्व साधननिका निषेध करै है; शास्त्र अभ्यास करना निरर्थक बतावै है, द्रव्यादिकका वा गुणस्थान मार्गणा त्रिलोकादिका विचारको विकल्प ठहरावै है,

तपश्चरण करना वृथा क्लेश करना मानै है, व्रतादिकका धारना बंधनमें परना ठहरावै है, पूजनादि कार्यनिको शुभास्रव जानि हेय प्ररूपै है; इत्यादि सर्व साधनको उठाय प्रमादी होय परिणमै है। सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होय तो मुनिनिकै भी तो ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं। ध्यानविषै उपयोग न लागै, तब अध्ययनहीविषै उपयोगकूं लगावै है, अन्य ठिकाना बीच में उपयोग लगावने योग्य है नाहीं। बहुरि शास्त्र अभ्यासकरि तत्त्वनिका विशेष जाननेतैं सम्यग्दर्शन ज्ञान निर्मल होय। बहुरि तहाँ यावत् उपयोग रहै, तावत् कषाय मन्द रहै। बहुरि आगामी वीतरागभावनिकी वृद्धि होय। ऐसे कार्यको निरर्थक कैसे मानिए?

बहुरि **वह कहै है**- जो जिनशास्त्रनिविषै अध्यात्म उपदेश है, तिनि का अभ्यास करना, अन्य शास्त्रनिका अभ्यासकरि किछू सिद्धि नाहीं।

ताकों कहिए है- जो तेरै सांची दृष्टि भई है, तो सर्व ही जैन शास्त्र कार्यकारी हैं। तहाँ भी मुख्यपने अध्यात्म शास्त्रनिविषै तो आत्मस्वरूपका मुख्य कथन है सो सम्यग्दृष्टी भए आत्मस्वरूपका तो निर्णय होय चुकै, तब तो ज्ञान की निर्मलता के अर्थि वा उपयोग को मंद कषायरूप राखनेके अर्थि अन्य शास्त्रनिका अभ्यास मुख्य चाहिए। अर आत्मस्वरूपका निर्णय भया है, ताको स्पष्ट राखने के अर्थि अध्यात्मशास्त्रनिका भी अभ्यास चाहिए परन्तु अन्य शास्त्रनिविषै अरुचि तो न चाहिए। **ताकै अन्य शास्त्रनिकै अरुचि है, ताकै अध्यात्मकी रुचि सांची नाहीं।** जैसे जाकै विषयासक्तपना होय, सो विषयासक्त पुरुषनिकी कथा भी रुचितैं सुनै वा विषयके विशेषको भी जानै वा विषयके आचरनविषै जो साधन होय ताको भी हितरूप मानै वा विषयका स्वरूपको भी पहिचानै। तैसे जाकै आत्मरुचि भई होय, सो आत्मरुचिके धारक तीर्थंकरादिक तिनका पुराण भी जानै। बहुरि आत्माके विशेष जाननेको गुणस्थानादिकको भी जानै। बहुरि आत्माचरणविषै जे व्रतादिक साधन हैं, तिनको भी हितरूप मानै। बहुरि आत्माके स्वरूपको भी पहिचानै। तातैं **चारयों ही अनुयोग कार्यकारी हैं।** बहुरि तिनका नीका ज्ञान होनेके अर्थि शब्द न्यायशास्त्रादिकको भी जानना चाहिए। सो अपनी शक्तिके अनुसार सबनिका थोरा वा बहुत अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि **वह कहै है, 'पद्मनन्दिपच्चीसी'** विषै ऐसा कह्या है- जो आत्मस्वरूपतैं निकसि बाह्य शास्त्रनिविषै बुद्धि विचरै है, सो वह बुद्धि व्यभिचारिणी है।

ताका उत्तर- यहु सत्य कह्या है। बुद्धि तो आत्माकी है, ताको छोरि परद्रव्य शास्त्रनिविषै अनुरागिणी भई, ताको व्यभिचारिणी ही कहिए। परन्तु जैसे स्त्री शीलवती रहै तो योग्य ही है अर न रह्या जाय तो उत्तम पुरुषको छोरि चांडालादिकका सेवन किए तो अत्यन्त निंदनीक होइ। तैसे बुद्धि आत्मस्वरूपविषै प्रवर्तै तो योग्य ही है अर न रह्या जाय तो प्रशस्त शास्त्रादि परद्रव्यको छोरि अप्रशस्त विषयादिविषै लगै तो महानिंदनीक ही होइ। सो मुनिनिकै भी स्वरूपविषै बहुत काल बुद्धि रहै नाहीं तो तेरी कैसे रह्या करै? तातैं **शास्त्राभ्यासविषै उपयोग लगावना युक्त है।**

बहुरि जो द्रव्यादिकका वा गुणस्थानादिकका विचारको विकल्प ठहरावै है, सो विकल्प तो है परंतु निर्विकल्प उपयोग न रहै तब इनि विकल्पनिको न करै तौ अन्य विकल्प होइ, ते बहुत रागादि गर्भित हो

हैं। बहुरि निर्विकल्प दशा सदा रहै नाहीं। जातैं छद्मस्थका उपयोग एकरूप उत्कृष्ट रहै तो अन्तर्मुहूर्त रहै। बहुरि तू कहैगा- मैं आत्मस्वरूप ही का चिंतवन अनेक प्रकार किया करूंगा, सो सामान्य चिंतवनविषै तो अनेक प्रकार बनै नाहीं। अर विशेष करेगा, तब द्रव्य गुण पर्याय गुणस्थान मार्गणा शुद्ध अशुद्ध अवस्था इत्यादि विचार होयगा। बहुरि सुनि **केवल आत्मज्ञानहीतैं तो मोक्षमार्ग होइ नाहीं। सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान भए वा रागादिक दूरि किए मोक्षमार्ग होगा।** सो सप्त तत्त्वनिका विशेष जानने को जीव अजीवके विशेष वा कर्मके आस्रव बंधादिकका विशेष अवश्य जानना योग्य है, जातैं सम्यग्दर्शन ज्ञानकी प्राप्ति होय। बहुरि तहाँ पीछै रागादिक दूरि करने। सो जे रागादिक बधावने के कारण तिनको छोड़ि जे रागादिक घटावने के कारण होय तहाँ उपयोगको लगावना। सो द्रव्यादिकका गुणस्थानादिकका विचार रागादिक घटावनेको कारण है। इन विषै कोई रागादिकका निमित्त नाहीं। तातैं सम्यग्दृष्टी भए पीछैभी इहाँ ही उपयोग लगावना।

बहुरि **वह कहै है**- रागादि मिटावनेको कारण होय तिनविषै तो उपयोग लगावना परन्तु त्रिलोकवर्ती जीवनिका गति आदि विचार करना वा कर्म्मका बंध उदय सत्तादिक का घणा विशेष जानना वा त्रिलोकका आकार प्रमाणादिक जानना इत्यादि विचार कौन कार्यकारी है?

ताका उत्तर- इनिको भी विचारतैं रागादिक बधते नाहीं। जातैं ए ज्ञेय याकै इष्ट अनिष्टरूप हैं नाहीं। तातैं वर्तमान रागादिकको कारण नाहीं। बहुरि इनको विशेष जाने तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तातैं आगामी रागादिक घटावनेको ही कारण हैं। तातैं कार्यकारी हैं।

बहुरि **वह कहै है**- स्वर्ग-नरकादिकको जाने तहाँ रागद्वेष हो है।

ताका समाधान- ज्ञानीकै तो ऐसी बुद्धि होइ नाहीं, अज्ञानीकै होय! तहां **पाप छोरि पुण्यकार्यविषै लागै तहाँ किछू रागादिक घटै ही हैं।**

बहुरि **वह कहै है**- शास्त्रविषै ऐसा उपदेश है, प्रयोजनभूत थोरा ही जानना कार्यकारी है तातैं बहुत विकल्प काहेको कीजिए।

ताका उत्तर- जे जीव अन्य बहुत जानै अर प्रयोजनभूतको न जानै अथवा जिनकी बहुत जानने की शक्ति नाहीं, तिनको यहु उपदेश दिया है। बहुरि जाकी बहुत जाननेकी शक्ति होय, ताको तो यहु कह्या नाहीं जो बहुत जाने बुरा होगा। जेता बहुत जानेगा, तितना प्रयोजनभूत जानना निर्मल होगा। जातैं शास्त्रविषै ऐसा कह्या है-

सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्

याका **अर्थ**- यहु सामान्य शास्त्रतैं विशेष बलवान है। विशेषहीतैं नीके निर्णय हो है तातैं विशेष जानना योग्य है।

तपश्चरण वृथा क्लेश नहीं है

बहुरि वह तपश्चरणको वृथा क्लेश ठहरावै है। सो मोक्षमार्गी भए तो संसारी जीवनितैं उलटी

परणति चाहिए। संसारीनिकै इष्ट अनिष्ट सामग्रीतैं रागद्वेष हो है, याकै रागद्वेष न चाहिए। तहाँ राग छोड़नेके अर्थि इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है अर द्वेष छोड़नेके अर्थि अनिष्ट सामग्री अनशनादिक ताका अंगीकार करै है। स्वाधीनपने ऐसा साधन होय तो पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिले भी राग द्वेष न होय। सो चाहिए तो ऐसे अर तेरे अनशनादितैं द्वेष भया, तातैं ताको क्लेश ठहराया। जब यहु क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहरया, तहाँ राग आया; सो ऐसी परिणति तो संसारीनिकै पाईए ही है, तैं मोक्षमार्गी होय कहा किया।

बहुरि जो तू कहैगा, केई सम्यग्दृष्टी भी तपश्चरण नाहीं करै हैं।

ताका उत्तर- यहु कारण विशेषतैं तप न होय सकै है परन्तु श्रद्धानविषै तो तपको भला जानै हैं। ताके साधनका उद्यम राखै हैं। तेरे तो श्रद्धान यहु है, तप करना क्लेश है। बहुरि तपका तेरे उद्यम नाहीं, तातैं तेरे सम्यग्दृष्टि कैसे होय?

बहुरि वह कहै है- शास्त्रविषै ऐसा कह्या है-तप आदिका क्लेश करै है तो करो, ज्ञान बिना सिद्धि नाहीं।

ताका उत्तर- यहु जे जीव तत्त्वज्ञानतैं तो पराङ्मुख हैं, तपहीतैं मोक्ष मानै हैं, तिनको ऐसा उपदेश दिया है, तत्त्वज्ञान बिना केवल तपहीतैं मोक्षमार्ग न होय। बहुरि तत्त्वज्ञान भए रागादिक मेटने के अर्थि तपकरनेका तो निषेध है नाहीं। जो निषेध होय तो गणधरादिक तप काहेको करैं। तातैं अपनी शक्ति अनुसारि तप करना योग्य है। बहुरि वह व्रतादिकको बंधन मानै है। सो स्वच्छन्दवृत्ति तो अज्ञान-अवस्थाही विषैं थी, ज्ञान पाए तो परिणतिको रोकै ही है। बहुरि तिस परिणति रोकने के अर्थि बाह्य हिंसादिक कारणनिका त्यागी अवश्य भया चाहिए।

बहुरि वह कहै है- हमारे परिणाम तो शुद्ध हैं, बाह्य त्याग न किया तो न किया।

ताका उत्तर- जे ए हिंसादि कार्य तेरे परिणाम बिना स्वयमेव होते होंय, तो हम ऐसे मानैं। बहुरि जो तू अपना परिणामकरि कार्य करै, तहाँ तेरे परिणाम शुद्ध कैसे कहिए। विषयसेवनादि क्रिया वा प्रमादरूप गमनादि क्रिया परिणाम बिना कैसे होय। सो क्रिया तो आप उद्यमी होय तू करै अर वहाँ हिंसादिक होय ताको तू गिनै नाहीं, परिणाम शुद्ध मानै। सो ऐसी मानितैं तेरे परिणाम अशुद्ध ही रहेंगे।

प्रतिज्ञा न लेने का निषेध

बहुरि वह कहै है- परिणामनिको रोकिए बाह्य हिंसादिक भी घटाईए; परन्तु प्रतिज्ञा करने में बन्धन हो है, तातैं प्रतिज्ञारूप व्रत नाहीं अंगीकार करना।

ताका समाधान- जिस कार्य करनेकी आशा रहै है, ताकी प्रतिज्ञा न लीजिए है। अर आशा रहै तिसतैं राग रहै है। तिस रागभावतैं बिना कार्य किए भी अविरतितैं कर्मका बन्ध हुवा करै। तातैं प्रतिज्ञा अवश्य करनी युक्त है। अर कार्य करनेका बंधन भए बिना परिणाम कैसे रुकेंगे, प्रयोजन पड़े तद्रूप परिणाम होय ही होय वा बिना प्रयोजन पड़े ताकी आशा रहै। तातैं प्रतिज्ञा करनी युक्त है।

बहुरि **वह कहै है-** न जानिए कैसा उदय आवै, पीछै प्रतिज्ञाभंग होय तो महापाप लागै। तातैं प्रारब्ध अनुसारि कार्य बनै सो बनो, प्रतिज्ञाका विकल्प न करना।

ताका समाधान- प्रतिज्ञा ग्रहण करतैं जाका निर्वाह होता न जानै, तिस प्रतिज्ञाको तो करै नाहीं। प्रतिज्ञा लेते ही यहु अभिप्राय रहै, प्रयोजन पड़े छोड़ि दूंगा, तो वह प्रतिज्ञा कौन कार्यकारी भई। अर प्रतिज्ञा ग्रहण करतैं तो यहु परिणाम है, मरणांत भए भी न छोड़ूंगा तो ऐसी प्रतिज्ञा करनी युक्त ही है। **बिना प्रतिज्ञा किए अविरत सम्बन्धी बंध मिटै नाहीं।** बहुरि आगामी उदयका भयकरि प्रतिज्ञा न लीजिए सो उदयको विचारे सर्व ही कर्त्तव्यका नाश होय। जैसे आपको पचता जानै, तितना भोजन करै, कदाचित् काहूकै भोजनतैं अजीर्ण भया होय तो तिस भयतैं भोजन करना छांडै तो मरण ही होय। तैसे आपके निर्वाह होता जानै तितनी प्रतिज्ञा करै, कदाचित् काहूकै प्रतिज्ञातैं भ्रष्टपना भया होय, तो तिस भयतैं प्रतिज्ञा करनी छांडै तो असंयम ही होय। **तातैं बनै सो प्रतिज्ञा लेनी युक्त है। बहुरि प्रारब्ध अनुसारि तो कार्य बनै ही है, तू उद्यमी होय भोजनादि काहेको करै है। जो तहाँ उद्यम करै है, तो त्याग करने का भी उद्यम करना युक्त ही है।** जब प्रतिमावत् तेरी दशा होय जायगी, तब हम प्रारब्ध ही मानेंगे, तेरा कर्त्तव्य न मानेंगे। तातैं **काहेको स्वच्छन्द होनेकी युक्ति बनावै है। बनै सो प्रतिज्ञाकरि व्रत धारना योग्य ही है।**

शुभोपयोग सर्वथा हेय नहीं है

बहुरि वह पूजनादि कार्यको शुभास्रव जानि हेय मानै है सो यहु सत्य ही है। परन्तु जो इनि कार्यनिको छोरि शुद्धोपयोगरूप होय तो भले ही है अर विषय कषायरूप अशुभरूप प्रवर्तै तो अपना बुरा ही किया। **शुभोपयोगतैं स्वर्गादि होय वा भली वासनातैं वा भला निमित्ततैं कर्मका स्थितिअनुभाग घटि जाय तो सम्यक्त्वादिककी भी प्राप्ति होय जाय।** बहुरि अशुभोपयोगतैं नरक निगोदादि होय वा बुरी वासनातैं वा बुरा निमित्ततैं कर्मका स्थिति-अनुभाग बधि जाय, तो सम्यक्त्वादिक महादुर्लभ होय जाय। बहुरि शुभोपयोग होतैं कषाय मंद हो है, अशुभोपयोगहोतैं तीव्र हो है। सो मंदकषायका कार्य छोरि तीव्रकषाय का कार्य करना तो ऐसा है, जैसे कड़वी वस्तु न खानी अर विष खाना। सो यहु अज्ञानता है।

बहुरि **वह कहै है-** शास्त्र विषै शुभ अशुभको समान कह्या है, तातैं हमको तो विशेष जानना युक्त नाहीं।

ताका समाधान - जे जीव शुभोपयोगको मोक्षका कारण मानि उपादेय मानै हैं, शुद्धोपयोगको नाहीं पहिचानै हैं, तिनको शुभ अशुभ दोऊनिको अशुद्धताकी अपेक्षा वा बंधकारणकी अपेक्षा समान दिखाए हैं। बहुरि शुभ अशुभनिका परस्पर विचार कीजिए, तो शुभ भावनि विषै कषायमंद हो है, तातैं बंध हीन हो है। अशुभभावनिविषै कषाय तीव्र हो है, तातैं बंध बहुत हो है। ऐसे विचार किए **अशुभकी अपेक्षा सिद्धान्तविषै शुभको भला भी कहिए है।** जैसे रोग तो थोरा वा बहुत बुरा ही है परन्तु बहुत रोगकी अपेक्षा थोरा रोगको भला भी कहिए है। तातैं शुद्धोपयोग नाहीं होय, तब अशुभतैं छूटि शुभविषै प्रवर्त्तना युक्त है। शुभको छोरि अशुभविषै प्रवर्त्तना युक्त नाहीं।

बहुरि वह कहै है- जो कामादिक वा क्षुधादिक मिटावनेको अशुभरूप प्रवृत्ति तो भए बिना रहती नाहीं अर शुभप्रवृत्ति चाहिकरि करनी परै है, ज्ञानीकै चाह चाहिए नाहीं; तातैं शुभका उद्यम नाहीं करना।

ताका उत्तर- शुभप्रवृत्तिविषै उपयोग लागनेकरि वा ताके निमित्ततैं विरागता बधनेकरि कामादिक हीन हो हैं अर क्षुधादिकविषै भी संक्लेश थोरा हो है। तातैं **शुभोपयोगका अभ्यास करना।** उद्यम किए भी जो कामादिक वा क्षुधादिक पीडै हैं तो ताकै अर्थि जैसे थोरा पाप लागै सो करना। बहुरि **शुभोपयोगको छोरि निश्शंक पापरूप प्रवर्तना तो युक्त नाहीं।** बहुरि तू कहै है- ज्ञानीकै चाहि नाहीं अर शुभोपयोग चाहि किए हो है सो जैसे पुरुष किंचिन्मात्र भी अपना धन दिया चाहै नाहीं परन्तु जहाँ बहुत द्रव्य जाता जानै, तहाँ चाहिकरि स्तोक द्रव्य देनेका उपाय करै है। तैसे ज्ञानी किंचिन्मात्र भी कषायरूप कार्य किया चाहै नाहीं परन्तु जहाँ बहुत कषायरूप अशुभ कार्य होता जानै तहाँ चाहिकरि स्तोक कषायरूप शुभ कार्य करनेका उद्यम करै है। ऐसे यहु बात सिद्ध भई-**जहाँ शुद्धोपयोग होता जानै, तहाँ तो शुभ कार्यका निषेध ही है अर जहाँ अशुभोपयोग होता जानै, तहाँ शुभको उपायकरि अंगीकार करना युक्त है।** या प्रकार अनेक व्यवहारकार्यको उथापि स्वच्छन्दपनाको स्थापै है, ताका निषेध किया।

अब तिस ही **केवल निश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति** दिखाइए है-

एक शुद्धात्माको जाने ज्ञानी हो है, अन्य किछू चाहिए नाहीं। ऐसा जानि कबहू एकांत तिष्ठिकरि ध्यानि मुद्रा धारि मैं सर्वकर्म उपाधिरहित सिद्ध समान आत्मा हूँ इत्यादि विचारकरि सन्तुष्ट हो है। सो ए विशेषण कैसे संभवै, ऐसा विचार नाहीं। अथवा अचल अखंड अनौपम्यादि विशेषण करि आत्माको ध्यावै है, सो ए विशेषण अन्य द्रव्यनिविषै भी सम्भवै है। बहुरि ए विशेषण किस अपेक्षा है, सो विचार नाहीं। बहुरि कदाचित् सूता बैठ्या जिस तिस अवस्थाविषै ऐसा विचार राखि आपको ज्ञानी मानै है। बहुरि ज्ञानी के आस्रव बन्ध नाहीं ऐसा आगमविषै कह्या है तातैं कदाचित् विषयकषायरूप हो है। तहाँ बंध होनेका भय नाहीं है, स्वच्छन्द भया रागादिरूप प्रवर्त्तै है। सो आपा-परको जाननेका तो चिह्न वैराग्यभाव है सो **समयसारविषै** कह्या है-

"सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः।"[1]

याका **अर्थ**-यहु सम्यग्दृष्टीकै निश्चयसौं ज्ञानवैराग्य शक्ति होय। बहुरि कह्या है-

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या-
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः।।१३७।।

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञान - वैराग्यशक्तिः,
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या ।
यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च,
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात्।। निर्जरा. कलश १३६ ।।

याका अर्थ- स्वयमेव यहु मैं सम्यग्दृष्टी हूँ, मेरे कदाचित् बंध नाहीं, ऐसे ऊँचा फुलाया है मुख जिनने ऐसे रागी वैराग्य शक्ति रहित भी आचरण करै हैं तो करो, बहुरि पंचसमिति की सावधानीको अवलम्बै है तो अवलम्बो, जातैं वे ज्ञान शक्ति बिना अजहूं पापी ही हैं। ए दोऊ आत्माअनात्माका ज्ञानरहितपनातैं सम्यक्त्वरहित ही हैं।

बहुरि पूछिए है- परको पर जान्या, तो परद्रव्यविषै रागादि करने का कहा प्रयोजन रहा? तहाँ वह कहै है-मोहके उदयतैं रागादि हो हैं। पूर्वै भरतादिक ज्ञानी भए, तिनकै भी विषय-कषाय रूप कार्य भया सुनिये है।

ताका उत्तर- ज्ञानीकै भी मोहके उदयतैं रागादिक हो हैं- यहु सत्य परन्तु बुद्धिपूर्वक रागादिक होते नाहीं। सो विशेष वर्णन आगे करेंगे। बहुरि जाकै रागादिक होनेका किछू विषाद नाहीं, तिनके नाशका उपाय नाहीं, ताकै रागादिक बुरे हैं ऐसा श्रद्धान भी नाहीं सम्भवै है। ऐसे श्रद्धान बिना सम्यग्दृष्टी कैसे होय? जीवाजीवादि तत्त्वनिके श्रद्धान करनेका प्रयोजन तो इतना ही श्रद्धान है। बहुरि भरतादिक सम्यग्दृष्टीनिकै विषय कषायकी प्रवृत्ति जैसे हो है, सो भी विशेष आगे कहेंगे। तू उनका उदाहरणकरि स्वच्छन्द होगा तो तेरे तीव्र आस्रव बंध होगा। सोई कह्या है-

मग्नाः ज्ञाननयैषिणोपि यदि ते स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः।[1]

याका अर्थ- यहु ज्ञाननयके अवलोकनहारे भी जे स्वच्छन्द मंद उद्यमी हो हैं, ते संसारविषै डूबैं और भी तहाँ "ज्ञानिनः कर्म्म न जातु कर्तुमुचितं" - इत्यादि कलशाविषै वा "तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनः"- इत्यादि कलशा विषै स्वच्छन्द होना निषेध्या है। बिना चाहि जो कार्य होय सो कर्मबन्धका कारण नाहीं। अभिप्रायतैं कर्त्ता होय करै अर ज्ञाता रहै, यहु तो बनै नाहीं; इत्यादि निरूपण किया है। तातैं रागादिक बुरे अहितकारी जानि तिनका नाशके अर्थि उद्यम राखना। तहाँ अनुक्रमविषै पहलै तीव्ररागादिक छोड़ने के अर्थि अशुभ कार्य छोरि शुभ विषै लागना, पीछै मंदरागादि भी छोड़ने के अर्थि शुभको भी छोरि शुद्धोपयोगरूप होना।

बहुरि केई जीव अशुभविषै क्लेश मानि व्यापारादि कार्य वा स्त्रीसेवनादि कार्यनिको भी घटावै हैं। बहुरि शुभको हेय जानि शास्त्राभ्यासादि कार्यनिविषै नाहीं प्रवर्तै हैं। वीतराग भाव रूप शुद्धोपयोगको प्राप्त भए नाहीं, ते जीव अर्थ काम धर्म्म मोक्षरूप पुरुषार्थतैं रहित होते संते आलसी निरुद्यमी हो हैं। तिनकी निन्दा पंचास्तिकायकी व्याख्या विषै कीनी है। तिनको दृष्टांत दिया है-जैसे बहुत खीर खांड खाय पुरुष आलसी हो है वा जैसे वृक्ष निरुद्यमी हैं, तैसे ते जीव आलसी निरुद्यमी भए हैं।

---

[1] मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति ये,
मग्नाः ज्ञाननयैषिणोपि यदि ते स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः ।
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं,
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च ।।

- समयसार कलश १११

अब इनको पूछिए है- तुम बाह्य तो शुभ अशुभकार्यनिको घटाया परन्तु उपयोग तो आलम्बन बिना रहता नाहीं, सो तुम्हारा उपयोग कहां रहै है, सो कहो। जो वह कहै-आत्माका चिंतवन करै है, तो शास्त्रादि करि अनेक प्रकार आत्माका विचारको तो तुम विकल्प ठहराया अर कोई विशेषण आत्माका जानने में बहुतकाल लागै नाहीं। बारम्बार एकरूप चिंतवनविषै छद्मस्थका उपयोग लगता नाहीं। गणधरादिकका भी उपयोग ऐसे न रहि सकै, तातैं वे भी शास्त्रादि कार्यनिविषै प्रवर्तै हैं। तेरा उपयोग गणधरादिकतैं भी कैसे शुद्ध भया मानिए। तातैं तेरा कहना प्रमाण नाहीं।

जैसे कोऊ व्यापारादिविषै निरुद्यमी होय ठाला जैसे तैसे काल गुमावै, तैसे तू धर्म्म विषै निरुद्यमी होइ प्रमादी यूँही काल गमावै है। कबहूँ किछू चिंतवनसा करै, कबहूँ बातैं बनावै, कबहूँ भोजनादि करै, अपना उपयोग निर्मल करनेको शास्त्राभ्यास तपश्चरण भक्ति आदि कार्यनिविषै प्रवर्त्तता नाहीं। सूनासा होय प्रमादी होनेका नाम शुद्धोपयोग ठहराय, तहाँ क्लेश थोरा होनेतैं जैसे कोई आलसी होय परचा रहने में सुख मानै, तैसे आनन्द मानै है। अथवा जैसे सुपने विषैं आपको राजा मानि सुखी होय, तैसे आपको भ्रमतैं सिद्ध समान शुद्ध मानि आप ही आनन्दित हो है। अथवा जैसे कहीं रति मानि सुखी हो है, तैसे किछू विचार करने विषै रति मानि सुखी होय, ताको अनुभवजनित आनंद कहै है।

बहुरि जैसे कहीं अरति मानि उदास होय, तैसे व्यापारादिक पुत्रादिकको खेदका कारण जानि तिनतैं उदास रहै है, ताको वैराग्य मानै है। सो ऐसा ज्ञान-वैराग्य तो कषायगर्भित है। जो वीतरागरूप उदासीन दशाविषै निराकुलता होय, सो सांचा आनन्द, ज्ञान, वैराग्य ज्ञानी जीवनिकै चारित्रमोहकी हीनता भए प्रगट हो है। बहुरि वह व्यापारादि क्लेश छोड़ि यथेष्ट भोजनादिकरि सुखी हुवा प्रवर्त्तै है। आपको तहाँ कषायरहित मानै है, सो ऐसे आनन्दरूप भए तो रौद्रध्यान हो है। जहाँ सुख-सामग्री छोड़ि दुख-सामग्री का संयोग भए संक्लेश न होय, रागद्वेष न उपजै, तब निःकषाय भाव हो है। ऐसे भ्रमरूप तिनकी प्रवृत्ति पाईए है। या प्रकार जे जीव केवल निश्चयाभास के अवलम्बी हैं, ते मिथ्यादृष्टी जानने। जैसे वेदांती वा सांख्यमतवाले जीव केवल शुद्धात्माके श्रद्धानी हैं तैसे ए भी जानने। जातैं श्रद्धानकी समानताकरि उनका उपदेश इनको इष्ट लागै है, इनका उपदेश उनको इष्ट लागै है।

स्वद्रव्य और परद्रव्य के चिन्तन से निर्जरा और बंध का निषेध

बहुरि तिन जीवनिकै ऐसा श्रद्धान है- जो केवल शुद्धात्मा का चिंतवनतैं तो संवर निर्जरा हो है वा मुक्तात्माका सुख का अंश तहां प्रगट हो है। बहुरि जीव के गुणस्थानादि अशुद्ध भावनिका वा आप बिना अन्य जीव पुद्गलादिकका चिंतवन किए आस्रव बन्ध हो है। तातैं अन्य विचारतैं पराङ्मुख रहै हैं। सो यहु भी सत्य श्रद्धान नाहीं, जातैं शुद्ध स्वद्रव्यका चिंतवन करो वा अन्य चिंतवन करो; जो वीतरागता लिये भाव होय, तो तहाँ संवर निर्जरा ही है बहुरि जहाँ रागादिरूप भाव होय, तहां आस्रव बंध ही है। जो परद्रव्य के जाननेहीतैं आस्रवबन्ध होय तो केवली तो समस्त परद्रव्य को जानै है, तिनकै भी आस्रव बन्ध हो है। बहुरि वह कहै है- जो छद्मस्थके परद्रव्य चिंतवन होतैं आस्रव बन्ध हो है। सो भी नाहीं, जातैं शुक्ल ध्यानविषै भी मुनिनिकै छहों द्रव्यनिका द्रव्यगुण पर्यायका चिंतवन होना निरूपण किया

है वा अवधिमन:पर्ययादिविषै परद्रव्य के जाननेही की विशेषता हो है। **बहुरि चौथा गुणस्थानविषै कोई अपने स्वरूपका चिंतवन करै है, ताकै भी आस्रवबन्ध अधिक है वा गुणश्रेणी निर्जरा नाहीं है।** पंचम षष्टम गुणस्थानविषै आहार विहारादि क्रिया होतैं परद्रव्य चिंतवनतैं भी आस्रव बन्ध थोरा हो है वा गुणश्रेणी निर्जरा हुवा करै है। **तातैं स्वद्रव्य परद्रव्यका चिंतवनतैं निर्जरा बंध नाहीं। रागादिक घटे निर्जरा है, रागादिक भए बन्ध है।** ताको रागादिकके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नाहीं, तातैं अन्यथा मानै है।

तहाँ **वह पूछै है** कि ऐसे है तो निर्विकल्प अनुभव दशा विषै नय प्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्प का निषेध किया है, सो कैसे है?

ताका उत्तर- जे जीव इनही विकल्पनिविषै लगि रहे हैं, अभेदरूप एक आपको अनुभवै नाहीं हैं, तिनको ऐसा उपदेश दिया है, जो ए सर्व विकल्प वस्तुका निश्चय करने को कारण हैं। वस्तु का निश्चय भये इनका प्रयोजन किछू रहता नाहीं। तातैं इन विकल्पनिको भी छोड़ि अभेदरूप एक आत्मा का अनुभव करना। इनिके विचाररूप विकल्पनि ही विषै फँसि रहना योग्य नाहीं। बहुरि वस्तु का निश्चय भए पीछै ऐसा नाहीं, जो सामान्यरूप स्वद्रव्यहीका चिंतवन रह्या करै। **स्वद्रव्यका वा परद्रव्यका सामान्यरूप वा विशेषरूप जानना होय परन्तु वीतरागता लिये होय, तिसहीका नाम निर्विकल्प दशा है।**

तहाँ **वह पूछै है**- यहाँ तो बहुत विकल्प भए, निर्विकल्पसंज्ञा कैसे सम्भवै?

ताका उत्तर- निर्विचार होने का नाम निर्विकल्प नाहीं है। जातैं छद्मस्थ कै जानना विचार लिये है। ताका अभाव मानै ज्ञानका अभाव होय, तब जड़पना भया सो आत्माकै होता नाहीं। तातैं विचार तो रहै हैं, बहुरि जो कहिए, एक सामान्य का ही विचार रहता है, विशेष का नाहीं। तो सामान्य का विचार तो बहुत काल रहता नाहीं वा विशेष की अपेक्षा बिना सामान्य का स्वरूप भासता नाहीं। बहुरि कहिए- आपहीका विचार रहता है पर का नाहीं, तो परविषै पर बुद्धि भए बिना आपविषै निजबुद्धि कैसे आवै? तहाँ वह कहै है, **समयसारविषै** ऐसा कह्या है-

भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं।।

(कलश १३०- संवर अधिकार)

याका **अर्थ**- यहु भेदविज्ञान तावत् निरन्तर भावना, यावत् परतैं छूटि ज्ञान है सो ज्ञानविषै स्थित होय। तातैं भेदविज्ञान छूटे पर का जानना मिटि जाय है। केवल आप ही को आप जान्या करै है।

सो यहाँ तो यहु **कह्या है**- पूर्वे आपा पर को एक जानै था, पीछै जुदा जानने को भेदविज्ञान को तावत् भावना ही योग्य है, यावत् ज्ञान पर रूप को भिन्न जानि अपने ज्ञानस्वरूप ही विषै निश्चित होय। पीछै भेद-विज्ञान करने का प्रयोजन रह्या नाहीं। स्वयमेव पर को पररूप, आपको आप रूप जान्या करै है। ऐसा नाहीं, जो परद्रव्य का जानना ही मिटि जाय है। तातैं **पर द्रव्य का जानना वा स्वद्रव्य का विशेष जानने का नाम विकल्प नाहीं है।** तो कैसे है? सो कहिए है- **राग-द्वेष के वशतैं किसी ज्ञेय के जानने**

विषै उपयोग लगावना, किसी ज्ञेय के जानने तैं छुड़ावना, ऐसे बार-बार उपयोग को भ्रमावना, ताका नाम विकल्प है। बहुरि जहाँ वीतरागरूप होय जाको जानै है, ताको यथार्थ जानै है। अन्य अन्य ज्ञेय के जानने के अर्थि उपयोग को नाहीं भ्रमावै है, तहाँ निर्विकल्पदशा जाननी।

यहाँ **कोऊ कहै**- छद्मस्थ का उपयोग तो नाना ज्ञेय विषै भ्रमै ही भ्रमै। तहाँ निर्विकल्पता कैसे सम्भवै है?

ताका उत्तर- जेते काल एक जानने रूप रहै, तावत् निर्विकल्प नाम पावै। सिद्धान्तविषै ध्यान का लक्षण ऐसा ही किया है- **"एकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानम्।"**[1]

एक का मुख्य चिंतवन होय अर अन्य चिंता रुकै, ताका नाम ध्यान है। **सर्वार्थसिद्धि** सूत्र की टीका विषै यहु विशेष कह्या है- जो सर्व चिंता रुकने का नाम ध्यान होय तो अचेतनपनो होय जाय। बहुरि ऐसी भी विवक्षा है जो संतान अपेक्षा नाना ज्ञेय का भी जानना होय। परन्तु **यावत् वीतरागता रहै, रागादिककरि आप उपयोग को भ्रमावै नाहीं, तावत् निर्विकल्पदशा कहिए है।**

बहुरि **वह कहै**- ऐसे है तो परद्रव्यतैं छुड़ाय स्वरूपविषै उपयोग लगावने का उपदेश काहेको दिया है?

ताका **समाधान**- जो शुभ-अशुभ भावनिको कारण पर द्रव्य है, तिनविषै उपयोग लगे जिनकै रागद्वेष होइ आवै है अर स्वरूपचिंतवन करै तो रागद्वेष घटै है, ऐसे नीचली अवस्थावारे जीवनिको पूर्वोक्त उपदेश है। जैसे कोऊ स्त्री विकारभावकरि पर घर जाती थी, ताको मनै करी-पर घर मति जाय, घर में बैठि रहो। बहुरि जो स्त्री निर्विकार भावकरि काहूकै घर जाय यथायोग्य प्रवर्तै तो किछू दोष है नाहीं। तैसे उपयोगरूप परणति राग-द्वेष भावकरि पर द्रव्यनिविषै प्रवर्तै थी, ताको मनै करी-परद्रव्यनिविषै मति प्रवर्तै, स्वरूपविषै मग्न रहो। बहुरि **जो उपयोगरूप परणति वीतरागभावकरि परद्रव्यको जानि यथायोग्य प्रवर्तै, तो किछू दोष है नाहीं।**

बहुरि **वह कहै है**- ऐसे है तो महामुनि परिग्रहादिक चिंतवनका त्याग काहेको करै हैं।

ताका **समाधान**- जैसे विकाररहित स्त्री कुशीलके कारण परघरनिका त्याग करै तैसे वीतराग परणति रागद्वेष के कारण परद्रव्यनिका त्याग करै है। बहुरि जे व्यभिचारके कारण नाहीं, ऐसे परघर जाने का त्याग है नाहीं। तैसे जे रागद्वेषको कारण नाहीं, ऐसे परद्रव्य जानने का त्याग है नाहीं।

बहुरि **वह कहै है**- जैसे जो स्त्री प्रयोजन जानि पितादिकके घरि जाय तो जावो, बिना प्रयोजन जिस तिसके घर जाना तो योग्य नाहीं। तैसे परणतिको प्रयोजन जानि सप्ततत्त्वनिका विचार करना, बिना प्रयोजन गुणस्थानादिकका विचार करना योग्य नाहीं।

ताका **समाधान**- जैसे स्त्री प्रयोजन जानि पितादिक वा मित्रादिकके भी घर जाय तैसे परणति

1. "उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्" (तत्त्वार्थसूत्र ९-२७)

तत्त्वनिका विशेष जानने को कारण गुणस्थानादिक वा कर्म्मादिकको भी जानै। बहुरि तहाँ ऐसा जानना जैसे शीलवती स्त्री उद्यमकरि तो विटपुरुषनिके स्थान न जाय, जो परवश तहाँ जाना बनि जाय, तहाँ कुशील न सेवै तो स्त्री शीलवती ही है। तैसे वीतराग परणति उपायकरि तो रागादिकके कारण परद्रव्यनिविषै न लागै, जो स्वयमेव तिनका जानना होय जाय, तहां रागादिक न करै तो परणति शुद्ध ही है। तातैं स्त्री आदिकी परीषह मुनिनकै होय, तिनिको जानैं ही नाहीं, अपने स्वरूप ही का जानना रहै है, ऐसा मानना मिथ्या है। उनको जानै तो है परन्तु रागादिक नाहीं करै हैं। या प्रकार **परद्रव्यको जानतैं भी वीतरागभाव हो है, ऐसा श्रद्धान करना।**

बहुरि **वह कहै है**- ऐसे है तो शास्त्रविषै, ऐसे कैसे कह्या है, जो आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है।

ताका **समाधान**- अनादितैं परद्रव्यविषै आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण था, ताके छुड़ावने को यहु उपदेश है। आपही विषै आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण भए परद्रव्यविषै रागद्वेषादि परणति करनेका श्रद्धान वा ज्ञान वा आचरन मिटि जाय, तब सम्यग्दर्शनादि हो है। जो परद्रव्यका परद्रव्यरूप श्रद्धानादि करनेतैं सम्यग्दर्शनादि न होते होय, तो केवलीकै भी तिनका अभाव होय। जहाँ परद्रव्यको बुरा जानना, निज द्रव्य को भला जानना तहाँ तो रागद्वेष सहज ही भया। जहाँ आपको आपरूप परको पररूप यथार्थ जान्या करै, तैसे ही श्रद्धानादिरूप प्रवर्तै, तब ही सम्यग्दर्शनादि हो हैं, ऐसे जानना। तातैं **बहुत कहा कहिए, जैसे रागादि मिटावने का श्रद्धान होय सो ही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसे रागादि मिटावने का जानना होइ सोई जानना सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसे रागादि मिटै सोही आचरण सम्यक्चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है।** या प्रकार निश्चयनयका आभास लिये एकान्तपक्षके धारी जैनाभास तिनके मिथ्यात्व का निरूपण किया।

केवल व्यवहारावलम्बी जैनाभास का निरूपण

अब व्यवहाराभास पक्षके धारक जैनाभासनिके मिथ्यात्वका निरूपण कीजिए है- जिनआगम विषै जहां व्यवहार की मुख्यताकरि उपदेश है, ताको मानि बाह्यसाधनादिक हीका श्रद्धानादिक करै है, तिनके सर्व धर्मके अंग अन्यथारूप होय मिथ्याभावको प्राप्त होय हैं सो विशेष कहिए हैं। यहां ऐसा जानि लेना; व्यवहार धर्म की प्रवृत्तितैं पुण्यबंध होय है, तातैं पापप्रवृत्ति अपेक्षा तो याका निषेध है नाहीं। परन्तु इहाँ जो जीव व्यवहार प्रवृत्ति ही करि सन्तुष्ट होय, सांचा मोक्षमार्गविषै उद्यमी न होय है,, ताको मोक्षमार्ग विषै सन्मुख करनेको तिस शुभरूप मिथ्याप्रवृत्तिका भी निषेधरूप निरूपण कीजिए है। जो यहु कथन कीजिए है, ताको सुनि जो शुभ प्रवृत्ति छोड़ि अशुभविषै प्रवृत्ति करोगे तो तुम्हारा बुरा होगा और जो यथार्थ श्रद्धान करि मोक्षमार्गविषै प्रवर्तोगे तो तुम्हारा भला होगा। जैसे कोऊ रोगी निर्गुण औषधिका निषेध सुनि औषधि साधन छोड़ि कुपथ्य करेगा तो वह मरेगा, वैद्य का किछू दोष नाहीं। **तैसे कोउ संसारी पुण्यरूपधर्म का निषेध सुनि धर्मसाधन छोड़ि विषयकषायरूप प्रवर्तैगा, तो वह ही नरकादिविषै दुःख पावेगा। उपदेशदाताका तो दोष**

है नाहीं। उपदेश देनेवाले का तो अभिप्राय असत्य श्रद्धानादि छुड़ाय मोक्षमार्गविषै लगावने का जानना। सो ऐसा अभिप्रायतैं इहां निरूपण कीजिए है।

कुल अपेक्षा धर्म मानने का निषेध

तहाँ केई जीव तो कुलक्रमकरि ही जैनी हैं, जैनधर्मका स्वरूप जानते नाहीं। परन्तु कुलविषै जैसी प्रवृत्ति चली आई, तैसे प्रवर्त्तै हैं। सो जैसे अन्यमती अपने कुलधर्मविषै प्रवर्त्तै है, तैसे यहु प्रवर्त्तै है। जो कुलक्रमहीतैं धर्म होय, तो मुसलमान आदि सर्व ही धर्मात्मा होय। जैनधर्म का विशेष कहा रह्या? सोई कह्या है।

लोयम्मि रायणीई णायं ण कुलकमम्मि कइयावि।
किं पुण तिलोयपहुणो जिणंदधम्माहिगारम्मि।।

(उप. सि. र. गाथा ७)

याका **अर्थ**- लोकविषै यहु राजनीति है-कदाचित् कुलक्रमकरि न्याय नाहीं होय है। जाका कुल चोर होय, ताको चोरी करता पकरै तो वाका कुलक्रम जानि छोड़ै नाहीं, दंड ही दे। तो त्रिलोक प्रभु जिनेन्द्रदेवके धर्मका अधिकारविषै कहा कुलक्रम अनुसारि न्याय सम्भवै। बहुरि जो पिता दरिद्री होय आप धनवान होय, तहाँ तो कुलक्रम विचार आप दरिद्री रहता ही नाहीं तो धर्मविषै कुलका कहा प्रयोजन है। बहुरि पिता नरक जाय पुत्र मोक्ष जाय, तहाँ कुलक्रम कैसे रह्या? जो कुल ऊपरि दृष्टि होय, तो पुत्र भी नरकगामी होय। तातैं धर्मविषै कुलक्रमका किछू प्रयोजन नाहीं। शास्त्रनिका अर्थ विचारि जो कालदोष तैं जिनधर्म विषै भी पापी पुरुषनिकरि कुलदेव कुगुरु कुधर्म सेवनादिरूप वा विषय-कषाय पोषणादिरूप विपरीत प्रवृत्ति चलाई होय, ताका त्यागकरि जिनआज्ञा अनुसारि प्रवर्त्तना योग्य है।

इहाँ **कोऊ कहै**- परम्परा छोड़ि नवीन मार्गविषै प्रवर्तना युक्त नाहीं। **ताको कहिए है**-

जो अपनी बुद्धिकरि नवीन मार्ग पकरै तो युक्त नाहीं। जो परम्परा अनादिनिधन जैनधर्मका स्वरूप शास्त्रनिविषै लिख्या है, ताकी प्रवृत्ति मेटि बीचिमें पापी पुरुषाँ अन्यथा प्रवृत्ति चलाई, तो ताको परम्परा-मार्ग कैसे कहिए। बहुरि ताको छोड़ि पुरातन जैनशास्त्रनिविषै जैसा धर्म लिख्या था तैसे प्रवर्त्तै, तो ताको नवीन मार्ग कैसे कहिए। बहुरि जो कुलविषै जिनदेवकी आज्ञा है, तैसे ही धर्म्म की प्रवृत्ति है, तो आपको भी तैसे ही प्रवर्त्तना योग्य है। परन्तु ताको कुलाचार न जानना, धर्म जानि ताके स्वरूप फलादिकका निश्चय करि अंगीकार करना। जो सांचा भी धर्मको कुलाचार जानि प्रवर्त्तै है तो वाको धर्मात्मा न कहिए, जातैं सर्व कुलके उस आचरणको छोड़ै तो आप भी छोड़ि दे। बहुरि जो वह आचरण करै है सो कुल का भयकरि करै है, किछू धर्मबुद्धितैं नाहीं करै है; तातैं वह धर्मात्मा नाहीं। तातैं विवाहादि कुल सम्बन्धी कार्यनिविषै तो कुलक्रम का विचार करना अर धर्मसम्बन्धी कार्यविषै कुलका विचार न करना। जैसे धर्ममार्ग साँचा है, तैसे प्रवर्त्तना योग्य है।

परीक्षारहित आज्ञानुसारी जैनत्व का प्रतिषेध

बहुरि केई आज्ञानुसारि जैनी ही हैं। जैसे शास्त्रविषै आज्ञा है तैसै मानै हैं परन्तु आज्ञाकी परीक्षा करते नाहीं। सो आज्ञा ही मानना धर्म होय तो सर्व मतवाले अपने-अपने शास्त्रकी आज्ञा मानि धर्मात्मा होय। तातैं परीक्षाकरि जिनवचननिको सत्यपनो पहिचानि जिन आज्ञा माननी योग्य है। बिना परीक्षा किए सत्य-असत्यका निर्णय कैसे होय? अर बिना निर्णय किये जैसे अन्यमती अपने शास्त्रनिकी आज्ञा मानै हैं, तैसे याने जैनशास्त्रनिकी आज्ञा मानी। यहु तो पक्षकरि आज्ञा मानना है।

कोऊ कहै, शास्त्रविषै दश प्रकार सम्यक्त्वविषै आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है वा आज्ञाविचय धर्मध्यानका भेद कह्या है वा निःशंकित अंगविषै जिनवचंनविषै संशय करना निषेध्या है, सो कैसे है?

ताका समाधान- शास्त्रनिविषै कथन केई तो ऐसे हैं, जिनकी प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि परीक्षा करि सकिए है। बहुरि केई कथन ऐसे हैं, जो प्रत्यक्ष अनुमानादि गोचर नाहीं। तातैं आज्ञा ही करि प्रमाण होय हैं। तहाँ नाना शास्त्रनिविषै जे कथन समान होय, तिनकी तो परीक्षा करनेका प्रयोजन ही नाहीं। बहुरि जो कथन परस्पर विरुद्ध होई, तिनिविषै जो कथन प्रत्यक्ष अनुमानादि गोचर होय, तिनकी तो परीक्षा करनी। तहाँ जिनशास्त्र के कथन की प्रमाणता ठहरै, तिनि शास्त्रविषै जे प्रत्यक्ष अनुमान गोचर नाहीं ऐसे कथन किए होय, तिनको भी प्रमाणता करनी। बहुरि जिन शास्त्रनिके कथनकी प्रमाणता न ठहरै, तिनके सर्वहू कथनकी अप्रमाणता माननी।

इहाँ कोऊ कहै- परीक्षा किए कोई कथन कोई शास्त्रविषै प्रमाण भासै, कोई कथन कोई शास्त्रविषै प्रमाण भासै तो कहा करिए?

ताका समाधान- जो आप्तके भाषै शास्त्र हैं, तिनिविषै कोई ही कथन प्रमाण-विरुद्ध न होय। जातैं कै तो जानपना ही न होय, कै रागद्वेष होय तो असत्य कहै। सो आप्त ऐसा होय नाहीं, तातैं परीक्षा नीकी नाहीं करी है, तातैं भ्रम है।

बहुरि वह कहै है- छद्मस्थकै अन्यथा परीक्षा होय जाय तो कहा करै?

ताका समाधान- सांची झूंठी दोऊ वस्तुनिको मींड़े अर प्रमाद छोड़ि परीक्षा किए तो सांची ही परीक्षा होय। जहां पक्षपातकरि नीके परीक्षा न करै, तहाँ ही अन्यथा परीक्षा हो है।

बहुरि वह कहै है, जो शास्त्रनिविषै परस्पर विरुद्ध कथन तो घने, कौन-कौनकी परीक्षा करिए।

ताका समाधान- मोक्षमार्गविषै देव गुरु धर्म वा जीवादि तत्त्व वा बंधमोक्षमार्ग प्रयोजनभूत हैं, सो इनिकी परीक्षा करि लेनी। जिन शास्त्रनिविषै ए सांचे कहै, तिनकी सर्व आज्ञा माननी। जिनविषै ए अन्यथा प्ररूपे, तिनकी आज्ञा न माननी। जैसे लोकविषै जो पुरुष प्रयोजनभूत कार्यनिविषै झूठ न बोलै, सो, प्रयोजनरहित कार्यनिविषै कैसे झूठ बोलेगा। तैसे जिस शास्त्रविषै प्रयोजनभूत देवादिकका स्वरूप अन्यथा न कह्या, तिस विषै प्रयोजनरहित द्वीप-समुद्रादिकका कथन अन्यथा कैसे होय? जातैं देवादिकका कथन अन्यथा किए वक्ताके विषय-कषाय पोषे जांय हैं।

इहां **प्रश्न**-देवादिकका कथन तो अन्यथा विषयकषायतैं किया, तिनि ही शास्त्रनिविषै अन्य कथन अन्यथा काहेको किया।

ताका **समाधान**- जो एक ही कथन अन्यथा कहै, वाका अन्यथापना शीघ्र ही प्रगट होय जाय। जुदी पद्धति ठहरै नाहीं। तातैं घने कथन अन्यथा करनेतैं जुदी पद्धति ठहरै। तहाँ तुच्छ बुद्धि भ्रममैं पड़ि जाय- यहु भी मत है। यहु भी मत है। तातैं प्रयोजनभूतका अन्यथापना का मेलनेके अर्थि अप्रयोजनभूत भी अन्यथा कथन घने किए। बहुरि प्रतीति अनावनेके अर्थि कोई-कोई साँचा भी कथन किया। परन्तु स्याना होय सो भ्रम में परै नाहीं। प्रयोजनभूत कथनकी परीक्षाकरि जहाँ सांच भासै, तिस मत की सर्व आज्ञा मानै, सो परीक्षा किए जैनमत ही सांचा भासै है, अन्य नाहीं। जातैं याका वक्ता सर्वज्ञ वीतराग है, सो झूंठ काहेको कहै। ऐसे जिन आज्ञा माने जो सांचा श्रद्धान होय, ताका नाम आज्ञा सम्यक्त्व है। बहुरि तहाँ एकाग्र चिन्तवन होय, ताहीका नाम आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जो ऐसे न मानिए अर बिना परीक्षा किए ही आज्ञा माने सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय जाय, तो जो द्रव्यलिंगी आज्ञा मानि मुनि भया, आज्ञा अनुसारि साधनकरि ग्रैवेयक पर्यन्त प्राप्त होय, ताकै मिथ्यादृष्टिपना कैसे रह्या? तातैं किछू परीक्षाकरि आज्ञा माने ही सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय है। लोकविषै भी कोई प्रकार परीक्षा भए ही पुरुषकी प्रतीति कीजिए है।

बहुरि **तैं कह्या**- जिनवचनविषै संशय करनेतैं सम्यक्त्वका शंका नामा दोष हो है, सो 'न जानै यह कैसे है' ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तहाँ शंका नामा दोष हो है। बहुरि जो निर्णय करनेको विचार करते ही सम्यक्त्वको दोष लागै, तो अष्टसहस्रीविषै आज्ञाप्रधानतैं परीक्षाप्रधानको उत्तम काहेको कह्या? पृच्छना आदि स्वाध्यायके अंग कैसे कहै। प्रमाण नयतैं पदार्थनिका निर्णय करनेका उपदेश काहेको दिया। तातैं परीक्षा करि आज्ञा मानना योग्य है। बहुरि केई पापी पुरुषाँ अपना कल्पित कथन किया है अर तिनको जिनवचन ठहराया है, तिनको जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहाँ भी प्रमाणादिकतैं परीक्षाकरि वा परस्पर शास्त्रनितैं विधि मिलाय वा ऐसे सम्भवै है कि नाहीं, ऐसा विचारकरि विरुद्ध अर्थको मिथ्या ही जानना। जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामें लिखनेवालेका नाम किसी साहूकार का धरया, तिस नामके भ्रमतैं धनको ठिगावै तो दरिद्री ही होय। तैसे पापी आप ग्रन्थादि बनाय, तहाँ कर्त्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धरया, तिस नामके भ्रमतैं झूंठा श्रद्धान करै तो मिथ्यादृष्टि ही होय।

बहुरि **वह कहै है-गोम्मटसार**[1] विषै ऐसा कह्या है- सम्यग्दृष्टि जीव अज्ञान गुरुके निमित्ततैं झूंठ भी श्रद्धान करै तो आज्ञा माननेतैं सम्यग्दृष्टि ही है। सो यहु कथन कैसे किया है?

ताका उत्तर- जे प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाहीं, सूक्ष्मपनेतैं जिनका निर्णय न होय सकै, तिनिकी अपेक्षा यहु कथन है। मूलभूत देव गुरु धर्मादि वा तत्त्वादिकका अन्यथा श्रद्धान भए तो सर्वथा सम्यक्त्व रहै नाहीं, यहु निश्चय करना। तातैं बिना परीक्षा किए केवल आज्ञा ही करि जैनी है, ते भी मिथ्यादृष्टी जानने। बहुरि केई परीक्षा भी करि जैनी हो है परन्तु मूल परीक्षा नाहीं करै है। दया शील तप संयमादि क्रियानिकरि

---

१. सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ।। २७।।

वा पूजा प्रभावनादि कार्यनिकरि वा अतिशय चमत्कारादिकरि वा जिनधर्मतैं इष्ट प्राप्ति होनेकरि जिनमतको उत्तम जानि प्रीतिवंत होय जैनी होम हैं। सो अन्यमतविषै भी ऐसा तौ कार्य पाईए है, तातैं इन लक्षणनिविषै अतिव्याप्ति पाईए है।

कोऊ कहै- जैसे जिनधर्मविषै ए कार्य हैं, तैसे अन्यमतविषै न पाइए हैं, तातैं अतिव्याप्ति नाहीं।

ताका **समाधान**- यहु तो सत्य है, ऐसे ही है। परन्तु जैसे तू दयादिक मानै है, तैसे तो वे भी निरूपै है। परजीवनिकी रक्षाको दया तू कहै है, सोई वे कहै हैं। ऐसे ही अन्य जानने।

बहुरि वह **कहै है**- उनकै ठीक नाहीं। कबहूँ दया प्ररूपै, कबहूँ हिंसा प्ररूपै।

ताका **उत्तर**- तहाँ दयादिकका अंशमात्र तो आया। तातैं अतिव्याप्तिपना इन लक्षणनिकै पाइए है। इनकरि साँची परीक्षा होय नाहीं। तो कैसे होय? जिनधर्म विषै सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग कह्या है। तहाँ सांचे देवादिकका वा जीवादिकका श्रद्धान किए सम्यक्त्व होय वा तिनको जाने सम्यग्ज्ञान होय वा साँचा रागादिक मिटे सम्यक्चारित्र होय, सो इनका स्वरूप है जैसे जिनमत विषै निरूपण किया है, तैसे कहीं निरूपण किया नाहीं वा जैनी बिना अन्यमती ऐसा कार्य करि सकते नाहीं। तातैं यहु जिनमतका सांचा लक्षण है। इस लक्षण को पहचानि जे परीक्षा करै, तेई श्रद्धानी हैं। इस बिना अन्य प्रकार करि परीक्षा करि हैं, ते मिथ्यादृष्टी ही रहै हैं।

बहुरि केई संगतिकरि जैनधर्म धारै हैं। केई महान् पुरुषको जिनधर्मविषै प्रवर्तता देखि आप भी प्रवर्तै हैं केई देखादेखी जिनधर्म की शुद्ध वा अशुद्ध क्रियानिविषै प्रवर्तै हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके जीव आप विचारकरि जिनधर्म का रहस्य नाहीं पहिचानै हैं। अर जैनी नाम धरावै हैं, ते सर्व मिथ्यादृष्टी ही जानने। इतना तो है। जिनमतविषै पापकी प्रवृत्तिविशेष नहीं होय सकै है अर पुण्यके निमित्त घने हैं अर सांचा मोक्षमार्ग के भी कारण तहाँ बनि रहे हैं। तातैं जे कुलादिकरि भी जैनी हैं, ते भी औरनितैं तो भले ही हैं।

आजीविकादि प्रयोजनार्थ धर्मसाधनका प्रतिषेध

बहुरि जे जीव कपटकरि आजीविकाके अर्थि वा बड़ाई के अर्थि वा किछू विषयकषाय सम्बन्धी प्रयोजन विचारि जैनी हो हैं, ते तो पापी ही हैं। अति तीव्रकषाय भए ऐसी बुद्धि आवै है। उनका सुलझना भी कठिन है। जैनधर्म तो संसारका नाश के अर्थि सेइए है। ताकरि जो संसारीक प्रयोजन साध्या चाहै सो बड़ा अन्याय करै है। तातैं ते तो मिथ्यादृष्टि हैं ही।

इहाँ **कोऊ कहै**-हिंसादिकरि जिन कार्यनिको करिए, ते कार्य धर्म्मसाधनकरि सिद्ध कीजिए तो बुरा कहा भया। दोऊ प्रयोजन सधै।

ताको **कहिए है**- पापकार्य अर धर्मकार्यका एक साधन किए पाप ही होय। जैसे कोऊ धर्मका साधन चैत्यालय बनाय, तिसहीको स्त्रीसेवनादि पापनिका भी साधन करै, तो पापी ही होय। हिंसादिकरि भोगादिकके अर्थि जुदा मन्दिर बनावै तो बनावो परन्तु चैत्यालयविषै भोगादि करना युक्त नाहीं। तैसे धर्मका साधन पूजा

शास्त्रादि कार्य हैं, तिनहीको आजीविका आदि पाप का भी साधन करै, तो पापी ही होय।[1] हिंसादि करि आजीविकादि के अर्थि व्यापारादि करै तो करो परन्तु पूजादि कार्यनिविषै तो आजीविका आदि का प्रयोजन विचारना युक्त नाहीं।

इहां प्रश्न– जो ऐसे है तो मुनि भी धर्म साधि पर घर भोजन करै हैं वा साधर्मी साधर्मी का उपकार करै करावै हैं, सो कैसे बनै?

ताका उत्तर– जो आप तो किछू आजीविका आदि का प्रयोजन विचारि धर्म नाहीं साधै है, आपको धर्मात्मा जानि केई स्वयमेव भोजन उपकारादि करै हैं तो किछू दोष है नाहीं। बहुरि जो आप ही भोजनादिका प्रयोजन विचारि धर्म साधै है, तो पापी है ही। जे विरागी होय मुनिपनो अंगीकार करै है, तिनिकै भोजनादिका प्रयोजन नाहीं, शरीर की स्थिति के अर्थि स्वयमेव भोजनादि कोई दे तो ले, नाहीं समता राखै। संक्लेशरूप होय नाहीं। बहुरि आप हितके अर्थि धर्म साधै हैं, उपकार करवानेका अभिप्राय नाहीं है। अर आपकै जाका त्याग नाहीं, ऐसा उपकार करावै। कोई साधर्मी स्वयमेव उपकार करै तो करो अर न करै तो आपके किछू

१. (A) पं. जगन्मोहनलाल सिद्धान्तशास्त्री (कटनी, म.प्र.) लिखते हैं कि – (१) पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, पर्वों में प्रवचन विधान आदि धार्मिक कार्यों में पारिश्रमिक के रूप में ठहराव करके एवं/अथवा वेतन आदि के रूप में रुपया लेना/आजीविका चलाना तो पाप ही है। ऐसे विद्वान् टोडरमलजी कथित श्रेणी में अवश्य आते हैं। (२) जिन विद्वानों ने श्रुतसेवा की है उनकी आजीविका की चिन्ता समाज को करनी आवश्यक है। अतएव जिन संस्थाओं या समाज द्वारा उनकी आजीविका में सहयोग किया गया है, यह उन संस्थाओं या समाज का कर्तव्य ही था अतः वे विद्वान् इस श्रेणी में (पापजीविका की श्रेणी में) नहीं गिने जा सकते हैं। क्योंकि ऐसे विद्वानों ने आजीविका के लिए श्रुतसेवा नहीं की है, किन्तु समाज व संस्थाओं के आग्रह पर पुण्यकार्य ही किया है। उस स्थिति में समाज भी अपना कर्त्तव्य-निर्वाह करे यानी ऐसे सत् पण्डितों के जीवन-निर्वाह के बारे में सोचना व व्यवस्था करना समाज का कर्त्तव्य था जिसे समाज ने नहीं किया। (पत्र दि. २७.१०.९२ व १५.१२.९२ कुण्डलपुर/सतना)

(B) डॉ. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, सागर लिखते हैं कि – जिस समय पं.सा. ने मोक्षमार्ग-प्रकाशक लिखा उस समय ब्राह्मण विद्वानों में पैसा लेकर पढ़ाना अप्रचलित था। वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय में एक ब्राह्मण विद्वान् ने वेतन लेकर पढ़ाने का काम इस शर्त पर स्वीकृत किया कि उन्हें घर से पालकी में ले जाया जाए तथा पालकी से ही पहुँचा दिया जाए। धीरे-धीरे अन्य लौकिक विषयों में अध्यापक नियुक्त हुए। तब वि.वि. में नौकरी प्राप्त करने की होड़ लग गई। जैन विद्वानों में बरैयाजी व्यापार करते हुए ही पढ़ाते थे। कहीं से कुछ भी विदाई नहीं लेते थे। पं. पांचूरामजी इन्दौर को हमने सागर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में आमंत्रित किया था। विदाई के अवसर पर उन्होंने मार्गव्यय के नाम पर केवल ३० रु. स्वीकृत किये थे, पर आज प्रायः प्रतिष्ठाचार्यों ने प्रतिष्ठा-कार्य को धन्धा बना लिया है।

परिस्थितिवश यदि जैन विद्वान् जैनशालाओं में पैसा लेकर पढ़ाते हैं और ईमानदारी से काम पूरा करते हैं तो इसे पापजीविका नहीं कहा जा सकता। समाज विद्वान् को देती ही क्या है? पं. देवकीनन्दनजी (सम्पादक-धवला) ने जब मुरैना छोड़ा तब उन्हें तीस रु. ही मासिक मिलता था। आज भी जैन शालाओं में विद्वान् अत्यन्त सीमित वेतन में काम कर रहे हैं। फिर भी जिनकी सामर्थ्य अच्छी है, पारिवारिक चिन्ता नहीं रही है उन्हें वेतन लेकर धर्म नहीं पढ़ाना चाहिए। फिर भी अभी जो जैनविद्यालयों में अध्यापन हो रहा है उसे पापजीविका कहना उचित नहीं है।

– (पत्र दि. १२.१०.९२ जबलपुर)

संक्लेश होता नाहीं। सो ऐसे तो योग्य है। अर आपही आजीविका आदिका प्रयोजन विचार बाह्य धर्मका साधन करै, जहाँ भोजनादि उपकार कोई न करै तहाँ संक्लेश करै, याचना करै, उपाय करै, वा धर्मसाधनविषै शिथिल होय जाय सो पापी ही जानना। ऐसे संसारीक प्रयोजन लिए जे धर्म साधै हैं ते पापी भी हैं अर मिथ्यादृष्टि हैं ही या प्रकार जिनमतवाले भी मिथ्यादृष्टि जानने। अब इनकै धर्मका साधन कैसे पाइए है, सो विशेष दिखाइए है-

जैनाभासी मिथ्यादृष्टि की धर्म-साधना

तहां केई जीव कुलप्रवृत्तिकरि वा देख्यां देखी लोभादिका अभिप्रायकरि धर्म साधै हैं, तिनिकै तो धर्मदृष्टि नाहीं। जो भक्ति करै है तो चित्त तो कहीं है, दृष्टि फिरया करै है। अर मुखतैं पाठादि करै है वा नमस्कारादि करै है परन्तु यहु ठीक नाहीं- मैं कौन हूँ किसकी स्तुति करूँ हूँ, किस प्रयोजन के अर्थि स्तुति करूं हूं, पाठविषै कहा अर्थ है, सो किछू ठीक नाहीं। बहुरि कदाचित् कुदेवादिककी भी सेवा करने लगि जाय। तहाँ सुदेवसुगुरुसुशास्त्रादि वा कुदेव कुगुरु कुशास्त्रादि विषै विशेष पहिचान नाहीं। बहुरि जो दान दे है तो पात्र-अपात्र का विचाररहित जैसे अपनी प्रशंसा होय तैसे दान दे है। बहुरि तप करै है तो भूखा रहनेकरि महंतपनो होय सो कार्य करै है। परिणामनिकी पहिचान नाहीं। बहुरि व्रतादिक धारै है, तहां बाह्य क्रिया ऊपर दृष्टि है। सो भी कोई साँची क्रिया करै है, कोई झूंठी करै है। अर अंतरंग रागादि भाव पाइए है, तिनिका विचार ही नाहीं वा बाह्य भी रागादि पोषने का साधन करै है। बहुरि पूजा प्रभावना आदि कार्य करै है, तहां जैसे लोकविषै बड़ाई होय वा विषय-कषाय पोषै जांय तैसे कार्य करै है। बहुरि बहुत हिंसादिक निपजावै है। सो ए कार्य तो अपना वा अन्य जीवनिका परिणाम सुधारने के अर्थि कहे हैं। बहुरि तहां किंचित् हिंसादिक भी निपजै है तो थोरा अपराध होय, गुण बहुत होय सो कार्य करना कह्या है। सो परिणामनिकी पहचान नाहीं। अर यहाँ अपराध केता लागै है, गुण केता हो है सो नफा टोटा का ज्ञान नाहीं वा विधि अविधिका ज्ञान नाहीं। बहुरि शास्त्राभ्यास करै है, तहाँ पद्धतिरूप प्रवर्तै है। जो वांचै है तो औरनिको सुनाय दे है। पढ़ै है तो आप पढ़ि जाय है। सुनै है तो कहै है सो सुनि ले है। जो शास्त्राभ्यासका प्रयोजन है, ताको आप अंतरंग विषै नाहीं अवधारै है। इत्यादि धर्मकार्यनिका मर्मको नाहीं पहिचानै। केई तो कुलविषै जैसे बड़े प्रवर्तै तैसे हमको भी करना अथवा और करै हैं तैसे हमको भी करना वा ऐसे किए हमारा लोभादिककी सिद्धि होसी, इत्यादि विचार लिये अभूतार्थ धर्म को साधै हैं। बहुरि केई जीव ऐसे हैं जिनके किछू तो कुलादिरूप बुद्धि है, किछू धर्मबुद्धि भी है, तातैं पूर्वोक्त प्रकार भी धर्मका साधन करै हैं अर किछू आगै कहिए हैं, तिस प्रकार करि अपने परिणामनिको भी सुधारै हैं। मिश्रपनो पाइए है। बहुरि केई धर्म्मबुद्धिकरि धर्म साधै हैं परन्तु निश्चय धर्म्मको न जानै हैं। तातैं अभूतार्थ रूप धर्मको साधै हैं। तहाँ व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रको मोक्षमार्ग जानि तिनिका साधन करै है। तहाँ शास्त्रविषै देव गुरु धर्मकी प्रतीति किए सम्यक्त्व होना कह्या है। ऐसी आज्ञा मानि अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु, जैनशास्त्र बिना औरनिको नमस्कारादि करने का त्याग किया है परन्तु तिनिका गुण-अवगुणकी परीक्षा नाहीं करै है। अथवा परीक्षा

भी करै है तो तत्त्वज्ञान पूर्वक साँची परीक्षा नाहीं करै है। बाह्य लक्षणनिकरि परीक्षा करै है। ऐसे प्रतीतिकरि सुदेव सुगुरु सुशास्त्रनिकी भक्तिविषै प्रवर्तै है।

अरहंतभक्तिका अन्यथा रूप

तहाँ अरहंत देव हैं, सो इन्द्रादिकरि पूज्य हैं, अनेक अतिशयसहित हैं, क्षुधादि दोषरहित हैं, शरीरकी सुन्दरताको धरै हैं, स्त्रीसंगमादि रहित हैं, दिव्यध्वनिकरि उपदेश दे हैं, केवलज्ञानकरि लोकालोक जानै है, काम-क्रोधादिक नष्ट किए हैं, इत्यादि विशेषण कहै हैं। तहां इनविषै केई विशेषण पुद्गलके आश्रय, केई जीवके आश्रय हैं, तिनको भिन्न-भिन्न नाहीं पहिचानै है। जैसे असमानजातीय मनुष्यादि पर्यायनिविषै जीव पुद्गलके विशेषणनिको भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है तैसे यह असमानजातीय अरहन्तपर्यायविषै जीवपुद्गलके विशेषणनिको भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धारै है। बहुरि जे बाह्य विशेषण हैं, तिनको तो जानि तिनकरि अरहन्तदेवको महन्तपनो विशेष मानै है अर जे जीवके विशेषण हैं, तिनको यथावत् न जानि तिनकरि अरहन्तदेवको महन्तपनो आज्ञा अनुसार मानै है अथवा अन्यथा मानै है। जातैं यथावत् जीवका विशेषण जाने मिथ्यादृष्टी रहै नाहीं। बहुरि तिनि अरहन्तनिको स्वर्गमोक्षका दाता, दीनदयाल, अधम उधारक, पतितपावन मानै है सो अन्यमती कर्त्तृत्वबुद्धितैं ईश्वरको जैसे मानै है, तैसे ही यहु अरहन्तको मानै है। ऐसा नाहीं जानै है-फलतो अपने परिणामनिका लागै है अरहन्त तिनिको निमित्तमात्र हैं, तातैं उपचारकरि वे विशेषण सम्भवै हैं। अपने परिणाम शुद्ध भए बिना अरहन्तादिकके नामादिकतैं श्वानादिक स्वर्ग पाया तहां नामादिकका ही अतिशय मानै है। **बिना परिणाम नाम लेने वालोंके भी स्वर्गकी प्राप्ति न होय तो सुननेवालेकै कैसे होय**। श्वानादिककै नाम सुननेके निमित्ततैं कोई मंदकषायरूप भाव भए हैं, तिनका फल स्वर्ग भया है। उपचारकरि नामहीकी मुख्यता करी है। बहुरि अरहन्तादिकके नाम-पूजनादिकतैं अनिष्ट सामग्रीका नाश, इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति मानि रोगादि मेटनेके अर्थि वा धनादिकी प्राप्ति के अर्थि नाम ले है वा पूजनादि करै है। सो इष्ट अनिष्टका तो कारण पूर्वकर्मका उदय है। अरहन्त तो कर्त्ता है नाहीं। अरहन्तादिककी भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामनितैं पूर्व पापका संक्रमणादिक होय जाय है। तातैं उपचारकरि अनिष्टका नाशको वा इष्टकी प्राप्तिको कारण अरहंतादिककी भक्ति कहिए है। अर जे जीव पहलैही संसारी प्रयोजन लिए भक्ति करै, ताकै तो पापहीका अभिप्राय भया। कांक्षा विचिकित्सारूप भाव भए तिनिकरि पूर्वपापका संक्रमणादि कैसे होय? बहुरि तिनिका कार्य सिद्ध न भया।

बहुरि केई जीव भक्तिको मुक्तिका कारण जानि तहाँ अति अनुरागी होय प्रवर्त्तै हैं सो अन्यमती जैसे भक्ति तैं मुक्ति मानै है तैसे याकै भी श्रद्धान भया। सो भक्ति तो रागरूप है। रागतैं बंध है। तातैं मोक्ष का कारण नाहीं। जब राग उदय आवै तब भक्ति न करै तो पापानुराग होय। तातैं **अशुभ राग छोड़नेको ज्ञानी भक्ति विषै प्रवर्तै हैं वा मोक्षमार्ग को बाह्य निमित्तमात्र भी जानै हैं।**[1] परन्तु यहाँ ही उपादेयपना मानि

---

१. ● कहा भी है : पवित्रं यन्निरातंकं सिद्धानां पदमव्ययं।
सुप्राप्यं विदुषामर्च्यं प्राप्यते तज्जिनार्चकैः।।१२/३९ अमितगति श्रावकाचार
अर्थात् जिनदेव के पूजक पुरुष सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं।

संतुष्ट न हो है, शुद्धोपयोगका उद्यमी रहै है। सो ही **पंचास्तिकायव्याख्याविषै** कह्या है-[1]

इयं भक्तिः केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। तीव्ररागज्वरविनोदार्थमस्थानरागनिषेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोऽपि भवति।

याका **अर्थ**- यहु भक्ति केवल भक्ति ही है प्रधान जाकै ऐसा अज्ञानी जीवकै हो है। बहुरि तीव्ररागज्वर मेटनेके अर्थि वा कु-ठिकाने रागनिषेधने के अर्थि कदाचित् ज्ञानीकै भी हो है।

तहाँ वह **पूछै है**,ऐसे है तो ज्ञानी तैं अज्ञानीकै भक्तिकी अधिकता होती होगी।

ताका उत्तर-यथार्थपनेकी अपेक्षा तो ज्ञानीकै सांची भक्ति है अज्ञानीकै नाहीं है। अर रागभावकी अपेक्षा अज्ञानीकै श्रद्धानविषै भी मुक्तिका कारण जाननेतैं अति अनुराग है। ज्ञानीकै श्रद्धानविषै शुभबंधका कारण जाननेतैं तैसा अनुराग नाहीं है। बाह्य कदाचित् ज्ञानीकै अनुराग घना हो है, कदाचित् अज्ञानीकै हो है, ऐसा जानना। ऐसे देवभक्तिका स्वरूप दिखाया।

अब गुरुभक्तिका स्वरूप वाकै कैसे है, सो कहिए है-

गुरुभक्तिका अन्यथा रूप

केई जीव आज्ञानुसारी हैं। ते तो ए जैनके साधु हैं, हमारे गुरु हैं, तातैं इनिकी भक्ति करनी, ऐसे विचारि तिनकी भक्ति करै हैं। बहुरि केई जीव परीक्षा भी करै हैं। तहां ए मुनि दया पालै हैं, शील पालै हैं, धनादि नाहीं राखै हैं, उपवासादि तप करै हैं, क्षुधादि परीषह सहै हैं, किसीसौं क्रोधादि नाहीं करै हैं। उपदेश देय औरनिको धर्मविषै लगावै हैं, इत्यादि गुण विचार तिनविषै भक्तिभाव करै हैं। सो ऐसे गुण तो परमहंसादिक अन्यमती हैं, तिनविषै वा जैनी मिथ्यादृष्टीनिविषै भी पाईए हैं। तातैं इनिविषै अतिव्याप्तपनो है। इनिकरि साँची परीक्षा होय नाहीं। बहुरि इनि गुणनिको विचारे हैं, तिनविषै केई जीवाश्रित हैं, केई पुद्गलाश्रित हैं, तिनका विशेष न जानता असमानजातीय मुनिपर्यायविषै एकत्व बुद्धितैं मिथ्यादृष्टि ही रहै

- एकापि समर्थेयं जिनभक्ति दुर्गतिं निवारयितुम्।
  पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिजनम्।।७५५ उपासकाध्ययन/पं. कैलाशचन्दजी।
  अर्थात् अकेली जिनभक्ति ही ज्ञानी के दुर्गति का निवारण करने में, पुण्य का संचय करने में और मुक्तिरूपी लक्ष्मी को देने में समर्थ है।
- कर्म भक्त्या जिनेन्द्राणां क्षयं गच्छति भरत। (प.पु. ३२-१८३) हे भरत! जिनेन्द्र की भक्ति से कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।
- सुह-सुद्ध-परिणामेहि कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववत्तीदो। (जयधवल १/६)
  यदि शुभ-शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय नहीं माना जाए तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता।
- देखें वरांगचरित २२/२८, पं. रतनचन्द मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व-२, पृ. १४६४-१४६७।

१. अयं हि स्थूललक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानराग- निषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति।। स. टीका गा. १३६।।

हैं। बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी एकतारूप मोक्षमार्ग सोई मुनिनका सांचा लक्षण है, ताको पहिचानै नाहीं। जातैं यहु पहिचानि भए मिथ्यादृष्टी रहता नाहीं। ऐसे मुनिनका सांचा स्वरूप ही न जानै तो सांची भक्ति कैसे होय? पुण्यबंधको कारणभूत शुभक्रियारूप गुणनिको पहचानि तिनकी सेवातैं अपना भला होना जानि तिनविषै अनुरागी होय भक्ति करै है। ऐसे गुरुभक्तिका स्वरूप कह्या।

अब शास्त्रभक्तिका स्वरूप कहिए है-

शास्त्र-भक्ति का अन्यथा रूप

केई जीव तो यहु केवली भगवान की वाणी है, तातैं केवलीके पूज्यपनातैं यहु भी पूज्य है, ऐसा जानि भक्ति करै हैं। बहुरि केई ऐसे परीक्षा करै हैं-इन शास्त्रनिविषै विरागता दया क्षमा शील संतोषादिकका निरूपण है तातैं ए उत्कृष्ट हैं, ऐसा जानि भक्ति करै हैं। सो ऐसा कथन तो अन्य शास्त्र वेदांतादिक तिनविषै भी पाईए है। बहुरि इन शास्त्रनिविषै त्रिलोकादिक का गम्भीर निरूपण है, तातैं उत्कृष्टता जानि भक्ति करै हैं। सो इहाँ अनुमानादिक का तो प्रवेश नाहीं। सत्य-असत्यका निर्णयकरि महिमा कैसे जानिए। तातैं ऐसे सांची परीक्षा होय नाहीं। इहाँ अनेकान्तरूप साँचा जीवादितत्त्वनिका निरूपण है अर साँचा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग दिखाया है। ताकरि जैनशास्त्रनिकी उत्कृष्टता है, ताको नाहीं पहिचानै हैं। जातैं यहु पहचानि भए मिथ्यादृष्टि रहै नाहीं। ऐसे शास्त्रभक्तिका स्वरूप कह्या।

या प्रकार याकै देव गुरु शास्त्रकी प्रतीति भई, तातैं व्यवहार सम्यक्त्व भया मानै है। परन्तु उनका साँचा स्वरूप भास्या नाहीं। तातैं प्रतीति भी साँची भई नाहीं। साँची प्रतीति बिना सम्यक्त्वकी प्राप्ति नाहीं। तातैं मिथ्यादृष्टि ही है।

तत्त्वार्थ श्रद्धान का अयथार्थपना

बहुरि शास्त्रविषै **'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'** (तत्त्वा.सू. १-२) ऐसा वचन कह्या है। तातैं जैसे शास्त्रनिविषै जीवादि तत्त्व लिखे हैं, तैसे आप सीखि लेहै। तहाँ उपयोग लगावै है। **औरनिको उपदेशै है परन्तु तिन तत्त्वनिका भाव भासता नाहीं।** अर इहाँ तिस वस्तु के भावही का नाम तत्त्व कह्या। सो भाव भासे बिना तत्त्वार्थश्रद्धान कैसे होय? **भावभासना कहा सो कहिए है-**

जैसे कोऊ पुरुष चतुर होनेके अर्थि शास्त्रकरि स्वर ग्राम मूर्छना रागनिका रूप ताल तानके भेद तिनको सीखै है परन्तु स्वरादिकका स्वरूप नाहीं पहिचानै है। स्वरूप पहिचान भए बिना अन्य स्वरादिकको अन्य स्वरादिकरूप मानै है वा सत्य भी मानै है तो निर्णय करि नाहीं मानै है, तातैं वाकै चतुरपनो होय नाहीं। तैसे कोऊ जीव सम्यक्ती होने के अर्थि शास्त्रकरि जीवादिक तत्त्वनिका स्वरूपको सीखै है परन्तु तिनके स्वरूपको नाहीं पहिचाने है। स्वरूप पहिचाने बिना अन्य तत्त्वनिको अन्य तत्त्वरूप मानि ले है वा सत्य भी मानै है तो निर्णयकरि नाहीं मानै है। तातैं वाकै सम्यक्त्व होय नाहीं। बहुरि जैसे कोई शास्त्रादि पढ्या है, वा न पढ्या है, जो स्वरादिकका स्वरूपको पहिचानै है तो वह चतुर ही है। तैसे शास्त्र पढ्या है वा न पढ्या है, जो जीवादिकका स्वरूप पहिचानै है तो वह सम्यग्दृष्टी ही है। जैसे हिरण स्वर

रागादिकका नाम न जानै है अर ताका स्वरूप को पहिचानै है तैसे तुच्छ बुद्धि जीवादिकका नाम न जानै है अर तिनका स्वरूप को पहिचानै है। **यहु मैं हूं, ए पर हैं; ए भाव बुरे हैं, ए भले हैं, ऐसे स्वरूप पहिचानै ताका नाम भावभासना है। शिवभूति**[1] मुनि जीवादिकका नाम न जानै था, अर "तुषमाषभिन्न" ऐसा घोषने लगा, सो यहु सिद्धान्त का शब्द था नाहीं परन्तु आपा परका भावरूप ध्यान किया, तातैं केवली भया। अर ग्यारह अंगके पाठी जीवादि तत्त्वनिका विशेषभेद जानै परन्तु भाव भासै नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टी ही रहे हैं। अब याकै तत्त्वश्रद्धान किस प्रकार हो है सो कहिए है–

जीव-अजीव तत्त्व के श्रद्धान का अन्यथा रूप

जिन शास्त्रनितैं जीव के त्रस स्थावरादिरूप वा गुणस्थान मार्गणादिरूप भेदनिको जानै है, अजीवके पुद्गलादि भेदनिको वा तिनके वर्णादि विशेषनिको जानै है परन्तु अध्यात्मशास्त्रनिविषै भेदविज्ञानको कारणभूत वा वीतरागदशा होने को कारणभूत जैसे निरूपण किया है तैसे न जानै है। बहुरि किसी प्रसंगतैं तैसे भी जानना होय तो शास्त्र अनुसारि जानि तो ले है परन्तु आपको आप जानि परका अंश भी आप विषै न मिलावना अर आपका अंश भी पर विषै न मिलावना, ऐसा सांचा श्रद्धान नाहीं करै है। जैसे अन्य मिथ्यादृष्टी निर्धार बिना पर्यायबुद्धिकरि जानपना विषै वा वर्णादिविषै अहंबुद्धि धारै है, तैसे यहु भी आत्माश्रित ज्ञानादिविषै वा शरीराश्रित उपदेश उपवासादि क्रियानिविषै आपो मानै है, बहुरि शास्त्र के अनुसार कबहूँ सांची बात भी बनावै परन्तु अंतरंग निर्धाररूप श्रद्धान नाहीं। तातैं जैसे मतवाला माताको माता भी कहै तो स्याना नाहीं तैसे याको सम्यक्ती न कहिए। बहुरि जैसे कोई और ही की बातैं करता होय तैसे आत्माका कथन कहै परन्तु यहु आत्मा मैं हूँ, ऐसा भाव नाहीं भासै। बहुरि जैसे कोई औरकूं औरतैं भिन्न बतावता होय तैसे आत्म-शरीर की भिन्नता प्ररूपै परन्तु मैं इस शरीरादिकतैं भिन्न हूँ, ऐसा भाव भासै नाहीं। बहुरि पर्यायविषै जीव पुद्गलके परस्पर निमित्ततैं अनेक क्रिया हो हैं, तिनको दोय द्रव्यका मिलापकरि निपजी जानै। यहु जीवकी क्रिया है ताका पुद्गल निमित्त है, यहु पुद्गलकी क्रिया है ताका जीव निमित्त है, ऐसा भिन्न-भिन्न भाव भासै नाहीं। इत्यादि भाव भासे बिना जीव अजीवका सांचा श्रद्धानी न कहिए। तातैं जीव अजीव जाननेका तो यह ही प्रयोजन था सो भया नाहीं।

आस्रव तत्त्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि आस्रव तत्त्वविषै जे हिंसादिरूप पापास्रव हैं, तिनको हेय जानै है। अहिंसादिरूप पुण्य आस्रव हैं, तिनको उपादेय मानै है। सो ए तो दोऊ ही कर्मबंध के कारण, इन विषै उपादेयपनो माननो सोई मिथ्यादृष्टि है। सोही **समयसार** का बंधाधिकारविषै कह्या है[2]–

सर्व जीवनिकै जीवन मरण सुख दुःख अपने कर्मके निमित्ततैं हो हैं। जहाँ अन्य जीव अन्य जीवके

---

१. तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य ।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडो जाओ ।। – भावपा. ५३।।

२. समयसार गा. २५४ से २५६।

इन कार्यनिका कर्त्ता होय सोई मिथ्याध्यवसाय बंधका कारण है।[1] तहाँ अन्य जीवनिको जिवावनेका वा सुखी करनेका अध्यवसाय होय सो तो पुण्यबंधका कारण है अर मारनेका वा दुःखी करने का अध्यवसाय होय सो पापबंधका कारण है। ऐसे अहिंसावत् सत्यादिक तो पुण्यबंधको कारण हैं अर हिंसावत् असत्यादिक पापबंधको कारण हैं। ए सर्व मिथ्याध्यवसाय हैं ते त्याज्य हैं तातैं **हिंसादिवत् अहिंसादिकको भी बंधका कारण जानि हेय ही मानना।** हिंसाविषै मारने की बुद्धि होय सो वाका आयु पूरा हुवा बिना मरै नाहीं, अपनी द्वेषपरणतिकरि आप ही पाप बांधै है। अहिंसाविषै रक्षा करनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु अवशेष बिना वह जीवै नाहीं, अपनी प्रशस्त रागपरणतिकरि आप ही पुण्य बांधै है। ऐसे ए दोऊ हेय हैं। जहाँ वीतराग होय द्रष्टा ज्ञाता प्रवर्त्ते, तहाँ निर्बन्ध है सो उपादेय है। सो ऐसी दशा न होय, तावत् प्रशस्त रागरूप प्रवर्त्तो। परन्तु श्रद्धान तो ऐसा राखो-यहु भी बंधका कारण है, हेय है। श्रद्धानविषै याको मोक्षमार्ग जानै मिथ्यादृष्टी ही हो है।[2]

बहुरि मिथ्यात्व अविरति कषाय योग ए आस्रवके भेद हैं, तिनको बाह्यरूप तो मानै, अंतरंग इन भावनिकी जातिको पहिचानै नाहीं। तहाँ अन्य देवादिकके सेवनेरूप गृहीतमिथ्यात्वको मिथ्यात्व जानै अर अनादि अगृहीत मिथ्यात्व है ताको न पहिचानै। बहुरि बाह्य त्रसस्थावरकी हिंसा वा इन्द्रिय मनके विषयनिविषै प्रवृत्ति ताको अविरति जानै। हिंसाविषै प्रमादपरणति मूल है अर विषयसेवनविषै अभिलाषा मूल है ताको न अवलोकै। बहुरि बाह्य क्रोधादि करना ताको कषाय जानै, अभिप्रायविषै रागद्वेष बसै ताको न पहिचानै। बहुरि बाह्य चेष्टा होय ताको योग जानै, शक्तिभूत योगनिको न जानै। ऐसे आस्रवनिका स्वरूप अन्यथा जानै।

बहुरि रागद्वेष मोहरूप जे आस्रवभाव हैं, तिनका तो नाश करनेकी चिंता नाहीं अर बाह्यक्रिया वा बाह्य निमित्त मेटनेका उपाय राखै सो तिनके मेटे आस्रव मिटता नाहीं। द्रव्यलिंगी मुनि अन्य देवादिककी सेवा न करै है, हिंसा वा विषयनिविषै न प्रवर्तै है, क्रोधादि न करै है, मन वचन कायको रोकै है; तो भी वाकै मिथ्यात्वादि च्यारों आस्रव पाईए हैं। बहुरि कपटकरि भी ए कार्य न करै है। कपटकरि करै तो ग्रैवेयक पर्यंत कैसे पहुँचै। तातैं जो अंतरंग अभिप्राय विषै मिथ्यात्वादिरूप रागादिभाव हैं सो ही आस्रव हैं। ताको न पहिचानै, तातैं याकै आस्रवतत्त्वका भी सत्य श्रद्धान नाहीं।

विशेष: यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि द्रव्यलिंगी का अर्थ मिथ्यात्वी ही हो, ऐसा नहीं है। द्रव्यलिंगी मुनि के पाँच भेद हैं- (१) भाव से मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती परन्तु बाहर से मुनिभेष हो, वह मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी है। (२) भाव से सासादन सम्यक्त्व हो परन्तु बाहर से मुनिरूपहो, वह

१. सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य, कुर्यात्पुमान् मरणजीवितदुःखसौख्यम्।।१६८।।

२. अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य, पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते, मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति।।१६९।।

– समयसार बंधाधिकार कलश

सासादन सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि है। (३) भाव से सम्यग्मिथ्यात्व हो परन्तु बाहर से मुनिबाना हो, वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी है। इसी तरह (४) अंसयत सम्यक्त्वी द्रव्यलिंगी तथा (५) देशसंयत द्रव्यलिंगी को भी कहना चाहिए। जिस नग्न मुनि के अन्तरंग में भी छठा गुणस्थान (या आगे के गुणस्थान) हों वह भावलिंगी मुनि है। पर यह सब भी प्रत्यक्षतः केवलज्ञानगम्य है तथा द्रव्यकर्मों के परिज्ञान द्वारा कोई-कोई मनःपर्ययज्ञानी तथा अवधिज्ञानी भी जानते हैं। अन्य छद्मस्थ जीव मुनि के अन्तरंग को नहीं जान पाते। - पं. रतनचन्द्र मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व पृ. ७६४-६५, **द्रव्यनिर्ग्रन्था नरा भावेन असंयता....** त्रि.सा. ५४५ टीका; धवल १३/१४१, धवल ४/२०८ आदि)।

बंध तत्त्व के श्रद्धान का अन्यथा रूप

बहुरि बंधतत्त्वविषै जे अशुभभावनिकरि नरकादिरूप पापका बंध होय, ताको तो बुरा जानै अर शुभभावनिकरि देवादि रूप पुण्यका बंध होय, ताको भला जानै। सो सर्व ही जीवनिकै दुःखसामग्रीविषै द्वेष, सुखसामग्रीविषै राग पाईए है, सो ही याकै राग द्वेष करनेका श्रद्धान भया। जैसा इस पर्यायसंबंधी सुखदुःखसामग्रीविषै राग द्वेष करना तैसा ही आगामी पर्यायसंबंधी सुख-दुःख सामग्रीविषै राग द्वेष करना। बहुरि शुभअशुभभावनिकरि पुण्यपापका विशेष तो अघाति कर्मनिविषै हो है। सो अघातिकर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। बहुरि शुभ अशुभ भावनिविषै घातिकर्मनिका तो निरंतर बंध होय, ते सर्व पापरूप ही हैं अर तेई आत्मगुणके घातक हैं। तातैं अशुद्ध भावनिकरि कर्मबंध होय, तिसविषै भला बुरा जानना सोई मिथ्याश्रद्धान है। सो ऐसे श्रद्धानतैं बंधका भी याकै सत्य श्रद्धान नाहीं।

संवर तत्त्व के श्रद्धान का अन्यथा रूप

बहुरि संवरतत्त्वविषै अहिंसादिरूप शुभास्रव भाव तिनको संवर जानै है। सो एक कारणतैं पुण्यबंध भी मानै अर संवर भी मानै, सो बनै नाहीं।

यहाँ **प्रश्न**-जो मुनिनकै एक काल एकभाव हो है, तहाँ उनके बंध भी हो है अर संवर निर्जरा भी हो है, सो कैसे है?

ताका **समाधान**-यह भाव मिश्ररूप है। किछू वीतराग भया है, किछू सराग रह्या है। जे अंश वीतराग भए तिनकरि संवर है अर जे अंश सराग रहे तिनकरि बंध है। सो एक भावतैं तो दोय कार्य बनै परन्तु एक **प्रशस्तरागहीतैं पुण्यास्रव भी मानना अर संवर-निर्जरा भी मानना सो भ्रम है।** मिश्रभावविषै भी यहु सरागता है, यहु विरागता है; ऐसी पहिचान सम्यग्दृष्टिहीकै होय। तातैं अवशेष सरागताको हेय श्रद्धे हैं। मिथ्यादृष्टीकै ऐसी पहिचान नाहीं तातैं सरागभाव विषै संवरका भ्रमकरि प्रशस्त रागरूप कार्यनिको उपादेय श्रद्धहे है।

बहुरि सिद्धांतविषै गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र इनकरि संवर हो है, ऐसा कह्या है[1] सो इनको भी यथार्थ न श्रद्धहे है। कैसे सो कहिए है-

बाह्य मन वचन कायकी चेष्टा मेटै, पापचिंतवन न करै, मौन धरै, गमनादि न करै सो गुप्ति मानै है। सो यहाँ तो मनविषै भक्ति आदि रूप प्रशस्त रागकरि नाना विकल्प हो हैं, वचन कायकी चेष्टा आप रोकि राखी है तहाँ शुभप्रवृत्ति है अर प्रवृत्तिविषै गुप्तिपनो बनै नाहीं। तातैं वीतरागभाव भए जहाँ मन वचन कायकी चेष्टा न होय सो ही साँची गुप्ति है।

बहुरि परजीवनिकी रक्षाके अर्थ यत्नाचार प्रवृत्ति ताको समिति मानै है। सो हिंसाके परिणामनितैं तो पाप हो है अर रक्षाके परिणामनितैं संवर कहोगे तो पुण्यबंधका कारण कौन ठहरेगा। बहुरि एषणासमितिविषै दोष टालै है। तहाँ रक्षाका प्रयोजन है नाहीं। तातैं रक्षाहोनेके अर्थ समिति नाहीं है। तो समिति कैसे हो है- मुनिन कै किंचित् राग भए गमनादि क्रिया हो हैं। तहाँ तिन क्रियानिविषै अति आसक्तताके अभावतैं प्रमादरूप प्रवृत्ति न हो है। बहुरि और जीवनिको दुःखीकरि अपना गमनादि प्रयोजन न साधै हैं तातैं स्वयमेव ही दया पलै है। ऐसे सांची समिति है।

बहुरि बंधादिकके भयतैं स्वर्गमोक्षकी चाहतैं क्रोधादि न करै है, सो यहाँ क्रोधादि करनेका अभिप्राय तो गया नाहीं। जैसे कोई राजादिकका भयतैं वा महंतपनाका लोभतैं परस्त्री न सेवै है, तो वाको त्यागी न कहिए। तैसे ही यहु क्रोधादिका त्यागी नाहीं। तो कैसे त्यागी होय? पदार्थ अनिष्ट इष्ट भासै क्रोधादि हो है। जब तत्त्वज्ञान के अभ्यास तैं कोई इष्ट अनिष्ट न भासै, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक न उपजै, तब साँचा धर्म हो है।

बहुरि अनित्यादि चिंतवनतैं शरीरादिकको बुरा जानि हितकारी न जानि तिनतैं उदास होना ताका नाम अनुप्रेक्षा कहै हैं। सो यहु तो जैसे कोऊ मित्र था, तब उसतैं राग था, पीछै वाका अवगुण देखि उदासीन भया। तैसे शरीरादिकतैं राग था, पीछै अनित्यादि अवगुण अवलोकि उदासीन भया सो ऐसी उदासीनता तो द्वेषरूप है। जहाँ जैसा अपना वा शरीरादिकका स्वभाव है, तैसा पहिचान भ्रमको मेटि भला जानि राग न करना, बुरा जानि द्वेष न करना, ऐसी सांची उदासीनता अर्थि यथार्थ अनित्यत्वादिकका चिंतवन सोई सांची अनुप्रेक्षा है।

बहुरि क्षुधादिक भए तिनके नाशका उपाय न करना, ताको परीषह सहना कहै है। सो उपाय तो न किया अर अंतरंग क्षुधादि अनिष्ट सामग्री मिले दुःखी भया, रति आदिका कारण मिले सुखी भया तो जो दुःख-सुखरूप परिणाम हैं, सोई आर्तध्यान रौद्रध्यान हैं। ऐसे भावनितैं संवर कैसे होय? तातैं दुःखका कारण मिले दुःखी न होय, सुखका कारण मिले सुखी न होय, ज्ञेयरूपकरि तिनिका जाननहारा ही रहै, सोई सांची परीषहका सहना है।

बहुरि हिंसादि सावद्ययोगके त्यागको चारित्र मानै है। तहाँ महाव्रतादिरूप शुभयोगको उपादेयपनेकरि

---

१. स गुप्ति समितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः। तत्त्वा. सू. ९-२

ग्रहणरूप मानै है। सो तत्त्वार्थसूत्रविषै आस्रव-पदार्थका निरूपण करते **महाव्रत अणुव्रत** भी आस्रवरूप कहे हैं। ए उपादेय कैसे होय? अर आस्रव तो बंधका साधक है, चारित्र मोक्षका साधक है तातैं महाव्रतादिरूप आस्रवभावनिको चारित्रपनो सम्भवै नाहीं, सकल कषायरहित जो उदासीनभाव ताहीका नाम चारित्र है। जो चारित्रमोहके देशघाती स्पर्द्धकनिके उदयतैं महामंद प्रशस्त राग हो है, सो चारित्रका मल है। याको छूटता न जानि याका त्याग न करै है, सावद्ययोगहीका त्याग करै है। परन्तु जैसे कोई पुरुष कंदमूलादि बहुत दोषीक हरितकायका त्याग करै है अर केई हरितकायनिको भखै है परन्तु ताको धर्म न मानै है। तैसे मुनि हिंसादि तीव्रकषायरूप भावनिका त्याग करे है अर केई मंदकषाय रूप महाव्रतादिको पालै हैं परन्तु ताको मोक्षमार्ग न मानै हैं।

विशेष- परम पूज्य **धवला जी (पु.८ पृ.८३ पर)** स्पष्ट कहा है कि **असंखेज्ज गुणाए सेढीए कम्मणिज्जरण हेदू वदं णाम** अर्थात् असंख्यात गुणश्रेणी द्वारा निर्जरा होने के कारण निश्चय से व्रत है। (देखिए-वृहज्जिनोपदेश पृ.१८८-१८६) आगम में अणुव्रत-महाव्रत को क्षायोपशमिक भाव ही कहा है। **धवल १३/३६० पर- अणुव्रतानामप्रत्याख्यानसंज्ञा** (अणुव्रतों को अप्रत्याख्यान संज्ञा है) कहा तथा वहीं पर **पच्चक्खाणं महव्वयाणि (ध. १३/३६०)** अर्थात् प्रत्याख्यान का अर्थ महाव्रत है, ऐसा कहा। फिर आगे कहा है कि उनका अर्थात् अणुव्रतों का आवरण करने वाला कर्म अप्रत्याख्यानावरण कषाय है तथा महाव्रतों का आवरण करने वाली प्रत्याख्यानावरण कषायें हैं। **(धवल १३/३६०)** इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिनके अणुव्रत या महाव्रत हैं उनके निश्चय ही उक्त कषायों की चौकड़ियाँ नहीं हैं और जिनके उक्त चौकड़ियाँ नहीं हैं, वे स्पष्टतः चारित्र गुण के क्षायोपशमिक भाव से युक्त हैं ही। कहा भी है-संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत ये तीनों क्षायोपशमिक भाव हैं। अतः अणुव्रत महाव्रत निर्जरा के कारण हैं। तथापि यहाँ जो लिखा है वह उस व्रत के साथ होने वाले मन्द राग को लक्ष्य कर उस दृष्टि से उसे आस्रव-बंध का कारण कहा है, ऐसा समझना चाहिए। देशव्रती महाव्रती को आस्रव-बंध संवर निर्जरा ये चारों होते ही हैं।

यहाँ **प्रश्न**- जो ऐसे है तो चारित्र के तेरह भेदनिविषै महाव्रतादि कैसे कहे हैं?

ताका **समाधान**- यहु व्यवहारचारित्र कह्या है। व्यवहार नाम उपचारका है। **सो महाव्रतादि भए ही वीतरागचारित्र हो है**। ऐसा सम्बन्ध जानि महाव्रतादिविषै चारित्रका उपचार किया है। निश्चयकरि निःकषाय भाव है सोई साँचा चारित्र है। या प्रकार संवरके कारणनिको अन्यथा जानता संवरका साँचा श्रद्धानी न हो है।

निर्जरा तत्त्वके श्रद्धानकी अयथार्थता

बहुरि यहु अनशनादि तपतैं निर्जरा मानै है। सो केवल बाह्यतप ही तो किए निर्जरा होय नाहीं।

बाह्यतप तो शुद्धोपयोग बधावनेके अर्थि कीजिए है। शुद्धोपयोग निर्जराका कारण है तातैं उपचारकरि तपको भी निर्जराका कारण कह्या है। जो बाह्य दु:ख सहना ही निर्जराका कारण होय तो तिर्यंचादि भी भूख तृषादि सहै है।

तब वह **कहै है-** वे तो पराधीन सहै है, स्वाधीनपने धर्मबुद्धितैं उपवासादिरूप तप करै, ताकै निर्जरा हो है?

ताका **समाधान**- धर्मबुद्धितैं बाह्य उपवासादि तो किए, बहुरि तहाँ उपयोग अशुभ शुभ शुद्धरूप जैसे परिणमै तैसे परिणमो। घने उपवासादि किए घनी निर्जरा होय, थोरे किए थोरी निर्जरा होय; जो ऐसे नियम ठहरै तो उपवासादिक ही निर्जरा का मुख्य कारण ठहरै, सो तो बनै नाहीं। परिणाम दुष्ट भए उपवासादिकतैं निर्जरा होनी कैसे सम्भवै? बहुरि जो कहिए- जैसे अशुभ शुभ शुद्धरूप उपयोग परिणमै ताकै अनुसार बंध निर्जरा है तो उपवासादि तप मुख्य निर्जराका कारण कैसे रह्या? अशुभ शुभ परिणाम बंधके कारण ठहरै, शुद्ध परिणाम निर्जरा के कारण ठहरे।

यहाँ **प्रश्न**- जो तत्त्वार्थसूत्रविषै **"तपसा निर्जरा च"** (६-३) ऐसा कैसे कह्या है?

ताका **समाधान**- शास्त्रविषै **"इच्छानिरोधस्तपः"** ऐसा कह्या है। इच्छाका रोकना ताका नाम तप है। सो शुभ अशुभ इच्छा मिटे उपयोग शुद्ध होय, तहाँ निर्जरा हो है। तातैं तपकरि निर्जरा कही है।

यहाँ **कोऊ कहै**; आहारादिरूप अशुभकी तो इच्छा दूरि भए ही तप होय परन्तु उपवासादिक वा प्रायश्चित्तादि शुभ कार्य हैं तिनकी इच्छा तो रहै?

ताका **समाधान**- ज्ञानी जननिकै उपवासादि की इच्छा नहीं है, एक शुद्धोपयोग की इच्छा है। **उपवासादि किए शुद्धोपयोग बधै है,** तातैं उपवासादि करै हैं। बहुरि जो उपवासादिकतैं शरीर वा परिणामनिकी शिथिलताकरि शुद्धोपयोग शिथिल होता जानै, तहाँ आहारादिक ग्रहै हैं। जो उपवासादिकहीतैं सिद्ध होय, तो अजितनाथादिक तेईस तीर्थंकर दीक्षा लेय दोय उपवास ही कैसे धरते? उनकी तो शक्ति भी बहुत थी। परन्तु जैसे परिणाम भए तैसे बाह्य साधनकरि एक वीतराग शुद्धोपयोग का अभ्यास किया।

यहाँ **प्रश्न**- जो ऐसे है तो अनशनादिकको तपसंज्ञा कैसे भई?

ताका **समाधान**-इनिको बाह्यतप कहै हैं। सो बाह्य का अर्थ यहु-जो बाह्य औरनिको दीसै यहु तपस्वी है। बहुरि आप तो फल जैसे अन्तरंग परिणाम होगा तैसा ही पावेगा। जातैं परिणामशून्य शरीर की क्रिया फलदाता नाहीं है।

बहुरि **इहाँ प्रश्न**- जो शास्त्रविषै तो अकामनिर्जरा कही है। तहाँ बिना चाहि भूख तृषादि सहे निर्जरा हो है तो उपवासादिकरि कष्ट सहै कैसे निर्जरा न होय?

ताका **समाधान**-अकामनिर्जराविषै भी बाह्य निमित्त तो बिना चाहि भूख तृषाका सहना भया है। अर तहाँ मंद कषायरूप भाव होय तो पापकी निर्जरा होय, देवादि पुण्यका बंध होय। अर जो तीव्रकषाय

भए भी कष्ट सहे पुण्यबंध होय, तो सर्व तिर्यंचादिक देव ही होय सो बनै नाहीं। तैसे ही चाहकरि उपवासादि किए तहाँ भूख तृषादि कष्ट सहिए है। सो यहु बाह्य निमित्त है। यहाँ जैसा परिणाम होय तैसा फल पावे है। जैसे अन्न को प्राण कह्या। बहुरि ऐसे बाह्यसाधन भए अंतरंग तपकी वृद्धि हो है तातैं उपचारकरि इनको तप कहे हैं। **जो बाह्य तप तो करै अर अंतरंग तप न होय तो उपचारतैं भी वाको तपसंज्ञा नाहीं।** सोई **कह्या है-**

कषायविषयाहारो, त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः।।

जहाँ कषाय, विषय, आहारका त्याग कीजिए सो उपवास जानना। अवशेषको श्रीगुरु लंघन कहै हैं।

यहाँ कहेगा- जो ऐसे हैं तो हम उपवासादि न करेंगे?

ताको कहिए है- उपदेश तो ऊँचा चढ़नेको दीजिए है। तू उलटा नीचा पड़ेगा तो हम कहा करेंगे। जो तू मानादिकतैं उपवासादि करै है तो करि वा मति करै; किछू सिद्धि नाहीं। अर जो धर्मबुद्धितैं आहारादिकका अनुराग छोड़े है, तो जेता राग छूट्या तेता ही छूट्या परन्तु इसहीको तप जानि इसतैं निर्जरा मानि सन्तुष्ट मति होहु। बहुरि अंतरंग तपनिविषै प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, त्याग, ध्यानरूप जो क्रिया ताविषै बाह्य प्रवर्त्तनसो तो बाह्य तपवत् ही जानना। जैसे अनशनादि बाह्य क्रिया हैं। तैसे ए भी बाह्यक्रिया हैं। तातैं प्रायश्चित्तादि बाह्य साधन अंतरंग तप नाहीं है। ऐसा बाह्य प्रवर्त्तन होते जो अंतरंग परिणामनिकी शुद्धता होय, ताका नाम अंतरंग तप जानना। तहाँ भी इतना विशेष है, बहुत शुद्धता भए शुद्धोपयोगरूप परिणति होइ; तहाँ तो निर्जरा ही है, बंध नाहीं हो है। अर स्तोक शुद्धता भए शुभोपयोगका भी अंश रहै, तो जेती शुद्धता भई ताकरि तो निर्जरा है अर जेता शुभ भाव है ताकरि बंध है। ऐसा मिश्रभाव युगपत् हो है, तहाँ बंध वा निर्जरा दोऊ हो हैं।

यहाँ **कोऊ कहै-** शुभ भावनितैं पापकी निर्जरा हो है, पुण्यका बंध हो है, **शुद्ध भावनितैं दोऊनिकी निर्जरा हो है,** ऐसा क्यों न कहो?

ताका **उत्तर-** मोक्षमार्गविषै स्थितिका तो घटना सर्वही प्रकृतीनि का होय। तहाँ पुण्य पापका विशेष है ही नाहीं। अर अनुभाग का घटना पुण्यप्रकृतीनिका शुद्धोपयोगतैं भी होता नाहीं। ऊपरि ऊपरि पुण्यप्रकृतीनिके अनुभाग का तीव्र बंध उदय हो है और पापप्रकृति के परमाणु पलटि शुभप्रकृतिरूप होय, ऐसा संक्रमण शुभ व शुद्ध दोऊ भाव होते होय। तातैं पूर्वोक्त नियम सम्भवै नाहीं। विशुद्धताहीके अनुसारि नियम सम्भवै है। देखो, **चतुर्थगुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास आत्मचिंतवनादि कार्यकरै, तहाँ भी निर्जरा नाहीं, बंध भी घना होय। अर पंचमगुणस्थानवाला विषय-सेवनादि कार्य करै, तहाँ भी वाकै गुणश्रेणि निर्जरा हुआ करै, बंध भी थोरा होय। बहुरि पंचम गुणस्थानवाला उपवासादिवा प्रायश्चित्तादि तप करै, तिस कालविषै भी वाकै निर्जरा थोरी अर छठा गुणस्थानवाला आहार-विहारादि क्रिया करै, तिस कालविषै भी वाकै निर्जरा घनी, उसतैं भी बंध थोरा होय। तातैं बाह्य प्रवृत्तिके अनुसारि निर्जरा नाहीं**

है। अंतरंग कषायशक्ति घटे विशुद्धता भए निर्जरा हो है। सो इसका प्रगट स्वरूप आगे निरूपण करेंगे, तहाँ जानना।

विशेष- "शुद्धभावनितैं दोऊनि की निर्जरा हो है" प्रश्नकर्ता का यह कथन अकाट्य सत्य है। परन्तु यह कथन सहज रूप से तो धवल जयधवल महाधवल में भी उपलब्ध नहीं होता अतः बहुलता से प्ररूपण के अभाव में यह गम्य नहीं हो पाता।यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि शुभ प्रकृति/पुण्य प्रकृति के भी स्थितिकाण्डकघात होते हैं (ज.ध. १३/३३) तथा स्थितिकाण्डकों द्वारा स्थिति हीन होती हुई असंख्यातगुणी हीन हो जाती है। वे ऊपर के सब परमाणु नीचे की शेष बची अल्पतम स्थिति में आ जाते हैं और असंख्यातगुणहीन काल में ही असमय में ही निर्जीर्ण होने लगते हैं।

शुद्ध भावों से गुणश्रेणिनिर्जरा होती है तथा ऐसी स्थिति में गुणश्रेणिनिर्जरा तीर्थंकर सदृश महापुण्य प्रकृति की भी होती है। **(धवल १५ पृ. ३००-३०१-३०६ आदि)** परन्तु यहाँ सर्वत्र यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी निर्जरा की अवधि में भी पुण्य प्रकृति के परमाणुओं में से अनुभाग नहीं घटता। क्योंकि विशुद्धि से या शुद्धि से भी पुण्य प्रकृतियों का अनुभाग नहीं घटता **(जय ध. १४/१५२)**।

विस्तृत अन्य विवेचन

पुण्य या पाप प्रकृति की सभी की 'स्थिति' (टिकाव) तो पाप रूप ही है (तीन शुभ आयु की स्थिति को छोड़ कर), अतः कोई विशेष नहीं है। फिर भी शुभ भाव से स्थिति कम पड़ती है, अशुभ से ज्यादा, यह विशेष तो है ही। अनुभाग का घटना पुण्य प्रकृति का, अशुभ भाव से होता है; शुभ भाव से पुण्य प्रकृति का अनुभाग बढ़ता है, शुद्धोपयोग से शुभ का अनुभाग भले ही न घटो, पर शुभ प्रकृति की स्थिति तो खण्डित होती रहती ही है, स्थितिकाण्डकों द्वारा। इस कारण शुद्धोपयोग से पुण्यप्रकृति अनुभाग भी कम काल में ही उदय आने योग्य तो कर ही दिया जाता है।

शुभभाव से पाप की निर्जरा नहीं होती। पर सत्तास्थित पाप प्रकृति का कुछ अंश अवश्य पुण्यरूप संक्रमण (बदली) कर जाता है। इस प्रकार शुभ भाव से पाप-परमाणु की हानि, पुण्य प्रकृति की वृद्धि तथा अनियम से धर्म योग्य वातावरण भी क्वचित् कदाचित् मिलते हैं (पृ. ४०८) शुद्धोपयोग से पाप की निर्जरा तथा पुण्यानुभाग की वृद्धि तो होती है ही; साथ ही साथ पुण्य प्रकृति की स्थिति घटती है तथा पुण्य प्रकृतियों की निर्जरा (गुणश्रेणिनिर्जरा) भी होती है। परन्तु उस पुण्य प्रकृति के परमाणुओं में से रस (अनुभाग) कम नहीं होता। वे तो सरस ही फल देकर झड़ते हैं

जबकि पाप प्रकृति के परमाणु निर्जीर्ण रस होकर गुणश्रेणिनिर्जरा में झड़ते हैं, यह गूढ़ार्थ है।

सारतः शुद्ध भाव से पुण्य-पाप दोनों की निर्जरा होती है, यह अकाट्य सत्य है। पर यहाँ पुण्य परमाणु हीनानुभाग होकर नहीं झरते; यथानुभाग ही वेदित हो कर झरते हैं।

दूसरा, यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि पंचम गुणस्थान में निरन्तर गुणश्रेणिनिर्जरा होती रहती है चाहे आत्मा का चिन्तन या देवपूजा कर रहा हो या विषयसेवन; परन्तु इतना विशेष है कि आत्मचिन्तनादि विशुद्ध परिणामों के समय होने वाली गुणश्रेणिनिर्जरा से विषयसेवनादि अविशुद्ध (संक्लेश) परिणाम निमित्तक प्रवृत्तियों के समय होने वाली गुणश्रेणिनिर्जरा प्रायः असंख्यातगुणी हीन हो जाती है। कहा भी है--संयतासंयत की गुणश्रेणिनिर्जरा संक्लेश और विशुद्धि के अनुसार न्यूनाधिक होती रहती है। विशुद्धि के अनुसार प्रत्येक समय में पूर्व समय की अपेक्षा कभी असंख्यात गुणी, कभी संख्यात गुणी, कभी संख्यातवाँ भाग अधिक और कभी असंख्यातवाँ भाग अधिक होती है तथा संक्लेश के अनुसार कभी अंसख्यातगुणी हीन, कभी संख्यातगुणी हीन, कभी संख्यातवाँ भाग हीन, कभी असंख्यातवाँ भाग हीन होती है। परन्तु गुणश्रेणिनिर्जरा बराबर बनी रहती है।

(जयधवल १३/१३०, प्रस्ता. पृ. १५-१६) परिणामानुसार उक्त चार स्थान वृद्धिरूप या चार स्थान हानि रूप द्रव्य का ऊपर से अपकर्षण होकर गुणश्रेणी में पतन होता है; यह अभिप्राय है। **(लब्धिसार १७६ टीका)**

ऐसे अनशनादि क्रियाको तपसंज्ञा उपचारतैं जाननी। याहीतैं इनको व्यवहार तप कह्या है। व्यवहार उपचार का एक अर्थ है। बहुरि ऐसा साधनतैं जो वीतरागभावरूप विशुद्धता होय सो साँचा तप निर्जराका कारण जानना। यहाँ दृष्टांत-जैसे धनको वा अन्नको प्राण कह्या सो धनतैं अन्न ल्याय भक्षण किए प्राण पोषे जांय, तातैं उपचार करि धन अन्न को प्राण कह्या। कोई इन्द्रियादिक प्राणको न जानै अर इनहीको प्राण जानि संग्रह करै, तो मरणही पावै। तैसे अनशनादिकको वा प्रायश्चित्तादिकको तप कह्या, सो अनशनादि साधनतैं प्रायश्चित्तादिरूप प्रवर्त्ते वीतरागभावरूप सत्य तप पोष्या जाय। तातैं उपचारकरि अनशनादिको वा प्रायश्चित्तादिको तप कह्या। कोई वीतरागभावरूप तपको न जानै अर इनिहीको तप जानि संग्रह करै तो संसारही में भ्रमै। बहुत कहा, इतना समझि लेना, निश्चय धर्म्म तो वीतरागभाव है। अन्य नाना विशेष बाह्य साधन अपेक्षा उपचारतैं किए हैं, तिनको व्यवहारमात्र धर्मसंज्ञा जाननी। इस रहस्य को न जानै, तातैं याकै निर्जराका भी साँचा श्रद्धान नाहीं है।

मोक्ष तत्त्वके श्रद्धानकी अयथार्थता

बहुरि सिद्ध होना ताको मोक्ष मानै है। बहुरि जन्म जरा मरण रोग क्लेशादि दुःख दूरि भए अनन्तज्ञान करि लोकालोकका जानना भया, त्रिलोकपूज्यपना भया, इत्यादि रूपकरि ताकी महिमा जानै है।

सो सर्व जीवनिकै दुःख दूर करनेकी वा ज्ञेय जाननेकी वा पूज्य होने की चाहि है। इनिहीके अर्थ मोक्ष की चाह कीनी तो याकै और जीवनिका श्रद्धानतैं कहा विशेषता भई।

बहुरि याकै ऐसा भी अभिप्राय है- स्वर्गविषै सुख है, तिनितैं अनन्तगुणे मोक्षविषै सुख है। सो इस गुणकारविषै स्वर्ग मोक्ष सुखकी एक जाति जानै है। तहाँ स्वर्गविषै तो विषयादि सामग्रीजनित सुख हो है, ताकी जाति याको भासै है अर मोक्षविषै विषयादि सामग्री है नाहीं, सो वहाँका सुखकी जाति याको भासै तो नाहीं परन्तु स्वर्गतैं भी मोक्षको उत्तम महान् पुरुष कहै हैं, तातैं यहु भी उत्तम ही मानै है। जैसे कोऊ गानका स्वरूप न पहिचानै परन्तु सर्व सभाके सराहैं, तातैं आप भी सराहै हैं। तैसे यहु मोक्षको उत्तम मानै है।

यहाँ वह कहै है- शास्त्रविषै भी तो इन्द्रादिकतैं अनंत गुणा सुख सिद्धनिकै प्ररूपै हैं।

ताका उत्तर- जैसे तीर्थंकरके शरीरकी प्रभाको सूर्यप्रभातैं कोट्यां गुणी कही तहाँ तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषै सूर्यप्रभा की महिमा है, तातैं भी बहुत महिमा जनावनेको उपमालंकार कीजिए है। तैसे सिद्ध सुखको इन्द्रादिसुखतैं अनन्त गुणा कह्या। तहाँ तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषै इन्द्रादिसुखकी महिमा है, तातैं भी बहुत महिमा जनावनेको उपमालंकार कीजिए है।

बहुरि प्रश्न- जो सिद्ध सुख अर इन्द्रादिसुखकी एक जाति वह जानै है, ऐसा निश्चय तुम कैसे किया?

ताका समाधान- जिस धर्मसाधन का फल स्वर्ग मानै है, तिस धर्मसाधन ही का फल मोक्ष मानै है। कोई जीव इन्द्रादिपद पावै, कोई मोक्ष पावै, तहाँ तिन दोऊनिकै एक जाति धर्मका फल भया मानै। ऐसा तो मानै जो जाकै साधन थोरा हो है सो इन्द्रादिपद पावै है, जाकै सम्पूर्ण साधन होय सो मोक्ष पावै है परन्तु तहाँ धर्मकी जाति एक जानै है। सो जो कारणकी एक जाति जानै, ताको कार्यकी भी एक जातिका श्रद्धान अवश्य होय। जातैं कारणविशेष भए ही कार्यविशेष हो है। तातैं हम यहु निश्चय किया, वाकै अभिप्राय विषै इन्द्रादिसुख अर सिद्धसुख की एक जातिका श्रद्धान है। बहुरि कर्मनिमित्ततैं आत्माकै औपाधिक भाव थे, तिनका अभाव होते शुद्ध स्वभावरूप केवल आत्मा आप भया। जैसे परमाणु स्कंधतैं विछुरे शुद्ध हो हैं, तैसे यहु कर्मादिकतैं भिन्न होय शुद्ध हो है। विशेष इतना-वह दोऊ अवस्थाविषै दुःखी सुखी नाहीं, आत्मा अशुद्ध अवस्थाविषै दुःखी था, अब ताके अभाव होनेतैं निराकुल लक्षण अनंतसुखकी प्राप्ति भई। बहुरि इन्द्रादिकनिकै जो सुख है, सो कषायभावनिकरि आकुलता रूप है। सो वह परमार्थतैं दुःख ही है। तातैं वाकी याकी एक जाति नाहीं। बहुरि स्वर्गसुखका कारण प्रशस्तराग है, मोक्षसुखका कारण वीतराग भाव है, तातैं कारण विषै भी विशेष है। सो ऐसा भाव याको भासै नाहीं। तातैं मोक्षका भी याकै साँचा श्रद्धान नाहीं है।

या प्रकार याकै साँचा तत्त्व श्रद्धान नाहीं है। इस ही वास्ते समयसारविषै[1] कह्या है- "अभव्यकै

१. सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि ।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ।। गाथा २७५।।

तत्त्वश्रद्धान भए भी मिथ्यादर्शन ही रहै है।" वा प्रवचनसारविषै[1] कह्या है– "आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नाहीं" बहुरि यहु व्यवहारदृष्टिकरि सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहै हैं तिनिको पालै है। पच्चीस दोष कहै हैं, तिनको टालै है। संवेगादिक गुण कहै हैं, तिनिको धारै है। परन्तु जैसे बीज बोए बिना खेतका सब साधन किए भी अन्न होता नाहीं, तैसे साँचा तत्त्व श्रद्धान भए बिना सम्यक्त होता नाहीं। सो पंचास्तिकाय व्याख्याविषै जहाँ अन्तविषै व्यवहाराभासवालेका वर्णन किया है, तहाँ ऐसा ही कथन किया हैं। या प्रकार याकै सम्यग्दर्शन के अर्थि साधन करते भी सम्यग्दर्शन न हो है।

सम्यग्ज्ञान के अर्थि साधन में अयथार्थता

अब यहु सम्यग्ज्ञान के अर्थि शास्त्रविषै शास्त्राभ्यास किए सम्यग्ज्ञान होना कह्या है, तातैं शास्त्राभ्यासविषै तत्पर रहै है। तहाँ सीखना, सिखावना, याद करना, बाँचना, पढ़ना आदि क्रियाविषै तो उपयोगको रमावै है परन्तु वाकै प्रयोजन ऊपरि दृष्टि नाहीं है। इस उपदेशविषै मुझको कार्यकारी कहा, सो अभिप्राय नाहीं। आप शास्त्राभ्यासकरि औरनिको सम्बोधन देनेका अभिप्राय राखै है। घने जीव उपदेश मानै तहाँ सन्तुष्ट हो है। सो ज्ञानाभ्यास तो आपके अर्थि कीजिए है, प्रसंग पाय परका भी भला होय तो परका भी भला करै। बहुरि कोई उपदेश न सुनै तो मति सुनो, आप काहेको विषाद कीजिए। शास्त्रार्थ का भाव जानि आपका भला करना। बहुरि शास्त्राभ्यासविषै भी केई तो व्याकरण न्याय काव्य आदि शास्त्रनिको बहुत अभ्यासै है सो ए तो लोकविषै पंडितता प्रगट करनेके कारण हैं। इन विषै आत्महित निरूपण तो है नाहीं इनका तो प्रयोजन इतना ही है, अपनी बुद्धि बहुत होय तो थोरा बहुत इनका अभ्यासकरि पीछै आत्महित के साधक शास्त्र तिनिका अभ्यास करना। जो बुद्धि थोरी होय, तो आत्महित के साधक सुगम शास्त्र तिनहीका अभ्यास करै। ऐसा न करना, जो व्याकरणादिकका ही अभ्यास करते-करते आयु पूरी होय जाय अर तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति न बनै।

यहाँ कोऊ कहै– ऐसे है तो व्याकरणादिकका अभ्यास न करना। ताको कहिए है।

तिनिका अभ्यास बिना महान् ग्रन्थनिका अर्थ खुलै नाहीं। तातैं तिनका भी अभ्यास करना योग्य है.

बहुरि यहाँ प्रश्न– महान् ग्रन्थ ऐसे क्यों किए, जिनका अर्थ व्याकरणादि बिना न खुलै। भाषाकरि सुगमरूप हितोपदेश क्यों न लिख्या। उनकै किछू प्रयोजन तो था नाहीं?

ताका समाधान– भाषाविषै भी प्राकृत संस्कृतादिक के ही शब्द हैं परन्तु अपभ्रंश लिये हैं। बहुरि देश-देशविषै भाषा अन्य-अन्य प्रकार है सो महंत पुरुष शास्त्रनिविषै अपभ्रंश शब्द कैसे लिखै। बालक तोतला बोलै तो बड़े तो न बोलै। बहुरि एक देश के भाषा रूप शास्त्र दूसरे देशविषै जाँय तो तहाँ ताका अर्थ कैसे भासै। तातैं प्राकृत संस्कृतादि शुद्ध शब्दरूप ग्रन्थ जोड़े। बहुरि व्याकरण बिना शब्द का अर्थ यथावत् न भासै। न्याय बिना लक्षण परीक्षा आदि यथावत् न होय सकै। इत्यादि वचनद्वारि वस्तु का स्वरूप

---

१. अतः आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञान - तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्वयौगपद्यमप्यकिंचित्करमेव ।। सं. टीका अ. ३ गाथा ३९।।

निर्णय व्याकरणादि बिना नीके न होता जानि तिनकी आम्नाय अनुसार कथन किया। भाषाविषै भी तिनकी थोरी बहुत आम्नाय आए ही उपदेश होय सकै है। तिनकी बहुत आम्नायतैं नीकै निर्णय होय सकै है।

बहुरि जो कहोगे- ऐसे हैं, तो अब भाषारूप ग्रन्थ काहेको बनाइए है?

ताका समाधान- कालदोषतैं जीवनिकी मंद बुद्धि जानि केई जीवनिकै जेता ज्ञान होगा तेता ही होगा, ऐसा अभिप्राय विचारि भाषाग्रन्थ कीजिए है। सो जे जीव व्याकरणादिका अभ्यास न करि सकै, तिनको ऐसे ग्रन्थनिकरि ही अभ्यास करना। बहुरि जे जीव शब्दनिकी नाना युक्ति लिए अर्थ करने को ही व्याकरण अवगाहै हैं, वादादिकरि महंत होने को न्याय अवगाहै हैं, चतुरपना प्रगट करने के अर्थि काव्य अवगाहै हैं, इत्यादि लौकिक प्रयोजन लिए इनिका अभ्यास करै हैं, ते धर्मात्मा नाहीं। बनै जेता थोरा बहुत अभ्यास इनका करि आत्महित के अर्थि तत्त्वादिकका निर्णय करै है, सोई धर्मात्मा पंडित जानना।

बहुरि केई जीव पुण्य-पापादिक फल के निरूपक पुराणादिक शास्त्र वा पुण्य-पापक्रिया के निरूपक आचारादि शास्त्र वा गुणस्थान मार्गणा कर्मप्रकृति त्रिलोकादिक के निरूपक करणानुयोग के शास्त्र तिनका अभ्यास करै है। सो जो इनिका प्रयोजन आप न विचारै, तब तो सूवाकासा ही पढ़ना भया। बहुरि जो इनका प्रयोजन विचारै है तहाँ पाप को बुरा जानना, पुण्यको भला जानना, गुणस्थानादिक का स्वरूप जानि लेना, इनका अभ्यास करेंगे तितना हमारा भला है, इत्यादि प्रयोजन विचार्‍या सो इसतैं इतना तो होसी-नरकादिक न होसी, स्वर्गादिक होसी परन्तु मोक्षमार्ग की तो प्राप्ति होय नाहीं। पहलै साँचा तत्त्वज्ञान होय, तहाँ पीछै पुण्यपाप का फल को संसार जानै, शुद्धोपयोगतैं मोक्ष मानै, गुणस्थानादिरूप जीव का व्यवहार निरूपण जानै, इत्यादि जैसा का तैसा श्रद्धान करता संता इनिका अभ्यास करै तो सम्यग्ज्ञान होय। सो तत्त्वज्ञानको कारण अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोग के शास्त्र हैं; बहुरि केई जीव तिन शास्त्रनिका भी अभ्यास करै हैं। परन्त जहाँ जैसे लिख्या है, तैसे आप निर्णय करि आपको आपरूप, परको पररूप, आस्रवादिक को आस्रवादिरूप न श्रद्धान करै है। मुखतैं तो यथावत् निरूपण ऐसा भी करै, जाके उपदेशतैं और जीव सम्यग्दृष्टी होय जाँय। परन्तु जैसे लड़का स्त्री का स्वांगकरि ऐसा गान करै, जाको सुनतैं अन्य पुरुष स्त्री काम रूप होय जाँय परन्तु वह जैसे सीख्या तैसे कहै है, वाको किछू भाव भासै नाहीं, तातैं आप कामासक्त न हो है। तैसे यहु जैसे लिख्या तैसे उपदेश दे परन्तु आप अनुभव नाहीं करै है। जो आपकै श्रद्धान भया होता तो और तत्त्व का अंश और तत्त्वविषै न मिलावता। सो याकै थल नाहीं, तातैं सम्यग्ज्ञान होता नाहीं। ऐसे यहु ग्यारह अंगपर्यंत पढ़ै तो भी सिद्धि होती नाहीं। सो समयसारादिविषै मिथ्यादृष्टी कै ग्यारह अंगनिका ज्ञान होना लिख्या है।

यहाँ कोऊ कहै-ज्ञान तो इतना हो है परन्तु जैसे अभव्यसेनकै श्रद्धानरहित ज्ञान भया, तैसे हो है?

ताका समाधान- वह तो पापी था, जाकै हिंसादिकी प्रवृत्ति का भय नाहीं। परन्तु जो जीव ग्रैवेयिक आदिविषै जाय हैं, ताकै ऐसा ज्ञान हो है सो तो श्रद्धानरहित नाहीं: वाकै तो ऐसा ही श्रद्धान है, ए ग्रन्थ

साँचे हैं परन्तु तत्त्वश्रद्धान साँचा न भया। **समयसारविषै**[1] एक ही जीव कै धर्म्म का श्रद्धान, एकदशांगका ज्ञान, महाव्रतादिकका पालना लिख्या है। **प्रवचनसारविषै**[2] ऐसा लिख्या है- आगमज्ञान ऐसा भया जाकरि सर्वपदार्थनिको हस्तामलकवत् जाने है। यह भी जाने है, इनका जाननहारा मैं हूँ। परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा आपको परद्रव्यतैं भिन्न केवल चैतन्यद्रव्य नाहीं अनुभवै है। तातैं **आत्मज्ञानशून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नाहीं**। या प्रकार सम्यग्ज्ञानके अर्थि जैनशास्त्रनिका अभ्यास करै है, तो भी याकै सम्यग्ज्ञान नाहीं।

सम्यक्चारित्रके अर्थि साधनमें अयथार्थता

बहुरि इनकै सम्यक्चारित्रके अर्थि कैसे प्रवृत्ति है सो कहिए है-**बाह्यक्रिया ऊपरि तो इनकै दृष्टि** है अर परिणाम सुधरने बिगरनेका विचार नाहीं। बहुरि जो परिणामनिका भी विचार **होय, तो जैसा अपना** परिणाम होता दीसै, तिनहीके ऊपरि दृष्टि रहै है। परन्तु उन परिणामनिकी परम्परा **विचारे अभिप्रायविषै** जो वासना है, ताको न विचारै है। अर फल लागै है सो अभिप्रायविषै वासना **है ताका लागै है। सो इसका विशेष व्याख्यान आगै करेंगे,** तहाँ स्वरूप नीके भासेगा। ऐसी पहिचान बिना बाह्य आचरणका ही उद्यम है।

तहाँ केई जीव तो कुलक्रमकरि वा देखादेखी वा क्रोध मान माया लोभादिकतैं आचरण आचरै हैं। सो इनकै तो धर्मबुद्धि ही नाहीं, सम्यक्चारित्र कहाँतैं होय। ए जीव कोई तो भोले हैं वा कषायी हैं, सो अज्ञानभाव वा कषाय होते सम्यक्चारित्र होता नाहीं। बहुरि केई जीव ऐसा मानै है, जो जानने में कहा (अर मानने में कहा है) किछू करेगा तो फल लागेगा। ऐसे विचारि व्रत तप आदि क्रिया ही के उद्यमी रहै है अर तत्त्वज्ञानका उपाय न करै है। सो तत्त्वज्ञान बिना महाव्रतादिका आचरण भी मिथ्याचारित्र ही नाम पावै है। अर तत्त्वज्ञान भए किछू भी व्रतादिक नाहीं हैं, तो भी **असंयतसम्यग्दृष्टी**[3] नाम पावै है। तातैं पहले तत्त्वज्ञान

१. मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ।। गाथा २७४।।
मोक्षं हि न तावदभव्यः श्रद्धत्ते शुद्धज्ञानमयात्मज्ञानशून्यत्वात्। ततो ज्ञानमपि नासौ श्रद्धत्ते। ज्ञानमश्रद्दधान-श्चाचाराद्येकादशांगं श्रुतमधीयानोऽपि श्रुताध्ययनगुणाभावान्न ज्ञानी स्यात्। स किल गुणःश्रुताध्ययनस्य यद्विविक्तवस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञानं; तच्च विविक्तवस्तुभूतं ज्ञानमश्रद्दधानस्याभव्यस्य श्रुताध्ययनेन न विधातुं शक्येत ततस्तस्य तद्गुणाभावः। ततश्च ज्ञानश्रद्धानाभावात् सोऽज्ञानीति प्रतिनियतः।

२. परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि।। अ. ३ गाथा ३९।।

३. यहाँ इतना अवश्य जानना चाहिए कि मनुष्य असंयत सम्यक्त्वी भी ढाई द्वीप में मात्र ७०० करोड़ हैं। (धवल पु. ३/२५२, षट्खं. पृ. ६४, ब्रह्मविलास पृ. ११०) तथा सकल मनुष्यों की संख्या यदि न्यूनतम २२ अंक प्रमाण भी मानी जावे (धवल पु. ३/२५५) तो भी १३ अंक प्रमाण संख्या पर एक असंयत सम्यक्त्वी मनुष्य औसतन प्राप्त होता है। अर्थात् औसतन दस खरब मनुष्यों में से एक असंयत सम्यग्दृष्टि आत्मा है। अतः हर कोई अपने आपको सम्यक्त्वी नहीं मान बैठे।

का उपाय करना, पीछै कषाय घटावनेको बाह्य साधन करना। सो ही योगीन्द्रदेवकृत श्रावकाचारविषै कह्या है-

"दंसणभूमिह बाहिरा जिय वयरुक्ख ण हुंति।"

याका अर्थ- यहु सम्यग्दर्शनभूमिका बिना हे जीव व्रतरूपी वृक्ष न होय। बहुरि जिन जीवनिकै तत्त्वज्ञान नहीं, ते यथार्थ आचरण न आचरै हैं। सोई विशेष दिखाईए है-

केई जीव पहलै तो बड़ी प्रतिज्ञा धरि बैठै अर अंतरंग विषय-कषायवासना मिटी नाहीं। तब जैसे तैसे प्रतिज्ञा पूरी किया चाहैं, तहाँ तिस प्रतिज्ञाकरि परिणाम दुःखी हो हैं। जैसे बहुत उपवासकरि बैठै, पीछै पीड़ातैं दुःखी हुवा रोगीवत् काल गमावै, धर्मसाधन न करै। सो पहलै ही सधती जानिए तितनी ही प्रतिज्ञा क्यों न लीजिए। दुःखी होनेमें आर्तध्यान होय, ताका फल भला कैसे लागेगा। अथवा उस प्रतिज्ञा का दुःख न सह्या जाय, तब ताकी एवज विषय पोषने को अन्य उपाय करै। जैसे तृषा लागै तब पानी तो न पीवै अर अन्य शीतल उपचार अनेक प्रकार करै वा घृत तो छोडै अर अन्य स्निग्ध वस्तुको उपायकरि भखै। ऐसे ही अन्य जानना। सो परीषह न सही जाय थी, विषयवासना न छूटै थी, तो ऐसी प्रतिज्ञा काहेको करी। सुगम विषय छोड़ि पीछै विषम विषयनिका उपाय करना पडै, ऐसा कार्य काहेको कीजिए। यहाँ तो उलटा रागभाव तीव्र हो है अथवा प्रतिज्ञाविषै दुःख होय तब परिणाम लगावनेको कोई आलम्बन विचारै। जैसे उपवासकरि पीछै क्रीड़ा करै। केई पापी जूवा आदि कुविसनविषै लगै हैं अथवा सोय रह्या चाहैं। यहु जानै, किसी प्रकारकरि काल पूरा करना। ऐसे ही अन्य प्रतिज्ञाविषै जानना।

अथवा केई पापी ऐसे भी हैं, पहलै प्रतिज्ञा करै, पीछै तिसतैं दुःखी होय तब प्रतिज्ञा छोड़ि दें। प्रतिज्ञा लेना-छोड़ना तिनके ख्यालमात्र है। सो प्रतिज्ञा भंग करने का महापाप है। इसतैं तो प्रतिज्ञा न लेनी ही भली है। या प्रकार पहलै तो निर्विचार होय प्रतिज्ञा करै, पीछै ऐसी दशा होय। सो जैनधर्मविषै प्रतिज्ञा न लेनेका दण्ड तो है नाहीं। जैनधर्मविषै तो यहु उपदेश है, तो पहलै तो तत्त्वज्ञानी होय। पीछै जाका त्याग करै, ताका दोष पहिचानै। त्याग किए गुण होय, ताको जानै। बहुरि अपने परिणामनिको ठीक करै। वर्त्तमान परिणामनि ही के भरोसे प्रतिज्ञा न करि बैठै। आगामी निर्वाह होता जानै, तो प्रतिज्ञा करै। बहुरि शरीर की शक्ति वा द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका विचार करै। ऐसे विचारि पीछै प्रतिज्ञा करनी, सो भी ऐसी करनी जिस प्रतिज्ञातैं निरादरपना न होय, परिणाम चढ़ते रहैं। ऐसी जैनधर्मकी आम्नाय है।

यहाँ कोऊ कहै- चांडालादिकोंने प्रतिज्ञा करी, तिनकै इतना विचार कहाँ हो है।

ताका समाधान- मरणपर्यन्त कष्ट होय तो होहु परन्तु प्रतिज्ञा न छोड़नी, ऐसा विचारकरि प्रतिज्ञा करै है, प्रतिज्ञाविषै निरादरपना नाहीं। अर सम्यग्दृष्टी प्रतिज्ञा करै है, सो तत्त्वज्ञानादिपूर्वक ही करै है। बहुरि जिनकै अंतरंग विरक्तता न भई अर बाह्य प्रतिज्ञा धरै हैं ते प्रतिज्ञाके पहलै वा पीछै जाकी प्रतिज्ञा करै, ताविषै अति आसक्त होय लागै हैं। जैसे उपवासके धारने पारने भोजनविषै अति लोभी होय गरिष्ठादि भोजन करै, शीघ्रता घनी करै। सो जैसे जलको मूंदि राख्या था, छूट्या तब ही बहुत प्रवाह चलने लागा।

तैसे प्रतिज्ञाकरि विषय प्रवृत्ति मूंदि अंतरंग आसक्तता बधती गई। प्रतिज्ञा पूरी होते ही अत्यंत विषयप्रवृत्ति होने लागी। सो प्रतिज्ञाका कालविषै विषयवासना मिटी नाहीं। आगै पीछै ताकी एवज अधिक राग किया, तो फल तो रागभाव मिटे होगा। तातैं **जेती विरक्तता भई होय, तितनी ही प्रतिज्ञा करनी।** महामुनि भी थोरी प्रतिज्ञा करै, पीछै आहारादिविषै उछटि करै। अर बड़ी प्रतिज्ञा करै हैं, सो अपनी शक्ति देखकरि करै हैं। जैसे परिणाम चढ़ते रहै सो करै हैं, **प्रमाद भी न होय अर आकुलता भी न उपजै; ऐसी प्रवृत्ति कार्यकारी जाननी।**

बहुरि जिनकै धर्म ऊपरि दृष्टि नाहीं, ते कबहूँ तो बड़ा धर्म आचरै, कबहूँ अधिक स्वच्छन्द होय प्रवर्तै। जैसे कोई धर्मपर्वविषै तो बहुत उपवासादि करै, कोई धर्मपर्वविषै बारम्बार भोजनादि करै। सो धर्मबुद्धि होय तो यथाशक्ति सर्व धर्मपर्वनिविषै यथायोग्य संयमादि धरै। बहुरि कबहुँ तो कोई धर्मकार्यविषै बहुत धन खरचै, कबहुँ कोई धर्मकार्यआनि प्राप्त भया होय, तो भी तहाँ थोरा भी धन न खरचै। सो धर्मबुद्धि होय, तो यथाशक्ति यथायोग्य सर्व ही धर्मकार्यनिविषै धन खरच्या करै। ऐसे ही अन्य जानना।

बहुरि जिनके साँचा धर्मसाधन नाहीं, ते कोई क्रिया तो बहुत बड़ी अंगीकार करै अर कोई हीनक्रिया किया करै। जैसे धनादिकका तो त्याग किया अर चोखा भोजन चोखा वस्त्र इत्यादि विषयनिविषै विशेष प्रवर्तै। बहुरि कोई जामा पहरना, स्त्रीसेवन करना, इत्यादि कार्यनिका तो त्यागकरि धर्मात्मापना प्रगट करै अर पीछै खोटे व्यापारादि कार्य करै, लोकनिंद्य पापक्रियाविषै प्रवर्तै; ऐसे ही कोई क्रिया अति ऊँची, कोई क्रिया अति नीची करै। तहाँ लोकनिंद्य होय धर्मकी हास्य करावै। देखो अमुक धर्मात्मा ऐसे कार्य करै हैं। जैसे कोई पुरुष एक वस्त्र तो अति उत्तम पहरै, एक वस्त्र अतिहीन पहरै तो हास्य ही होय, तैसे यहु हास्य पावै है। साँचा धर्मकी तो यहु आम्नाय है, जेता अपना रागादि दूर भया होय, ताके अनुसार जिस पदविषै जो धर्मक्रिया सम्भवै, तो सर्व अंगीकार करै। जो थोरा रागादि मिट्या होय तो नीचा ही पदविषै प्रवर्तै परन्तु **ऊँचा पद धराय नीची क्रिया न करै।**[1]

यहाँ **प्रश्न**- जो स्त्रीसेवनादिकका त्याग ऊपर की प्रतिमाविषै कह्या है, सो नीचली अवस्था-वाला तिनका त्याग करै कि न करै?

ताका **समाधान**- सर्वथा तिनका त्याग नीचली अवस्थावाला कर सकता नाहीं। कोई दोष लागै है, तातैं ऊपरकी प्रतिमाविषै त्याग कह्या है। नीचली अवस्थाविषै जिस प्रकार त्याग सम्भवै, तैसा नीचली अवस्थावाला भी करै। परन्तु जिस नीचली अवस्थाविषै जो कार्य सम्भवै ही नाहीं ताका करना तो कषायभावनिहीतैं हो है। जैसे कोऊ सप्तव्यसन सेवै, स्वस्त्रीका त्याग करै, तो कैसे बनै? यद्यपि स्वस्त्रीका त्याग करना धर्म है, तथापि पहलै सप्तव्यसन का त्याग होय, तब ही स्वस्त्रीका त्याग करना योग्य है। ऐसे ही अन्य जानने।

बहुरि सर्व प्रकार धर्मको न जानै, ऐसा जीव कोई धर्मका अंगको मुख्यकरि अन्य धर्मनिको गौण

१. इसी ग्रन्थ का छठा अधिकार भी देखिए। पृ.सं. १४२।

करै है। जैसे केई जीव दयाधर्मको मुख्य करि पूजा प्रभावनादि कार्यको उथापै है, केई पूजा प्रभावनादि धर्मको मुख्यकरि हिंसादिक का भय न राखै है, केई तपकी मुख्यताकरि आर्त्त ध्यानादिकरिकै भी उपवासादि करै वा आपको तपस्वी मानि निःशंक क्रोधादि करै, केई दानकी मुख्यताकरि बहुत पाप करिकै भी धन उपजाय दान दे है, केई आरम्भ-त्यागकी मुख्यताकरि याचना आदि करै है।[1] इत्यादि प्रकार करि कोई धर्मको मुख्यकरि अन्य धर्मको न गिनै है वा वाकै आसरै पाप आचरै है। सो जैसे अविवेकी व्यापारी कोई व्यापारका नफेके अर्थि अन्य प्रकारकरि बहुत टोटा पाड़ै तैसे यहु कार्य भया। चाहिए तो ऐसे, जैसे व्यापारीका प्रयोजन नफा है, सर्व विचारकरि जैसे नफा घना होय तैसे करै। तैसे ज्ञानीका प्रयोजन वीतरागभाव है। सब विचारकरि जैसे वीतरागभाव घना होय तैसे करै। जातैं मूलधर्म वीतरागभाव है। याही प्रकार अविवेकी जीव अन्यथा धर्म अंगीकार करै है, तिनकै तो सम्यक्चारित्रका आभास भी न होय।

बहुरि केई जीव अणुव्रत महाव्रतादि रूप यथार्थ आचरण करै हैं। बहुरि आचरणके अनुसार ही परिणाम हैं। कोई माया लोभादिकका अभिप्राय नाहीं है। इनिको धर्म जानि मोक्षके अर्थि इनिका साधन करै हैं। कोई स्वर्गादिक भोगनि की भी इच्छा न राखै है परन्तु तत्त्वज्ञान पहले न भया, तातैं आप तो जानै मैं मोक्षका साधन करूं हूँ अर मोक्षका साधन जो है ताको जानै भी नाहीं। केवल स्वर्गादिकहीका साधन करै। सो मिश्रीको अमृत जानि भखे अमृतका गुण तो न होय। आपकी प्रतीतिके अनुसार फल होता नाहीं। फल जैसा साधन करै, तैसा ही लागै है। शास्त्रविषै ऐसा कह्या है- चारित्रविषै 'सम्यक्' पद है, सो अज्ञानपूर्वक आचरणकी निवृत्तिके अर्थि है। तातैं पहलै तत्त्वज्ञान होय, तहाँ पीछे चारित्र होय सो सम्यक्चारित्र नाम पावै है। जैसे कोई खेतीवाला बीज तो बोवै नाहीं अर अन्य साधन करै तो अन्नप्राप्ति कैसे होय, घास फूस ही होय। तैसे अज्ञानी तत्त्वज्ञानका तो अभ्यास करै नाहीं अर अन्य साधन करै तो मोक्षप्राप्ति कैसे होय, देवपदादिक ही होय। तहाँ केई जीव तो ऐसे हैं, तत्त्वादिकका नीके नाम भी न जानै केवल व्रतादिकविषै ही प्रवर्त्तै हैं। केई जीव ऐसे हैं, पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञानका अयथार्थ साधनकरि व्रतादि विषै प्रवर्त्तै हैं। सो यद्यपि व्रतादिक यथार्थ आचरै तथापि यथार्थ श्रद्धान ज्ञान विना सर्व आचरण मिथ्याचारित्र ही है। सोई समयसारका कलशाविषै कह्या है-

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
साक्षान्मोक्षमिदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं,
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि।।

- निर्जराधिकार।।१४२।।

---

१. यहाँ खरड़ा प्रति में अन्य कुछ और लिखने के लिए संकेत किया है। यह संकेत निम्न प्रकार है :
"इहाँ स्नानादि शौच धर्म का कथन तथा लौकिक कार्य आए धर्म छोड़ि तहाँ लगि जाय है, तिनिका कथन लिखना है,"
किन्तु पं. जी लिख नहीं पाये।

याका अर्थ- मोक्षतैं पराङ्मुख ऐसे अतिदुस्तर पंचाग्नि तपनादि कार्य तिनकरि आपही क्लेश करै है तो करो। बहुरि अन्य केई जीव महाव्रत अर तपका भारकरि चिरकालपर्यन्त क्षीण होते क्लेश करै हैं तो करो। परन्तु यहु साक्षात् मोक्षस्वरूप सर्वरोगरहित पद जो आपै आप अनुभवमें आवै, ऐसा ज्ञानस्वभाव सो तो ज्ञानगुण बिना अन्य कोई भी प्रकारकरि पावने को समर्थ नाहीं है। बहुरि पंचास्तिकायविषै जहाँ अंतविषै व्यवहाराभास वालेका कथन किया है तहाँ तेरह प्रकार चारित्र होते भी ताका मोक्षमार्गविषै निषेध किया है। बहुरि प्रवचनसारविषै आत्मज्ञानशून्य संयमभाव अकार्यकारी कह्या है। बहुरि इनही ग्रन्थनिविषै वा अन्य परमात्मप्रकाशादि शास्त्रनिविषै इस प्रयोजन लिए जहाँ तहाँ निरूपण है। तातैं पहलै तत्त्वज्ञान भए ही आचरण कार्यकारी है।

यहाँ कोऊ जानेगा, बाह्य तो अणुव्रत महाव्रतादि साधै हैं, अंतरंग परिणाम नाहीं वा स्वर्गादिककी वांछाकरि साधे हैं, सो ऐसे साधे तो पापबंध होय। द्रव्यलिंगी मुनि उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय है। परावर्तनिविषै इकतीस सागर पर्यन्त देवायुकी प्राप्ति अनन्तबार होनी लिखी है। सो ऐसे ऊंचेपद तो तब ही पावै जब अंतरंग परिणामपूर्वक महाव्रत पालै, महामंदकषायी होय, इस लोक परलोकके भोगादिकी चाह न होय, केवल धर्मबुद्धितैं मोक्षाभिलाषी हुवा साधन साधै। तातैं द्रव्यलिंगीकै स्थूल तो अन्यथापनो है नाहीं, सूक्ष्म अन्यथापनो है सो सम्यग्दृष्टीको भासै है। अब इनकै धर्मसाधन कैसे है अर तामें अन्यथापनो कैसे है? सो कहिए है-

द्रव्यलिंगी के धर्म-साधन में अन्यथापना

प्रथम तो संसारविषै नरकादिकका दुःख जानि वा स्वर्गादिविषै भी जन्म-मरणादिकका दुःख जानि संसारतैं उदास होय मोक्षको चाहै हैं। सो इनि दुःखनिको तो दुःख सब ही जानै है। इन्द्र अहमिन्द्रादिक विषयानुरागतैं इन्द्रियजनित सुख भोगवै हैं ताको भी दुःख जानि निराकुल सुख अवस्थाको पहचानि मोक्ष चाहै हैं, सोई सम्यग्दृष्टि जानना। बहुरि विषयसुखादिकका फल नरकादिक है, शरीर अशुचि विनाशीक है-पोषने योग्य नाहीं, कुटुम्बादिक स्वार्थके सगे हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका दोष विचारि तिनिका तो त्याग करै है। व्रतादिकका फल स्वर्गमोक्ष है, तपश्चरणादि पवित्र अविनाशी फलके दाता हैं, तिनकरि शरीर सोखने योग्य है, देव गुरु शास्त्रादि हितकारी हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका गुण विचारि तिनहीको अंगीकार करै है। इत्यादि प्रकारकरि कोई परद्रव्यको बुरा जानि अनिष्ट श्रद्धै है, कोई परद्रव्य को भला जानि इष्ट श्रद्धै है। सो परद्रव्यविषै इष्ट अनिष्टरूप श्रद्धान सो मिथ्या है। बहुरि इसही श्रद्धानतैं याकै उदासीनता भी द्वेषबुद्धि रूप हो है। जातैं काहूको बुरा जानना, ताहीका नाम द्वेष है।

कोऊ कहैगा, सम्यग्दृष्टी भी तो बुरा जानि परद्रव्यको त्यागै है।

ताका समाधान- सम्यग्दृष्टी परद्रव्यनिको बुरा न जानै है। अपना रागभावको बुरा जानै है। आप रागभावको छोरै, तातैं ताका कारणका भी त्याग हो है। वस्तु विचारै कोई परद्रव्य तो बुरा भला है नाहीं।

कोऊ कहेगा, निमित्तमात्र तो है।

ताका उत्तर- परद्रव्य जोरावरी तो कोई बिगारता नाहीं। अपने भाव बिगरैं तब वह भी बाह्यनिमित्त है। बहुरि वाका निमित्त बिना भी भाव बिगरै हैं। तातैं नियमरूप निमित्त भी नाहीं। ऐसे परद्रव्यका तो दोष देखना मिथ्याभाव है। रागादिभाव ही बुरे हैं सो याकै ऐसी समझि नाहीं। यहु परद्रव्यनिका दोष देखि तिनविषैं द्वेषरूप उदासीनता करै है। सांची उदासीनता तो ताका नाम है, कोई ही द्रव्यका दोष वा गुण न भासै, तातैं काहूको बुरा भला न जानै। आपको आप जानै, परको पर जानै, परतैं किछू भी प्रयोजन मेरा नाहीं ऐसा मानि साक्षीभूत रहै। सो ऐसी उदासीनता ज्ञानीहीकै होय। बहुरि यहु उदासीन होय शास्त्रविषै व्यवहारचारित्र अणुव्रत महाव्रत रूप कह्या है ताको अंगीकार करै है, एकदेश वा सर्वदेश हिंसादि पापको छोड़ै है, तिनकी जायगा अहिंसादि पुण्यरूप कार्यनिविषै प्रवर्त्तै है। बहुरि जैसे पर्यायाश्रित पापकार्यनिविषै कर्त्तापना अपना मानै था तैसे ही और पर्यायाश्रित पुण्यकार्यनिविषै कर्त्तापना अपना मानने लागा, ऐसे पर्यायाश्रित कार्यनिविषै अहंबुद्धि मानने की समानता भई। जैसे मैं जीव मारूं हूँ, मैं परिग्रहधारी हूँ, इत्यादिरूप मानि थी, तैसे ही मैं जीवनिकी रक्षा करूं हूँ, मैं नग्न, परिग्रहरहित हूँ, ऐसी मानि भई। सो पर्यायाश्रित कार्यविषै अहंबुद्धि सो ही मिथ्यादृष्टि है। सोई समयसारविषै कह्या है-

ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसाततः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षुतां।।१।।

(सर्व वि. अधिकार १९९)

याका अर्थ- जे जीव मिथ्या अन्धकार व्याप्त होते संते आपको पर्यायाश्रित क्रियाका कर्त्ता मानै हैं, ते जीव मोक्षाभिलाषी हैं, तोऊ तिनकै जैसे अन्यमती सामान्य मनुष्यनिकै मोक्ष न होय तैसे मोक्ष न हो है। जातैं कर्त्तापनाका श्रद्धानकी समानता है। बहुरि ऐसे आप कर्त्ता होय श्रावकधर्म वा मुनिधर्मकी क्रिया विषै मन वचन कायकी प्रवृत्ति निरन्तर राखै है। जैसे उन क्रियानिविषै भंग न होय तैसे प्रवर्त्तै हैं। सो ऐसे भाव तो सराग हैं। चारित्र है सो वीतरागभाव रूप है। तातैं ऐसे साधनको मोक्षमार्ग मानना मिथ्याबुद्धि है।

यहाँ प्रश्न- जो सराग वीतराग भेदकरि दोयप्रकार चारित्र कह्या है सो कैसे है?

ताका उत्तर- जैसे तन्दुल दोय प्रकारके हैं- एक तुषसहित हैं, एक तुषरहित हैं, तहाँ ऐसा जानना- तुष है सो तन्दुलका स्वरूप नाहीं, तन्दुलविषै दोष है। अर कोई स्याना तुषसहित तन्दुलका संग्रह करै था, ताको देखि कोई भोला तुषनि ही को तन्दुल मानि संग्रह करै तो वृथा खेदखिन्न ही होय। तैसे चारित्र दोय प्रकारका है- एक सराग है एक वीतराग है। तहाँ ऐसा जानना- राग है सो चारित्रका स्वरूप नाहीं, चारित्रविषै दोष है। अर केई ज्ञानी प्रशस्तरागसहित चारित्र धरै हैं, तिनको देखि कोई अज्ञानी प्रशस्तरागहीको चारित्र मानि संग्रह करै तो वृथा खेदखिन्न ही होय।

यहाँ कोऊ कहेगा- पापक्रिया करतें तीव्ररागादिक होते थे, अब इनि क्रियानिको करते मंदराग भया। तातैं जेता अंश रागभाव घट्या, तितना अंश तो चारित्र कहो। जेता अंश राग रह्या, तेता अंश राग कहो। ऐसे याकै सरागचारित्र सम्भवै है।

ताका समाधान- जो तत्त्वज्ञानपूर्वक ऐसे होय तो कहो हो तैसे ही है। तत्त्वज्ञान बिना उत्कृष्ट आचरण होते भी असंयम ही नाम पावै है। जातैं रागभाव करनेका अभिप्राय नाहीं मिटै है। सोई दिखाईए

द्रव्यलिंगी के अभिप्राय में अयथार्थपना

द्रव्यलिंगी मुनि राज्यादिकको छोड़ि निर्ग्रन्थ हो है, अठाईस मूलगुणनिको पालै है, उग्रोग्र अनशनादि घना तप करै है, क्षुधादिक बाईस परीषह सहै है, शरीरका खंड खंड भए भी व्यग्र न हो है, व्रत भंगके कारण अनेक मिलै तो भी दृढ़ रहै है, कोई सेती क्रोध न करै है, ऐसा साधनका मान न करै है, ऐसे साधनविषै कोई कपटाई नाहीं है, इस साधनकरि इस लोक-परलोकके विषय-सुखको न चाहै है, ऐसी याकी दशा भई है। जो ऐसी दशा न होय तो ग्रैवेयकपर्यन्त कैसे पहुंचै[1] परन्तु याको मिथ्यादृष्टि असंयमी ही शास्त्रविषै कह्या। सो ताका कारण यहु है-याकै तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान साँचा भया नाहीं। पूर्वै वर्णन किया, तैसे तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान भया है। तिसही अभिप्रायतैं सब साधन करै है। सो इन साधननिका अभिप्रायकी परम्पराको विचारे कषायनिका अभिप्राय आवै है। कैसे? सो सुनहु-यहु पापका कारण रागादिकको तो हेय जानि छोरै है परन्तु पुण्यका कारण प्रशस्त रागको उपादेय मानै है। ताके बधनेका उपाय करै है। सो प्रशस्तराग भी तो कषाय है। कषायको उपादेय मान्या, तब कषाय करने का ही श्रद्धान रह्या। अप्रशस्त परद्रव्यनिस्यों द्वेषकरि प्रशस्त परद्रव्यनिविषै राग करनेका अभिप्राय भया। किछू परद्रव्यनिविषै साम्यभावरूप अभिप्राय न भया।

इस कथन का अभिप्राय यह है कि मिथ्यात्वी मुनि भी नवमग्रैवेयक तक पहुँच सकते हैं। इस कथन का अभिप्राय ऐसा मत समझना कि ग्रैवेयक में द्रव्यलिंगी ही जाते हैं, या मिथ्यादृष्टि ही जाते हैं। नवम ग्रैवेयक में जितने भी जीव हैं उनकी संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण मात्र ही है (धवल ३/२८१) तथा नवम ग्रैवेयक में जो भी जीव (मुनिराज) जाते हैं वे प्रायः सम्यक्त्वी तथा भावलिंगी ही होते हैं। यही कारण है कि नवम ग्रैवेयक में स्थित देवों में जितने मिथ्यात्वी हैं उनसे संख्यातगुणे सम्यग्दृष्टि हैं। (धवल ३/२८३-८४, २९६, २९९ के अल्पबहुत्व) जिसका तथ्यात्मक अर्थ यह निकला कि जिनलिंग यानी मुनिपद धारण करके फिर भी द्रव्यसंयम (मात्रद्रव्यलिंग) ही बना रहे ऐसे मुनि अल्प ही होते हैं। (धवल ३/२८४) स्थूलार्थ यह है कि - यदि मनुष्यों में स्थित सकल ऐसे श्रेष्ठ तपस्वियों को संचित (इकट्ठा) किया जाए जो नवम ग्रैवयेक में जाने योग्य तप तप रहे हैं तो उन सब एकत्र श्रेष्ठ तपस्वी मुनियों में से संख्यात बहुभाग प्रमाण सम्यक्त्वी होंगे तथा एक भाग प्रमाण ही मिथ्यादृष्टी प्राप्त होंगे। ऐसा समझना चाहिए।

द्वितीय तथ्य यह है कि - अन्तिम ग्रैवेयक में जाने वाले द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि साधुओं के जीव (देव) इतने कम हैं - इतने कम हैं कि वे स्वर्गों के सम्यग्दृष्टि देवों के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही हैं। (देखो धवल ३, पृ. २९८-९९ सोहम्मीसाण असंजद.....जाव उवरिम उवरिमगेवज्जो त्ति। तथो अणुदिस. का सार) अतः हे भव्यो! ऐसे द्रव्यलिंगी साधु भी है कहाँ? अनन्तों में से एक जीव ही ऐसे प्रकृष्ट पुरुषार्थ वाला होता है।

पं. टोडरमलजी का यहाँ अभिप्राय यह है कि सम्यक्त्व बिना तप का मूल्य नहीं है, वह तो सत्य ही है। पर यहाँ श्रीमद् राजचन्द्र का कथन भी स्मरणीय है कि श्रद्धा और ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी यदि संयम नहीं आया और प्रमाद का नाश नहीं हुआ तो जीव बांसवृक्ष की उपमा को पाता है। (श्रीमद् पृ. ५६२) किंच, ज्ञान का फल विरति है; वीतराग का यह वचन सभी को स्मरण रखना योग्य है। (श्रीमद् अंक ७४९ पृष्ठ ६५४)

यहाँ प्रश्न- जो सम्यग्दृष्टी भी तो प्रशस्तरागका उपाय राखै है।

ताका उत्तर यहु- जैसे काहूकै बहुत दंड होता था, सो वह थोरा दंड देनेका उपाय राखै है अर थोरा दंड दिए हर्ष भी मानै है परन्तु श्रद्धानविषै दंड देना अनिष्ट ही मानै है। तैसे सम्यग्दृष्टीकै पापरूप बहुत कषाय होता था, सो यहु पुण्यरूप थोरा कषाय करने का उपाय राखै है। अर थोरा कषाय भए हर्ष भी मानै है परन्तु श्रद्धान विषै कषाय को हेय ही मानै है। बहुरि जैसे कोऊ कमाईका कारण जानि व्यापारादिकका उपाय राखै है, उपाय बनि आए हर्ष मानै है तैसे द्रव्यलिंगी मोक्षका कारण जानि प्रशस्त रागका उपाय राखै है, उपाय बनिआए हर्ष मानै है। ऐसे प्रशस्तरागका उपायविषै वा हर्षविषै समानता होते भी सम्यग्दृष्टीकै तो दण्डसमान, मिथ्यादृष्टिकै व्यापारसमान श्रद्धान पाईए है। तातैं अभिप्रायविषै विशेष भया।

बहुरि याकै परीषह तपश्चरणादिक के निमित्ततैं दुःख होय, ताका इलाज तो न करै है परन्तु दुःख वेदै है। सो दुःखका वेदना कषाय ही है। जहाँ वीतरागता हो है, तहाँ तो जैसे अन्य ज्ञेयको जानै है तैसे ही दुःखका कारण ज्ञेयको जानै है। सो ऐसी दशा याकी न हो है। बहुरि उनको सहै है, सो भी कषायका अभिप्रायरूप विचारतैं सहै है। सो विचार ऐसा ही है- जो परवशपने नरकादिगतिविषै बहुत दुःख सहे, ये परीषहादिका दुःख तो थोरा है। याको स्ववश सहे स्वर्ग मोक्षसुखकी प्राप्ति हो है। जो इनको न सहिए अर विषयसुख सेइए तो नरकादिककी प्राप्ति होसी, तहाँ बहुत दुःख होगा। इत्यादि विचारविषै परीषहनिविषै अनिष्टबुद्धि रहै है। केवल नरकादिकके भयतैं वा सुखके लोभतैं तिनको सहै है। सो ए सर्व कषायभाव ही हैं। बहुरि ऐसा विचार हो है-जे कर्म बाँधे थे, ते भोगे बिना छूटते नाहीं, तातैं मोको सहने आए। सो ऐसे विचारतैं कर्मफलचेतना रूप प्रवर्त्तै है। बहुरि पर्यायदृष्टितैं जे परीषहादिकरूप अवस्था हो है, ताको आपकै भई मानै है। द्रव्यदृष्टितैं अपनी वा शरीरादिककी अवस्थाको भिन्न न पहिचानै है। ऐसे ही नाना प्रकार व्यवहार विचारतैं परीषहादिक सहै है।

बहुरि याने राज्यादि विषयसामग्रीका त्याग किया है वा इष्ट भोजनादिकका त्याग किया करै है। सो जैसे कोऊ दाहज्वरवाला वायु होनेके भयतैं शीतलवस्तु सेवनका त्याग करै है परन्तु यावत् शीतल वस्तुका सेवन रुचै तावत् वाकै दाहका अभाव न कहिए। तैसे राग सहित जीव नरकादिके भयतैं विषयसेवनका त्याग करै है परन्तु यावत् विषयसेवन रुचै तावत् रागका अभाव न कहिए। बहुरि जैसे अमृत का आस्वादी देवको अन्य भोजन स्वयमेव न रुचै, तैसे स्वरसके आस्वादकरि विषयसेवनकी रुचि याकै न हो है। या प्रकार फलादिक की अपेक्षा परीषह सहनादिको सुखका कारण जानै है अर विषयसेवनादिको दुःखका कारण जानै है। बहुरि तत्कालविषै परीषह सहनादिकतैं दुःख होना मानै है, विषयसेवनादिकतैं सुख मानै है। बहुरि जिनतैं सुख दुःख होना मानिए, तिनविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धितैं रागद्वेष रूप अभिप्रायका अभाव होय नाहीं। बहुरि जहाँ रागद्वेष है, तहाँ चारित्र होय नाहीं। तातैं यहु द्रव्यलिंगी विषयसेवन छोरि तपश्चरणादि करै है। तथापि असंयमी ही है। सिद्धाँतविषै असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीतैं भी याको हीन कह्या है। जातैं उनकै चौथा पाँचवाँ गुणस्थान है, याकै पहला ही गुणस्थान है।

यहाँ कोऊ कहै कि- असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति विशेष है अर द्रव्यलिंगी मुनिकै थोरी है, याहीतैं असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टी तो सोलहवाँ स्वर्ग पर्यन्त ही जाय अर द्रव्यलिंगी उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय। तातैं भावलिंगी मुनितैं तो द्रव्यलिंगीको हीन कहो, असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीतैं याको हीन कैसे कहिए?

ताका **समाधान**- असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो है परन्तु श्रद्धानविषै किसी ही कषायके करनेका अभिप्राय नाहीं। बहुरि द्रव्यलिंगीकै शुभ कषाय करने का अभिप्राय पाइए है। श्रद्धानविषै तिनको भले जानै है। तातैं श्रद्धान अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टितैं भी याकै अधिक कषाय है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै योगनिकी प्रवृत्ति शुभ रूप घनी हो है अर अघातिकर्मनिविषै पुण्य पापबंधका विशेष शुभ अशुभ योगनिके अनुसार है। तातैं उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त पहुँचै है, सो किछू कार्यकारी नाहीं। जातैं अघातिया कर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। इनके उदयतैं ऊँचेनीचे पद पाए तो कहा भया। ए तो बाह्य संयोगमात्र संसार दशाके स्वांग हैं। आप तो आत्मा है, तातैं आत्मगुण के घातक घातिया कर्म हैं, तिनका हीनपना कार्यकारी है। सो घातियाकर्मनिका बंध बाह्य प्रवृत्ति के अनुसार नाहीं। अंतरंग कषाय शक्ति के अनुसार है। याहीतैं, द्रव्यलिंगीतैं असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै घातिकर्मनिका बंध थोरा है। द्रव्यलिंगीकै तो सर्वघातिकर्मनिका बंध बहुत स्थिति अनुभाग लिए होय अर असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै मिथ्यात्व अनन्तानुबंधी आदि कर्मका तो बंध है ही नाहीं, अवशेषनिका बंध हो है सो स्तोक स्थिति अनुभाग लिए हो है। **बहुरि द्रव्यलिंगी के कदाचित् गुणश्रेणीनिर्जरा न होय, सम्यग्दृष्टीकै कदाचित् हो है अर देशसंयम सकलसंयम भए निरन्तर हो है।** याहीतैं यहु मोक्षमार्गी भया है। तातैं द्रव्यलिंगी मुनि असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीतैं हीन शास्त्रविषै कह्या है। सो **समयसार** शास्त्रविषै द्रव्यलिंगी मुनिका हीनपना गाथा वा **टीकाकलशानिविषै** प्रगट किया है। बहुरि **पंचास्तिकायकी** टीकाविषै जहाँ केवल व्यवहारावलम्बीका कथन किया है, तहाँ व्यवहार पंचाचार होते भी ताका हीनपना ही प्रगट किया है। बहुरि **प्रवचनसारविषै** संसार तत्त्व द्रव्यलिंगीको कह्या। बहुरि **परमात्मप्रकाशादि** अन्य शास्त्रनिविषै भी इस व्याख्यानको स्पष्ट किया है। बहुरि द्रव्यलिंगी के जप तप शील संयमादि क्रिया पाइए है, तिनको भी अकार्यकारी इन शास्त्रनिविषै जहाँ तहाँ दिखाई है, सो तहाँ देखि लेना। यहाँ ग्रन्थ बधनेके भयतैं नाहीं लिखिए हैं। ऐसे केवल व्यवहाराभासके अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण किया।

अब निश्चय-व्यवहार दोऊ नयनिके आभासको अवलम्बै है, ऐसे मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण कीजिए है-

निश्चय व्यवहारनयाभासावलम्बी मिथ्यादृष्टियों का निरूपण

जे जीव ऐसा मानै हैं- जिनमतविषै निश्चय व्यवहार दोय नय कहे हैं, तातैं हमको तिन दोऊनिका अंगीकार करना। ऐसे विचारि जैसे केवल निश्चयाभास के अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसे तो निश्चयका अंगीकार करै हैं अर जैसे केवल व्यवहाराभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसे व्यवहारका अंगीकार करै हैं। यद्यपि ऐसे अंगीकार करने विषै दोऊ नयनिके परस्पर विरोध है तथापि करै कहा, साँचा

तो दोऊ नयनिका स्वरूप भास्या नाहीं अर जिनमतविषै दोय नय कहे, तिनिविषै काहूको छोड़ी भी जाती नाहीं। तातैं भ्रम लिए दोऊनिका साधन साधै है, ते भी जीव मिथ्यादृष्टी जानने।

अब इनकी प्रवृत्तिका विशेष दिखाईए है- अंतरंगविषै आप तो निर्द्धार करि यथावत् निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग को पहिचान्या नाहीं, जिनआज्ञा मानि निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दोय प्रकार मानै है सो मोक्षमार्ग दोय नाहीं, मोक्षमार्ग का निरूपण दोय प्रकार है। जहाँ सांचा मोक्षमार्गको मोक्षमार्ग निरूपिए सो निश्चय मोक्षमार्ग है अर जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नाहीं परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है वा सहचारी है, ताको उपचारकरि मोक्षमार्ग कहिए सो व्यवहार मोक्षमार्ग है, जातैं निश्चय व्यवहारका सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। सांचा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार, तातैं निरूपण अपेक्षा दोय प्रकार मोक्षमार्ग जानना। एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है; ऐसे दोय मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। बहुरि निश्चय व्यवहार दोऊनिकूं उपादेय मानै है, सो भी भ्रम है। जातैं निश्चय व्यवहारका स्वरूप तो परस्पर विरोध लिए है। जातैं समयसार विषै ऐसा कह्या है-

"ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।"[1] गाथा ११

याका अर्थ- व्यवहार अभूतार्थ है। सत्य स्वरूपको न निरूपै है। किसी अपेक्षा उपचारकरि अन्यथा निरूपै है। बहुरि शुद्धनय जो निश्चय है सो भूतार्थ है। जैसा वस्तु का स्वरूप है तैसा निरूपै है। ऐसे इन दोऊनिका स्वरूप तो विरुद्धता लिए है।

विशेषः - मो. मा. प्र. (सस्ती ग्रन्थमाला, दिल्ली प्रकाशन के पृष्ठ ४४३ अधिकार ८) में ही लिखा है- "तातैं जो उपदेश होय ताको सर्वथा न जानि लेना। उपदेश का अर्थ को जानि तहाँ इतना विचार करना, यहु उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन को लिए है, किस जीव को कार्यकारी है।"

पृ. २८८ (वही संस्करण) पर कहा है- "जैसे वैद्य रोग मेट्या चाहे है। जो शीत का आधिक्य देखै, तो उष्ण औषधि बतावै अर आताप का आधिक्य देखै तो शीतल औषधि बतावै। तैसे श्री गुरु रागादिक छुड़ाया चाहै है। जो रागादिक पर का मानि स्वच्छन्द होय निरुद्यमी होय ताको उपादानकारण की मुख्यता करि रागादिक आत्मा का है ऐसा श्रद्धान कराया। बहुरि जो रागादिक आपका स्वभाव मानि तिनिका नाश का उद्यम नाहीं करे है, ताको निमित्तकारण की मुख्यता करि रागादिक परभाव हैं, ऐसा श्रद्धान कराया है।"

मो. मा. प्र. के उपर्युक्त दोनों वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाना जीवों को नानाप्रकार का मिथ्यात्व रोग लग रहा है। क्योंकि मिथ्यात्व रोग नाना प्रकार का है, अतः उसका

---

१. ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ।। गाथा ११।।

उपचार भी नाना उपदेशरूपी औषधियों द्वारा बतलाया गया है। इसलिए किसी भी उपदेश को सर्वथा न समझ लेना चाहिए। अपने मिथ्यात्वरूपी रोग के कारण को पहिचान कर, उन नाना उपदेशरूपी औषधियों में से उस कारण को दूर करनेवाली औषधि का सेवन करेगा तो रोग उपशांत हो जायगा। यदि विपरीत औषधि का सेवन करेगा तो मिथ्यात्वरूपी रोग पुष्ट हो जायगा। समयसार गाथा ५० से ५५ तक में निश्चयनय की अपेक्षा रागादि को पुद्गलमय कहे और गाथा ५६ में व्यवहारनय की अपेक्षा जीव के कहे हैं। यदि कोई निश्चयनय के कथन को सत्यार्थ मान और व्यवहारनय के कथन को असत्यार्थ मान अपने-आपको रागादि से सर्वथा भिन्न अनुभवे तो उसको व्यवहारनय की उपदेश रूपी औषधि का सेवन करना चाहिए अर्थात् व्यवहारनयके उपदेश को सत्यार्थ मान अर्थात् रागादि को आत्मा के भाव मानकर उनको दूर करने का उपाय करना चाहिए। अन्यथा उसका मिथ्यात्वरूपी रोग दूर नहीं होगा। किन्तु निश्चयनय के उपदेशरूपी औषधि सेवन करने से उसका मिथ्यात्वरूपी रोग पुष्ट होता जायगा। इसी बात को **मो. मा. प्र. पृ. २९१ (वही संस्करण)** पर कहा है-

"यहाँ कोऊ कहे- हमको तो बंध मुक्ति का विकल्प करना नाहीं, जातैं शास्त्रविषै ऐसा कह्या है- **'जो बंधउ मुक्कउ मुणइ, सो बंधइ णिभंतु।'** याका अर्थ - जो जीव बंध्या अर मुक्त भया मानै है, सो निःसंदेह बंधै है। ताको कहिये है- जे जीव केवल पर्यायदृष्टि होय बंध मुक्त अवस्था ही को माने हैं, द्रव्यस्वभाव का ग्रहण नाहीं करे हैं, तिनको ऐसा उपदेश दिया है, जो द्रव्यस्वभाव को न जानता जीव बंध्या मुक्त भया मानै, सो बंधै है। बहुरि जो सर्वथा ही बंध मुक्ति न होय, तो सो जीव बंधै है, ऐसा काहे को कहै। अर बंध के नाश का, मुक्त होने का उद्यम काहे को करिये है। काहे को आत्मानुभव करिए है। तातैं द्रव्यदृष्टि करि एकदशा है, पर्यायदृष्टि करि अनेक अवस्था हो है, ऐसा मानना योग्य है। ऐसे ही अनेक प्रकार करि केवल निश्चयनय का अभिप्रायतैं विरुद्ध श्रद्धानादिक करै है। जिनवाणी विषै तो नाना नय अपेक्षा, कहीं कैसा कहीं कैसा निरूपण किया है। **यह अपने अभिप्रायतैं निश्चयनय की मुख्यता करि जो कथन किया होय, ताही को ग्रहिकरि मिथ्यादृष्टि को धारै है।"**

पृ. २९२ पर कहा है- "यहु चिंतवन जो द्रव्यदृष्टि करि करो हो, तो द्रव्य तो शुद्ध-अशुद्ध सर्वपर्यायनिका समुदाय है। तुम शुद्ध ही अनुभवन काहे को करो हो। अर पर्यायदृष्टि करि करो हो तो तुम्हारे तो वर्त्तमान अशुद्धपर्याय है। तुम आपको शुद्ध कैसे मानो हो? बहुरि जो शक्ति अपेक्षा शुद्ध मानो हो, तो मैं ऐसा होने योग्य हूँ, ऐसा मानो। मैं ऐसा हूँ ऐसे काहे को मानो हो। **तातैं आपको शुद्धरूप चिंतवन करना भ्रम है।** काहे तैं-तुम आपको सिद्ध समान मान्या, तो यहु संसार-अवस्था कौन की है। अर तुम्हारे केवलज्ञानादिक हैं तो ये मतिज्ञानादिक कौन के हैं। अर

द्रव्यकर्म नोकर्म-रहित हो तो ज्ञानादिक की व्यक्तता क्यों नहीं? परमानन्दमय हो तो अब कर्त्तव्य कहा रह्या? जन्म-मरणादी दुःख ही नाहीं तो दुःखी कैसे होते हो? तातैं अन्य अवस्थाविषै अन्य अवस्था मानना भ्रम है।"

पृ. २६३ पर कहा है- "आपको द्रव्यपर्यायरूप अवलोकना। द्रव्यकरि सामान्यस्वरूप अवलोकना, पर्यायकरि अवस्था विशेष अवधारना। ऐसे ही चिंतवन किये सम्यग्दृष्टी हो है।"

इन उपर्युक्त कथनों में यह कहा गया है कि 'निश्चय की मुख्यता करि जो कथन किया होय ताहि को ग्रहण करि मिथ्यादृष्टि होय है।' यदि "निश्चयनय भूतार्थ है और वस्तु का जैसा स्वरूप है तैसा निरूपै है" (पृ. ३६६), तो निश्चयनय के कथन को ग्रहण करने वाला मिथ्यादृष्टि क्यों? 'शुद्ध रूप चिंतवन करना भ्रम है' (पृ. २६२) ऐसा क्यों?

व्यवहारनय करि जीव की मुक्त अवस्था है। **निश्चयनय करि तो जीव न प्रमत्त है और न अप्रमत्त है, किन्तु एक अवस्थारूप है।** व्यवहारनय का कथन जो मुक्तअवस्था को उपादेय न माने अर्थात् **यदि व्यवहारनय को उपादेय न माने तो 'बन्ध के नाश का मुक्त होने का उद्यम काहे को करिये है, काहे को आत्मानुभव करिये है।'** पृ. २६१ के इस कथन से स्पष्ट है कि व्यवहारनय के कथन को भी उपादेय माना गया है। पृ. २६८ पर भी कहा है- "बहुरि जो तू कहैगा, केई सम्यग्दृष्टी भी तपश्चरण नाहीं करे हैं। ताका उत्तर- यहु कारण विशेषतैं तप न होय सकै है परन्तु श्रद्धानविषै तो तप को भला जाने हैं। ताके साधन का उद्यम राखे हैं।" यहाँ पर भी व्यवहारनय के इस कथन को सम्यग्दृष्टि उस (तप) को श्रद्धानि विषै भला जानै है। (अर्थात् उपादेयरूप श्रद्धान करे है) और तप के साधन का उद्यम राखै है (अर्थात् सम्यग्दृष्टि अनशनादि तप का उपादेयरूप से श्रद्धान करे है और उसतप को उपादेय मान उसके साधन का प्रयत्न करे है) यहाँ पर भी व्यवहारनय के कथन अनशनादि तप को उपादेय रूप से श्रद्धान करने को और ग्रहण करने को कहा है।

पृ. २६३ पर "द्रव्यकरि सामान्य स्वरूप अवलोकना, पर्यायकरि अवस्था विशेष अवधारना। ऐसे ही चिंतवन किए सम्यग्दृष्टी हो है।" वस्तु सामान्यरूप भी है और विशेषरूप भी है। 'सामान्य' निश्चयनय का विषय है, 'विशेष' व्यवहारनय का विषय है। सामान्य-विशेष दोनों रूप अर्थात् 'ऐसे भी है, ऐसे भी है" इसरूप चिंतवन करने वाला सम्यग्दृष्टी है। यह इस कथन का तात्पर्य है। यदि कोई निश्चयनय के कथन 'सामान्य' को सत्यार्थ माने और व्यवहारनय के विषय विशेष (परिणमन) को असत्यार्थ मानेगा तो उसके मत में वस्तु नित्य कूटस्थ हो जाने से अर्थक्रियाकारी नहीं रहेगी, जिससे वस्तु के अभाव का प्रसंग आ जावगा और सांख्यमत की तरह एकान्तमिथ्यादृष्टि हो जाएगा। इसीलिए निश्चयनय के कथन 'सामान्य' और व्यवहारनय के कथन 'विशेष' दोनों की श्रद्धा करने वाले को सम्यग्दृष्टि कहा है।

पृ. २९६ पर भी कहा है- "केवल आत्मज्ञान ही तैं तो मोक्षमार्ग होइ नाहीं। सप्त तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान भए वा रागादिक दूरि किये मोक्षमार्ग होगा। सो सप्ततत्त्वनिका विशेष जानने को जीव-अजीव के विशेष वा कर्म के आस्रव-बन्धादिक का विशेष अवश्य जानना योग्य है, जातैं सम्यग्दर्शन-ज्ञान की प्राप्ति होय। बहुरि तहाँ पीछै रागादिक दूरि करने, सो जे रागादिक बधावने के कारण तिनको छोड़ि जे रागादिक घटावने के कारण होय तहाँ उपयोगको लगावना।" यहाँ पर निश्चयनय के कथनरूप जो आत्मज्ञान उसके तो मोक्षमार्गपने का निषेध किया। और व्यवहारनय के कथन 'सात तत्त्व का श्रद्धान, ज्ञान व रागादिक औपाधिक भावों का दूर करना' इसको मोक्षमार्ग कहा है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मो. मा. प्र. में स्वयं दो प्रकार का कथन पाया जाता है। अतः उपर्युक्त उपदेश को सर्वथा न समझ लेना चाहिए। मो.मा.प्र. में स्वयं कहा है- "इसलिए जो उपदेश हो उसको सर्वथा न समझ लेना चाहिए। उपदेश के अर्थ को जानकर वहाँ इतना विचार करना चाहिए कि यह उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन को लेकर है और किस जीव को कार्यकारी है।"

जो उपर्युक्त कथन (पृ. ३६६ व ३६९ के कथन) को सर्वथा मान बैठे हैं क्या वे 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' के स्वाध्याय करने वाले कहे जा सकते हैं?

यहाँ तक निश्चयनय व व्यवहारनय के सम्बन्ध में **'मोक्षमार्ग प्रकाशक'** के अनुसार कथन हुआ। अब आर्षग्रन्थ के अनुसार कथन किया जाता है-

यदि यह कहा जाय कि निश्चयनय की दृष्टि में व्यवहारनय का विषय अभूतार्थ है, तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि व्यवहारनय का विषय सर्वथा अभूतार्थ है।

शंका - ववहारोऽभूयत्थो (गाथा ११ स.सा.), इसका 'व्यवहार असत्य है', ऐसा अर्थ करना क्या समुचित है?

समाधान - समुचित है।[1] परन्तु यहाँ अपेक्षा विशेष से ही व्यवहार को असत्य कहा है। समयसार अध्यात्मग्रन्थ है तथा अध्यात्मनिश्चयप्रधान होता है।[2] अध्यात्म में निश्चय का ही कथन होता है।[3] अतः

१. भूत = सत्य, अर्थ = स्वरूप, भूतार्थ = सत्य स्वरूप या सत्यार्थ (मूलाचार गाथा २०३, पृष्ठ १६८ ज्ञानपीठ) तथा जिनसहस्रनामस्तोत्र (श्रुतसागरीय टीका ६/११३) स.सा.ता.वृत्ति तथा लौकिक ग्रन्थ अभि.शाकु. अंक १ मृच्छकटिकम् ३/२४ आदि। इनमें भूतार्थ व अभूतार्थ क्रमशः सत्य व असत्य अर्थ के वाचक हैं।

२. अ.अ.क. पृष्ठ ३।

३. स.प्रा.पृ. ४ (प्रकाशक : शान्तिलालजी कागजी, दिल्ली)

समयसार में प्रायः निश्चय की दृष्टि से - निश्चय की मुख्यता से ही कथन किया हुआ है। तदनुसार निश्चय की दृष्टि से ही यहाँ व्यवहार को असत्यस्वरूप कहा है। परन्तु अपने अर्थ में तो यह उतना ही सत्य है जितना कि निश्चय।[1] इसके लिए समयसार के निम्न प्रमाण दृष्टव्य हैं -

१. व्यवहार ...... मत छोड़ो।[2]

२. व्यवहार नय को यदि कोई सर्वथा असत्यार्थ जानकर छोड़ दे तो.......। संसार में ही भ्रमण करेगा।[3]

३. व्यवहार कथंचित् असत्यार्थ है। वह सर्वथा असत्यार्थ नहीं है।[4]

४. सर्व नयों की कथंचित् सत्यार्थता का श्रद्धान करने से ही सम्यक्दृष्टि हुआ जा सकता है।[5]

५. व्यवहारनय व्यवहारी जीवों को परमार्थ (निश्चयनय) का कहने वाला है।[6]

६. यदि व्यवहार को सर्वथा असत्यार्थ ही समझा जावे तो.... परमार्थ का भी लोप हो जायेगा।[7]

७. निश्चय और व्यवहार श्रुतज्ञान के अवयव हैं।[8]

८. एक नय का सर्वथा पक्ष ग्रहण किया जावे तो मिथ्यात्व के साथ मिला हुआ राग होता है। प्रयोजनवश एक नय को प्रधान करके उसका ग्रहण करें तो मिथ्यात्व बिना चारित्रमोह का राग हो जाता है।[9]

९. पाँचों प्रमाण, दोनों नय तथा चारों निक्षेप साधक अवस्था में तो सत्यार्थ ही हैं। तथा भिन्न लक्षण से रहित अपने एक चेतन लक्षण रूप जीव स्वभाव का अनुभव करने पर ये सभी अभूतार्थ हैं यानी प्रमाण नय निक्षेप सविकल्प अवस्था में भूतार्थ हैं, किन्तु परम समाधि के काल में ये भी अभूतार्थ हो जाते हैं। इसी तरह नव पदार्थ प्राथमिक शिष्य की अपेक्षा भूतार्थ हैं, निर्विकल्प समाधि अवस्था में अभूतार्थ हैं।[10]

१. वर्णी अ.ग्र.पृ. ३५४-५५ पं. फूलचन्दजी सि.शास्त्री।

२. जई जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एकेण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं। स.सा.गा. १२ आ.ख्या.

३. समयप्राभृत पृ. ४६ आ.ख्या. जयचन्दजी छाबड़ाकृत वचनिका।
प्रकाशक : शान्तिलालजी कागजी, २/४, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली तथा धर्मामृत अनगार पृ. ७४ (ज्ञानपीठ)

४. समयप्राभृत वही पृ. ४६, ६०, ८५, १३१ आदि (गाथा १२,१४,२८,६० की वचनिका)

५. अर्थात् कोई भी नय सर्वथा सत्यार्थ नहीं है। स.प्रा.पृ. ६० गाथा १४ की वचनिका तथा स.प्रा.आ.ख्या. १४३ वचनिका।

६. स.सा. ४६ आ.ख्या.।

७. स.सा. ६० आ.ख्या.।

८. स.सा. १४३ आ.ख्या.।

९. स.सा. १४३ जयचन्दजी की वचनिका।

१०. मूलाचार पृ. १७१ ज्ञानपीठ (इसी तरह व्यवहार नय शुभोपयोग के काल में भूतार्थ है। वही शुद्धोपयोग के काल में अभूतार्थ हो जाता है। पुनः वहाँ से पतित होकर नीचे की भूमिका में आने पर पुनः व्यवहार भूतार्थ हो जाता है।

१०. व्यवहार नय भूतार्थ भी है तथा अभूतार्थ भी है। इस तरह दो प्रकार का है।[1]

११. निश्चय और व्यवहार में साध्य साधकपना है।[2]

इन सब बिन्दुओं को गम्भीरता से देखने पर यह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि व्यवहारनय अध्यात्म में निश्चय नय की अपेक्षा मिथ्या कहा गया है, परन्तु व्यवहार की अपेक्षा व्यवहार सत्य ही है। बौद्ध निश्चय की अपेक्षा व्यवहार को झूठ मानते हैं उसी प्रकार वे व्यवहार को व्यवहार दृष्टि से भी असत्य मानते हैं। परन्तु जैनमत में ऐसा नहीं है।[3] जैनमत में सभी नय कथंचित् सत्यार्थ हैं।[4]

आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज समयसार टीका (अजमेर प्रकाशन) में पृष्ठ १४-१५ पर लिखते हैं कि यहाँ पर भूतार्थ शब्द का अर्थ सत्यार्थ व अभूतार्थ का अर्थ असत्यार्थ किया है, किन्तु यहाँ पर असत्यार्थ का अर्थ सर्वथा निस्सार नहीं लेना चाहिए किन्तु 'अ' का अर्थ ईषत् लेकर व्यवहारनय अभूतार्थ अर्थात् तात्कालिक प्रयोजनवान है, ऐसा लेना चाहिए। जैसाकि स्वयं जयसेनाचार्यजी ने भी अपने तात्पर्यार्थ में बतलाया है।

किंच, भूत शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा के विश्वलोचनकोश में जिस प्रकार सत्य बतलाया है, उसी प्रकार उसका अर्थ 'सम' भी बतलाया है। अतः भूतार्थ सम है अर्थात् सामान्य धर्म को स्वीकार करने वाला है तो अभूतार्थ का अर्थ विषम अर्थात् विशेषता को कहने वाला स्वतः हो जाता है जिससे व्यवहारनय अर्थात् पर्यायार्थिकनय और निश्चयनय अर्थात् द्रव्यार्थिक नय, इस प्रकार का अर्थ अनायास ही निकल जाता है।

निष्कर्ष : अ शब्द प्रसक्त अर्थ के अवयव में भी रहता है अतः भूतार्थ - विद्यमान पदार्थ है तो अभूतार्थ - विद्यमान पदार्थ की पर्याय। अतः भूतार्थ = द्रव्यार्थिक नय तथा अभूतार्थ = पर्यायार्थिक नय, यह सिद्ध होता है।

दूसरे जिस प्रकार निश्चयनय की दृष्टि में व्यवहारनय का विषय अभूतार्थ है उसी प्रकार व्यवहारनय की दृष्टि में निश्चयनय का विषय अभूतार्थ है। इन दोनों कथनों के समर्थन में आर्षवाक्य इस प्रकार हैं –

'ननु सौगतोपि ब्रूते व्यवहारेण सर्वज्ञः, तस्य किमिति दूषणं दीयते भवद्भिरिति? तत्र परिहारमाह-सौगताविमते यथा निश्चयापेक्षया व्यवहारो मृषा, तथा व्यवहाररूपेणापि व्यवहारो न

१. स.सा. १३ ता.वृ. भूतार्थाभूतार्थभेदेन व्यवहारोऽपि द्विधा।

२. निश्चयव्यवहारयोः साध्यसाधकभावत्वात् । स.सा. पृ. १९८ फलटण प्रकाशन तथा पं.का. पृ. २३० (राजचन्द्र)

३. स.सा. गाथा ३८७ से ३९६ ता.वृ.।

४. स.सा. गाथा १४ जयचन्दजी की वचनिका।

सत्य इति। जैनमते पुनर्व्यवहारनयो यद्यपि निश्चयापेक्षया मृषा तथापि व्यवहाररूपेण सत्य इति। यदि पुनर्लोकव्यवहाररूपेणापि सत्यो न भवति तर्हि सर्वोपि लोकव्यवहारो मिथ्या भवति, तथा सत्यतिप्रसंगः। एवमात्मा व्यवहारेण परद्रव्यं जानाति पश्यति निश्चयेन पुनः स्वद्रव्यमेवेति'। (समयसार गाथा ३६१ टीका)

अर्थ इसप्रकार है-

प्रश्न- जैसे कुन्दकुन्दभगवान ने गाथा ३६१ में कहा है 'परद्रव्य को व्यवहारनय से जानता है।' उसीप्रकार बौद्ध भी व्यवहारनय से सर्वज्ञ कहते हैं। फिर आप बौद्धों का क्यों खण्डन करते हैं?

उत्तर- जैसे निश्चयनय की अपेक्षा बौद्ध व्यवहारनय को झूठ मानते हैं उसी प्रकार व्यवहाररूप से भी व्यवहार को सत्य नहीं मानते, किन्तु जैनमत में यद्यपि निश्चयनय की अपेक्षा व्यवहार नय झूठा है तथापि व्यवहाररूप से सत्य है। यदि व्यवहारनय लोक-व्यवहाररूप से भी सत्य न हो तो समस्तलोक-व्यवहार मिथ्या हो जायगा और ऐसा होने से अतिप्रसंगदोष आजायगा। यह आत्मा व्यवहारनय से परद्रव्य को जानता देखता है और निश्चयनय से स्वद्रव्य को जानता देखता है।

श्री समयसार गाथा १४ की टीका में भी कहा है- 'आत्मनोऽनादिबद्धस्य बद्धस्पृष्टत्वपर्यायेनानुभूयमावतायां बद्धस्पृष्टत्वं भूतार्थमप्येकांततः पुद्गलास्पृश्यमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थं. ...।'

अर्थ- अनादिकाल से बंधे हुए आत्मा का पर्याय से (व्यवहारनय से) अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता भूतार्थ है, तथापि पुद्गल से किंचित्मात्र भी स्पर्शित न होने योग्य आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर (निश्चयनय से) बद्धस्पृष्टता अभूतार्थ है।

जिनको उपर्युक्त आर्ष पर श्रद्धा नहीं है और यह मानते हैं कि जैसा व्यवहारनय का कथन है वैसा नहीं है, उनके मत में सर्वज्ञता सिद्ध नहीं होती और न जिनवाणी सिद्ध होती है तथा द्वादशांग की रचना, शास्त्ररचना भी सिद्ध नहीं होती, क्योंकि यह सब व्यवहारनय का विषय सत्य नहीं है अर्थात् अवस्तु है।

जिस प्रकार निश्चयनय की अपेक्षा व्यवहारनय का विषय सत्य नहीं है अर्थात् अवस्तु है, उसी प्रकार व्यवहारनय की अपेक्षा निश्चय का विषय भी अवस्तु है। कहा भी है-

दव्वट्ठियवत्तव्वं अवत्थु णियमेण पज्जवणयस्स।
तह पज्जववत्थु अवत्थुमेव दव्वट्ठियणयस्स।।१०।। (सं.त.)

अर्थ – जिस प्रकार पर्यायदृष्टि वाले के अर्थात् व्यवहारनयावलम्बी के निश्चयनय अर्थात् द्रव्यार्थिकनय का कथन नियम से अवस्तु है उसी प्रकार द्रव्यार्थिकदृष्टिवाले के निश्चयनयावलम्बी के पर्यायार्थिक अर्थात् व्यवहारनय का विषयभूत पदार्थ अवस्तु है।

व्यवहार सर्वथा झूट नहीं है क्योंकि झूठ के द्वारा अज्ञानी जीवों को यथार्थ नहीं समझाया जा सकता है और न झूठ के द्वारा परमार्थ का उपदेश दिया जा सकता है। झूठ किसी को भी प्रयोजनवान नहीं हो सकता और न पूज्य हो सकता है, किन्तु आर्षग्रन्थों में कहा है कि व्यवहार के द्वारा अज्ञानी जीव संबोधे जाते हैं, परमार्थ का उपदेश दिया जाता है तथा व्यवहारनय प्रयोजनवान है और पूज्य है।

'अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।' (पु.सि.उ. श्लोक ६)।

आचार्य महाराज अज्ञानी जीवों को संबोधने के लिए व्यवहारनय का उपदेश देते हैं।

तह ववहारेण विणापरमत्थुवएसणमसक्कं।।८।। (समयसार)

अर्थात्- व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश देना अशक्य है। (इसका यह अर्थ कभी नहीं हो सकता कि 'झूठ के बिना परमार्थ का उपदेश देना अशक्य है।')

ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमेट्ठिदा भावे।।१२।। (समयसार)

अर्थात्- जो अनुत्कृष्ट अवस्था में स्थित हैं उनको व्यवहारनय का उपदेश प्रयोजनवान है।

इसलिए शुद्धनय का विषय जो शुद्धात्मा, उसकी प्राप्ति जब तक न हो तब तक व्यवहारनय प्रयाजनवान

पद्मनन्दि पञ्चविंशति के श्लोक ६०८ में **'व्यवहृतिः पूज्या'** इन शब्दों द्वारा 'व्यवहार पूज्य है', ऐसा कहा है।

इन आर्षवाक्यों के विरुद्ध 'व्यवहारनय' को झूठ, हेय, छोड़ने योग्य कैसे कहा जा सकता है। निश्चय और व्यवहार की अपेक्षा वस्तु को स्याद् नित्य, स्यादनित्य मानने वाले का ज्ञान भ्रमात्मक कैसे हो सकता है।

अनेकान्त और स्याद्वाद के द्वारा ही इस जीव का कल्याण हो सकता है। □

बहुरि तू ऐसे मानै है, जो सिद्धसमान शुद्ध आत्माका अनुभवन सो निश्चय अर व्रतशील संयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार, सो ऐसा तेरा मानना ठीक नाहीं। जातैं कोई द्रव्यभावका नाम निश्चय, कोई का नाम व्यवहार ऐसे है नाहीं। एक ही द्रव्यके भावको तिस स्वरूपही निरूपण करना, सो निश्चयनय है। उपचारकरि तिस द्रव्यके भावको अन्य द्रव्यके भावस्वरूप निरूपण करना, सो व्यवहार है। जैसे माटीके घड़े

को माटीका घड़ा निरूपिए सो निश्चय अर घृत संयोगका उपचारकरि वाको ही घृतका घड़ा कहिए सो व्यवहार। ऐसे ही अन्यत्र जानना। तातैं तू किसी को निश्चय मानै, किसीको व्यवहार मानै सो भ्रम है। बहुरि तेरे मानने विषै भी निश्चय व्यवहारकै परस्पर विरोध आया। जो तू आपको सिद्धसमान शुद्ध मानै है, तो व्रतादिक काहेको करै है। जो व्रतादिकका साधनकरि सिद्ध भया चाहै है, तो वर्तमानविषै शुद्ध आत्माका अनुभवन मिथ्या भया। ऐसे दोऊ नयनिकै परस्पर विरोध है। तातैं दोऊ नयनिका उपादेयपना बनै नाहीं।

यहाँ प्रश्न- जो समयसारादिविषै शुद्ध आत्माका अनुभवको निश्चय कह्या है, व्रत तप संयमादिकको व्यवहार कह्या है, तैसे ही हम मानै है।

ताका समाधान- शुद्ध आत्माका अनुभव साँचा मोक्षमार्ग है तातैं वाको निश्चय कह्या। इहाँ स्वभावतैं अभिन्न, परभावतैं भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना। संसारीको सिद्ध मानना ऐसा भ्रमरूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना। बहुरि व्रत तप आदि मोक्षमार्ग हैं नाहीं, निमित्तादिककी अपेक्षा उपचारतैं इनको मोक्षमार्ग कहिए है तातैं इनको व्यवहार कह्या। ऐसे भूतार्थ अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि इनको निश्चय व्यवहार कहे हैं। सो ऐसे ही मानना। बहुरि ए दोऊ ही साँचे मोक्षमार्ग हैं, इन दोऊनिको उपादेय मानना सो तो मिथ्याबुद्धि ही है। तहाँ वह कहै है-श्रद्धान तो निश्चयका राखै है अर प्रवृत्ति व्यवहार रूप राखै है ऐसे हम दोऊनिको अंगीकार करै हैं। सो ऐसे भी बनै नाहीं, जातैं निश्चयका निश्चयरूप अर व्यवहारका व्यवहार रूप श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नयका श्रद्धान भए एकान्तमिथ्यात्व हो है। बहुरि प्रवृत्तिविषै नयका प्रयोजन ही नाहीं। प्रवृत्ति तो द्रव्यकी परणति है। तहाँ जिस द्रव्यकी परणति होय, ताको तिसहीकी प्ररूपिए सो निश्चयनय अर तिसहीको अन्य द्रव्यकी प्ररूपिए सो व्यवहारनय, ऐसे अभिप्राय अनुसार प्ररूपणतैं तिस प्रवृत्तिविषै दोऊ नय बनै हैं। किछू प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नाहीं। तातैं या प्रकार भी दोऊ नयका ग्रहण मानना मिथ्या है। तो कहा करिए, सो कहिए है- निश्चयनयकरि जो निरूपण किया होय, ताको तो सत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान अंगीकार करना अर व्यवहारनयकरि जो निरूपण किया होय, ताको असत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान छोड़ना। सो ही समयसार विषै कह्या है-

> सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
> स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
> सम्यग्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पमाक्रम्य किं
> शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम्।।१११।।

- समयसार कलश बंधाधिकार १७३

याका अर्थ - जातैं सर्व ही हिंसादि वा अहिंसादिविषै अध्यवसाय हैं सो समस्त ही छोड़ना, ऐसा जिनदेवनिकरि कह्या है। तातैं मैं ऐसे मानूँ हूँ, जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुड़ाया है। सन्त पुरुष एक परम निश्चयहीको भले प्रकार निष्कम्पपनै अंगीकारकरि शुद्ध ज्ञानघनरूप निजमहिमाविषै स्थिति क्यों न करै हैं।

भावार्थ- यहाँ व्यवहारका तो त्याग कराया, तातैं निश्चयको अंगीकारकरि निजमहिमारूप प्रवर्त्तना युक्त है। बहुरि षट्पाहुड़विषै कह्या है-

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जागदे सकज्जम्मि।
जो जागदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे।।१।।

याका **अर्थ-** जो व्यवहारविषै सूता है सो जोगी अपने कार्यविषै जागै है। बहुरि जो व्यवहारविषै जागै है सो अपने कार्यविषै सूता है। तातैं व्यवहारनयका श्रद्धान छोड़ि निश्चयनयका श्रद्धान करना योग्य है। व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्यको वा तिनके भावनिको वा कारण कार्यादिकको काहूको काहूविषै मिलाय निरूपण करै है। सो ऐसे ही श्रद्धानतैं मिथ्यात्व है तातैं याका त्याग करना। बहुरि निश्चयनय तिनही को यथावत् निरूपै है, काहूको काहूविषै न मिलावै है। सो ऐसे ही श्रद्धानतैं सम्यक्त्व हो है तातैं याका श्रद्धान करना।

यहाँ **प्रश्न-** जो ऐसे है तो जिनमार्गविषै दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है सो कैसे?

ताका **समाधान-** जिनमार्गविषै कहीं तो निश्चयनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताको तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है' ऐसा जानना। बहुरि कहीं व्यवहारनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताको 'ऐसे है नाहीं, निमित्तादि अपेक्षा उपचार किया है' ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोऊ नयनिका ग्रहण है। बहुरि दोऊ नयनिके व्याख्यानको समान सत्यार्थ जानि ऐसे भी है, ऐसे भी है- ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्तनेकरि तो दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है नाहीं।

बहुरि **प्रश्न-** जो व्यवहारनय असत्यार्थ है तो ताका उपदेश जिनमार्गविषै काहेको दिया? एक निश्चयनयहीका निरूपण करना था।

ताका **समाधान-** ऐसा ही तर्क **समयसारविषै** किया है। तहाँ यह उत्तर दिया है-

जह णवि सक्कमणिज्जो अणज्जभासंविणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं।। गाथा ८ ।।

याका **अर्थ-** जैसे अनार्य जो म्लेच्छ सो ताहिको म्लेच्छभाषा बिना अर्थ ग्रहण करावनेको समर्थ न हूजे। तैसे व्यवहार बिना परमार्थका उपदेश अशक्य है। तातैं व्यवहारका उपदेश है। बहुरि इसही सूत्रकी व्याख्याविषै ऐसा कह्या है- **'व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्यः'** । याका अर्थ- यहु निश्चयके अंगीकार करावनेको व्यवहार करि उपदेश दीजिए है। बहुरि व्यवहारनय है सो अंगीकार करने योग्य नाहीं।

यहाँ **प्रश्न-** व्यवहारबिना निश्चय का उपदेश कैसे न होय। बहुरि व्यवहारनय कैसे अंगीकार न करना, सो कहो?

ताका **समाधान-** निश्चयनयकरि तो आत्मा परद्रव्यनितैं भिन्न स्वभावनितैं अभिन्न स्वयंसिद्ध वस्तु है। ताको जे न पहिचानै, तिनको ऐसे ही कह्या करिए तो वह समझै नाहीं। तब उनको व्यवहारनयकरि शरीरादिक परद्रव्यनिकी सापेक्षकरि नर नारक पृथ्वीकायादिरूप जीवके विशेष किए। तब मनुष्यजीव है,

नारकी जीव हैं, इत्यादि प्रकार लिए वाके जीवकी पहिचान भई। अथवा अभेदवस्तुविषै भेद उपजाय ज्ञान दर्शनादि गुणपर्यायरूप जीवके विशेष किए, तब जाननेवाला जीव है, देखनेवाला जीव है, इत्यादि प्रकार लिए वाके जीवकी पहिचान भई। बहुरि निश्चयकरि वीतरागभाव मोक्षमार्ग है। ताको जे न पहिचानै, तिनिकौ ऐसे ही कह्या करिए, तो वे समझै नाहीं। तब उनको व्यवहारनयकरि तत्त्वश्रद्धानज्ञानपूर्वक पर द्रव्यका निमित्त मेटनेका सापेक्षकरि व्रतशील संयमादिकरूप वीतराग भावके विशेष दिखाए, तब वाकै वीतरागभावकी पहिचान भई। याही प्रकार अन्यत्र भी व्यवहारबिना निश्चय के उपदेशका न होना जानना। बहुरि यहाँ व्यवहारकरि नर नारकादि पर्यायहीको जीव कह्या, सो पर्यायहीको जीव न मानि लेना। पर्याय तो जीव पुद्गलका संयोगरूप है। तहाँ निश्चयकरि जीवद्रव्य जुदा है, ताहीको जीव मानना। जीवका संयोगतैं शरीरादिकको भी उपचारकरि जीव कह्या, सो कहने मात्र ही है। परमार्थतैं शरीरादिक जीव होते नाहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि अभेद आत्माविषै ज्ञानदर्शनादि भेद किए, सो तिनको भेदरूप ही न मानि लेने। भेद तो समझावने के अर्थ किये हैं। निश्चयकरि आत्मा अभेद ही है, तिसहीको जीव वस्तु मानना। संज्ञा संख्यादिकरि भेद कहे, सो कहने मात्र ही हैं, परमार्थतैं जुदे-जुदे हैं नाहीं। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि परद्रव्य का निमित्त मिटने की अपेक्षा व्रतशीलसंयमादिकको मोक्षमार्ग कह्या, सो इनहीको मोक्षमार्ग न मानि लेना। जातैं परद्रव्यका ग्रहण त्याग आत्मा के होय, तो आत्मा परद्रव्य का कर्त्ता हर्त्ता होय। सो कोई द्रव्य कोई द्रव्यके आधीन है नाहीं। तातैं आत्मा अपने भाव रागादिक हैं, तिनको छोड़ि वीतरागी हो है। सो निश्चयकरि वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावनिकै अर व्रतादिकनिकै कदाचित् कार्य कारणपनो है। तातैं व्रतादिकको मोक्षमार्ग कहे, सो कहनेमात्र ही है। परमार्थतैं बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना। ऐसे ही अन्यत्र भी व्यवहारनय का अंगीकार न करना जानि लेना।

यहाँ **प्रश्न**- जो व्यवहारनय परको उपदेशविषै ही कार्यकारी है कि अपना भी प्रयोजन साधै है?

ताका **समाधान**- आप भी यावत् निश्चयनयकरि प्ररूपित वस्तुको न पहिचानै, तावत् व्यवहार मार्गकरि वस्तुका निश्चय करै। तातैं **नीचली दशाविषै आपको भी व्यवहारनय कार्यकारी है।** परन्तु व्यवहारको उपचार मात्र मानि वाके द्वारे वस्तुका ठीक (निश्चय) करै, तौ तो कार्यकारी होय। बहुरि जो निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानि वस्तु ऐसे ही है, ऐसा श्रद्धान करै तो उलटा अकार्यकारी होय जाय। सो ही **पुरुषार्थसिद्ध्युपायविषै** कह्या है-

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति।।६।।

माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य।।७।।

इनका अर्थ- मुनिराज अज्ञानीके समझावनेको असत्यार्थ जो व्यवहारनय ताको उपदेशै हैं। जो केवल व्यवहार ही को जानै है, ताको उपदेश ही देना योग्य नाहीं है। बहुरि जैसे जो साँचा सिंहको न जानै,

ताकै बिलाव ही सिंह है। तैसे जो निश्चयको न जानै, ताकै व्यवहार ही निश्चयपणाको प्राप्त हो है।

इहाँ कोई **निर्विचार पुरुष ऐसे कहै**- तुम व्यवहारको असत्यार्थ हेय कहो हो तो हम व्रत शील संयमादि व्यवहार कार्य काहेको करैं- सर्व को छोड़ि देवेंगे। **ताको कहिए है**- किछू व्रत शील संयमादिक का नाम व्यवहार नाहीं है। इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है सो छोड़ि दे। बहुरि ऐसा श्रद्धानकरि जो इनको तो बाह्य सहकारी जानि उपचारतैं मोक्षमार्ग कह्या है। ए तो परद्रव्याश्रित हैं। बहुरि सांचा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है सो स्वद्रव्याश्रित है। ऐसे व्यवहारको असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिकको छोड़नेतैं तो व्यवहारका हेयपना होता है नाहीं। बहुरि **हम पूछै हैं**- व्रतादिकको छोड़ि कहा करेगा? जो हिंसादिरूप प्रवर्त्तेगा तो तहाँ तो मोक्षमार्ग का उपचार भी सम्भवै नाहीं। तहाँ प्रवर्त्तनेतैं कहा भला होयगा, नरकादिक पावोगे। तातैं ऐसे करना तो निर्विचारपना है। बहुरि व्रतादिकरूप परिणति मेटि केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बनै तो भले ही है। सो नीचली दशाविषै होय सकै नाहीं। तातैं व्रतादिसाधन छोड़ि स्वच्छन्द होना योग्य नाहीं। या प्रकार श्रद्धानविषै निश्चयको, प्रवृत्तिविषै व्यवहारको उपादेय मानना सो भी मिथ्याभाव ही है।

बहुरि यहु जीव दोऊ नयनिका अंगीकार करनेके अर्थि कदाचित् आपको शुद्ध सिद्धसमान रागादिरहित केवलज्ञानादिसहित आत्मा अनुभवै है, ध्यानमुद्रा धारि ऐसे विचारविषै लागै है। सो ऐसा आप नाहीं परन्तु भ्रमतैं निश्चय करि मैं ऐसा ही हूँ, ऐसा मानि सन्तुष्ट हो है। कदाचित् वचनद्वारि निरूपण ऐसे ही करै हैं। सो निश्चय तो यथावत् वस्तुको प्ररूपै, प्रत्यक्ष आप जैसा नाहीं तैसा आपको मानना, सो निश्चय नाम कैसे पावै। जैसा केवल निश्चयाभासवाला जीवकै पूर्वै अयथार्थपना कह्या था, तैसे ही याकै जानना।

अथवा यह ऐसे मानै है, जो इस नयकरि आत्मा ऐसा है, इस नयकरि ऐसा है। सो आत्मा तो जैसा है तैसा ही है, तिसविषै नयकरि निरूपण करने का जो अभिप्राय है, ताको न पहिचानै है। जैसे आत्मा निश्चयकरि तो सिद्धसमान केवलज्ञानादिसहित द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्मरहित है, व्यवहारनय करि संसारी मतिज्ञानादिसहित वा द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्मसहित है- ऐसा मानै है। सो एक आत्मा के ऐसे दोय स्वरूप तो होय नाहीं। जिस भावहीका सहितपना तिस भावहीका रहितपना एकवस्तुविषै कैसे सम्भवै? तातैं ऐसा मानना भ्रम है। तो कैसे है- **जैसे राजा रंक मनुष्यपने की अपेक्षा समान है, तैसे सिद्ध संसारी जीवत्वपने की अपेक्षा समान कहे हैं** केवलज्ञानादि अपेक्षा समानता मानिए सो है नाहीं। संसारीकै निश्चयकरि मतिज्ञानादिक ही है, सिद्धकै केवलज्ञान है। इतना विशेष है- संसारीकै मतिज्ञानादिक कर्म का निमित्ततैं हैं तातैं स्वभावअपेक्षा संसारीके केवलज्ञानकी शक्ति कहिए तो दोष नाहीं। जैसे रंक मनुष्यकै राजा होने की शक्ति पाईए, तैसे यहु शक्ति जाननी। बहुरि नोकर्म द्रव्यकर्म पुद्गलकरि निपजे हैं तातैं निश्चयकरि संसारीकै भी इनका भिन्नपना है। परन्तु सिद्धवत् इनका कारण कार्य अपेक्षा सम्बन्ध भी न मानैं तो भ्रम ही है। बहुरि भावकर्म आत्माका भाव है, सो निश्चयकरि आत्माहीका है। कर्मके निमित्ततैं हो हैं, तातैं व्यवहारकरि कर्म का कहिए है। बहुरि सिद्धवत् संसारीकै भी रागादिक न मानना, कर्महीका मानना यहु भ्रम है। याही प्रकारकरि नयकरि एक ही वस्तुको एक भावअपेक्षा वैसा भी मानना, वैसा भी मानना, सो तो मिथ्याबुद्धि है। बहुरि जुदे-जुदे भावनिकी अपेक्षा नयनिकी प्ररूपणा है, ऐसे मानि यथासंभव वस्तुको मानना सो साँचा

श्रद्धान है। तातैं मिथ्यादृष्टी अनेकान्तरूप वस्तुको मानै परन्तु यथार्थ भावको पहिचानि मानि सकै नाहीं, ऐसा जानना।

बहुरि इस जीवकै व्रत शील संयमादिकका अंगीकार पाईए है, सो व्यवहारकरि 'ए भी मोक्ष के कारण हैं' ऐसा मानि तिनको उपादेय मानै है। सो जैसे केवल व्यवहारावलम्बी जीवकै पूर्वै अयथार्थपना कह्या था, तैसे ही याकै भी अयथार्थपना जानना। बहुरि यहु ऐसे भी मानै है- जो यथायोग्य व्रतादि क्रिया तो करनी योग्य है परन्तु इनविषै ममत्व न करना। सो जाका आप कर्त्ता होय, तिसविषै ममत्व कैसे न करिए। आप कर्त्ता न है, तो मुझको करनी योग्य है ऐसा भाव कैसे किया। अर जो कर्त्ता है, तो वह अपना कर्म भया, तब कर्त्ताकर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही भया। सो ऐसी मान्यता तो भ्रम है। तो कैसे है-बाह्य व्रतादिक हैं सो तो शरीरादि परद्रव्यके आश्रय हैं। परद्रव्यका आप कर्त्ता है नाहीं, तातैं तिसविषै कर्तृत्वबुद्धि भी न करनी अर तहाँ ममत्व भी न करना। बहुरि व्रतादिकविषै ग्रहण त्यागरूप अपना शुभोपयोग होय सो अपने आश्रय है। ताका आप कर्त्ता है तातैं तिस विषै कर्तृत्वबुद्धि भी माननी अर तहाँ ममत्व भी करना। बहुरि इस शुभोपयोगको बंधका ही कारण जानना, मोक्षका कारण न जानना, जातैं बंध अर मोक्षकै तो प्रतिपक्षीपना है। तातैं एक ही भाव पुण्यबंध को भी कारण होय अर मोक्षको भी कारण होय, ऐसा मानना भ्रम है। तातैं व्रत अव्रत दोऊ विकल्परहित जहाँ परद्रव्य के ग्रहण-त्यागका किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग सोई मोक्षमार्ग है। बहुरि नीचली दशाविषै केई जीवनिकै शुभोपयोग अर शुद्धोपयोगका युक्तपना पाईए है। तातैं उपचारकरि व्रतादिक शुभोपयोग को मोक्षमार्ग कह्या है। वस्तुविचारतां शुभोपयोग मोक्षका घातक ही है। जातैं बंधको कारण सोई मोक्षका घातक है, ऐसा श्रद्धान करना। बहुरि शुद्धोपयोगहीको उपादेय मानि ताका उपाय करना, शुभोपयोग अशुभोपयोग को हेय जानि तिनके त्यागका उपाय करना, जहाँ शुद्धोपयोग न होय सकै, तहाँ अशुभोपयोग को छोड़ि शुभही विषै प्रवर्त्तना। जातैं शुभोपयोगतैं अशुभोपयोगविषै अशुद्धता की अधिकता है। बहुरि शुद्धोपयोग होय, तब तो परद्रव्यका साक्षीभूत ही रहै है। तहाँ तो किछू परद्रव्य का प्रयोजन ही नाहीं। बहुरि शुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य व्रतादिककी प्रवृत्ति होय अर अशुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य अव्रतादिककी प्रवृत्ति होय। जातैं अशुद्धोपयोगकै अर परद्रव्यकी प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पाईए है। **बहुरि पहलै अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग होइ, पीछे शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग होइ। ऐसी क्रमपरिपाटी है।**

बहुरि कोई ऐसे मानै कि शुभोपयोग है सो शुद्धोपयोगको कारण है। सो जैसे अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग हो है, तैसे शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग हो है- ऐसे ही कार्यकारणपना होय तो शुभोपयोग का कारण अशुभोपयोग ठहरै। अथवा द्रव्यलिंगी के शुभोपयोग तो उत्कृष्ट हो है, शुद्धोपयोग होता ही नाहीं। तातैं परमार्थतैं इनकै कारण-कार्यपना है नाहीं। जैसे रोगी के बहुत रोग था, पीछे स्तोक रोग भया, तो वह स्तोक रोग तो निरोग होनेका कारण है नाहीं। इतना है, स्तोक रोग रहे निरोग होने का उपाय करै तो होइ जाय। बहुरि जो स्तोक रोगहीको भला जानि ताका राखने का यत्न करै तो निरोग कैसे होय। तैसे कषायीकै तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग था, पीछै मंदकषायरूप शुभोपयोग भया, तो वह शुभोपयोग तो निःकषाय

शुद्धोपयोग होनेको कारण है नाहीं। इतना है- शुभोपयोग भए शुद्धोपयोग का यत्न करै तो होय जाय। बहुरि जो शुभोपयोगही को भला जानि ताका साधन किया करै तो शुद्धोपयोग कैसे होय। तातैं मिथ्यादृष्टी का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोग को कारण है नाहीं। सम्यग्दृष्टीकै शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्त होय, ऐसा मुख्यपनाकरि कहीं शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का कारण भी कहिए है, ऐसा जानना।

बहुरि यह जीव आपको निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गका साधक मानै है। तहाँ पूर्वोक्त प्रकार आत्माको शुद्ध मान्या सो तो सम्यग्दर्शन भया। तैसे ही जान्या सो सम्यग्ज्ञान भया। तैसे ही विचारविषै प्रवर्त्या सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसे तो आपके निश्चय रत्नत्रय भया मानै। सो मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसे मानूं, जानूं, विचारू हूँ, इत्यादि विवेकरहित भ्रमतैं सन्तुष्ट हो है। बहुरि अरहंतादि बिना अन्य देवादिकको न मानै है वा जैन शास्त्र अनुसार जीवादिके भेद सीखि लिए हैं तिनहीको मानै है, औरको न मानै सो तो सम्यग्दर्शन भया। बहुरि जैनशास्त्रनिका अभ्यास विषै बहुत प्रवर्त्तै है सो सम्यग्ज्ञान भया। बहुरि व्रतादिरूप क्रियानिविषै प्रवर्त्तै है सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसे आपके व्यवहार रत्नत्रय भया मानै। सो व्यवहार तो उपचार का नाम है। सो उपचार भी तो तब बनै जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय। जैसे निश्चय रत्नत्रय सधै तैसे इनको साधै तो व्यवहारपनो भी सम्भवै। सो याकै तो सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहिचान ही भई नाहीं। यहु ऐसे कैसे साधि सकै। आज्ञा अनुसारी हुवा देख्याँदेखी साधन करै है। तातैं याकै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया। **आगे निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग का निरूपण करेंगे,** ताका साधन भए ही मोक्षमार्ग होगा।

ऐसे यहु जीव निश्चयाभासको मानै जानै है परन्तु व्यवहार साधनको भी भला जानै है, तातैं स्वच्छन्द होय अशुभरूप न प्रवर्तै है। व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्त्तै है, तातैं अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पदको पावै है। बहुरि जो निश्चयाभासकी प्रबलतातैं अशुभरूप प्रवृत्ति होय जाय तो कुगतिविषै भी गमन होय, परिणामनिके अनुसारि फल पावै है परन्तु संसारका ही भोक्ता रहै है। साँचा मोक्षमार्ग पाए बिना सिद्धपदको न पावै है। ऐसे निश्चयाभास व्यवहाराभास दोऊनिके अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण किया।

अब सम्यक्त्वके सन्मुख जे मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण कीजिए है-

सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टि का निरूपण

कोई मंदकषायादिकका कारण पाय ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम भया, तातैं तत्त्वविचार करनेकी शक्ति भई अर मोह मंद भया, तातैं तत्त्वविचारविषै उद्यम भया। बहुरि बाह्य निमित्त देव, गुरु, शास्त्रादिकका भया, तिनकरि साँचा उपदेशका लाभ भया। तहाँ अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्गका वा देवगुरुधर्मादिकका वा जीवादि तत्त्वनिका वा आपा परका वा आपको अहितकारी हितकारी भावनिका इत्यादिकका उपदेशतैं सावधान होय ऐसा विचार किया-अहो मुझको तो इन बातनिकी खबरि ही नाहीं, मैं भ्रमतैं भूलि पाया पर्याय ही विषै तन्मय भया। सो इस पर्यायकी तो थोरे ही कालकी स्थिति है। बहुरि यहाँ मोको सर्व निमित्त मिले हैं। तातैं मोको इन बातनिका ठीक करना। जातैं इनविषैं तो मेरा ही प्रयोजन भासै

है। ऐसे विचारि जो उपदेश सुन्या ताका निर्द्धार करनेका उद्यम किया। तहाँ उद्देश, लक्षणनिर्देश, परीक्षा द्वारकरि तिनका निर्द्धार होय। तातैं पहले तो तिनके नाम सीखै सो उद्देश भया। बहुरि तिनके लक्षण जानै। बहुरि ऐसे सम्भवै है कि नाहीं, ऐसा विचार लिए परीक्षा करने लगै। तहाँ नाम सीखिलेना अर लक्षण जानि लेना ये दोऊ तो उपदेशके अनुसार हो हैं। जैसे उपदेश दिया तैसे याद करि लेना। बहुरि परीक्षा करनेविषै अपना विवेक चाहिए है। सो विवेककरि एकान्त अपने उपयोगविषै विचारै, जैसे उपदेश दिया तैसे ही है कि अन्यथा है। तहाँ अनुमानादि प्रमाणकरि ठीक करै वा उपदेश तो ऐसे है अर ऐसे न मानिए तो ऐसे होय। सो इनविषै प्रबल युक्ति कौन है अर निर्बल युक्ति कौन है। जो प्रबल भासै, ताको साँचा जानै। बहुरि जो उपदेशतैं अन्यथा साँच भासै वा सन्देह रहै, निर्द्धार न होय तो बहुरि विशेष ज्ञानी होय तिनको पूछै। बहुरि वह उत्तर दे, ताको विचारै। ऐसे ही यावत् निर्द्धार न होय, तावत् प्रश्न उत्तर करै। अथवा समानबुद्धिके धारक होय, तिनको अपना विचार जैसा भया होय तैसा कहै। प्रश्न उत्तरकरि परस्पर चर्चा करै। बहुरि जो प्रश्नोत्तरविषै निरूपण भया होय, ताको एकान्तविषै विचारै। याही प्रकार अपने अन्तरंगविषै जैसे उपदेश दिया था, तैसे ही निर्णय होय भाव न भासै, तावत् ऐसे ही उद्यम किया करै। बहुरि अन्यमतीनिकरि कल्पित तत्त्वनिका उपदेश दिया है, ताकरि जैन उपदेश अन्यथा भासै वा सन्देह होय तो भी पूर्वोक्त प्रकारकरि उद्यम करै। ऐसे उद्यम किए जैसे जिनदेव का उपदेश है तैसे ही साँच है, मुझको भी ऐसे ही भासै है, ऐसा निर्णय होय। जातैं जिनदेव अन्यथावादी हैं नाहीं।

यहाँ **कोऊ कहै**- जिनदेव जो अन्यथावादी नाहीं हैं तो जैसे उनका उपदेश है तैसे श्रद्धान करि लीजिए, परीक्षा काहेको कीजिए?

ताका **समाधान**- परीक्षा किए बिना यहु तो मानना होय, जो जिनदेव ऐसे कह्या है सो सत्य है परन्तु उनका भाव आपको भासै नाहीं। बहुरि भाव भासे बिना निर्मल श्रद्धान न होय। जाकी काहू का वचन ही करि प्रतीति करिए, ताकी अन्यका वचनकरि अन्यथा भी प्रतीति होय जाय, तातैं शक्तिअपेक्षा वचनकरि कीन्हीं प्रतीति अप्रतीतिवत् है। बहुरि जाका भाव भास्या होय, ताको अनेक प्रकारकरि भी अन्यथा न मानै। तातैं भाव भासे प्रतीति होय सोई सांची प्रतीति है। बहुरि जो कहोगे, पुरुषप्रमाणतैं वचनप्रमाण कीजिए है, तो पुरुषकी भी प्रमाणता स्वयमेव तो न होय। वाकै केई वचननिकी परीक्षा पहले करि लीजिए, तब पुरुषकी प्रमाणता होय।

यहाँ **प्रश्न**- उपदेश तो अनेक प्रकार, किस-किसकी परीक्षा करिए?

ताका **समाधान**- उपदेशविषै केई उपादेय केई हेय केई ज्ञेय तत्त्व निरूपिए हैं। तहाँ उपादेय हेय तत्त्वनिकी तो परीक्षा करि लेना। जातैं इन विषै अन्यथापनो भए अपना बुरा हो है। उपादेयको हेय मानि लै तो बुरा होय, हेयको उपादेय मानि लै तो बुरा होय।

बहुरि जो कहैगा- आप परीक्षा न करी अर जिनवचनहीतैं उपादेयको उपादेय जानै, हेयको हेय जानै तो यामें कैसे बुरा होय?

ताका समाधान- अर्थका भाव भासे बिना वचनका अभिप्राय न पहिचानै। यहु तो मानि ले जो मैं जिनवचन अनुसारि मानूं हूँ परन्तु भाव भासे बिना अन्यथापनो होय जाय। लोकविषै भी किंकर को किसी कार्यको भेजिए सो यह उस कार्यका भाव जानै तो कार्यको सुधारै, जो भाव न भासै तो कहीं चूकि हो जाय। तातैं भाव भासने के अर्थि हेय उपादेय तत्त्वनिकी परीक्षा अवश्य करनी।

बहुरि **वह कहै है-** जो परीक्षा अन्यथा होय जाय तो कहा करिए?

ताका समाधान- जिन वचन अर अपनी परीक्षा इनकी समानता होय, तब तो जानिए सत्य परीक्षा भई। यावत् ऐसे न होय तावत् जैसे कोई लेखा करै है, ताकी विधि न मिलै तावत् अपनी चूकको ढूंढै। तैसे यह अपनी परीक्षा विषै विचार किया करै। बहुरि जो ज्ञेयतत्त्व हैं, तिनकी परीक्षा होय सकै तो परीक्षा करै। नाहीं यह अनुमान करै, जो हेय उपादेय तत्त्व ही अन्यथा न कहै तो ज्ञेयतत्त्व अन्यथा किस अर्थि कहै। जैसे कोऊ प्रयोजनरूप कार्यनिविषै झूठ न बोलै सो अप्रयोजन झूठ काहेको बोलै। तातैं ज्ञेयतत्त्वनिका परीक्षा कर भी वा आज्ञाकरि स्वरूप जानै है। तिनका यथार्थ भाव न भासै तो भी दोष नाहीं। याहीतैं जैनशास्त्रनिविषै तत्त्वादिकका निरूपण किया, तहाॅ तो हेतु युक्ति आदिकरि जैसे याकै अनुमानादिकरि प्रतीति आवै, तैसे कथन किया। बहुरि त्रिलोक, गुणस्थान, मार्गणा, पुराणादिकका कथन आज्ञा अनुसारि किया। तातैं हेयोपादेय तत्त्वनिकी परीक्षा करनी योग्य है। तहाँ जीवादिक द्रव्य वा तत्त्व तिनको पहचानना। बहुरि तहाँ आपा पर को पहचानना। बहुरि त्यागने योग्य मिथ्यात्व रागादिक अर ग्रहणे योग्य सम्यग्दर्शनादिक तिनका स्वरूप पहिचानना। बहुरि निमित्त नैमित्तिकादिक जैसे हैं, तैसे पहिचानना। इत्यादि मोक्षमार्गविषै जिनके जानै प्रवृत्ति होय, तिनको अवश्य जानने। सो इनकी तो परीक्षा करनी। सामान्यपने किसी हेतु युक्ति करि इनको जानने वा प्रमाण नयकरि जानने वा निर्देश स्वामित्वादिकरि वा सत् संख्यादि करि इनका विशेष जानना। जैसी बुद्धि होय जैसा निमित्त बनै तैसे इनको सामान्य विशेषरूप पहचानने। बहुरि इस जाननेका उपकारी गुणस्थान, मार्गणादिक वा पुराणादिक वा व्रतादिक क्रियादिकका भी जानना योग्य है। यहाँ परीक्षा होय सकै तिनकी परीक्षा करनी, न होय सकै ताका आज्ञा अनुसारि जानपना करना।

ऐसे इस जानने के अर्थ कबहूँ आपही विचार करै है, कबहूँ शास्त्र बाँचै है, कबहूँ सुनै है, कबहूँ अभ्यास करै है, कबहूँ प्रश्नोत्तर करै है इत्यादि रूप प्रवर्त्तै है। अपना कार्य करनेका जाकै हर्ष बहुत है, तातैं अंतरंग प्रीतितैं ताका साधन करै। या प्रकार साधन करता **यावत् सांचा तत्त्वश्रद्धान न होय,'यहु ऐसे ही है' ऐसी प्रतीति लिए जीवादि तत्त्वनिका स्वरूप आपको न भासै, जैसे पर्याय विषै अहंबुद्धि है तैसे केवल आत्मविषै अहंबुद्धि न आवै, हित अहितरूप अपने भावनिको न पहिचानै, तावत् सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टी है।** यह जीव थोरे ही कालमें सम्यक्तको प्राप्त होगा। इस ही भव में वा अन्य पर्यायविषै सम्यक्तको पावेगा। इस भव में अभ्यासकरि परलोकविषै तिर्यंचादि गतिविषै भी जाय तो तहाँ संस्कार के बलतैं देव गुरु शास्त्रका निमित्त बिना भी सम्यक्त होय जाय। जातैं ऐसे अभ्यासके बलतैं मिथ्यात्वकर्म का अनुभाग हीन हो है। जहाँ वाका उदय न होय, तहाँ ही सम्यक्त होय जाय। मूलकारण यहु ही है। देवादिकका तो बाह्य निमित्त है सो मुख्यताकरि तो इनके निमित्तहीतैं सम्यक्त हो है। तारतम्यतैं पूर्व अभ्यास

संस्कारतैं वर्तमान इनका निमित्त न होय तो भी सम्यक्त होय सकै है। सिद्धान्तविषै ऐसा सूत्र है- **"तन्निसर्गादधिगमाद्वा"** (तत्त्वा. सू. १,३)

याका **अर्थ**- यहु सो सम्यग्दर्शन निसर्ग वा अधिगमतैं हो है। तहाँ देवादिक बाह्य निमित्त बिना होय, सो निसर्गतैं भया कहिए। देवादिकका निमित्ततैं होय सो अधिगमतैं भया कहिए। देखो तत्त्वविचारकी महिमा, तत्त्वविचाररहित देवादिककी प्रतीति करै, बहुत शास्त्र अभ्यासै, व्रतादिक पालै, तपश्चरणादि करै, ताकै तो सम्यक्त होनेका अधिकार नाहीं। अर तत्त्वविचारवाला इन बिना भी सम्यक्त का अधिकारी हो है। बहुरि कोई जीवकै तत्त्वविचारके होने पहले किसी कारण पाय देवादिककी प्रतीति होय वा व्रत तपका अंगीकार होय, पीछै तत्त्वविचार करै। परन्तु सम्यक्तका अधिकारी तत्त्वविचार भए ही हो है।

बहुरि काहूकै तत्त्वविचार भए पीछै तत्त्वप्रतीति न होनेतैं सम्यक्त तो न भया अर व्यवहार धर्मकी प्रतीति रुचि होय गई, तातैं देवादिक की प्रतीति करै है वा व्रत तपको अंगीकार करै है। काहूकै देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त युगपत् होय अर व्रत तप सम्यक्तकी साथ भी होय अर पहलै पीछै भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तो नियम है। इस बिना सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाहीं। घने जीव तो पहलै सम्यक्त होय पीछै ही व्रतादिकको धारै हैं। काहूकै युगपत् भी होय जाय है। ऐसे यह तत्त्वविचारवाला जीव सम्यक्तका अधिकारी है परन्तु याकै सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम नाहीं। जातैं शास्त्रविषै सम्यक्त होनेतैं पहलै पंच लब्धिका होना कह्या है-

पंच लब्धियों का स्वरूप

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण। तहाँ जिसको होते संते तत्त्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम होय। उदयकालको प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकनिके निषेकनिका उदयका अभाव सो क्षय अर अनागतकालविषै उदय आवने योग्य तिनही का सत्तारूप रहना सो उपशम, ऐसी देशघाती स्पर्द्धकनिका उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम **क्षयोपशम** है। ताकी प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि है।

विशेष- क्षयोपशम लब्धि में ज्ञानावरणादि कर्म के क्षयोपशम की ही बात नहीं, अपितु अशुभ अघाति कर्मों की भी अनुभाग शक्ति की प्रतिसमय अनन्तगुणहानि (वेदन में) आवश्यक होती है और अघाति कर्म क्षयोपशम से असम्बद्ध हैं। क्षयोपशम की बात तो मात्र घातिया कर्मों में ही होती है। कहा भी है- "क्षयोपश लब्धि में यथासम्भव घाती और अघाती सभी अप्रशस्त कर्मों सम्बन्धी अनुभाग शक्ति प्रतिसमय अनन्तगुणहानि (उदय में) होना विवक्षित है।" **(ल.सा.पृ. ४ पं. फूलचन्द जी सि.शा., विशेषार्थ)**

दूसरी बात यहाँ देशघाती सर्वघाती के उदयानुदय से सम्बद्ध क्षयोपशम को क्षयोपशम लब्धि **कहा सो ठीक नहीं है। यह तो पंच भावों में से क्षायोपशमिक भाव है। जहाँ कहीं क्षायोपशमिक भाव को क्षयोपशम लब्धि भी कदाचित् कह दिया है यदि, तो वह क्षायोपशमिक भाव अर्थ में ही**

अभिहित/अभिप्रेत हुआ है। पर यहाँ पर तो प्रथम सम्यक्त्व की हेतुभूत पंच लब्धियों में से आद्य क्षयोपशम नामक लब्धि का प्रकरण है। क्षयोपशम लब्धि में तो १४८ कर्मों में से पाप कर्म मात्र के अनुभाग का निरन्तर अनन्त गुणा हीन होकर उदीरित होना क्षयोपशम लब्धि रूप से विवक्षित है। **लब्धिसार गा. ४ व मुख्तारीय टीका में** (पृ. ५ पर) लिखा है-

कम्ममलपडलसत्ती पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा।
होदूणुदीरदि जदा तदा खओवसम लद्धी दु।।४।।

अर्थ- प्रतिसमय क्रम से अनन्तगुणीहीन होकर कर्ममल पटल शक्ति की जब उदीरणा होती है तब क्षयोपशम लब्धि होती है।

विशेषार्थ- पूर्व संचित कर्मों के मलरूप पटल के अर्थात्-अप्रशस्त (पाप) कर्मों के अनुभाग स्पर्धक जिस समय विशुद्धि के द्वारा प्रतिसमय अनन्त गुणे हीन हुए उदीरणा को प्राप्त होते हैं, उस समय क्षयोपशम लब्धि होती है। **धवल ६/२०४** में भी लिखा है- "पुव्वसंचिदकम्ममलपडलस्स अणुभागफद्दयाणि जदा विसोहीए पडिसमयमणंतगुणहीणाणि होदूणुदीरिज्जंति तदा खओवसमलद्धी होदि।" अर्थ वही है जो लब्धिसार गाथा ४ का ऊपर किया है। क्षयोपशम लब्धि के काल में प्रथम समय में जितना पाप कर्मानुभाग उदित हुआ उससे दूसरे समय में अनन्तगुणाहीन अनुभाग उदय होगा। दूसरे समय के उदित अनुभाग से तीसरे समय में अनन्तगुणा हीन उदित अनुभाग होगा। इसी तरह आगे के समयों में कहना चाहिए। यही क्षयोपशम लब्धि है।

अन्य ग्रन्थों में भी ऐसा का ऐसा कथन है, जैसा कि **धवल पु. ६/२०४** का कथन ऊपर लिखा है-

(१) अनगार धर्मामृत स्वोपज्ञ टीका २/४६-४७/१४७ भारतीय ज्ञानपीठ

(२) अमित. पंच सं. १/२८७

(३) श्रीपालसुत डड्ढ विरचित पंचसंग्रह १/२१६ तथा प्रा. पं. सं. पृ. ६७१

(४) जयधवला १२/२०१

(५) जयधवला १२/प्रस्ता. पृ. १८

(६) तत्त्वार्थसूत्र पृ. २०६ अनु. पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य, में पं. फूलचन्द्र जी का लिखित प्रकरण।

अतः क्षयोपशमलब्धि का लक्षण धवल, पंचसंग्रह, लब्धिसार आदि के अनुसार ही समझना चाहिए।

बहुरि मोहका मंद उदय आवनेतैं मंदकषाय रूप भाव होय जहाँ तत्त्वविचार होय सकै सो **विशुद्धिलब्धि** है। बहुरि जिनदेवका उपदेश्या तत्त्वका धारण होय, विचार होय सो **देशनालब्धि** है। जहाँ नरकादिविषै उपदेशका निमित्त न होय, तहाँ पूर्वसंस्कारतैं होय। बहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता (घटकरि) अंतः कोटाकोटी सागर प्रमाण रहि जाय अर नवीन बंध अंतःकोटाकोटी प्रमाण ताके संख्यातवें भाग मात्र होय, सो भी तिस लब्धि-कालतैं लगाय क्रमतैं घटता होय, केतीक पापप्रकृतिनिका बंध क्रमतैं मिटता जाय, इत्यादि योग्य अवस्थाका होना सो **प्रायोग्यलब्धि** है। सो ए च्यारों लब्धि भव्य या अभव्यकै होय हैं। इन च्यार लब्धि भए पीछै सम्यक्त होय तो होय, न होय तो नाहीं भी होय। ऐसे 'लब्धिसार' विषै कह्या है[1]। तातैं तिस तत्त्व विचारवालाकै सम्यक्त्व होने का नियम नाहीं। जैसे काहूको हितकी शिक्षा दई, ताको वह जानि विचार करै, यह सीख दई सो कैसे है? पीछै विचारतां वाकै ऐसे ही है, ऐसी उस सीखि की प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषै लागि तिस सीखका निर्द्धार न करै, तो प्रतीति नाहीं भी होय। तैसे श्रीगुरु तत्त्वोपदेश दिया, ताको जानि विचार करै, यहु उपदेश दिया सो कैसे है। पीछै विचार करनेतैं वाकै 'ऐसे ही है' ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषै लागि जिस उपदेशका निर्द्धार न करै तो प्रतीति नाहीं भी होय सो मूल कारण मिथ्यात्व कर्म है, याका उदय मिटै तो प्रतीति होई जाय, न मिटै तो नाहीं होय, ऐसा नियम है। याका उद्यम तो तत्त्वविचार करने मात्र ही है।

बहुरि **पाँचवीं करणलब्धि** भए सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम है। सो जाकै पूर्वै कही थी च्यारि लब्धि ते तो भई होय अर अंतर्मुहूर्त पीछै जाकै सम्यक्त होना होय, तिसही जीवकै करणलब्धि हो है। सो इस करणलब्धिवालाकै बुद्धिपूर्वक तो इतनाही उद्यम हो है-तिस तत्त्वविचारविषै उपयोग तद्रूप होय लगावै, ताकरि समय-समय परिणाम निर्मल होते जांय हैं। जैसे काहूकै सीखका विचार ऐसा निर्मल होने लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताकी प्रतीति होय जासी। तैसे तत्त्वउपदेश का विचार ऐसा निर्मल होने लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताका श्रद्धान होसी। बहुरि इन परिणामनिका तारतम्य केवलज्ञानकरि देख्या, ताका निरूपण करणानुयोगविषै किया है। सो इस करणलब्धिके तीन भेद हैं-अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। इनका विशेष व्याख्यान तो लब्धिसार शास्त्रविषै किया है, तिसतैं जानना। यहाँ संक्षेपसों कहिए है-

त्रिकालवर्ती सर्व करणलब्धिवाले जीव तिनके परिणामनिकी अपेक्षा ए तीन नाम हैं। तहाँ करण नाम तो परिणामका है। बहुरि जहाँ पहले पिछले समयनिके परिणाम समान होय सो **अधःकरण** है[2]। जैसे कोई जीवका परिणाम तिस करणके पहिले समय स्तोक विशुद्धता लिए भया, पीछै समय-समय अनंतगुणी विशुद्धताकरि बधते भए। बहुरि वाकै जैसे द्वितीय तृतीयादि समयनिविषै परिणाम होय, तैसे केई अन्य जीवनिकै प्रथम समयविषै ही होय। ताकै तिसतें समय-समय अनन्तगुणी विशुद्धताकरि बधते होय। ऐसे अधःप्रवृत्तिकरण जानना।

---

१. लब्धि. ३ । २. लब्धि. ३५ ।

बहुरि जिसविषै पहले पिछले समयनिके परिणाम समान न होय, अपूर्व ही होय, सो **अपूर्वकरण** है। जैसे तिस करणके परिणाम जैसे पहले समय होय तैसे कोई ही जीवकै द्वितीयादि समयनिविषै न होय, बधते ही होय। बहुरि इहाँ अधःकरणवत् जिन जीवनिकै करणका पहला समय ही होय, तिनि अनेक जीवनिकै परस्पर परिणाम समान भी होय अर अधिक हीन विशुद्धता लिए भी होय। परन्तु यहाँ इतना विशेष भया, जो इसकी उत्कृष्टतातैं भी द्वितीयादि समयवालेका जघन्य परिणाम भी अनन्तगुणी विशुद्धता लिए ही होय। ऐसे ही जिनको करण माँडे द्वितीयादि समय भया होय, तिनकै तिस समयवालों कै तो परस्पर परिणाम समान वा असमान होय परन्तु ऊपरले समयवालोंकै तिस समय समान सर्वथा न होय, अपूर्व ही होय। ऐसे अपूर्वकरण[1] जानना।

बहुरि जिस विषै समान समयवर्ती जीवनिकै परिणाम समान ही होय, निवृत्ति कहिए परस्पर भेद ताकरि रहित होय। जैसे तिस करणका पहला समयविषै सर्व जीवनिका परिणाम परस्पर समान ही होय, ऐसे ही द्वितीयादि समयनिविषै समानता परस्पर जाननी। बहुरि प्रथमादि समयवालोंतैं द्वितीयादि समयवालोंकै अनन्तगुणी विशुद्धता लिए होय। ऐसे **अनिवृत्तिकरण**[2] जानना।

ऐसे ए तीन करण जानने। तहाँ पहले अंतर्मुहूर्त कालपर्यन्त अधःकरण होय। तहाँ च्यारि आवश्यक हो हैं। समय समय अनन्तगुणी विशुद्धता होय, बहुरि एक अंतर्मुहूर्त करि नवीन बंधकी स्थिति घटती होय सो स्थितिबंधापसरण होय, बहुरि समय-समय प्रशस्त प्रकृतिनिका अनन्तगुणा अनुभाग बंधै, बहुरि समय-समय अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागबंध अनन्तवें भाग होय; ऐसे च्यारि आवश्यक होय-तहाँ पीछै अपूर्वकरण होय। ताका काल अधःकरणके काल के संख्यातवें भाग है। ताविषै ए आवश्यक और होय। एक एक अन्तर्मुहूर्तकरि सत्ताभूत पूर्वकर्मकी स्थिति थी, ताको घटावै सो स्थितिकाण्डकघात होय। बहुरि तिसतैं स्तोक एक एक अन्तर्मुहूर्तकरि पूर्वकर्मका अनुभागको घटावै सो अनुभाग कांडकघात होय। बहुरि गुणश्रेणिका कालविषै क्रमतैं असंख्यातगुणा प्रमाण लिए कर्म निर्जरने योग्य करिए सो गुणश्रेणीनिर्जरा होय। बहुरि गुणसंक्रमण यहाँ नाहीं हो है। अन्यत्र अपूर्वकरण हो है, तहाँ हो है। ऐसे अपूर्वकरण भए पीछै अनिवृत्तिकरण होय। ताका काल अपूर्वकरणके भी संख्यातवें भाग है। तिसविषै पूर्वोक्त आवश्यकसहित केता

समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु ।
जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्तं।। लब्धि. ३६।।
तम्हा विदिय करण अपुव्वकरणेत्ति णिद्दिट्ठं ।। लब्धि. ५१।।
करणं परिणामो अपुव्वाणि च ताणि करणाणि च अपुव्वकरणाणि, असमाणपरिणामा त्ति ज उत्तं होदि।
— धवला १-९-८-४

एगसमए वट्टंताणं जीवाणं परिणामेहि ण विज्जदे णियट्टी णिव्वित्ती जत्थ ते अणियट्टीपरिणामा। धवला १-९-८-४।
एक्कम्हि कालसमये संठाणादीहिं जह णियट्टंति ।
ण णियट्टंति तहा विय परिणामेहिं मिहोजेहिं ।। गो.जी. ५६।।

काल गए पीछै अन्तरकरण[1] करै है। अनिवृत्तिकरण के काल पीछै उदय आवने योग्य ऐसे मिथ्यात्वकर्मके मुहूर्तमात्र निषेक तिनिका अभाव करै है, तिन परमाणुनिको अन्य स्थितिरूप परिणमावै है। बहुरि अन्तरकरण किये पीछै उपशमकरण करै है।

विशेष : इस प्रकार है-

किमंतरकरणं णाम? विवक्खियकम्माणं हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अंतोमुहुत्तमेत्तीणं ट्ठिदीणं परिणामविसेसेण णिसेगाणमभावीकरणमंतरकरणमिदि भण्णदे। (ज.ध. १२/२७२ भगवद् वीरसेन स्वामी)

अर्थ- अन्तरकरण किसे कहते हैं? **उत्तर**- विवक्षित कर्मों की अधस्तन और उपरिम स्थितियों को छोड़कर मध्य की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितियों के निषेकों का परिणाम विशेष के कारण अभाव करने को अन्तरकरण कहते हैं (यही बात **जयधवल १२/२७४** चरम पंक्ति एवं **पृ. २७५, पहली-दूसरी पंक्ति** तथा **धवल ६/२३१, ज. ध. अ. प्र. पृष्ठ ९५३, क. पा. सु. पृ. ६२६. टिप्पण, क. पा. सु. पृष्ठ ७५२ टिप्पण** में लिखी है।)

लब्धिसार ८६ संस्कृत टीका में भी कहा है- **"तदुपर्यन्तर्मुहूर्तमात्रोऽन्तरायामः।"**

अर्थ- ताकै उपरि जिनि निषैकनिका अभाव किया सो अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तरायाम है।

नोट- लब्धिसार २४३ की हिन्दी टीका में भी अन्तरायाम अन्तर्मुहूर्त बताया गया है।

इस प्रकार इन उक्त सकल सिद्धान्तशास्त्रों व टीकाओं के अनुसार अन्तर्मुहूर्त ही अन्तरायाम होता है। अतः "मुहूर्त मात्र निषैकनिका अभाव करै है" इस स्थल की जगह "अन्तर्मुहूर्त मात्र निषैकनिका अभाव करै है," ऐसा चाहिए।

यदि **कोई कहे** कि मुहूर्त व अन्तर्मुहूर्त में खास फर्क नहीं पड़ता है, लगभग समान हैं; अतः अन्तर्मुहूर्त की जगह सामीप्यार्थक मुहूर्त लिखदें तो क्या आपत्ति है? तो इसका **उत्तर** यह है कि यहाँ समीपता कथमपि नहीं है। मुहूर्त (४८ मिनट) के अन्तरकरण काल का अन्तर्मुहूर्त से सामीप्य (लगभग समानता) भी नहीं है, जिससे कि उपचार से भी अन्तर्मुहूर्त को मुहूर्त कहदें। क्योंकि यहाँ अन्तरायाम (अन्तर्मुहूर्त) से संख्यातगुणी जो जघन्य आबाधा है वह भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है।

१. किमन्तरकरणं णाम ? विवक्खियकम्माणं हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अन्तोमुहुत्तमेत्ताणं ट्ठिदीणं परिणामविसेसेण णिसेगाणमभावीकरणमन्तरकरणमिदि भण्णदे ।। — जय ध.अ.प.. ९५३
अर्थ - अन्तरकरण का क्या स्वरूप है? **उत्तर** - विवक्षित कर्मों की अधस्तन और उपरिम स्थितियों को छोड़कर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थितियों के निषेकों का परिणाम विशेष के द्वारा अभाव करने को अन्तरकरण कहते हैं।

(जयधवला १२/२९१-९२) किन्च, प्रथमस्थिति तथा अन्तरायाम को मिलाकर कुछ अधिक करने पर जो आता है वह भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है। (यथा-प्रथमस्थिति+अन्तरायाम+कुछ काल = अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बध्यमान मिथ्यात्व की अन्तरकरणकालीन आबाधा। **ल. सा. पृ. ६८ प्रथम अनुच्छेद पं. फूलचन्द्र जी सि. शा.**)

यहाँ प्रथम स्थिति भी नियम से संख्यात अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। (देखें ज. ध. १२/२८६) यानी अन्तरायाम के अन्तर्मुहूर्त में संख्यात अन्तर्मुहूर्तों को मिलाने पर भी प्रकृत में मुहूर्त नहीं बनता। यह कथनाभिप्राय है।

इस प्रकार मोक्षमार्गप्रकाशक में इस स्थल पर मुहूर्त की जगह अन्तर्मुहूर्त ही चाहिए, ऐसा निर्विवाद उपादेय है। किंच, स्वयं पं. टोडरमलजी ने ही अन्यत्र ४ स्थानों पर अन्तर्मुहूर्त मात्र निषेकों का अभाव करना कहा है, मुहूर्तमात्र निषेकों का नहीं । यथा-

(१)... ऐसा अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तरायाम है। इतने निषेकनिका अभाव करै है। (**ल. सा. पृ. २९९ जैन सि. प्र. संस्था, कलकत्ता**)

(२).... अन्तरायाम हो है। एते निषेकनि का अभाव करिए है, सो ए भी अन्तर्मुहूर्त मात्र हैं (ल. सा. ८६ की सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका, पृ. ६७, राजचन्द्रशास्त्रमाला)

(३) जिनि निषेकनिका अभाव किया सो अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तरायाम है। (वही पृष्ठ)

(४) ल. सा. ९५ की सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका से भी यही स्पष्ट होता है।

अन्तरकरणकरि अभावरूप किए निषेकनिके ऊपरि जो मिथ्यात्वके निषेक तिनको उदय आवनेको अयोग्य करै है। इत्यादिक क्रियाकरि अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयके अनन्तर जिन निषेकनिका अभाव किया था, तिनका उदयकाल आया तब निषेकनि बिना उदय कौनका आवै। तातैं मिथ्यात्वका उदय न होनेतैं प्रथमोपशम सम्यक्त की प्राप्ति हो है। अनादिमिथ्यादृष्टीकै सम्यक्तमोहनीय, मिश्रमोहनीय की सत्ता नाहीं है। तातैं एक मिथ्यात्वकर्महीको उपशमाय उपशमसम्यग्दृष्टी होय है। बहुरि कोई जीव सम्यक्त पाय पीछै भ्रष्ट हो है, ताकी भी दशा अनादिमिथ्यादृष्टीकी सी होय जाय है।

यहाँ प्रश्न- जो परीक्षाकरि तत्त्वश्रद्धान किया था, ताका अभाव कैसे होय?

ताका **समाधान**- जैसे किसी पुरुषको शिक्षा दई, ताकी परीक्षा करि वाकै ऐसे ही है ऐसी प्रतीति भी आई थी, पीछै अन्यथा कोई प्रकारकरि विचार भया, तातैं उस शिक्षाविषै सन्देह भया। ऐसे है कि ऐसे है, अथवा 'न जानों कैसे है', अथवा तिस शिक्षाको झूठ जानि तिसतैं विपरीति भई, तब वाकै प्रतीति न भई, तब वाकै तिस शिक्षा की प्रतीतिका अभाव होय। अथवा पूर्वै तो अन्यथा प्रतीति थी ही, बीचिमें शिक्षा

का विचारतैं यथार्थ प्रतीति भई थी बहुरि तिस शिक्षाका विचार किए बहुत काल होय गया तब ताको भूलि जैसे पूर्वै अन्यथा प्रतीति थी तैसे ही स्वयमेव होय गई तब तिस शिक्षा की प्रतीतिका अभाव होय जाय। अथवा यथार्थ प्रतीति पहले तो कीन्हीं, पीछै न तो किछु अन्यथा विचार किया, न बहुत काल भया परन्तु तैसा ही कर्म उदयतैं होनहार के अनुसारि स्वयमेव ही तिस प्रतीति का अभाव होय अन्यथापना भया। ऐसे अनेक प्रकार तिस शिक्षा की यथार्थ प्रतीतिका अभाव हो है। तैसे जीवकै जिनदेव का तत्त्वादिरूप उपदेश भया, ताकी परीक्षाकरि वाकै 'ऐसे ही है' ऐसा श्रद्धान भया, पीछै पूर्वै जैसे कहे तैसे अनेक प्रकार तिस पदार्थश्रद्धान का अभाव हो है। सो यहु कथन स्थूलपने दिखाया है। तारतम्यकरि केवलज्ञानविषै भासै है-इस समय श्रद्धान है कि इस समय नाहीं है। जातैं यहाँ मूल कारण मिथ्यात्वकर्म है। ताका उदय होय, तब तो अन्य विचारादि कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक्श्रद्धानका अभाव हो है। बहुरि ताका उदय न होय, तब अन्य कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक् श्रद्धान होय जाय है। सो ऐसी अन्तरंग समय-समय सम्बन्धी सूक्ष्मदशाका जानना छद्मस्थकै होता नाहीं।[1] तातैं अपनी मिथ्या सम्यक्श्रद्धानरूप अवस्थाका तारतम्य याको निश्चय हो सकै नाहीं, केवलज्ञानविषै भासै है। तिस अपेक्षा गुणस्थाननिकी पलटनि शास्त्रविषै कही है। या प्रकार जो सम्यक्ततैं भ्रष्ट होय सो सादि मिथ्यादृष्टी कहिए। ताकै भी बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति विषै पूर्वोक्त पाँच लब्धि हो हैं। **विशेष इतना**-यहाँ कोई जीवकै दर्शन मोहकी तीन प्रकृतिनिकी सत्ता हो है सो तीनोंको उपशमाय प्रथमोपशमसम्यक्ती हो है। अथवा काहूकै सम्यक्तमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है, सो क्षयोपशमसम्यक्ती हो है। याकै गुणश्रेणी आदि क्रिया न हो है वा अनिवृत्तिकरण न हो है। बहुरि काहूकै मिश्रमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है, सो मिश्रगुणस्थानको प्राप्त हो है। याकै करण न हो है। ऐसे सादि मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्व छूटै दशा हो है। क्षायिकसम्यक्तको वेदकसम्यग्दृष्टीही पावै है तातैं ताका कथन यहाँ न किया है। ऐसे सादि मिथ्यादृष्टीका जघन्य तो मध्यम अन्तर्मुहूर्तमात्र उत्कृष्ट किंचित्ऊन अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तन मात्र काल जानना। देखो परिणामनिकी विचित्रता, कोई जीव तो ग्यारहवें गुणस्थान यथाख्यातचारित्र पाय बहुरि मिथ्यादृष्टी होय किंचित् ऊन अर्द्ध पुद्गल परिवर्त्तन कालपर्यंत संसार में रुलै अर कोई नित्यनिगोदमेंसों निकसि मनुष्य होय मिथ्यात्व छूटै पीछै अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान पावै। ऐसे जानि अपने परिणाम बिगरनेका भय राखना अर तिनके सुधारने का उपाय करना।

बहुरि इस सादिमिथ्यादृष्टीकै थोरे काल मिथ्यात्वका उदय रहै तो बाह्य जैनीपना नाहीं नष्ट हो है वा तत्त्वनिका अश्रद्धान व्यक्त न हो है वा बिना विचार किए ही वा स्तोक विचारहीतैं बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति होय जाय है। बहुरि बहुत काल मिथ्यात्वका उदय रहै तो जैसी अनादि मिथ्यादृष्टीकी दशा तैसी याकी

१. इतना विशेष है कि यद्यपि अर्थपर्यायें छद्मस्थ की दृष्टि का विषय नहीं होतीं। (जैनगजट १७-१-६६) तथापि अवधिज्ञानी तथा मनःपर्ययज्ञानी आत्माएँ अर्थपर्यायों को जानती हैं (भूयः सूक्ष्मार्थपर्यायविषयान्मनःपर्ययोवधेः अर्थात् अवधि से भी मनःपर्यय अधिक अर्थपर्यायें जानता है।)

– श्लोकवार्तिक अ. १ सूत्र २५ की टीका, भाग ४ पृ. ३६ कुन्थुसागर ग्रन्थमाला

भी दशा हो है। गृहीत मिथ्यात्वको भी ग्रहै है। निगोदादिविषै भी रुलै है। याका किछू प्रमाण नाहीं।

बहुरि कोई जीव सम्यक्ततैं भ्रष्ट होय सासादन हो है। सो तहाँ जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल रहै है, सो याका परिणामकी दशा वचनकरि कहने में आवती नाहीं। सूक्ष्मकालमात्र कोई जाति के केवलज्ञानगम्य परिणाम हो है। तहाँ अनंतानुबंधीका तो उदय हो है, मिथ्यात्वका उदय न हो है। सो आगम प्रमाणतैं याका स्वरूप जानना।

बहुरि कोई जीव सम्यक्त भ्रष्ट होय, मिश्रगुणस्थान को प्राप्त हो है। तहाँ मिश्रमोहनीयका उदय हो है। याका काल मध्यम अन्तर्मुहूर्त मात्र है। सो याका भी काल थोरा है, सो याकै भी परिणाम केवलज्ञानगम्य हैं। यहाँ इतना भासै है-जैसे काहूको सीख दई तिसको वह किछू सत्य किछू असत्य एकै काल मानै तैसे तत्त्वनिका श्रद्धान अश्रद्धान एकै काल होय सो मिश्रदशा है। केई कहै हैं-हमको तो जिनदेव वा अन्य देव सर्व ही वंदने योग्य हैं, इत्यादि मिश्र श्रद्धान को मिश्रगुणस्थान कहै हैं, सो नाहीं। यहु तो प्रत्यक्ष मिथ्यात्वदशा है। व्यवहाररूप देवादिका श्रद्धान भए भी मिथ्यात्व रहै है, तो याकै तो देव कुदेव को किछू ठीक ही नाहीं। याकै तो यहु विनयमिथ्यात्व प्रगट है, ऐसा जानना।

विशेष- सम्यग्मिथ्यात्व के विषय में सकलतत्त्वों के पारदर्शी केवली के समान नैसर्गिकी प्रज्ञा के धारक १०८ **वीरसेन स्वामी** लिखते हैं-- "समीचीन और असमीचीन रूप दोनों श्रद्धाओं का क्रम से एक आत्मा में रहना सम्भव है तो कभी किसी आत्मा में एक साथ भी उन दोनों का रहना बन सकता है। यह सब कथन काल्पनिक नहीं है क्योंकि पूर्व स्वीकृत अन्य देवता के अपरित्याग के साथ-साथ अर्हन्त भी देव हैं ऐसें अभिप्राय वाला पुरुष पाया जाता है" (यही सम्यग्मिथ्यादृष्टि है।) **धवल १/१६८**

अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती गो. जी. म. प्र. टीका २२ में लिखते हैं कि- "जैसे किसी के अपने मित्र के प्रति तो मित्रता है तथा चैत्र नामक व्यक्ति से शत्रुता है। इस प्रकार उस जीव के एक काल में उसके हृदय में मित्रता व शत्रुता के भाव युगपत् रहते हैं। तथैव किसी पुरुष के अर्हन्त आदि में श्रद्धान की अपेक्षा सम्यक्त्व है तथा अनाप्त आदि में श्रद्धान की अपेक्षा मिथ्यात्व है। ये दोनों भाव विषयभेद होने से एक ही पुरुष में एक काल में सम्भव होते हैं, इस कारण सम्यग्मिथ्यादृष्टित्व अविरुद्ध है।

उक्तगाथा की टीका में ही **केशव वर्णी तथा नेमिचन्द्र** एक स्वर से लिखते हैं कि पूर्व गृहीत अतत्त्व श्रद्धान के त्यागे बिना उसके साथ तत्त्वश्रद्धान भी होता है (सम्यग्मिथ्यादृष्टि के)। **पं. सं. प्रा. १/१०** में कुछ भी विशेष कथन नहीं है।

सोमदेव अपने **उपासकाध्ययन** (४/१४४/पृ. ३६ **ज्ञानपीठ प्रकाशन**) में लिखते हैं कि

कुदेव को देव मानना, अव्रत को व्रत मानना तथा अतत्त्व को तत्त्व मानना, मिथ्यात्व है। यदि कोई इनका सर्वथा त्याग नहीं करता (और सम्यक्त्व के साथ-साथ किसी मूढ़ता का भी पालन करता है) तो उसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि मानना चाहिए। क्योंकि मिथ्यात्व-सेवन के कारण उसके धर्माचरण का भी लोप कर देना ठीक नहीं, अर्थात् उसे मिथ्यादृष्टि ही मानना ठीक नहीं, बल्कि मिश्र. मानना चाहिए।

श्रीमद् राजचन्द्र (पृ. ८१२) लिखते हैं-उन्मार्ग को मोक्षमार्ग माने और मोक्षमार्ग को उन्मार्ग माने वह मिथ्यात्वी है। उन्मार्ण से मोक्ष नहीं होता, इसलिए मार्ग दूसरा होना चाहिए; ऐसा जो भाव वह मिश्रमोहनीय है। आत्मा यह होगी? ऐसा ज्ञान होना सम्यक्त्व मोहनीय है। आत्मा यह है; ऐसा निश्चय भाव सम्यक्त्व है। **प्रथम संस्करण/द्वितीय खण्ड पृ. ८१२**

उपर्युक्त समस्त कथनों का सार यह है कि तत्त्वश्रद्धान तथा अतत्त्वश्रद्धान युगपत् होने के साथ-साथ भी यदि सम्यग्मिथ्यात्व नामक दर्शनमोह कर्म का उदय हो तो उस श्रद्धानाश्रद्धान के मिश्रित भाव को सम्यग्मिथ्यात्व परिणाम कहते हैं। इस परिणाम को केवल सम्यक्त्व रूप से तथा केवल मिथ्यात्व रूप से व्यवस्थापित करना शक्य नहीं है। इस काल में इस जीव के किंचित् अनाप्त श्रद्धान का लव (अंश) अवश्य रहता है (अन्यथा अतत्त्व श्रद्धान का अंश भी जीवित नहीं रहे)। कदाचित् यह कहा जाए कि उसके अतत्त्वश्रद्धान तो, "यह जिनाज्ञा ही है;" ऐसा ज्ञानपूर्वक, ज्ञान मात्र की कमी के कारण ही होता है। तो उत्तर यह है कि ऐसा अतत्त्व श्रद्धान तो सम्यक्त्वी के भी होता है (**गो. जी. २७**) तथा इस सम्यग्मिथ्यात्वी के ऐसा भाव त्रिकाल भी नहीं होता कि "सब देवता तथा सब दर्शन एक समान हैं" क्योंकि यह तो विनय मिथ्यात्व है। (**स. सि. ८/१/पृ.२८४; रा. वा. ८/१/२८, त. सा. ५/८, त. वृत्ति८/१, आदि**) सम्यग्मिथ्यात्वी कुदेव की वंदना भी नहीं करता, क्योंकि वह तो मिथ्यात्व है (**द. पा. २२ तथा भावसंग्रह देवसेन ७३-७५**) इन सबके वर्जन के बाद; जो जैसा अनाप्त के प्रति श्रद्धानांश, यथाजिनदृष्ट रहता है उसे स्वीकार करना चाहिए। उसके साथ आप्त व तत्त्वों के प्रति श्रद्धान के मिश्रण से वह सम्यग्मिथ्यात्वी होता है। यह सम्यग्मिथ्यात्वी नियम से ऐसा जीव ही बन सकता है जिसने पहले सम्यग्दर्शन पाया हो, यह शर्त भी उक्त तथ्यों में ध्यान रखनी चाहिए।

ऐसे सम्यक्त के सन्मुख मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया। प्रसंग पाय अन्य भी कथन किया है। या प्रकार जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका स्वरूप निरूपण किया। यहाँ नाना प्रकार मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया है ताका प्रयोजन यह जानना- जो इन प्रकारनिको पहिचानि आपविषै ऐसा दोष होय तो ताको दूरिकरि सम्यक्श्रद्धानी होना। औरनि हीके ऐसे दोष देखि देखि कषायी न होना। जातैं अपना भला-बुरा तो अपने परिणामनितैं है। औरनिकों तो रुचिवान देखिए, तो किछू उपदेश देय वाका भी भला कीजिये। तातैं अपने परिणाम सुधारने का उपाय करना योग्य है। जातैं संसार का मूल मिथ्यात्व है। **मिथ्यात्व समान अन्य पाप**

नाहीं है। एक मिथ्यात्व अर ताके साथ अनन्तानुबंधीका अभाव भए इकतालीस प्रकृतिनिका तो बंध ही मिटि जाय। स्थिति अन्तःकोटाकोटी सागर की रहि जाय। अनुभाग थोरा ही रहि जाय। शीघ्र ही मोक्षपदको पावै। बहुरि मिथ्यात्वका सद्भाव रहे अन्य अनेक उपाय किए भी मोक्षमार्ग न होय। तातैं जिस तिस उपायकरि सर्व प्रकार मिथ्यात्वका नाश करना योग्य है।

इति मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रविषै जैनमतवाले
मिथ्यादृष्टीनिका निरूपण जामैं भया ऐसा
सातवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया।।७।।

卐 卐 卐

ॐ

卐 आठवाँ अधिकार 卐

उपदेश का स्वरूप

अथ मिथ्यादृष्टी जीवनिको मोक्षमार्ग का उपदेश देय तिनका उपकार करना यहु ही उत्तम उपकार है। तीर्थंकर गणधरादिक भी ऐसा ही उपकार करै है। तातैं इस शास्त्रविषै भी तिनहीका उपदेशके अनुसारि उपदेश दीजिए है। तहाँ उपदेशका स्वरूप जानने के अर्थि किछू व्याख्यान कीजिए है। जातैं उपदेशको यथावत् न पहिचानै तो अन्यथा मानि विपरीत प्रवर्त्तै तातैं उपदेशका स्वरूप कहिए है-

जिनमतविषै उपदेश च्यारि अनुयोगकरि दिया है। सो प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ए च्यारि अनुयोग हैं। तहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महान् पुरुषनिके चरित्र जिसविषै निरूपण किया होय, सो **प्रथमानुयोग** है।[1] बहुरि गुणस्थान मार्गणादिकरूप जीवका वा कर्मनिका वा त्रिलोकादिकका जाविषै निरूपण होय, सो **करणानुयोग** है।[2] बहुरि गृहस्थ मुनिके धर्म आचरण करनेका जाविषै निरूपण होय, सो **चरणानुयोग** है।[3] बहुरि षट् द्रव्य सप्ततत्त्वादिकका वा स्वपरभेद विज्ञानादिकका जाविषै निरूपण होय, सो **द्रव्यानुयोग** है।[4] अब इनका प्रयोजन कहिये है-

प्रथमानुयोग का प्रयोजन

प्रथमानुयोगविषै तो संसारकी विचित्रता, पुण्य-पापका फल, महंतपुरुषनिकी प्रवृत्ति इत्यादि निरूपणकरि जीवनिको धर्मविषै लगाईए हैं। जे जीव तुच्छबुद्धि होय, ते भी तिसकरि धर्म सन्मुख हो है, जातैं वे जीव सूक्ष्मनिरूपणको पहिचानै नाहीं। लौकिक वार्तानिको जानै तहाँ तिनका उपयोग लागै बहुरि लोकविषै तो राजादिककी कथानिविषै पापका पोषण हो है। तहाँ महंत पुरुष राजादिक तिनकी कथा तो है परन्तु प्रयोजन जहाँ तहाँ पापको छुड़ाय धर्मविषै लगावनेका प्रगट करै हैं। तातैं ते जीव कथानिके लालचकरि तो तिसको बांचै, सुनै, पीछै पापको बुरा, धर्मको भला जानि धर्मविषै रुचिवंत हो हैं। ऐसे तुच्छ बुद्धीनिके समझावनेको यहु अनुयोग है। 'प्रथम' कहिए 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टी' तिनके अर्थि जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोमट्टसारकी टीकाविषै[5] किया है। बहुरि जिन जीवनिके तत्त्वज्ञान भया होय, पीछै इस प्रथमानुयोगको

१. रत्नक. २, २ । २. रत्नक. २, ३ । ३. रत्नक. २, ४ । ४. रत्नक. २, ५ ।

५. प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकारः प्रथमानुयोगः, जी.प्र.टी. गा. ३६१-२ ।

बांचै सुनै, तो तिनको यहु तिसका उदाहरणरूप भासै है। जैसै जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक संयोगी पदार्थ हैं, ऐसे यहु जानै था। बहुरि पुराणनिविषै जीवनिके भवांतर निरूपण किए, ते तिस जानने के उदाहरण भए। बहुरि शुभ अशुभ शुद्धोपयोगको जानै था वा तिनके फलको जानै था। बहुरि पुराणनिविषै तिन उपयोगनिकी प्रवृत्ति अर तिनका फल जीवनिकै भया, सो निरूपण किया। सो ही तिस जाननेका उदाहरण भया। ऐसे ही अन्य जानना। यहाँ उदाहरण का अर्थ यहु जो जैसे जानै था तैसे ही तहाँ कोई जीवकै अवस्था भई तातैं यह तिस जानने की साखि भई।बहुरि जैसे कोई सुभट है, सो सुभटनिकी प्रशंसा अर कायरनिकी निन्दा जाविषै होय, ऐसी कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेकरि सुभटपनाविषै अति उत्साहवान हो है। तैसै धर्मात्मा है, सो धर्मात्मानिकी प्रशंसा अर पापीनिकी निन्दा जाविषै होय, ऐसे कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेकरि धर्मविषै अति उत्साहवान हो है। ऐसे यहु प्रथमानुयोग का प्रयोजन जानना।

करणानुयोग का प्रयोजन

बहुरि करणानुयोगविषै जीवनिकी वा कर्मनिका विशेष वा त्रिलोकादिककी रचना निरूपणकरि जीवनिको धर्मविषै लगाईए हैं। जे जीव धर्मविषै उपयोग लगाया चाहै, ते जीवनिका गुणस्थान मार्गणा आदि विशेष अर कर्मनिका कारण अवस्था फल कौन-कौन के कैसे-कैसे पाइए, इत्यादि विशेष अर त्रिलोकविषै नरक स्वर्गादिकके ठिकाने पहिचानि पापतैं विमुख होय धर्मविषै लागै हैं। बहुरि ऐसे विचारविषै उपयोग रमि जाय, तब पाप प्रवृत्ति छूटि स्वयमेव तत्काल धर्म उपजै है। तिस अभ्यासकरि तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति शीघ्र हो है। बहुरि ऐसा सूक्ष्म यथार्थ कथन जिनमतविषै ही है, अन्यत्र नाहीं, ऐसे महिमा जानि जिनमतका श्रद्धानी हो है। बहुरि जे जीव तत्त्वज्ञानी होय इस करणानुयोगको अभ्यासै हैं, तिनको यहु तिसका विशेषरूप भासै है।जो जीवादिक तत्त्व आप जानै है, तिनहीका विशेष करणानुयोगविषै किए हैं। तहाँ केई विशेषण तो यथावत् निश्चयरूप हैं, केई उपचार लिए व्यवहाररूप हैं। केई द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका स्वरूप प्रमाणादिरूप हैं,केई निमित्त आश्रयादि अपेक्षा लिए हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके विशेषण किए हैं, तिनको जैसाका तैसा मानना तिस करणानुयोगको अभ्यासै हैं। इस अभ्यासतैं तत्त्वज्ञान निर्मल हो है। जैसे कोऊ यहु तो जानै था यहु रत्न है परन्तु उस रत्न के घने विशेष जाने निर्मल रत्नका पारखी होय, तैसे तत्त्वनिको जानै था ए जीवादिक हैं परन्तु तिन तत्त्वनिके घने विशेष जानै तो निर्मल तत्त्वज्ञान होय। तत्त्वज्ञान निर्मल भए आप ही विशेष धर्मात्मा हो है। बहुरि अन्य ठिकाने उपयोगको लगाईए तो रागादिककी वृद्धि होय अर छद्मस्थका एकाग्र निरन्तर उपयोग रहे नाहीं। तातैं ज्ञानी इस करणानुयोगका अभ्यासविषै उपयोगको लगावै है। तिसकरि केवलज्ञानकरि देखे पदार्थनिका जानपना याकै हो है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षहीका भेद है, भासनेविषै विरुद्ध है नाहीं।ऐसे यहु करणानुयोगका प्रयोजन जानना। 'करण' कहिए गणित कार्यको कारण सूत्र तिनका जाविषै 'अनुयोग' अधिकार होय, सो करणानुयोग है। इस विषै गणित वर्णनकी मुख्यता है, ऐसा जानना।

विशेष – त्रिलोकसार गाथा १-३ की टीका में **"केवलज्ञानसमानं करणानुयोगनामानं परमागमं..."** इन शब्दों द्वारा करणानुयोग को केवलज्ञान समान कहा । लोक-अलोक के विभाग

को, युगों के परिवर्तन को तथा चारों गतियों को दर्पण के समान प्रकट करने वाला करणानुयोग है। (र.क.श्रा. ४४, अन.ध. ३/१०)

करणानुयोग में सूक्ष्मतम कर्मसिद्धान्त तथा लोकविभाग, कालप्ररूपण, तीर्थंकरों का अन्तराल, सकल रचना आदि प्ररूपित होती हैं। इस अनुयोग को जानने से बुद्धि अतिशय सूक्ष्मज्ञ हो जाती है तथा तत्त्वज्ञान निर्मल हो जाता है।

चरणानुयोगका प्रयोजन

अब चरणानुयोगका प्रयोजन कहिए है। चरणानुयोगविषै नाना प्रकार धर्मके साधन निरूपणकरि जीवनिको धर्मविषै लगाईए है। जे जीव हित-अहितको जानै नाहीं, हिंसादिक पाप कार्यनिविषै तत्पर होय रहे हैं, तिनको जैसे पापकार्यनिको छोड़ि धर्मकार्यनिविषै लागै तैसे उपदेश दिया, ताको जानि धर्म आचरण करनेको सन्मुख भए, ते जीव गृहस्थधर्म वा मुनिधर्म का विधान सुनि आपतैं जैसा सधै तैसा धर्म-साधनविषै लागै हैं। ऐसे साधनतैं कषाय मंद हो है। ताके फलतैं इतना तो हो है, जो कुगतिविषैं दुःख न पावै अर सुगतिविषै सुख पावै। बहुरि ऐसे साधनतैं जिनमत का निमित बन्या रहै, तहाँ तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनी होय तो होय जावै। बहुरि जे जीव तत्त्वज्ञानी होयकरि चरणानुयोगको अभ्यासै हैं, तिनको ए सर्व आचरण अपने वीतरागभावके अनुसारी भासै हैं। एकदेश वा सर्वदेश वीतरागता भए ऐसी श्रावकदशा ऐसी मुनिदशा हो है। जातैं इनकै निमित्त-नैमित्तकपनो पाईए है। ऐसे जानि श्रावक मुनिधर्मके विशेष पहिचानि जैसा अपना वीतरागभाव भया होय, तैसा अपने योग्य धर्मको साधै है। तहाँ जेता अंशां वीतरागता हो है, ताको कार्यकारीजानै है। जेता अंशां राग रहै है, ताको हेय जानै है। सम्पूर्ण वीतरागताको परमधर्म मानै है। ऐसे चरणानुयोगका प्रयोजन है।

द्रव्यानुयोगका प्रयोजन

अब द्रव्यानुयोगका प्रयोजन कहिये है। द्रव्यानुयोगविषै द्रव्यनिका वा तत्त्वनिका निरूपण करि जीवनिको धर्मविषै लगाईए है। जे जीव जीवादिक द्रव्यनिको वा तत्त्वनिको पहिचानै नाहीं, आपा परको भिन्न जानै नाहीं, तिनको हेतु दृष्टांत युक्तिकरि वा प्रमाण-नयादिककरि तिनका स्वरूप ऐसे दिखाया जैसे याकै प्रतीति होय जाय। ताके अभ्यासतैं अनादि अज्ञानता दूरि होय, अन्यमत कल्पित तत्त्वादिक झूठ भासै, तब जिनमतकी प्रतीति होय।अर उनके भावको पहिचाननेका अभ्यास राखै तो शीघ्र ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होय जाय। बहुरि जिनकै तत्त्वज्ञान भया होय, ते जीव द्रव्यानुयोगको अभ्यासै। तिनको अपने श्रद्धान के अनुसारि सो सर्व कथन प्रतिभासै है। जैसे काहूने किसी विद्याको सीखि लई परन्तु जो ताका अभ्यास किया करै तो वह यादि रहै, न करै तो भूलि जाय। तैसे याकै तत्त्वज्ञान भया रहै, न करै तो भूलि जाय। अथवा संक्षेपपने तत्त्वज्ञान भया था, सो नाना युक्ति हेतु दृष्टांतादिककरि स्पष्ट होय जाय तो तिसविषै शिथिलता न होय सकै। बहुरि इस अभ्यासतैं रागादि घटनेतैं शीघ्र मोक्ष सधै। ऐसे द्रव्यानुयोग का प्रयोजन जानना।

अब इन अनुयोगनिविषै किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिए है-

प्रथमानुयोग में व्याख्यान का विधान

प्रथमानुयोगविषै जे मूलकथा हैं, ते तो जैसी की तैसी ही निरूपिये हैं।अर तिनिविषै प्रसंग पाय व्याख्यान हो है सो कोई तो जैसा का तैसा हो है, कोई ग्रंथकर्त्ताका विचार के अनुसारि हो है परन्तु प्रयोजन अन्यथा न हो है।

ताका **उदाहरण**-जैसे तीर्थंकर देवनिके कल्याणकनिविषै इन्द्र आया, यहु कथा तो सत्य है। बहुरि इन्द्र स्तुति करी, ताका व्याख्यान किया, सो इन्द्र तो और ही प्रकार स्तुति कीनी थी अर यहाँ ग्रन्थकर्त्ता और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया।बहुरि परस्पर किनिहूकै वचनालाप भया। तहाँ उनके तो और प्रकार अक्षर निकसे थे, यहाँ ग्रन्थकर्त्ता अन्य प्रकार कहे परन्तु प्रयोजन एक ही दिखावै है। बहुरि नगर वन संग्रामादिकका नामादिक तो यथावत् ही लिखै अर वर्णन हीनाधिक भी प्रयोजनको पोषता निरूपै हैं। इत्यादि ऐसे ही जानना। बहुरि प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्त्ता अपना विचार अनुसारि कहै। जैसे धर्मपरीक्षाविषै मूर्खनिकी कथा लिखी, सो ए ही कथा मनोवेग कही थी ऐसा नियम नाहीं। परन्तु मूर्खपनाको पोषती कोई वार्त्ता कही ऐसा अभिप्राय पोषै है। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

यहाँ **कोऊ कहै**- अयथार्थ कहना तो जैन शास्त्रनिविषै सम्भवै नाहीं?

ताका **उत्तर**-अन्यथा तो वाका नाम है, जो प्रयोजन और का और प्रगट करै। जैसे काहूको कह्या-तू ऐसे कहियो, वानै वे ही अक्षर तो न कहे परन्तु तिसही प्रयोजन लिए कह्या तो वाको मिथ्यावादी न कहिए, तैसे जानना। जो जैसा का तैसा लिखनेकी सम्प्रदाय होय तो काहूने बहुत प्रकार वैराग्य चिंतवन किया था, ताका वर्णन सब लिखे ग्रन्थ बधि जाय, किछू न लिखे तो वाका भाव भासै नाहीं। तातैं वैराग्यके ठिकाने थोरा बहुत अपना विचार के अनुसारि वैराग्यपोषता ही कथन करै, सराग-पोषता न करै, तहाँ प्रयोजन अन्यथा न भया तातैं याको अयथार्थ न कहिए, ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि प्रथमानुयोगविषै जाकी मुख्यता होय, ताको ही पोषै हैं। जैसे काहूने उपवास किया, ताका तो फल स्तोक था बहुरि वाकै अन्यधर्म परिणतिकी विशेषता भई, तातैं विशेष उच्चपदकी प्राप्ति भई। तहाँ तिसको उपवासहीका फल निरूपण करै, ऐसे ही अन्य जानने। बहुरि जैसे काहूने शीलादिककी प्रतिज्ञा दृढ़ राखी वा नमस्कार मन्त्र स्मरण किया वा अन्य धर्म साधन किया, ताकै कष्ट दूरि भए, अतिशय प्रगट भये, तहाँ तिनही का तैसा फल न भया अर अन्य कोई कर्म के उदयतैं वैसे कार्य भए तो भी तिनको तिस शीलादिकका ही फल निरूपण करै। ऐसे ही कोई पापकार्य किया, ताकै तिसहीका तो तैसा फल न भया अर अन्य कर्म उदयतैं नीचगतिको प्राप्त भया वा कष्टादिक भए, ताको तिसही पापकार्य का फल निरूपण करै। इत्यादि ऐसे ही जानना।

यहाँ **कोऊ कहै**- ऐसा झूठा फल दिखावना तो योग्य नाहीं, ऐसे कथनको प्रमाण कैसे कीजिए?

ताका समाधान- जे अज्ञानी जीव बहुत फल दिखाए बिना धर्म विषै न लागै वा पापतैं न डरैं, तिनका भला करने के अर्थि ऐसा वर्णन करिए है। बहुरि झूठ तो तब होय, जब धर्म का फल को पापका फल बतावै, पापका फलको धर्मका फल बतावै। सो तो है नाहीं। जैसे दश पुरुष मिलि कोई कार्य करै, तहाँ उपचारकरि एक पुरुष का भी किया कहिए तो दोष नाहीं अथवा जाके पितादिकने कोई कार्य किया होय, ताको एक जाति अपेक्षा उपचारकरि पुत्रादिकका किया कहिए तो दोष नाहीं। तैसे बहुत शुभ वा अशुभकार्यनिका एक फल भया; ताको उपचारकरि एक शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तो दोष नाहीं अथवा और शुभ वा अशुभकार्यका, फल जो भया होय, ताको एक जाति अपेक्षा उपचारकरि कोई और ही शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तो दोष नाहीं। उपदेशविषै कहीं व्यवहार वर्णन है, कहीं निश्चय वर्णन है। यहाँ उपचाररूप व्यवहार वर्णन किया है, ऐसे याको प्रमाण कीजिए है। याको तारतम्य न मानि लेना। तारतम्य करणानुयोगविषै निरूपण किया है, सो जानना।

बहुरि प्रथमानुयोगविषै उपचाररूप कोई धर्मका अंग भए सम्पूर्ण धर्म भया कहिए है। जैसे जिन जीवनिकै शंका कांक्षादिक न भए, तिन कै सम्यक्त भया कहिए। सो एक कोई कार्यविषै शंका कांक्षा न किए ही तो सम्यक्त न होय, सम्यक्त तो तत्वश्रद्धान भए हो है। परन्तु निश्चय सम्यक्तका तो व्यवहार सम्यक्त विषै उपचार किया, बहुरि व्यवहार सम्यक्त के कोई एक अंगविषै सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्त का उपचार किया, ऐसे उपचारकरि सम्यक्त भया कहिए है। बहुरि कोई जैनशास्त्रका एक अंग जाने सम्यग्ज्ञान भया कहिए है, सो संशयादिरहित तत्त्वज्ञान भए सम्यग्ज्ञान होय परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि कहिए। बहुरि कोई भला आचरण भए सम्यक्चारित्र भया कहिए है। तहाँ जाने जैनधर्म अंगीकार किया होय वा कोई छोटी-मोटी प्रतिज्ञा ग्रही होय,ताको श्रावक कहिए सो श्रावक तो पंचमगुणस्थानवर्ती भए हो है परन्तु पूर्ववत् उपचार करि याको श्रावक कह्या है।उत्तरपुराणविषै श्रेणिकको श्रावकोत्तम कह्या सो वह तो असंयत था परन्तु जैनी था तातैं कह्या। ऐसे ही अन्यत्र जानना। बहुरि जो सम्यक्तरहित मुनिलिंग धारै वा कोई द्रव्याँ भी अतीचार लगावता होय, ताको मुनि कहिए। सो मुनि तो षष्ठादि गुणस्थानवर्ती भए हो है परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि मुनि कह्या है। **समवसरणसभाविषै मुनिनिकी संख्या कही, तहाँ सर्व ही शुद्ध भावलिंगी मुनि न थे परन्तु मुनिलिंग धारनेतैं सबनिको मुनि कहे।** ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि प्रथमानुयोगविषै कोई धर्मबुद्धितैं अनुचित कार्य करै ताकी भी प्रशंसा करिये है। जैसे **विष्णुकुमार मुनिनिका उपसर्ग दूरि किया सो धर्मानुरागतैं किया परन्तु मुनिपद छोड़ि यहु कार्य करना योग्य न था।**[1] जातैं ऐसा कार्य तो गृहस्थधर्मविषै सम्भवै अर गृहस्थ धर्मतैं मुनिधर्म ऊँचा है। सो ऊँचा धर्म छोड़ि नीचाधर्म अंगीकार किया सो अयोग्य है परन्तु वात्सल्य अंग की प्रधानताकरि विष्णुकुमार जी की

१. भस्मकव्याधिग्रस्त समन्तभद्र स्वामी ने गुरु की आज्ञावश (क्योंकि उनसे महान् धर्म-प्रभावना होने वाली थी) अधस्तन पद अंगीकार किया था। वे समन्तभद्र आगे तीर्थंकर होने वाले हैं। {समीचीनधर्मशास्त्र प्रस्ता. पृ.१०} इसी तरह सात सौ मुनिराजों की रक्षार्थ वात्सल्य भाव से प्रेरित होकर कुछ क्षणों के लिए स्वपद को छोड़ने वाले विष्णुकुमार महामुनि थे। ये तो इसी भव से मोक्ष को भी प्राप्त हुए थे {प्रश्नोत्तर श्रावकाचार ६/७०}

परमश्रद्धास्पद पं. टोडरमलजी ने यहाँ जो कुछ कहा है उसका मात्र इतना ही अभिप्राय समझना है कि इन विष्णुकुमार महामुनि के आचरण का अन्यथा अर्थ लगाकर कोई पूज्य पुरुष ऊँचा धर्म छोड़कर नीचा धर्म अंगीकार नहीं करे। जैसे कोई सत्पुरुष श्रेष्ठ पद धारण कर चन्दा-चिट्ठा करना, स्वयं रसीदें काटना आदि जैसा गृहस्थ पद का आचरण करे तो यह अनुचित है, चाहे वह कार्य अतिशयक्षेत्र-निर्वाणक्षेत्र के लिए भी क्यों नहीं किया जाता हो। इसी तरह अन्य अकरणीय आचरण के विषय में जानना चाहिए। मात्र ऐसी ही धारणा मन में रखकर उन्होंने तथ्य रूप से अन्त में लिखा है कि **"इस छल करि औरनिको ऊँचा धर्म छोड़ि नीचा धर्म अंगीकार करना योग्य नाहीं।"**

१०८ पूज्य विष्णुकुमार मुनिराज ने जो कार्य किया वह तो अपरिहार्य परिस्थितिवश {समन्तभद्रवत्} ही किया था। १०८ सागरचन्द्राचार्य ने अपने अवधिज्ञान से जान कर स्पष्ट कहा था कि इस उपसर्ग को मात्र विक्रियाऋद्धिधारी विष्णुकुमार मुनि ही दूर कर सकते हैं **{प्रश्नो.श्रा.६/४६ तथा आराधनाकथाकोश १२/६५ स एव निवारयति तमुपसर्गकम्}** अन्य कोई भी इस उपसर्ग को दूर करने में समर्थ नहीं है **{षट् प्राभृत पृ. ६६ सम्पा. सौभाग्यमल रांवका, जयपुर}** इसके बाद भी सागरचन्द्र के वचनों को सुनकर क्षु. पुष्पदन्त की सूचना के पश्चात् वे विष्णुकुमार राजा पद्म से ही कहते हैं कि "राजन्! इस उपसर्ग को दूर करो।" जब राजा भी कहता है कि मैं कुछ नहीं कर सकता, इस समय तो मैं भी पराधीन हूँ और इस उपसर्ग को आप ही दूर कर सकते हैं। **{षट्प्राभृत पृ. ६६ तथा आ. कथाकोश १२/७३}** तभी जाकर तद्भव मोक्षगामी १०८ विष्णुकुमार ने जैसा अपनी बुद्धि से उचित समझा उस विधि से उस उपसर्गको दूर किया। जिससे ७०१ दिगम्बर यतियों की रक्षा हुई, चारों मन्त्री जैन श्रावक बन गए **{आराधना. १२/८८}** साथ ही उस समय मनुष्य व देव लोक में जैन धर्म की महती प्रभावना भी हुई थी **{जिसे हरिवंश पुराण** २०/५१-६५ पृ.३८६-३६० से जाननी चाहिए} क्या विष्णुकुमार जैसी प्रभावना कोई गृहस्थ कर सकता था? कदापि नहीं, यह प्रभावना तो उन्हीं के द्वारा सम्भव थी, अन्यथा दिव्यज्ञानी (अवधिज्ञानी) गुरु अन्य किसी प्रभावी गृहस्थ के द्वारा यह कार्य सम्पन्न होना जानते तो क्षु. पुष्पदन्त को उस ऐसे प्रभावशाली गृहस्थ का नाम ही बता देते।

हरिवंश पुराण {२०/६४} में विष्णुकुमार के इस चरित्र {आचरण} को सर्वथा पापों का नाश करने वाला बताया है। **आराधनाकथाकोश** १२/८५ में विष्णुकुमार को उपसर्ग निवारण करने वाला **"विशिष्टधी"** कहा है तथा उनकी स्तुति की है (१२/६१) **आचार्य सकलकीर्ति** ने अपने **प्रश्नोत्तर श्रावकाचार** {६/६४} में उन्हें धन्यवाद के पात्र कहा है। और संसार-सागर से पार करने हेतु जहाज के समान {६/७०} बताया है। फिर उनके प्रति उपालम्भ (कुछ भी शिकायत) समुचित नहीं है। अरे! वे तो अन्तर्मुहूर्त में पुनः यथाविधि स्वपद में आ गये थे। तथैव गुरु से प्रायश्चित्त तप लेकर श्रेष्ठतप करके केवलज्ञान को प्राप्त हो गए थे। किन्च विष्णुकुमार उस विवक्षित अन्तर्मुहूर्त में वामन रूप धारण करते समय भी ऋद्धिसम्पन्न संयतासंयत **{धवल ४/४४-४५}** तथा अखण्ड ब्रह्मचारी तो थे ही।

सारतः, परिस्थितिवश की गई क्रिया को नियम नहीं मान लेना चाहिए। तथैव परिस्थितिवश घटित आचरण-क्रिया की मजाक भी नहीं करनी चाहिए। भैया! परिस्थितिवश संजायमान क्रिया तो परिस्थिति विशेष में ही घटाने -आचरित करने योग्य होती है। परिस्थितिवश तो मुनिराज स्वयं अन्य क्षपक मुनिराजों के लिए आहार तक लाते हैं **{भगवती आराधना प्रस्ता. पृ. ३५ पं. कैलाशचन्द्र सि. शा. मूल.पृ ४४३}** इत्यादि अन्य भी परिस्थितिजन्य क्रियाएँ होती हैं। उन्हें सामान्य दिनों में अनाचरणीय मात्र जानकर परिस्थिति विशेष में भी उनका घटित होना हास्यास्पद या उपालम्भ योग्य नहीं मानना चाहिए।

अन्त में, इस स्थल पर हमें इतना मात्र ही इस कथन का अभिप्राय हृदयंगत करना चाहिए कि महातपस्वी, विक्रियर्द्धिसम्पन्न, तद्भव मोक्षगामी, सन्मार्गप्रभावक १०८ विष्णुकुमार मुनिराज का उक्त आचरण हमें शिथिलाचार, हीनाचार या अधस्तनाचार के पोषण के लिए उदाहरण के रूप में नहीं लगाना चाहिए। विष्णुकुमार का वह कदम तो संख्यात साधुओं की रक्षार्थ, पापियोंको सन्मार्ग प्राप्त कराने हेतु तथा देव-नर लोक में अपूर्व प्रभावनाकरणार्थ था।

प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिको ऊँचा धर्म छोड़ि नीचा धर्म अंगीकार करना योग्य नाहीं। बहुरि जैसे गुवालिया मुनिको अग्नि करि तपाया सो करुणातैं यहु कार्य किया। परन्तु आया उपसर्गको तो दूरि करै, सहज अवस्थाविषै जो शीतादिककी परीषह हो है, ताको दूर किए रति माननेका कारण होय, उनकी रति करनी नाहीं, तब उलटा उपसर्ग होय। याहीतैं विवेकी उनके शीतादिकका उपचार करते नाहीं। गुवालिया अविवेकी था, करुणाकरि यहु कार्य किया, तातैं याकी प्रशंसा करी। **इस छलकरि औरनिको धर्मपद्धति विषै जो विरुद्ध होय सो कार्य करना योग्य नाहीं।** बहुरि जैसे वज्रकरण राजा सिंहोदर राजाको नम्या नाहीं, मुद्रिकाविषै प्रतिमा राखी। **सो बड़े-बड़े सम्यग्दृष्टी राजादिकको नमै, याका दोष नाहीं** अर मुद्रिकाविषै प्रतिमा राखने में अविनय होय, यथावत् विधितैं ऐसी प्रतिमा न होय, तातैं इस कार्यविषै दोष है। परन्तु वाकै ऐसा ज्ञान न था, धर्मानुरागतैं मैं औरको नमूँ नाहीं, ऐसी बुद्धि भई, तातैं वाकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिको ऐसे कार्य करने युक्त नाहीं। बहुरि केई पुरुषों ने पुत्रादिककी प्राप्तिके अर्थि वा रोग-कष्टादि दूरिकरने के अर्थि चैत्यालय पूजनादि कार्य किए, स्तोत्रादि किए, नमस्कार मन्त्र स्मरण किया। सो ऐसे किए तो निःकांक्षित गुण का अभाव होय, निदानबंधनामा आर्त्तध्यान होय **पापहीका प्रयोजन अंतरंगविषै है, तातैं पापहीका बंध होई।** परन्तु मोहित होयकरि भी बहुत पापबंध का कारण कुदेवादिकका तो पूजनादि न किया, इतना वाका गुण ग्रहणकरि वाकी प्रशंसा करिए है, इस छलकरि **औरनिको लौकिक कार्यनिके अर्थि धर्मसाधन करना युक्त नाहीं।** ऐसे ही अन्यत्र जानने। ऐसे ही प्रथमानुयोगविषै अन्य कथन भी होय, ताको यथासम्भव जानि भ्रम रूप न होना।

अब **करणानुयोगविषै** किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिये है-

करणानुयोग में व्याख्यान का विधान

जैसे केवलज्ञानकरि जान्या तैसे करणानुयोगविषै व्याख्यान है। बहुरि केवलज्ञानकरि तो बहुत जान्या परन्तु जीवको कार्यकारी जीव कर्मादिकका वा त्रिलोकादिकका ही निरूपण या विषै हो है। बहुरि तिनका भी स्वरूप सर्व निरूपण न होय सकै, तातैं जैसे वचनगोचर होय छद्मस्थके ज्ञानविषै उनका किछू भाव भासै तैसे संकोचन करि निरूपण करिए है। यहाँ **उदाहरण**- जीवके भावनिकी अपेक्षा गुणस्थानक कहे, ते भाव अनन्तस्वरूप लिये, वचनगोचर नाहीं। तहाँ बहुत भावनिकी एक जातिकरि चौदह गुणस्थान कहे। बहुरि जीव जाननेके अनेक प्रकार हैं। तहाँ मुख्य चौदह मार्गणाका निरूपण किया। बहुरि कर्मपरमाणु अनन्तप्रकार शक्तियुक्त हैं, तिनविषै बहुतनिकी एक जाति करि आठ वा एक सौ अड़तालीस प्रकृति कही। बहुरि त्रिलोकविषै अनेक रचना हैं, तहाँ मुख्य केतीक रचना निरूपण करिए है। बहुरि प्रमाण के अनन्त भेद तहाँ संख्यातादि तीन भेद वा इनके इक्कीस भेद निरूपण किए[1], ऐसे ही अन्यत्र जानना।

---

१. संख्यात, असंख्यात, अनन्त। असंख्यात के तीन भेद-१. परीतासंख्यात २. युक्तासंख्यात ३. असंख्यातासंख्यात। अनन्त के तीन भेद-१. परीतानन्त २. युक्तानन्त ३. अनन्तानन्त और संख्यात एक ही प्रकार का है- इस तरह कुल सात हुए। इनमें से प्रत्येक के १जघन्य २ मध्यम और ३ उत्कृष्ट भेद करने से कुल प्रमाण (संख्यामान) के २१ भेद होते हैं।

बहुरि करणानुयोगविषै यद्यपि वस्तु के क्षेत्र, काल भावादिक अखंडित हैं, तथापि छद्मस्थको हीनाधिक ज्ञान होनेके अर्थि प्रदेश समय अविभागप्रतिच्छेदादिककी कल्पनाकरि तिनका प्रमाण निरूपिए है। बहुरि एक वस्तुविषै जुदे-जुदे गुणनिका वा पर्यायनिका भेदकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि जीव पुद्गलादिक यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं, तथापि सम्बन्धादिककरि अनेक द्रव्यकरि निपज्या गति जाति आदि भेद तिनको एक जीवके निरूपै हैं, इत्यादि व्यवहार नयकी प्रधानता लिये व्याख्यान जानना। जातैं **व्यवहारबिना विशेष जानि सकै नाहीं।** बहुरि कहीं निश्चयवर्णन भी पाइए है। जैसे जीवादिक द्रव्यनिका प्रमाण निरूपण किया, सो जुदे-जुदे इतने ही द्रव्य हैं। सो यथासम्भव जानि लेना।

बहुरि करणानुयोगविषै जे कथन हैं ते केई तो छद्मस्थके प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होय, बहुरि जे न होय तिनको आज्ञा प्रमाणकरि मानने। जैसे जीव पुद्गलके स्थूल बहुत कालस्थायी मनुष्यादि पर्याय वा घटादि पर्याय निरूपण किए, तिनका तो प्रत्यक्ष अनुमानादि होय सकै, बहुरि समय-समय प्रति सूक्ष्म परिणमन अपेक्षा ज्ञानादिकके वा स्निग्ध रूक्षादिकके अंश निरूपण किए ते आज्ञाहीतैं प्रमाण हो हैं। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोगविषै छद्मस्थनिकी प्रवृत्ति के अनुसार वर्णन किया नाहीं, केवलज्ञानगम्य पदार्थनिका निरूपण है। जैसे केई जीव तो द्रव्यादिक का विचार करै हैं वा व्रतादिक पालै हैं परन्तु तिनकै अन्तरंग सम्यक्त चारित्रशक्ति नाहीं, तातैं उनको मिथ्यादृष्टि अव्रती कहिए है। बहुरि केई जीव द्रव्यादिकका वा व्रतादिकका विचार रहित हैं, अन्य कार्यनिविषैं प्रवर्त्तै हैं वा निद्रादिकरि निर्विचार होय रहे हैं परन्तु उनकै सम्यक्तादि शक्तिका सद्भाव है, तातैं उनको सम्यक्ती वा व्रती कहिए है। बहुरि कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो घनी है अर वाकै अन्तरंग कषायशक्ति थोरी है, तो वाको मंदकषायीकहिए है। अर कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो थोरी है अर वाकैं अन्तरंग कषायशक्ति घनी है, तो वाको तीव्रकषाय कहिए है। **जैसे व्यन्तरादिक देव कषायनितैं नगरनाशादि कार्य करै, तो भी तिनकै थोरी कषायशक्तितैं पीतलेश्या कही। बहुरि एकेन्द्रियादिक जीव कषायकार्य करते दीखै नाहीं, तिनकै बहुत कषायशक्तितैं कृष्णादि लेश्या कही।** बहुरि सर्वार्थसिद्धि के देव कषायरूप थोरे प्रवर्तैं, तिनकै बहुत कषायशक्तितैं असंयम कह्या अर पंचमगुणस्थानी व्यापार अब्रह्मादि कषायकार्यरूप बहुत प्रवर्त्तैं, तिनकै मन्दकषाय शक्तितैं देशसंयम कह्या।अर ऐसे ही अन्यत्र जानना।

विशेष- यहाँ पण्डित टोडरमल जी ने स्थूलदृष्टि से ऐसा कहा है। सूक्ष्म विवेचन इस प्रकार है- देव पंचेन्द्रिय संज्ञी हैं तथा एकेन्द्रिय जीव स्थावर हैं। इसलिए (१) एकेन्द्रियों की कषाय से पंचेन्द्रियों की कषाय अनन्तगुणी होती है तथा एकेन्द्रिय के योग से भी संज्ञी पंचेन्द्रियों का योग असंख्यात गुणा होता है। {**धवल १४/४२७ तथा धवल १० पृ. ३४**} (२) एकेन्द्रियों के स्थितिबन्ध एक सागरोपम होता है तथा पंचेन्द्रिय संज्ञी के स्थितिबन्ध ७० कोटा कोटी सागर होता है {**रा. वा. ८/१४-२०, महाधवल २।२४।१७-२६, धवल ६।१६६, धवल ११।२२५ से २२८, गो. क. मुख्तारी सम्पादन, स्थितिबन्ध प्रकरण आदि**} अतः एकेन्द्रिय के स्थितिबन्ध से संज्ञी पंचेन्द्रिय का

स्थिति बन्ध संख्यातगुणा है। {समस्त अक्षपक-अनुपशमक संयमी व सम्यक्त्वी में भी स्थितिबन्ध एकेन्द्रिय से संख्यातगुणा ही होता है {ज. ध. १३/२१६ जयध. १४।१६१ आदि} अतः संख्यातगुणे स्थितिबन्ध की नियामक हेतुभूत कषाय नियम से अनन्तगुणी सिद्ध होती है । कारण देखो-{धवल ११/२२६-२३७} संख्यातगुणी स्थिति वृद्धि अनंतगुणत्व युक्त कषाय से ही हो सकती है; यही न्याय्य है {धवल ११ पृष्ठ २३५-३६} और कषाय के बिना स्थितिबन्ध होता नहीं। कहा भी है- **ठिदि अणुभागं कसायदो कुणइ**(पंचसंग्रह प्रा. ४/५३, स. सि. ८/३ धवल १२/२८६, द्र. स. ३३, रा. वा. ८/३/६ आदि) (३) पंचेन्द्रिय संज्ञी शुभ लेश्यावान देव स्थावर की आयु भी बाँधता है (तहँ ते चय थावर तन धरै (छहढाला)}। जबकि असंज्ञी ही होता है ऐसा एकेन्द्रिय निगोद सीधा चरम शरीरी मनुष्य की आयु को, अशुभ लेश्या के होते {धवल २/५७१} भी बाँध लेता है (**तिलोयपण्णत्ती ५/३१६ चोत्तीस भेद संजुत्त.....**)। ऐसी स्थिति में किसके परिणाम प्रशस्त कहे जाएंगे-किसकी कषाय मन्द कही जाएगी? स्पष्ट है कि उक्त दो कालों की तुलना करने पर तो एकेन्द्रिय की ही कषाय मन्द है। पारिशेष न्यायतः (४) कषाय व लेश्या सर्वथा एक नहीं हैं, ये भिन्न-भिन्न परिणाम हैं। अकषायी जीव के भी लेश्या हो सकती है, क्योंकि लेश्या में योग की प्रधानता है।(ध. १/१५०-५१-३८३ आदि) अथवा मिथ्यात्व, असंयम, कषाय व योग; ये सब लेश्या हैं जबकि कषाय तो मात्र कषायात्मक ही है अतः कषाय व लेश्या एक नहीं हो सकते। (धवल ८/३५६) (५) लेश्याओं में कुछ अंश सामान्य (Common) होते हैं। जिससे एक लेश्या तुल्य कार्य अन्य लेश्या में हो जाते हैं तथा शुक्ल लेश्यावान मिथ्यात्वी देव भी अपनी देव पर्याय से च्युत होने के ठीक अनन्तर समय में सीधा (Direct) मनुष्य पर्याय के प्रथम समय में अशुभत्रिक में से एक लेश्या को प्राप्त होता हुआ नजर आता है। (**ब्र. रतनचन्द्र पत्रावली तथा गो.जी.पृ. ५८५ आदि**)

इस प्रकार एकेन्द्रियों की कषाय संज्ञी पंचेन्द्रिय या इतर पंचेन्द्रिय से अधिक नहीं होती, हीन ही होती है। {**क्षपक उपशमक यहाँ अप्रकृत हैं**} ज.ध.१२ पृ. १६८-१७१ में भी अत्यन्त स्पष्ट लिखा है कि असंज्ञी जीव (एकेन्द्रिय आदि) के कषायों का उदय व बन्ध द्विस्थानीय ही नियम से होता है परन्तु संज्ञी तो कषायों का चतुःस्थानीय बन्ध व उदय भी करता है। (**see also मूल क. पा.सु. चतुस्थान ८/८५**)

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि देवों से एकेन्द्रियों की कषाय नियम से अनन्तगुणी हीन ही होती है। यह अकाट्य सत्य है।

बहुरि कोई जीवकै मन वचन काय की चेष्टा थोरी होती दीसै, तो भी कर्माकर्षण शक्ति की अपेक्षा बहुत योग कह्या। काहूकै चेष्टा बहुत दीसै तो भी शक्ति की हीनतातैं स्तोक योग कह्या। जैसे केवली

गमनादिक्रियारहित भया, तहाँ भी ताकै योग बहुत कह्या। बेंद्रियादिक जीव गमनादि करै है, तो भी तिनकै स्तोक कहै। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कहीं जाकी व्यक्तता किछू न भासै, तो भी सूक्ष्मशक्ति के सद्भावतैं ताका तहाँ अस्तित्व कह्या। जैसे मुनिकै अब्रह्मकार्य किछू नाहीं, तो भी नवम गुणस्थानपर्यन्त मैथुनसंज्ञा कही। अहमिंद्रनिकै दुःख का कारण व्यक्त नाहीं, तो भी कदाचित् असाता का उदय कह्या। नारकीनिकै सुख का कारण व्यक्त नाहीं, तो भी कदाचित् साता का उदय कह्या। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिक धर्म का निरूपण कर्मप्रकृतिनिका उपशमादिक की अपेक्षा लिये सूक्ष्मशक्ति जैसे पाइए तैसे गुणस्थानादिविषै निरूपण करै है वा सम्यग्दर्शनादिक के विषयभूत जीवादिक तिनका भी निरूपण सूक्ष्मभेदादि लिये करै है। यहाँ कोई करणानुयोग के अनुसारि आप उद्यम करै तो होय सकै नाहीं। **करणानुयोगविषै तो यथार्थ पदार्थ जनावने का मुख्य प्रयोजन है, आचरण करावने की मुख्यता नाहीं**। तातैं यहु तो चरणानुयोगादिक के अनुसार प्रवर्त्तै, तिसतैं जो कार्य होना है सो स्वयमेव ही होय है। जैसे आप कर्मनिका उपशमादि किया चाहै तो कैसे होय? आप तो तत्त्वादिक का निश्चय करने का उद्यम करै, तातैं स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त होय। ऐसे ही अन्यत्र जानना। एक अन्तर्मुहूर्तविषै ग्यारहवाँ गुणस्थान स्यों पड़ि क्रमतैं मिथ्यादृष्टी होय बहुरि चढ़िकरि केवलज्ञान उपजावै। सो ऐसे **सम्यक्त्वादिक के सूक्ष्मभाव बुद्धिगोचर आवते नाहीं**, तातैं करणानुयोग के अनुसारि जैसा का तैसा जानि तो ले अर प्रवृत्ति बुद्धिगोचर जैसे भला होय तैसे करै।

बहुरि करणानुयोगविषै भी कहीं उपदेश की मुख्यता लिये व्याख्यान हो है, ताको सर्वथा तैसे ही न मानना। जैसे हिंसादिकका उपाय को कुमतिज्ञान कह्या, अन्यमतादिक के शास्त्राभ्यास को कुश्रुतज्ञान कह्या, बुरा दीसै भला न दीसै ताको विभंगज्ञान कह्या, सो इनको छोड़ने के अर्थि उपदेशकरि ऐसे कह्या। तारतम्यतैं मिथ्यादृष्टीकै सर्व ही ज्ञान कुज्ञान है, सम्यग्दृष्टीकै सर्व ही ज्ञान सुज्ञान है। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कहीं स्थूल कथन किया होय, ताको तारतम्यरूप न जानना। जैसे व्यासतैं तिगुणी परिधि कहिए, सूक्ष्मपने किछू अधिक तिगुणी हो है। ऐसे ही अन्यत्र जानना। बहुरि **कहीं मुख्यता की अपेक्षा व्याख्यान होय, ताको सर्व प्रकार न जानना**। जैसे मिथ्यादृष्टी सासादन गुणस्थानवालेको पापजीव कहे, असंयतादि गुणस्थानवालेको पुण्यजीव कहे सो मुख्यपने ऐसे कहे, तारतम्यतैं दोऊनिकै पाप पुण्य यथासम्भव पाईए है। ऐसे ही अन्यत्र जानना। ऐसे ही और भी नाना प्रकार पाईए है, ते यथासम्भव जानने। ऐसे करणानुयोगविषै व्याख्यानका विधान दिखाया।

अब **चरणानुयोगविषै** किस प्रकारका व्याख्यान है, सो दिखाईए है–

चरणानुयोग में व्याख्यान का विधान

चरणानुयोगविषै जैसे जीवनिकै अपनी बुद्धिगोचर धर्मका आचरण होय सो उपदेश दिया है। तहाँ धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है सोई है। ताके साधनादिक उपचारतैं धर्म है सो व्यवहारनयकी प्रधानताकरि

नाना प्रकार उपचार धर्मके भेदादिक याविषै निरूपण करिए है। जातैं निश्चय धर्मविषै तो किछू ग्रहण त्यागका विकल्प नाहीं अर याकै नीचली अवस्थाविषै विकल्प छूटता नाहीं, तातैं इस जीवको धर्मविरोधी कार्यनिको छुड़ावनेका अर धर्मसाधनादि कार्यनिके ग्रहण करावनेका उपदेश या विषै है। सो उपदेश दोय प्रकार दीजिए है। एक तो व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है, एक निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश दीजिए है। तहाँ जिन जीवनिकै निश्चयका ज्ञान नाहीं है वा उपदेश दिए भी न होता दीसै ऐसे मिथ्यादृष्टी जीव किछू धर्मको सन्मुख भए तिनको व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है।

बहुरि जिन जीवनिकै निश्चय-व्यवहारका ज्ञान है वा उपदेश दिए तिनका ज्ञान होता दीसै है, ऐसे सम्यग्दृष्टी जीव वा सम्यक्त को सन्मुख मिथ्यादृष्टी जीव तिनको निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। जातैं श्रीगुरु सर्व जीवनिके उपकारी हैं। सो असंज्ञी जीव तो उपदेश ग्रहणे योग्य नाहीं, तिनका तो उपकार इतना ही किया-और जीवनिको तिनकी दयाका उपदेश दिया। बहुरि जे जीव कर्मप्रबलतातैं निश्चयमोक्षमार्गको प्राप्त होय सकै नाहीं, तिनका इतना ही उपकार किया-जो उनको व्यवहार धर्मका उपदेश देय कुगतिके दुःखनिका कारण पापकार्य छुड़ाय सुगतिके इन्द्रियसुखनिका कारण पुण्यकार्यनिविषै लगाया। जेता दुःख मिट्या तितना ही, उपकार भया। बहुरि पापीकै तो पापवासना ही रहै अर कुगतिविषै जाय तहाँ धर्मका निमित्त नाहीं। तातैं परम्पराय दुःखहीको पाया करै। अर पुण्यवानकै धर्मवासना रहै अर सुगति विषै जाय, तहाँ धर्म के निमित्त पाईए, तातैं परम्पराय सुखको पावै। अथवा कर्मशक्ति हीन होय जाय तो मोक्षमार्गको भी प्राप्त होय जाय। तातैं व्यवहार उपदेशकरि पापतैं छुड़ाय पुण्यकार्यनिविषै लगाईए है।

बहुरि जे जीव मोक्षमार्गको प्राप्त भये वा प्राप्त होने योग्य हैं, तिनका ऐसा उपकार किया जो उनको निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश देय मोक्षमार्गविषै प्रवर्ताए। श्रीगुरु तो सर्वका ऐसा ही उपकार करै। परन्तु जिन जीवनिका ऐसा उपकार न बनै तो श्रीगुरु कहा करै। जैसा बन्या तैसा ही उपकार किया। तातैं दोय प्रकार उपदेश दीजिए है। तहाँ व्यवहार उपदेशविषै तो बाह्य क्रियानिहीकी प्रधानता है। तिनका उपदेशतैं जीव पापक्रिया छोड़ि पुण्यक्रियानिविषै प्रवर्तै। तहाँ क्रियाकै अनुसार परिणाम भी तीव्रकषाय छोड़ि किछू मंदकषायी होय जाय। सो मुख्यपने तो ऐसे है। बहुरि काहूके न होय तो मति होहु। श्रीगुरु तो परिणाम सुधारनेके अर्थि बाह्यक्रियानिको उपदेशै है।

बहुरि निश्चयसहित व्यवहारका उपदेशविषै परिणामनिहीकी प्रधानता है। ताका उपदेशतैं तत्त्वज्ञानका अभ्यासकरि वा वैराग्य भावनाकरि परिणाम सुधारै, तहाँ परिणामके अनुसारि बाह्यक्रिया भी सुधरि जाय। परिणाम सुधरे बाह्यक्रिया सुधरै ही सुधरै। तातैं श्रीगुरु परिणाम सुधारनेको मुख्य उपदेशै हैं। ऐसे दोय प्रकार उपदेशविषै जहाँ व्यवहारही का उपदेश होय तहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थि अरहंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु,दया धर्मको ही मानना, औरको न मानना। बहुरि जीवादिक तत्त्वनिका व्यवहारस्वरूप कह्या है ताका श्रद्धान करना, शंकादि पच्चीस दोष न लगावने, निशंकितादिक अंग वा संवेगादिक गुण पालने, इत्यादि उपदेश दीजिए है।

बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि जिनमतके शास्त्रनिका अभ्यास करना, अर्थ व्यंजनादि अंगनिका साधन करना इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि एकोदेश वा सर्वदेशहिंसादि पापनिका त्याग करना, व्रतादि अंगमिको पालने, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि कोई जीवको विशेष धर्मका साधन न होता जानि एक आखड़ी आदिकका ही उपदेश दीजिए है। जैसे भीलको कागलाका मांस छुड़ाया, गुवालियाको नमस्कार मन्त्र जपने का उपदेश दिया, गृहस्थको चैत्यालय पूजा-प्रभावनादि कार्यका उपदेश दीजिये है, इत्यादि जैसा जीव होय ताको तैसा उपदेश दीजिए है।

बहुरि जहाँ निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश होय, तहाँ सम्यग्दर्शन के अर्थि यथार्थ तत्त्वनिका श्रद्धान कराईए है। तिनका जो निश्चय स्वरूप है सो भूतार्थ है। व्यवहार स्वरूप है सो उपचार है। ऐसा श्रद्धान लिए वा स्वपरका भेदविज्ञानकरि परद्रव्यविषै रागादि छोड़ने का प्रयोजन लिए तिन तत्त्वनि का श्रद्धान करनेका उपदेश दीजिए है। ऐसे श्रद्धानतैं अरहंतादि बिना अन्य देवादिक झूंठ भासै तब स्वयमेव तिनका मानना छूटै है, ताका भी निरूपण करिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि संशयादिरहित तिनही तत्त्वनिका तैसे ही जाननेका उपदेश दीजिए है, तिस जाननेको कारण जिनशास्त्रनिका अभ्यास है। तातैं तिस प्रयोजनके अर्थि जिनशास्त्रनिका भी अभ्यास स्वयमेव हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि रागादि दूरि करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ एकदेश वा सर्वदेश तीव्ररागादिकका अभाव भए तिनके निमित्ततैं होती थी जे एकदेश सर्वदेश पापक्रिया, ते छूटै हैं। बहुरि मंदरागतैं श्रावकमुनिके व्रतनिकी प्रवृत्ति हो है। बहुरि मंदरागादिकनिका भी अभाव भए शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि यथार्थ श्रद्धान लिए सम्यग्दृष्टीनिकै जैसे यथार्थ कोई आखड़ी हो है वा भक्ति हो है वा पूजा प्रभावनादिक कार्य हो है, वा ध्यानादिक हो है, तिनका उपदेश दीजिए है। जैसा जिनमतविषै सांची परम्परा मार्ग है, तैसा उपदेश दीजिए है। ऐसे दोय प्रकार उपदेश चरणानुयोगविषै जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै तीव्रकषायनिका कार्य छुड़ाय मंदकषाय रूप कार्यकरनेका उपदेश दीजिए है। यद्यपि कषाय करना बुरा ही है, तथापि सर्वकषाय न छूटते जानि जेते कषाय घटै तितना ही भला होगा, ऐसा प्रयोजन तहाँ जानना। जैसे जिन जीवनिकै आरम्भादि करने की वा मंदिरादि बनावनेकी वा विषय सेवनेकी वा क्रोधादि करनेकी इच्छा सर्वथा दूरि न होती जानै, तिनको पूजा-प्रभावनादिक करनेका वा चैत्यालयादि बनावनेका वा जिनदेवादिकके आगै शोभादिक नृत्यगानादि करनेका वा धर्मात्मा पुरुषनिकी सहायादि करनेका उपदेश दीजिए है। जातैं इनिविषै परम्परा कषायका पोषण न हो है। पापकार्यनिविषै परम्परा कषाय पोषण हो है, तातैं पापकार्यनितैं छुड़ाय इन कार्यनिविषै लगाईए है। बहुरि थोरा बहुत जेता छूटता जानै, तितना पापकार्य छुड़ाय सम्यक्त्व वा अणुव्रतादि पालनेका तिनको उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै सर्वथा आरम्भादिककी इच्छा दूरि भई, तिनको पूर्वोक्त पूजादिक कार्य वा सर्व पापकार्य छुड़ाय महाव्रतादि क्रियानिका उपदेश दीजिए है। बहुरि किंचित् रागादिक छूटता न जानि, तिनको दया धर्मोपदेश प्रतिक्रमणादि कार्य करने का उपदेश दीजिए है। जहाँ सर्व राग दूरि होय, तहाँ किछू करने का कार्य ही रह्या नाहीं। तातैं तिनको किछू उपदेश ही नाहीं। ऐसे क्रम जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै कषायी जीवनिको कषाय उपजायकरि भी पापको छुड़ाईए है अर धर्मविषै लगाईए है। जैसे पापका फल नरकादिकके दुःख दिखाय तिनिको भय कषाय उपजाय पापकार्य छुड़ाईए है। बहुरि पुण्यका फल स्वर्गादिकके सुख दिखाय तिनको लोभ कषाय उपजाय धर्मकार्यनिविषै लगाईए है। बहुरि यहु जीव इन्द्रियविषय शरीर पुत्रधनादिकके अनुरागतैं पाप करै है, धर्मपराङ्मुख रहै है, तातैं इन्द्रियविषयनिको मरण क्लेशादिकके कारण दिखावनेकरि तिनविषै अरतिकषाय कराईए है। शरीरादिकको अशुचि दिखावनेकरि तहाँ जुगुप्साकषाय कराईए है, पुत्रादिको धनादिकके ग्राहक दिखाय तहाँ द्वेष कराईए है, बहुरि धनादिकको मरण क्लेशादिकका कारणदिखाय तहाँ अनिष्टबुद्धि कराईए है, इत्यादि उपायतैं विषयादिविषै तीव्रराग दूरि होनेकरि तिनकै पापक्रिया छूटि धर्मविषै प्रवृत्ति हो है। बहुरि नाम-स्मरण स्तुति-करण पूजा दान शीलादिकतैं इस लोकविषै दारिद्र कष्ट दुःख दूरि हो है, पुत्रधनादिककी प्राप्ति हो है, ऐसे निरूपणकरि तिनकै लोभ उपजाय तिन धर्मकार्यनिविषै लगाईए है। ऐसे ही अन्य उदाहरण जानने।

यहाँ **प्रश्न**- जो कोई कषाय छुड़ाय कोई कषाय करावनेका प्रयोजन कहा?

ताका **समाधान**- जैसे रोग तो शीतांग भी है अर ज्वर भी है परन्तु कोई कै शीतांगतैं मरण होता जानै, तहाँ वैद्य है सो वाकै ज्वर होनेका उपाय करै, ज्वर भए पीछै वाकै जीवनेकी आशा होय, तब पीछै ज्वर के भी मेटने का उपाय करै। तैसे कषाय तो सर्व ही हेय हैं परन्तु केई जीवनिकै कषायनितैं पापकार्य होता जानै, तहाँ श्रीगुरु है सो उनकै पुण्यकार्यको कारणभूत कषाय होने का उपाय करै, पीछै वाकै सांची धर्मबुद्धि भई जानै, तब पीछै तिस कषाय मेटने का उपाय करै; ऐसा प्रयोजन जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै जैसे जीव पाप छोड़ि धर्मविषै लागै, तैसे अनेक युक्तिकरि वर्णन करिए है। तहाँ लौकिक दृष्टान्त युक्ति उदाहरण न्यायप्रवृत्तिके द्वारि समझाईए है वा कहीं अन्यमत के भी उदाहरणादि कहिए है। जैसे **सूक्तिमुक्तावली** विषै लक्ष्मीको कमलवासिनी कही वा समुद्रविषै विष अर लक्ष्मी उपजै,तिस अपेक्षा विषकी भगिनी कही। ऐसे ही अन्यत्र कहिए है। तहाँ केई उदाहरणादिक झूंठे भी हैं परन्तु साँचा प्रयोजनको पोषै है, तातैं दोष नाहीं।

यहाँ **कोउ कहै** कि झूंठ का तो दोष लागै। ताका उत्तर- **जो झूंठ भी है अर सांचा प्रयोजनको पोषै तो वाको झूंठ न कहिए।** बहुरि सांच भी है अर झूंठा प्रयोजनको पोषै तो वह झूंठा ही है। अलंकारयुक्ति नामादिकविषै वचन अपेक्षा झूंठ सांच नाहीं, प्रयोजन अपेक्षा झूंठ सांच है। जैसे तुच्छशोभासहित नगरीको इन्द्रपुरी के समान कहिए है सो झूंठ है परन्तु शोभा का प्रयोजन को पोषै है तातैं झूंठ नाहीं। बहुरि "इस नगरीविषै छत्रहीकै दंड" है, अन्यत्र नाहीं, ऐसा कहा, सो झूंठ है। अन्यत्र भी दंड देना पाईए है परन्तु तहाँ अन्यायवान थोरे हैं, न्यायवान को दण्ड न दीजिए है, ऐसा प्रयोजनको पोषै है, तातैं झूंठ नाहीं। बहुरि वृहस्पतिका नाम 'सुरगुरु' लिखै वा मंगलका नाम 'कुज' लिखै, सो ऐसे नाम अन्यमत अपेक्षा हैं। इनका अक्षरार्थ है सो झूंठा है। परन्तु वह नाम तिस पदार्थका अर्थ प्रगट करै है, तातैं झूंठ नाहीं। ऐसे अन्य मतादिक के उदाहरणादि दीजिए है सो झूंठे हैं परन्तु उदाहरणादिकका तो श्रद्धान करावना है नाहीं, श्रद्धान तो प्रयोजन का करावना है। सो प्रयोजन सांचा है, तातैं दोष नाहीं है।

बहुरि चरणानुयोगविषै छद्मस्थकी बुद्धिगोचर स्थूलपनाकी अपेक्षा लोकप्रवृत्तिकी मुख्यता लिए उपदेश दीजिए है। बहुरि केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मपनाकी अपेक्षा न दीजिए है, जातैं तिसका आचरण न होय सकै। यहाँ आचरण करावने का प्रयोजन है। जैसे अणुव्रतीकै त्रसहिंसाका त्याग कह्या अर वाकै स्त्रीसेवनादि क्रियानिविषै त्रसहिंसा हो है। यहु भी जानै है- जिनवानी विषै यहाँ त्रस कहे हैं परन्तु याकै त्रस मारने का अभिप्राय नाहीं अर लोकविषै जाका नाम त्रसघात है, ताको करै नाहीं तातैं तिस अपेक्षा वाके त्रसहिंसाका त्याग है। बहुरि मुनिकै स्थावरहिंसाका भी त्याग कह्या, सो मुनि पृथ्वी जलादिविषै गमनादि करै है, तहाँ सर्वथा त्रसका भी अभाव नाहीं। जातैं त्रसजीवकी भी अवगाहना ऐसी छोटी हो है, जो दृष्टिगोचर न आवै अर तिनकी स्थिति पृथ्वी जलादि विषै ही है। सो मुनि जिनवानीतैं जानै हैं वा कदाचित् अवधिज्ञानादिकरि भी जानै है परन्तु याकै प्रमादतैं स्थावर त्रसहिंसाका अभिप्राय नाहीं। बहुरि लोकविषै भूमि खोदना अप्रासुक जलतैं क्रिया करनी इत्यादि प्रवृत्तिका नाम स्थावरहिंसा है अर स्थूल त्रसनिके पीडने का नाम त्रसहिंसा है, ताको न करे। तातैं मुनिकै सर्वथा हिंसा का त्याग कहिए है। बहुरि ऐसे ही अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रह का त्याग कह्या। अर केवलज्ञानका जानने की अपेक्षा असत्यवचनयोग बारहवाँ गुणस्थान पर्यन्त कह्या। अदत्तकर्मपरमाणु आदि परद्रव्यका ग्रहण तेरहवाँ गुणस्थान पर्यन्त है। वेदका उदय नवमगुणस्थान पर्यन्त है, अंतरंगपरिग्रह दसवाँ गुणस्थान पर्यन्त है। बाह्य परिग्रह समवसरणादि केवलीकै भी हो है परन्तु प्रमादतैं पापरूप अभिप्राय नाहीं अर लोकप्रवृत्तिविषै जिन क्रियानिकरि यहु झूंठ बोलै है, चोरी करै है, कुशील सेवै है, परिग्रह राखै है ऐसा नाम पावै, वे क्रिया इनकै हैं नाहीं। तातैं अनृतादिकका इनिकै त्याग कहिए है। बहुरि जैसे मुनिके मूलगुणनिविषै पंचइन्द्रियनिके विषय का त्याग कह्या सो जानना तो इन्द्रियनिका मिटै नाहीं अर विषयनिविषै रागद्वेष सर्वथा दूरि भया होय तो यथाख्यात चारित्र होय जाय सो भया नाहीं परन्तु स्थूलपने विषय इच्छा का अभाव भया अर बाह्य विषय सामग्री मिलावने की प्रवृत्ति दूरि भई तातैं याकै इन्द्रियविषयका त्याग कह्या। ऐसे ही अन्यत्र जानना। बहुरि व्रती जीव त्याग वा आचरण करै है, सो चरणानुयोगकी पद्धति अनुसारि वा लोक प्रवृत्तिके अनुसारि त्याग करै है। जैसे काहूने त्रसहिंसा का त्याग किया, तहाँ चरणानुयोगविषै वा लोकविषै जाको त्रसहिंसा कहिए है, ताका त्याग किया है केवलज्ञानादिकरि जे त्रस देखिए हैं, तिनिकी हिंसा का त्याग बनै ही नाहीं। तहाँ जिस त्रसहिंसा का त्याग किया, तिसरूप मनका विकल्प न करना सो मनकरि त्याग है, वचन न बोलना सो वचनकरि त्याग है, कायकरि न प्रवर्तना सो कायकरि त्याग है। ऐसे अन्य त्याग वा ग्रहणहो है, सो ऐसी पद्धति लिए ही हो है, ऐसा जानना।

यहाँ प्रश्न–जो करणानुयोगविषै तो केवलज्ञान अपेक्षा तारतम्य कथन है, तहाँ छठे गुणस्थानि सर्वथा बारह अविरतिनिका अभाव कह्या, सो कैसे कह्या?

ताको उत्तर–अविरति भी योगकषायविषै गर्भित थे परन्तु तहाँ भी चरणानुयोग अपेक्षा त्यागका अभाव तिसहीका नाम अविरति कह्या है। तातैं तहाँ तिनका अभाव है। मन अविरतिका अभाव कह्या, सो मुनिकै मनके विकल्प हो हैं परन्तु स्वेच्छाचारी मनकी पापरूप प्रवृत्तिके अभावतैं मनअविरतिका अभाव कह्या है, ऐसा जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै व्यवहार लोकप्रवृत्ति अपेक्षा ही नामादिक कहिए है। जैसे सम्यक्त्वीको पात्र कह्या, मिथ्यात्वीको अपात्र कह्या। सो यहाँ जाकै जिनदेवादिकका श्रद्धान पाईए सो तो सम्यक्त्वी, जाकै तिनका श्रद्धान नाहीं सो मिथ्यात्वी जानना। जातैं दान देना चरणानुयोगविषै कह्या है, सो चरणानुयोगहीके सम्यक्त्व मिथ्यात्व ग्रहण करने। करणानुयोग अपेक्षा सम्यक्त्व मिथ्यात्व ग्रहे वो ही जीव ग्यारहवें गुणस्थान था अर वो ही अन्तर्मुहूर्तमें पहले गुणस्थान आवै, तहाँ दातार पात्र-अपात्रका कैसे निर्णय करि सकै? बहुरि द्रव्यानुयोग अपेक्षा सम्यक्त्व मिथ्यात्व ग्रहे मुनिसंघविषै द्रव्यलिंगी भी हैं, भावलिंगी भी हैं सो प्रथम तो तिनका ठीक होना कठिन है जातैं बाह्य प्रवृत्ति समान है। अर जो कदाचित् सम्यक्तीको कोई चिह्न करि ठीक पडै अर वह वाकी भक्ति न करै, तब औरनिकै संशय होय, याकी भक्ति क्यों न करी। ऐसे वाका मिथ्यादृष्टीपना प्रगट होय, तब संघविषै विरोध उपजै। तातैं यहाँ व्यवहार सम्यक्त्व मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन जानना।

यहाँ कोई प्रश्न करै-सम्यक्ती तो द्रव्यलिंगीको आपतैं हीनगुणयुक्त मानै है, ताकी भक्ति कैसे करै?

ताका समाधान- व्यवहारधर्मका साधन द्रव्यलिंगीकै बहुत है अर भक्ति करनी सो भी व्यवहार ही है। तातैं जैसे कोई धनवान होय परन्तु जो कुलविषै बड़ा होय ताको कुल अपेक्षा बड़ा जानि ताका सत्कार करै, तैसे आप सम्यक्त्वगुणसहित है परन्तु जो व्यवहारधर्मविषै प्रधान होय ताको व्यवहारधर्म अपेक्षा गुणाधिक मानि ताकी भक्ति करै है, ऐसा जानना। बहुरि ऐसे ही जो जीव बहुत उपवासादि करैं, ताको तपस्वी कहिए है। यद्यपि कोई ध्यान अध्ययनादि विशेष करै है सो उत्कृष्ट तपस्वी है तथापि यहाँ चरणानुयोगविषै बाह्यतपहीकी प्रधानता है, तातैं तिसहीको तपस्वी कहिए है। याही प्रकार अन्य नामादिक जानने। ऐसे ही अन्य अनेक प्रकार लिए चरणानुयोगविषै व्याख्यानका विधान जानना।

अब द्रव्यानुयोगविषै कहिए है-

द्रव्यानुयोग में व्याख्यान का विधान

जीवनिकै जीवादि द्रव्यनिका यथार्थ श्रद्धान जैसे होय, तैसे विशेष युक्ति हेतु दृष्टान्तादिकका यहाँ निरूपण कीजिए है। जातैं या विषै यथार्थ श्रद्धान करावनेका प्रयोजन है। तहाँ यद्यपि जीवादि वस्तु अभेद है तथापि तिनविषै भेदकल्पनाकरि व्यवहारतैं द्रव्य गुण पर्यायादिकका भेद निरूपण कीजिए है। बहुरि प्रतीति अनावनेके अर्थ अनेक युक्तिकरि उपदेश दीजिए है अथवा प्रमाणनयकरि उपदेश दीजिए सो भी युक्ति है। बहुरि वस्तुका अनुमान प्रत्यभिज्ञानादि करनेको हेतु दृष्टांतादिक दीजिए है। ऐसें तहाँ वस्तुकी प्रतीति करावनेको उपदेश दीजिए है। बहुरि यहाँ मोक्षमार्गका श्रद्धान करावनेके अर्थ जीवादि तत्त्वनिका विशेष युक्ति हेतु दृष्टांतादिकरि निरूपण कीजिए है। तहाँ स्वपरभेदविज्ञानादिक जैसे होय तैसे जीव अजीवका निर्णय कीजिए है। बहुरि वीतरागभाव जैसे होय तैसे आस्रवादिकका स्वरूप दिखाइए है। बहुरि तहाँ मुख्यपनै ज्ञान

वैराग्य को कारण आत्मानुभवनादिक ताकी महिमा गाइए है। बहुरि द्रव्यानुयोग विषै निश्चय अध्यात्म उपदेश की प्रधानता होय, तहाँ व्यवहारधर्म का भी निषेध कीजिए है। जे जीव आत्मानुभवन के उपायको न करै हैं अर बाह्य क्रियाकांडविषै मग्न हैं, तिनको तहाँतैं उदासकरि आत्मानुभवनादिविषै लगावने को व्रत शील संयमादिक का हीनपना प्रगट कीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो इनको छोड़ि पापविषै लगना। जातैं तिस उपदेश का प्रयोजन अशुभविषै लगावने का नाहीं है। शुद्धोपयोगविषै लगावने को शुभोपयोग का निषेध कीजिए है।

यहाँ **कोऊ कहै** कि अध्यात्म-शास्त्रनिविषै पुण्य-पाप समान कहे हैं, तातैं शुद्धोपयोग होय तो भला ही है, न होय तो पुण्यविषै लगो वा पापविषै लगो।

ताका **उत्तर**- जैसे शूद्रजातिअपेक्षा जाट चांडाल समान कहे परन्तु चांडालतैं जाट किछू उत्तम है। वह अस्पृश्य है, यह स्पृश्य है। तैसे बन्धकारण अपेक्षा पुण्य-पाप समान हैं परन्तु **पापतैं पुण्य किछू भला है। वह तीव्रकषायरूप है, यह मंदकषायरूप है।** तातैं पुण्य छोड़ि पापविषै लगना युक्त नाहीं, ऐसा जानना।

बहुरि जे जीव जिनबिम्बभक्त्यादि कार्यनिविषै ही मग्न हैं, तिनको आत्मश्रद्धानादि करावने को "देहविषै देव है, देहुराविषै नाहीं" इत्यादि उपदेश दीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो भक्ति छुड़ाय भोजनादिकतैं आपको सुखी करना। जातैं तिस उपदेश का प्रयोजन ऐसा नाहीं है। ऐसे ही अन्य व्यवहारका निषेध तहाँ किया होय,ताको जानि प्रमादी न होना। ऐसा जानना-जे केवल व्यवहार साधनविषै ही मग्न हैं, तिनको निश्चयरुचि करावने के अर्थि व्यवहारको हीन दिखाया है। बहुरि तिन ही शास्त्रनिविषै सम्यग्दृष्टीके विषय-भोगादिकको बंधका कारण न कह्या, निर्जरा का कारण कह्या। सो यहाँ भोगनिका उपादेयपना न जानि लेना। तहाँ सम्यग्दृष्टिकी महिमा दिखावने को जे तीव्रबंध के कारण भोगादिक प्रसिद्ध थे, तिन भोगादिक को होतेसंते भी श्रद्धानशक्ति के बलतैं निर्जरा विशेष होने लगी, तातैं उपचारतैं भोगनिको भी बंधका कारण न कह्या, निर्जरा का कारण कह्या। विचार किए **भोग निर्जराके कारण होय, तो तिनको छोड़ि सम्यग्दृष्टी मुनिपदका ग्रहण काहेको करै?** यहाँ इस कथन का इतना ही प्रयोजन है-देखो, सम्यक्त्वकी महिमा जाके बलतैं भोग भी अपने गुणको न करि सकै है। याही प्रकार और भी कथन होय ताका यथार्थपना जानि लेना।

बहुरि द्रव्यानुयोगविषै भी चरणानुयोगवत् ग्रहण-त्याग करावनेका प्रयोजन है। तातैं छद्मस्थ के बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा ही तहाँ कथन कीजिए है। इतना विशेष है, जो चरणानुयोगविषै तो बाह्यक्रिया की मुख्यताकरि वर्णन करिए है, **द्रव्यानुयोगविषै आत्मपरिणामनिकी मुख्यताकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि करणानुयोगवत् सूक्ष्मवर्णन न कीजिए है।** ताके उदाहरण कहिए है-

उपयोग के शुभ, अशुभ, शुद्ध ऐसे तीन भेद कहे। तहाँ धर्मानुरागरूप परिणाम सो शुभोपयोग अर पापानुरागरूप वा द्वेषरूप परिणाम सो अशुभोपयोग अर रागद्वेषरहित परिणाम सो शुद्धोपयोग, ऐसे कह्या सो इस छद्मस्थ के बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा यहु कथन है। करणानुयोगविषै कषायशक्ति अपेक्षा गुणस्थानादिविषै संक्लेश विशुद्ध परिणाम अपेक्षा निरूपण किया है सो विवक्षा यहाँ नाहीं है। करणानुयोगविषै

तो रागादिरहित शुद्धोपयोग यथाख्यात चारित्र भए होय, सो मोह का नाशतैं स्वयमेव होसी। नीचली अवस्थावाला शुद्धोपयोगका साधन कैसे करै। अर द्रव्यानुयोग विषै शुद्धोपयोग करनेही का मुख्य उपदेश है, तातैं यहाँ छद्मस्थ जिस कालविषै बुद्धिगोचर भक्ति आदि वा हिंसा आदि कार्यरूप परिणामनिकौ छुड़ाय आत्मानुभवनादि कार्यनिविषै प्रवर्त्तै तिस काल ताको शुद्धोपयोगी कहिए। यद्यपि यहाँ केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मरागादिक हैं तथापि ताकी विवक्षा यहाँ न करी, अपने बुद्धिगोचररागादिक छोड़े तिस अपेक्षा याको शुद्धोपयोगी कह्या। ऐसे ही स्वपर श्रद्धानादिक भए सम्यक्त्वादिक कहे, सो बुद्धिगोचर अपेक्षा निरूपण है। सूक्ष्म भावनिकी अपेक्षा गुणस्थानादिविषै सम्यक्त्वादिकका निरूपण करणानुयोगविषै पाईए है। ऐसे ही अन्यत्र जानने। तातैं द्रव्यानुयोग के कथन की करणानुयोगतैं विधि मिलाया चाहै सो कहीं तो मिलै, कहीं न मिलै है। जैसे यथाख्यातचारित्र भए तो दोऊ अपेक्षा शुद्धोपयोग है, बहुरि नीचली दशाविषै द्रव्यानुयोग अपेक्षा तो कदाचित् शुद्धोपयोग होय अर करणानुयोग अपेक्षा सदा काल कषायअंश के सद्भावतैं शुद्धोपयोग नाहीं। ऐसे ही अन्य कथन जानि लेना।

बहुरि द्रव्यानुयोगविषै परमतविषै कहे तत्त्वादिक तिनको असत्य दिखावने के अर्थि तिनका निषेध कीजिए है, तहाँ द्वेषबुद्धि न जाननी। तिनको असत्य दिखाय सत्य श्रद्धान करावने का प्रयोजन जानना। ऐसे ही और भी अनेक प्रकारकरि द्रव्यानुयोगविषै व्याख्यान का विधान है। या प्रकार च्यारों अनुयोग के व्याख्यान का विधान कह्या। सो कोई ग्रन्थविषै एक अनुयोग की, कोई विषै दोय की, कोई विषै तीन की, कोई विषै च्यारों की प्रधानता लिए व्याख्यान हो है। सो जहाँ जैसा सम्भवै, तहाँ तैसा समझ लेना।

अब इन अनुयोगनिविषै कैसी पद्धति की मुख्यता पाईए है, सो कहिए है-

चारों अनुयोगों में व्याख्यान की पद्धति

प्रथमानुयोगविषै तो अलंकारशास्त्रनिकी वा काव्यादि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातैं अलंकारादिकतैं मन रंजायमानहोय, सूधी बात कहे ऐसा उपयोग लागै नाहीं जैसा अलंकारादि युक्ति सहित कथनतैं उपयोग लागै। बहुरि परोक्ष बात को किछू अधिकताकरि निरूपणकरिए तो वाका स्वरूप नीके भासै। बहुरि **करणानुयोगविषै** गणित आदि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातैं तहाँ द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाणादिक निरूपण कीजिए है। सो गणित ग्रन्थनिकी आम्नायतैं ताका सुगम जानपना हो है। बहुरि **चरणानुयोगविषै** सुभाषित नीतिशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातैं यहाँ आचरण करावना है, सो लोकप्रवृत्ति के अनुसार नीतिमार्ग दिखाए वह आचरण करै। बहुरि **द्रव्यानुयोगविषै** न्यायशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातैं यहाँ निर्णय करनेका प्रयोजन है अर न्यायशास्त्रनिविषै निर्णय करने का मार्ग दिखाया है। ऐसे इन अनुयोगनिविषै पद्धति मुख्य है। और भी अनेक पद्धति लिए व्याख्यान इनविषै पाईए है।

यहाँ **कोऊ कहै**- अलंकार गणित नीति न्याय का तो ज्ञान पण्डितनिके होय, तुच्छबुद्धि समझै नाहीं तातैं सूधा कथन क्यों न किया?

ताका उत्तर-शास्त्र है सो मुख्यपने पंडित अर चतुरनिके अभ्यास करने योग्य है। सो अलंकारादि

आम्नाय लिए कथन होय तो तिनका मन लागै। बहुरि जे तुच्छबुद्धि हैं, तिनको पंडित समझाय दें, अर जे न समझि सकै, तो तिनको मुखतैं सूधा ही कथन कहै। परन्तु ग्रन्थनिविषै सूधा कथन लिखै विशेषबुद्धि तिनका अभ्यासविषै विशेष न प्रवर्त्तै। तातैं अलंकारादि आम्नाय लिए कथन कीजिए है। ऐसे इन च्यारि अनुयोगनिका निरूपण किया।

बहुरि जिनमतविषै घने शास्त्र तो इन च्यारों अनुयोगनिविषै गर्भित हैं। बहुरि व्याकरण न्याय छन्द कोशादिक शास्त्र वा वैद्यक ज्योतिष मन्त्रादि शास्त्र भी जिनमतविषै पाईए है। तिनका कहा प्रयोजन है, सो सुनहु-

व्याकरण न्यायादिकका अभ्यास भए अनुयोगरूप शास्त्रनिका अभ्यास होय सकै है। तातैं व्याकरणादि शास्त्र कहे हैं।

कोऊ कहै- भाषारूप सूधा निरूपण करते तो व्याकरणादिकका कहा प्रयोजन था?

ताका **उत्तर-** भाषा तो अपभ्रंशरूप अशुद्ध वाणी है। देश-देश विषै और-और है। सो महंत पुरुष शास्त्रनिविषै ऐसी रचना कैसे करै। बहुरि व्याकरण न्यायादिकरि जैसा यथार्थ सूक्ष्म अर्थ निरूपण हो है, तैसा सूधी भाषाविषै होय सकै नाहीं। तातैं व्याकरणादि आम्नायकरि वर्णन किया है। सो अपनी बुद्धि अनुसारि थोरा बहुत इनिका अभ्यासकरि अनुयोगरूप प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यास करना। बहुरि **वैद्यकादि चमत्कारतैं जिनमतकी प्रभावना होय वा औषधादिक तैं उपकार भी बनै।** अथवा जे जीव लौकिक कार्यविषै अनुरक्त हैं ते वैद्यकादिक चमत्कारतैं जैनी होय पीछे साँचा धर्म पाय अपना कल्याण करै। इत्यादि प्रयोजन लिए वैद्यकादि शास्त्र कहे हैं। यहाँ इतना है-ए भी जिनशास्त्र हैं, ऐसा जानि इनका अभ्यासविषै बहुत लगना नाहीं। जो बहुत बुद्धितैं इनिका सहज जानना होय अर इनिको जाने आपकै रागादिक विकार बधते न जानै, तो इनिका भी जानना होहु। अनुयोग शास्त्रवत् ए शास्त्र बहुत कार्यकारी नाहीं। तातैं इनिका अभ्यासका विशेष उद्यम करना युक्त नाहीं।

यहाँ **प्रश्न-** जो ऐसे हैं तो गणधरादिक इनकी रचना काहेको करी?

ताका **उत्तर-** पूर्वोक्त किंचित् प्रयोजन जानि इनकी रचना करी। जैसे बहुत धनवान कदाचित् स्तोक कार्यकारी वस्तु का भी संचय करै। बहुरि थोरा धनवान उन वस्तुनिका संचय करै तो धन तो तहां लगि जाय, बहुत कार्यकारी वस्तुका संग्रह काहेतैं करै। तैसे बहुत बुद्धिमान गणधरादिक कथंचित् स्तोककार्यकारी वैद्यकादि शास्त्रनिका भी संचय करै। थोरा बुद्धिमान उनका अभ्यासविषै लगै तो तहाँ लगि जाय, उत्कृष्ट कार्यकारी शास्त्रनिका अभ्यास कैसे करै? बहुरि जैसे मंदरागी तो पुराणादिविषै शृंगारादि निरूपण करै तो भी विकारी न होय, तीव्ररागी तैसे शृंगारादि निरूपै तो पाप ही बाँधै। तैसे मंदरागी गणधरादिक हैं ते वैद्यकादि शास्त्र निरूपै तो भी विकारी न होय, तीव्ररागी तिनका अभ्यासविषै लगि जाय तो रागादिक बधाय पापकर्म्मको बाँधै, ऐसे जानना। या प्रकार जैनमतके उपदेशका स्वरूप जानना।

अब इनविषै दोषकल्पना कोई करै है, ताका निराकरण कीजिए है-

प्रथमानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण

कोई जीव कहै है- प्रथमानुयोगविषै शृंगारादिकका वा संग्रामादिकका बहुत कथन करै, तिनके निमित्ततैं रागादिक बधि जाय, तातैं ऐसा कथन न करना था वा ऐसा कथन सुनना नाहीं। **ताको कहिए है-** कथा कहनी होय तब तो सर्व ही अवस्था का कथन किया चाहिए। बहुरि जो अलंकारादिकरि बधाय कथन करै हैं सो पंडितनिके वचन युक्ति लिए ही निकसै।

अर जो तू कहेगा, सम्बन्ध मिलावने को सामान्य कथन किया होता, बधायकरि कथन काहेको किया?

ताका उत्तर यहु है- जो परोक्षकथनको बधाय कहे बिना वाका स्वरूप भासै नाहीं। बहुरि पहलै तो भोग-संग्रामादि ऐसे किये, पीछे सर्वका त्यागकरि मुनि भए, इत्यादि चमत्कार तबही भासै जब बधाय कथन कीजिए। बहुरि तू कहै है, ताके निमित्ततैं रागादिक बधि जाय। सो जैसे कोऊ चैत्यालय बनावै, सो वाका तो प्रयोजन तहाँ धर्मकार्य करावनेका है अर कोई पापी तहाँ पापकार्य करै तो चैत्यालय बनावनेवालेका तो दोष नाहीं। तैसे श्रीगुरु पुराणादिविषै शृंगारादि वर्णन किए, तहाँ उनका प्रयोजन रागादिक करावनेका तो है नाहीं, धर्मविषै लगावने का प्रयोजन है। अर कोई पापी धर्म न करै अर रागादिक ही बधावै, तो श्रीगुरुका कहा दोष है?

बहुरि **जो तू कहै-** जो रागादिकका निमित्त होय सो कथन ही न करना था।

ताका **उत्तर** यहु है- सरागी जीवनिका मन केवल वैराग्य कथनविषै लागै नाहीं। तातैं जैसे बालकको पतासाके आश्रय औषधि दीजिए, तैसे सरागीको भोगादि कथनके आश्रय धर्मविषै रुचि कराईए है।

बहुरि **तू कहेगा-** ऐसे है तो विरागी पुरुषनिको तो ऐसे ग्रंथनिका अभ्यास करना युक्त नाहीं।

ताका **उत्तर** यहु है- जिनकै अन्तरंगविषै रागभाव नाहीं, तिनके शृंगारादि कथन सुने रागादि उपजै ही नाहीं। यहु जानै ऐसे ही यहाँ कथन करने की पद्धति है।

बहुरि **तू कहेगा-** जिनके शृंगारादि कथन सुने रागादि होय आवै, तिनको तो वैसा कथन सुनना योग्य नाहीं।

ताका **उत्तर यहु है-** जहाँ धर्महीका तो प्रयोजन अर जहाँ तहाँ धर्म को पोषै ऐसे जैनपुराणादिक तिनविषै प्रसंग पाय शृंगारादिकका कथन किया, ताको सुनै भी जो बहुत रागी भया तो वह अन्यत्र कहाँ विरागी होसी, पुराण सुनना छोड़ि और कार्य भी ऐसा ही करेगा जहाँ बहुत रागादि होय। तातैं वाकै भी पुराण सुने थोरी बहुत धर्मबुद्धि होय तो होय और कार्यनितैं यहु कार्य भला ही है।

बहुरि **कोई कहै-**प्रथमानुयोगविषै अन्य जीवनिकी कहानी है, तातैं अपना कहा प्रयोजन सधै है?

ताको कहिए है- जैसे कामीपुरुषनिकी कथा सुने आपकै भी काम का प्रेम बधै है, तैसे धर्मात्मा पुरुषनिकी कथा सुने आपकै धर्म की प्रीति विशेष हो है। तातैं प्रथमानुयोगका अभ्यास करना योग्य है।

करणानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण

बहुरि कोई जीव कहै हैं- करणानुयोगविषै गुणस्थान मार्गणादिक का वा कर्मप्रकृतिनिका कथन किया वा त्रिलोकादिकका कथन किया, सो तिनको जानि लिया 'यहु ऐसे है', 'यहु ऐसे है', यामें अपना कार्य कहा सिद्ध भया? कै तो भक्ति करिए, कै व्रत दानादि करिए, कै आत्मानुभवन करिए, इनतैं अपना भला होय।

ताको कहिए-- परमेश्वर तो वीतराग हैं। भक्ति किए प्रसन्न होयकरि किछु करते नाहीं। भक्ति करतैं मंदकषाय हो है, ताका स्वयमेव उत्तम फल हो है। सो करणानुयोगके अभ्यासविषैं तिसतैं भी अधिक मन्द कषाय होय सकै है, तातैं याका फल अति उत्तम हो है। बहुरि व्रतदानादिक तो कषाय घटावने के बाह्य निमित्तका साधन हैं अर करणानुयोगका अभ्यास किए तहाँ उपयोग लगि जाय, तब रागादिक दूरि होय, सो यहु अंतरंग निमित्तका साधन है। तातैं यहु विशेष कार्यकारी है। व्रतादिक धारि अध्ययनादि कीजिए है। बहुरि आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है। परन्तु सामान्य अनुभवविषै उपयोग थम्भै नाहीं अर न थम्भै तब अन्य विकल्प होय, तहाँ करणानुयोगका अभ्यास होय तो तिस विचारविषै उपयोगको लगावै। यहु विचार वर्तमान भी रागादिक घटावै है अर आगामी रागादिक घटावने का कारण है तातैं यहाँ उपयोग लगावना। जीव कर्मादिकके नाना प्रकार करि भेद जानैं, तिनविषै रागादिकरने का प्रयोजन नाहीं, तातैं रागादि बधै नाहीं। वीतराग होने का प्रयोजन जहाँ-तहाँ प्रगटै है, तातैं रागादि मिटावने को कारण है।

यहाँ कोऊ कहै- कोई तो कथन ऐसा ही है परन्तु द्वीप समुद्रादिकके योजनादि निरूपै तिनमें कहा सिद्धि है?

ताका उत्तर- तिनको जान किछु तिनविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय, तातैं पूर्वोक्त सिद्धि हो है।

बहुरि वह कहै है- ऐसे है तो जिसतैं किछु प्रयोजन नाहीं ऐसा पाषाणादिकको भी जानै तहाँ इष्ट अनिष्टपनो न मानिए है, सो भी कार्यकारी भया।

ताका उत्तर- सरागी जीव रागादि प्रयोजनविना काहूको जानने का उद्यम न करै। जो स्वयमेव उनका जानना होय तो अंतरंग रागादिकका अभिप्रायके वशकरि तहाँतैं उपयोग को छुड़ाया ही चाहै है। यहाँ उद्यमकरि द्वीप-समुद्रादिकको जानै है तहाँ उपयोग लगावै है। सो रागादि घटे ऐसा कार्य होय। बहुरि पाषाणादिकविषै इस लोक का कोई प्रयोजन भासि जाय तो रागादिक होय आवै। अर द्वीपादिकविषै इस लोक सम्बन्धी कार्य किछु नाहीं तातैं रागादिकका कारण नाहीं। जो स्वर्गादिकको रचना सुनि तहाँ राग होय तो परलोक सम्बन्धी होय ताका कारण पुण्यको जानै तब पाप छोड़ि पुण्यविषै प्रवर्त्तै, इतना ही नफा होय। बहुरि द्वीपादिकके जाने यथावत् रचना भासै, तब अन्यमतादिकका कह्या झूंठ भासै, सत्य श्रद्धानी होय। बहुरि यथावत् रचना जानने करि भ्रम मिटे, उपयोगकी निर्मलता होय, तातैं यह अभ्यास कार्यकारी है।

बहुरि कोई कहै हैं- करणानुयोगविषै कठिनता घनी, तातैं ताका अभ्यासविषै खेद होय।

ताको कहिए है-जो वस्तु शीघ्र जानने में आवै, तहाँ उपयोग उलझै नाहीं अर जानी वस्तुको

बारम्बार जानने का उत्साह होय नाहीं, तब पापकार्यनिविषै उपयोग लगि जाय। तातैं अपनी बुद्धि अनुसारि कठिनताकरि भी जाका अभ्यास होता जानै ताका अभ्यास करना। अर जाका अभ्यास होय ही सकै नाहीं, ताका कैसे करै? बहुरि तू कहै है-खेद होय सो प्रमादी रहने में तो धर्म है नाहीं। प्रमादतैं सुखिया रहिए, तहाँ तो पाप ही होय। तातैं धर्म के अर्थ उद्यम करना ही युक्त है। या विचारि करणानुयोगका अभ्यास करना।

चरणानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण

बहुरि **केई जीव ऐसे कहै हैं**- चरणानुयोगविषै बाह्य व्रतादि साधनका उपदेश है, सो इनितैं किछु सिद्धि नाहीं। अपने परिणाम निर्मल चाहिए, बाह्य चाहो जैसे प्रवर्त्तो। तातैं इस उपदेशतैं पराङ्मुख रहै हैं।

तिनको **कहिए है**- आत्मपरिणामनिकै और बाह्य प्रवृत्तिकै निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। जातैं छद्मस्थकै क्रिया परिणामपूर्वक हो है। कदाचित् बिना परिणाम कोई क्रिया हो है, सो परवशतैं हो है। अपने वशतैं उद्यमकरि कार्य करिए अर कहिए परिणाम इस रूप नाहीं है, सो यहु भ्रम है। अथवा **बाह्य पदार्थ का आश्रय पाय परिणाम होय सकै हैं। तातैं परिणाम मेटने के अर्थ बाह्यवस्तुका निषेध करना समयसारादिविषै कह्या है**। इसही वास्ते रागादिभाव घटै बाह्य ऐसे अनुक्रमतैं श्रावक मुनिधर्म होय। अथवा ऐसे श्रावक मुनिधर्म अंगीकार किए पंचम षष्ठमआदि गुणस्थान तिनिविषै रागादि घटनेरूप परिणामनिकी प्राप्ति होय। ऐसा निरूपण चरणानुयोगविषै किया। बहुरि जो बाह्य संयमतैं किछु सिद्धि न होय, तो सर्वार्थसिद्धि के वासी देव सम्यग्दृष्टी बहुतज्ञानी तिनकै तो चौथा गुणस्थान होय अर गृहस्थ श्रावक मनुष्यकै पंचम गुणस्थान होय, सो कारण कहा? बहुरि तीर्थंकरादिक गृहस्थपद छोड़ि काहेको संयम ग्रहैं। तातैं यहु नियम है- **बाह्य संयम साधनविना परिणाम निर्मल न होय सकै हैं**।तातैं बाह्य साधनका विधान जाननेको चरणानुयोगका अभ्यास अवश्य किया चाहिए।

द्रव्यानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण

बहुरि **केई जीव कहै हैं** - जो द्रव्यानुयोगविषै व्रत संयमादि व्यवहारधर्मका हीनपना प्रगट किया है। सम्यग्दृष्टीके विषय-भोगादिकको निर्जराका कारण कह्या है। इत्यादि कथन सुनि जीव हैं, सो स्वच्छन्द होय पुण्य छोड़ि पापविषै प्रवर्त्तै, तातैं इनिका वांचना सुनना युक्त नाहीं। **ताको कहिए है**- जैसे गर्दभ मिश्री खाए मरै, तो मनुष्य तो मिश्री खाना न छोड़ै। तैसे विपरीतबुद्धि अध्यात्मग्रन्थ सुनि स्वच्छन्द होय, तो विवेकी तो अध्यात्मग्रन्थनिका अभ्यास न छोड़ै। इतना करै-जाको स्वच्छन्द होता जानै, ताको जैसे वह स्वच्छन्द न होय, तैसे उपदेश दे।बहुरि अध्यात्मग्रन्थनिविषै भी स्वच्छन्द होने का जहाँ तहाँ निषेध कीजिए है, तातैं जो नीके तिनको सुनै, सो तो स्वच्छन्द होता नाहीं। अर एक बात सुनि अपने अभिप्रायतैं कोऊ स्वच्छन्द होसी, तो ग्रन्थका तो दोष है नाहीं, उस जीवहीका दोष है। बहुरि जो झूंठा दोषकी कल्पनाकरि अध्यात्मशास्त्रका वांचना सुनना निषेधिए तो मोक्षमार्गका मूल उपदेश तो तहाँ ही है। ताका निषेध किए मोक्षमार्गका निषेध होय। जैसे मेघवर्षा भए बहुत जीवनिका कल्याण होय अर काहूकै उलटा टोटा पड़ै, तो तिसकी मुख्यताकरि

मेघका तो निषेध न करना। तैसे सभाविषै अध्यात्म उपदेश भए बहुत जीवनिको मोक्षमार्ग की प्राप्ति होय अर काहूकै उलटा पाप प्रवर्ते, तो तिसकी मुख्यताकरि अध्यात्मशास्त्रनि का तो निषेध न करना। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनितैं कोऊ स्वच्छन्द होय सो तो पहलै भी मिथ्यादृष्टी था अब भी मिथ्यादृष्टी ही रह्या इतना ही टोटा पड़े, जो सुगति न होय कुगति होय। अर अध्यात्म उपदेश न भए बहुत जीवनिकै मोक्षमार्ग की प्राप्तिका अभाव होय, सो यामें घने जीवनिका घना बुरा होय। तातैं अध्यात्म उपदेशका निषेध न करना।

बहुरि **कोई जीव कहै हैं**- जो द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म उपदेश है, सो उत्कृष्ट है सो ऊँची दशाको प्राप्त होय, तिनको कार्यकारी है। नीचली दशावालों को तो व्रत-संयमादिकका ही उपदेश देना योग्य है।

ताको कहिए है- जिनमतविषै तो यहु परिपाटी है, जो पहलै सम्यक्त होय पीछै व्रत होय। सो सम्यक्त स्वपरका श्रद्धान भए होय अर सो श्रद्धान द्रव्यानुयोगका अभ्यास किए होय। तातैं पहलै द्रव्यानुयोगकै अनुसार श्रद्धानकरि सम्यग्दृष्टि होय, पीछै चरणानुयोग के अनुसार व्रतादिक धारि व्रती होय। ऐसे मुख्यपनैं तो नीचली दशाविषै ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है, गौणपने जाको मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती न जानिए, ताको पहलै कोई व्रतादिकका उपदेश दीजिए है। तातैं ऊँची दशावालों को अध्यात्म अभ्यास योग्य है, ऐसा जानि नीचली दशावालों को तहाँतैं पराङ्मुख होना योग्य नाहीं।

बहुरि **जो कहोगे**- ऊँचा उपदेश का स्वरूप नीचली दशावालोंको भासै नाहीं।

ताका **उत्तर** यहु है- और तो अनेक प्रकार चतुराई जानै अर यहाँ मूर्खपना प्रगट कीजिए, सो युक्त नाहीं। अभ्यास किए स्वरूप नीके भासै है। अपनी बुद्धि अनुसार थोरा बहुत भासै परन्तु सर्वथा निरुद्यमी होनेको पोषिए, सो तो जिनमार्गका द्वेषी होना है।

बहुरि **जो कहोगे**- अबार काल निकृष्ट है, तातैं उत्कृष्ट अध्यात्म उपदेशकी मुख्यता न करनी।

ताको **कहिए है**- अबार काल साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिककरि सम्यक्तादिक होना अबार मनै नाहीं, तातैं आत्मानुभवनादिकके अर्थि द्रव्यानुयोगका अवश्य अभ्यास करना। सोई **षट्पाहुड़विषै (मोक्षपाहुड़में) कह्या है:-**

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पाझाऊण जंति सुरलोए।
लोयंते देवत्तं यत्थ चुया णिव्वुदिं जंति ।।७७।।

याका **अर्थ**- अबहू त्रिकरणकरि शुद्ध जीव आत्माको ध्यायकरि सुरलोकविषै प्राप्त हो हैं वा लौकान्तिकविषै देवपणो पावै हैं। तहाँतै च्युत होय मोक्ष जाय हैं। बहुरि[1] तातैं इस कालविषैं भी द्रव्यानुयोगका उपदेश मुख्य कहिए।

बहुरि **कोई कहै है**- द्रव्यानुयोगविषै अध्यात्मशास्त्र है, तहाँ स्वपरभेद-विज्ञानादिकका उपदेश दिया

१. यहाँ 'बहुरि' के आगे ३-४ लाइन का स्थान खरड़ाप्रति में छोड़ा गया है जिससे ज्ञात होता है कि पण्डित जी यहाँ कुछ और भी लिखना चाहते थे किन्तु लिख नहीं सके।

सो तो कार्यकारी भी घना अर समझिमें भी शीघ्र आवे परन्तु द्रव्यगुणपर्यायादिकका वा प्रमाण नय आदिक का वा अन्यमतके कहे तत्त्वादिके निराकरणका कथन किया, सो तिनिका अभ्यासतैं विकल्प विशेष होय। बहुत प्रयास किए जाननेमें आवै। तातैं इनिका अभ्यास न करना। तिनिको कहिए है-

सामान्य जाननेतैं विशेष जानना बलवान है। ज्यों-ज्यों विशेष जानैं त्यों-त्यों वस्तुस्वभाव निर्मल भासै, श्रद्धान दृढ़ होय, रागादि घटै तातैं तिस अभ्यासविषै प्रवर्त्तना योग्य है। ऐसे च्यारों अनुयोगनिविषै दोषकल्पनाकरि अभ्यासतैं पराङ्मुख होना योग्य नाहीं।

बहुरि व्याकरण न्यायादिक शास्त्र हैं, तिनका भी थोरा बहुत अभ्यास करना। जातैं इनिका ज्ञान बिना बड़े शास्त्रनिका अर्थ भासै नाहीं। बहुरि वस्तुका भी स्वरूप इनकी पद्धति जाने जैसा भासै, तैसा भाषादिककरि भासै नाहीं। तातैं परम्परा कार्यकारी जानि इनका भी अभ्यास करना परन्तु इनहीविषै फंसि न जाना। किछू इनका अभ्यासकरि प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यासविषैं प्रवर्त्तना। बहुरि वैद्यकादि शास्त्र हैं, तिनतैं मोक्षमार्गविषै किछू प्रयोजन ही नाहीं। तातैं कोई व्यवहारधर्मका अभिप्रायतैं बिनाखेद इनका अभ्यास होय जाय तो उपकारादि करना, पापरूप् न प्रवर्त्तना। अर इनका अभ्यास न होय तो मत होहु, किछू बिगार नाहीं। ऐसे जिनमतके शास्त्र निर्दोष जानि तिनका उपदेश मानना।

अपेक्षा ज्ञान के अभाव से आगम में दिखाई देने वाले परस्पर विरोध का निराकरण

अब शास्त्रनिविषै अपेक्षादिकको न जाने परस्पर विरोध भासै, ताका निराकरण कीजिए है। प्रथमादि अनुयोगनिकी आम्नायके अनुसारि जहाँ जैसे कथन किया होय, तहाँ तैसे जानि लेना। और अनुयोग का कथनको और अनुयोगका कथनतैं अन्यथा जानि सन्देह न करना। जैसे कहीं तो निर्मल सम्यग्दृष्टीहीकै शंका कांक्षा विचिकित्सा का अभाव कह्या, कहीं भय का आठवाँ गुणस्थान पर्यन्त, लोभ का दशमा पर्यन्त, जुगुप्साका आठवाँ पर्यन्त उदय कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। श्रद्धानपूर्वक तीव्र शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव भया अथवा मुख्यपने सम्यग्दृष्टी शंकादि न करै, तिस अपेक्षा चरणानुयोगविषै शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मशक्ति अपेक्षा भयादिकका उदय अष्टमादि गुणस्थान पर्यन्त पाईए है। तातैं करणानुयोगविषै तहाँ पर्यन्त तिनका सद्भाव कह्या, ऐसे ही अन्यत्र जानना। पूर्वैं अनुयोगनिका उपदेशविधानविषै कई उदाहरण कहे हैं, ते जानने अथवा अपनी बुद्धितैं समझि लेने।

बहुरि एक ही अनुयोगविषै विवक्षाके वशतैं अनेकरूप कथन करिए है। जैसे करणानुयोगविषै प्रमादनिका सप्तम गुणस्थानविषै अभाव कह्या, तहाँ कषायादिक प्रमाद के भेद कहे। बहुरि तहाँ ही कषायादिकका सद्भाव दशमादि गुणस्थान पर्यन्त कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातैं यहाँ प्रमादनिविषै तो जे शुभ अशुभ भावनि का अभिप्राय लिए कषायादिक होय तिनका ग्रहण है। सो सप्तम गुणस्थानविषै ऐसा अभिप्राय दूर भया, तातैं तिनिका तहाँ अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मादिभावनिकी अपेक्षा तिनहीका दशमादि गुणस्थान पर्यन्त सद्भाव कह्या है।

बहुरि चरणानुयोगविषै चोरी, परस्त्री आदि सप्त व्यसनका त्याग प्रथम प्रतिमाविषै कह्या, बहुरि तहाँ

ही तिनका त्याग द्वितीय प्रतिमाविषै कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातैं सप्तव्यसनविषै तो चोरी आदि कार्य ऐसे ग्रहे हैं, जिनकरि दंडादिक पावै, लोकविषै अतिनिन्दा होय। बहुरि व्रतनिविषै चोरी आदि का त्याग करनेयोग्य ऐसे कहे हैं, जे गृहस्थ धर्मविषै विरुद्ध होय वा किंचित् लोकनिंद्य होय, ऐसा अर्थ जानना। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि नाना भावनिकी सापेक्षतैं एकही भावको अन्य-अन्य प्रकार निरूपण कीजिए है। जैसे कहीं तो महाव्रतादिक चारित्रके भेद कहे, कहीं महाव्रतादि होते भी द्रव्यलिंगीको असंयमी कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातैं सम्यग्ज्ञानसहित महाव्रतादिक तो चारित्र हैं अर अज्ञानपूर्वक व्रतादिक भए भी असंयमी ही है।

बहुरि जैसे पंच मिथ्यात्वनिविषै भी विनय कह्या अर बारह प्रकार तपनिविषै भी विनय कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातैं विनय करने योग्य नहीं तिनका भी विनय करि धर्म मानना सो तो विनय मिथ्यात्व है अर धर्म पद्धतिकरि जे विनय करने योग्य हैं,तिनका यथायोग्य विनय करना, सो विनय तप है। बहुरि जैसे कहीं तो अभिमानकी निन्दा करी, कहीं प्रशंसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातैं मानकषायतैं आपको ऊँचा मनावनेके अर्थि विनयादि न करै, सो अभिमान तो निंद्य ही है अर निर्लोभपनातैं दीनता आदि न करै, सो अभिमान प्रशंसा योग्य है।

बहुरि जैसे कहीं चतुराई की निन्दा करी, कहीं प्रशंसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातैं मायाकषायतैं काहूको ठिगनेके अर्थ चतुराई कीजिए, सो तो निंद्य ही है अर विवेक लिए यथासम्भव कार्यकरनेविषै जो चतुराई होय सो श्लाघ्य ही है, ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि एक ही भावकी कहीं तो तिसतैं उत्कृष्ट भावकी अपेक्षाकरि निन्दा करी होय अर कहीं तिसतैं हीनभावकी अपेक्षाकरि प्रशंसा करी होय, तहाँ विरुद्ध न जानना। जैसे किसी शुभक्रियाकी जहाँ निन्दा करी होय, तहाँ तो तिसतैं ऊँची शुभक्रिया वा शुद्धभाव तिनकी अपेक्षा जाननी अर जहाँ प्रशंसा करी होय, तहाँ तिसतैं नीची क्रिया वा अशुभक्रिया तिनकी अपेक्षा जाननी, ऐसे ही अन्यत्र जानना। बहुरि ऐसेही काहू जीवकी ऊँचे जीवकी अपेक्षा निन्दा करी होय, तहाँ सर्वथा निन्दा न जाननी। काहूकी नीचे जीवकी अपेक्षा प्रशंसा करी होय, तो सर्वथा प्रशंसा न जाननी। यथासम्भव वाका गुण दोष जानि लेना, ऐसे ही अन्य व्याख्यान जिस अपेक्षा लिए किया होय, तिस अपेक्षा वाका अर्थ समझना।

बहुरि शास्त्रविषै एक ही शब्दका कहीं तो कोई अर्थ हो है, कहीं कोई अर्थ हो है, तहाँ प्रकरण पहचानि वाका सम्भवता अर्थ जानना। जैसे मोक्षमार्गविषै सम्यग्दर्शन कह्या तहाँ दर्शन शब्द का अर्थ श्रद्धान है अर उपयोग वर्णनविषै दर्शन शब्द का अर्थ वस्तु का सामान्य स्वरूप ग्रहण मात्र है अर इन्द्रियवर्णनविषै दर्शन शब्दका अर्थ नेत्रकरि देखने मात्र है। बहुरि जैसे सूक्ष्म बादर का अर्थ वस्तुनिका प्रमाणादि कथनविषै छोटा प्रमाण लिए होय, ताका नाम सूक्ष्म अर बड़ा प्रमाण लिए होय ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ होय। अर पुद्गल स्कंधादिका कथनविषै इन्द्रियगम्य न होय सो सूक्ष्म, इन्द्रियगम्य होय सो बादर, ऐसा अर्थ है।

जीवादिकका कथनविषै अवधि आदिका निमित्त विना स्वयमेव रुकै नाहीं ताका नाम सूक्ष्म, रुकै ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। वस्त्रादिकका कथनविषै महीन का नाम सूक्ष्म, मोटाका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। (करणानुयोग के कथनविषै पुद्गलस्कंधके निमित्ततैं रुकैं नाहीं ताका नाम सूक्ष्म है अर रुक जाय ताका नाम बादर है।)

बहुरि प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ लोकव्यवहारविषै तो इन्द्रियकरि जाननेका नाम प्रत्यक्ष है, प्रमाणभेदविषै स्पष्ट प्रतिभासका नाम प्रत्यक्ष है, आत्मानुभवनादिविषै आपविषै अवस्था होय ताका नाम प्रत्यक्ष है। बहुरि जैसे मिथ्यादृष्टी कै अज्ञान कह्या तहाँ सर्वथा ज्ञानका अभावतैं न जानना, सम्यग्ज्ञान के अभावतैं अज्ञान कह्या है। बहुरि जैसे उदीरणा शब्दका अर्थ जहाँ देवादिककै उदीरणा न कही, तहाँ तो अन्य निमित्ततैं मरण होय ताका नाम उदीरणा है अर दश करणनिका कथनविषै उदीरणाकरण देवायुकै भी कह्या, तहाँ ऊपरिके निषेकनिका द्रव्य उदयावलीविषै दीजिए ताका नाम उदीरणा है। ऐसे ही अन्यत्र यथासम्भव अर्थ जानना।

बहुरि एक ही शब्दका पूर्व शब्द जोड़े अनेक प्रकार अर्थ हो है वा उस ही शब्दके अनेक अर्थ हैं। तहाँ जैसा सम्भवै तैसा अर्थ जानना। जैसे 'जीतै' ताका नाम 'जिन' है परन्तु धर्मपद्धतिविषै कर्मशत्रुको जीतै, ताका नाम 'जिन' जानना। यहाँ कर्मशत्रु शब्दको पूर्वे जोड़े जो अर्थ होय सो ग्रहण किया, अन्य न किया, बहुरि जैसे 'प्राण धारै' ताका नाम 'जीव' है। जहाँ जीवनमरणका व्यवहार अपेक्षा कथन होय, तहाँ तो इन्द्रियादि प्राणधारै सो जीव है। बहुरि द्रव्यादिकका निश्चय अपेक्षा निरूपण होय तहाँ चैतन्यप्राणको धारै सो जीव है। बहुरि जैसे समय शब्दके अनेक अर्थ हैं तहाँ आत्माका नाम समय है, सर्व पदार्थका नाम समय है, कालका नाम समय है, समयमात्र काल का नाम समय है, शास्त्र का नाम समय है, मतका नाम समय है। ऐसे अनेक अर्थनिविषै जैसा जहाँ सम्भवै तैसा तहाँ अर्थ जानि लेना। बहुरि कहीं तो अर्थ अपेक्षा नामादिक कहिए है, कहीं रूढ़ि अपेक्षा नामादिक कहिए है, जहाँ रूढ़ि अपेक्षा नामादिक लिख्या होय, तहाँ वाका शब्दार्थ न ग्रहण करना। वाका रूढ़िवाद अर्थ होय सो ही ग्रहण करना। जैसे सम्यक्त्वादिकको धर्म कह्या तहाँ तो यहु जीवको उत्तमस्थानविषै धारै है, तातैं याका नाम सार्थक है। बहुरि धर्मद्रव्यका नाम धर्म कह्या तहाँ रूढ़ि नाम है, याका अक्षरार्थ न ग्रहण करना। इस नाम धारक एक वस्तु है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना, ऐसे ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं जो शब्दका अर्थ होता होई सो तो ग्रहण न करना अर तहाँ जो प्रयोजनभूत अर्थ होय सो ग्रहण करना। जैसे कहीं किसीका अभाव कह्या, होय अर तहाँ किंचित् सद्भाव पाईए, तो तहाँ सर्वथा अभाव ग्रहण करना। किंचित् सद्भावको न गिणि अभाव कह्या है, ऐसा अर्थ जानना। सम्यग्दृष्टी के रागादिकका अभाव कह्या, तहाँ ऐसे अर्थ जानना। बहुरि नोकषाय अर्थ तो यहु- ' कषाय का निषेध ' सो तो अर्थ न ग्रहण करना अर यहाँ क्रोधादि सारिखे ए कषाय नाहीं, किंचित् कषाय हैं तातैं नोकषाय हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसे कहीं कोई युक्तिकरि किया होय, तहाँ प्रयोजन ग्रहण करना समयसार का यहु कहा- "धोबी का दृष्टान्तवत् परभावका त्यागकी दृष्टि यावत् प्रवृत्तिको न प्राप्त भई तावत् यहु अनुभूति प्रगट भई"। सो यहाँ यहु प्रयोजन है-परभावका त्याग होते ही अनुभूति प्रगट हो है। लोकविषै काहूके आवतैं ही कोई कार्य भया होय, तहाँ ऐसे कहिए-"जो यहु आया ही नाहीं अर यहु कार्य होय गया।" ऐसा ही यहाँ प्रयोजन ग्रहण करना। ऐसे ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसे कहीं प्रमाणादिक किछु कह्या होय, सोई तहाँ न मानि लेना, तहाँ प्रयोजन होय सो जानना। ज्ञानार्णवविषै ऐसा कह्या है-"अवार दोय तीन सत्पुरुष है।"[2] सो नियमतैं इतने ही नाहीं, यहाँ 'थोरे हैं' ऐसा प्रयोजन जानना। ऐसे ही अन्यत्र जानना। इस ही रीति लिये और भी अनेक प्रकार शब्दनिके अर्थ हो हैं, तिनको यथासम्भव जानने। विपरीत अर्थ न जानना।

बहुरि जो उपदेश होय, ताको यथार्थ पहचानि जो अपने योग्य उपदेश होय ताका अंगीकार करना। जैसे वैद्यकशास्त्रनिविषै अनेक औषधि कही हैं, तिनको जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना रोग दूरि होय। आपकै शीतका रोग होय तो उष्ण औषधिका ही ग्रहण करै, शीतल औषधिका ग्रहण न करै, यहु औषधि औरनिको कार्यकारी है, ऐसा जानै। तैसे जैनशास्त्रनिविषै अनेक उपदेश हैं, तिनको जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना विकार दूरि होय। आपकै जो विकार होय ताका निषेध करनहारा उपदेशको ग्रहै, तिसका पोषक उपदेशको न ग्रहै। यहु उपदेश औरनिको कार्यकारी है, ऐसा जानै। यहाँ उदाहरण कहिए है- जैसे शास्त्रविषै कहीं निश्चयपोषक उपदेश है, कहीं व्यवहार पोषक उपदेश है। तहाँ आपकै व्यवहार का आधिक्य होय तो निश्चय पोषक उपदेशका ग्रहण करि यथावत् प्रवर्त्तै अर आपकै निश्चयका आधिक्य होय तो व्यवहारपोषक उपदेशका ग्रहणकरि यथावत् प्रवर्तैं। बहुरि पूर्वै तो व्यवहार श्रद्धानतैं आत्मज्ञानतैं भ्रष्ट होय रह्या था, पीछै व्यवहार उपदेशहीकी मुख्यताकरि आत्मज्ञानका उद्यम न करै अथवा पूर्वै तो निश्चयश्रद्धानतैं वैराग्यतैं भ्रष्ट होय स्वच्छन्द होय रह्या था, पीछै निश्चय उपदेशहीकी मुख्यताकरि विषयकषाय पोषै। ऐसे विपरीत उपदेश ग्रहे बुरा ही होय। बहुरि जैसे आत्मानुशासनविषै ऐसा कह्या- "जो तू गुणवान् होय दोष क्यों लगावै है। दोषवान् होना था तो दोषमय ही क्यों न भया[3]।" सो जो जीव आप तो गुणवान् होय अर कोई दोष लगता होय तहाँ तिस दोष दूर करने के अर्थि तिस उपदेशको अंगीकार करना। बहुरि आप तो दोषवान् है अर इस उपदेशका ग्रहणकरि गुणवान् पुरुषनिको नीचा दिखावै तो बुरा ही होय। सर्वदोषमय

---

१. अवतरति न यावद्वृत्तिमत्यन्तवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता, स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव।। (जीवाजीव अ. कलशा २९)

२. दुःप्रज्ञाबललुप्तवस्तुनिचया विज्ञानशून्याशयाः।
विद्यन्ते प्रतिमन्दिरं निजनिजस्वार्थोद्यता देहिनः।।
आनन्दामृतसिन्धुशीकरचयैर्निर्वाप्य जन्मज्वरं,
ये मुक्तेर्वदनेन्दुवीक्षणपरास्ते सन्ति द्वित्रा यदि।।२४।। - ज्ञानार्णव, पृष्ठ ८८

३. हे चन्द्रमः किमितिलाञ्छनवानभूस्त्वं,
तद्वान् भवेः किमिति तन्मय एव नाभूः।
किं ज्योत्स्नयामलमलं तव घोषयन्त्या,
स्वर्भानुवन्ननु तथा सति नाऽसि लक्ष्यः।।१४१।।

होनेतैं तो किंचित् दोषरूप होना बुरा नाहीं है तातैं तुझतैं तो वह भला है। बहुरि यहाँ यहु कह्या। "तू दोषमय ही क्यों न भया" सो यहु तर्क करी है। किछू सर्व दोषमय होने के अर्थि यहु उपदेश नाहीं है। बहुरि जो गुणवान्के किंचित् दोष भए भी निन्दा है तो सर्वदोषरहित तो सिद्ध हैं, नीचली दशाविषै तो कोई गुण कोई दोष होय-ही-होय।

यहाँ कोऊ कहै- ऐसे है, तो "मुनिलिंग धारि किंचित् परिग्रह राखै तो भी निगोद जाय[1]" ऐसा षट्पाहुड विषै कैसे कह्या है?

ताका उत्तर-ऊँची पदवी धारि तिस पदविषै न सम्भवता नीचा कार्य करै तो प्रतिज्ञाभंगादि होनेतैं महादोष लागै है अर नीची पदवीविषै तहाँ सम्भवता गुणदोष होय तो होय, तहाँ वाका दोष ग्रहण करना योग्य नाहीं, ऐसा जानना।

बहुरि उपदेशसिद्धान्तरत्नमालाविषै कह्या-"आज्ञा अनुसार उपदेश देने वाले का क्रोध भी क्षमा का भंडार है[2]।" सो यहु उपदेश वक्ता का ग्रहवा योग्य नाहीं। इस उपदेशतैं वक्ता क्रोध किया करै तो वाका बुरा ही होय। यहु उपदेश श्रोतानिका ग्रहवा योग्य है। कदाचित् वक्ता क्रोधकरिकै भी साँचा उपदेश दे तो श्रोता गुण ही मानै। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसे काहूकै अतिशीतांग रोग होय, ताके अर्थ अति उष्ण रसादिक औषधि कही है, तिस औषधि को जाकै दाह होय वा तुच्छ शीत होय सो ग्रहण करै तो दुःख ही पावै। तैसे काहूकै कोई कार्य की अतिमुख्यता होय, ताके अर्थ तिसके निषेध का अति खींचकरि उपदेश दिया होय, ताको जाकै तिस कार्य की मुख्यता न होय वा थोरी मुख्यता होय सो ग्रहण करै तो बुरा ही होय। यहाँ उदाहरण- जैसे काहूकै शास्त्राभ्यास की अतिमुख्यता अर आत्मानुभव का उद्यम ही नाहीं, ताके अर्थि बहुत शास्त्राभ्यास निषेध किया। बहुरि जाकै शास्त्राभ्यास नाहीं वा थोरा शास्त्राभ्यास है सो जीव तिस उपदेशतैं शास्त्राभ्यास छोड़े अर आत्मानुभवविषै उपयोग रहै नाहीं, तब वाका तो बुरा ही होय। बहुरि जैसे काहूकै यज्ञ स्नानादिककरि हिंसातैं धर्म मानने की मुख्यता है, ताके अर्थ " जो पृथ्वी उलटै तो भी हिंसा किए पुण्यफल न होय", ऐसा उपदेश दिया। बहुरि जो जीव पूजनादि कार्यनिकरि किंचित् हिंसा लगावै अर बहुत पुण्य उपजावै, सो जीव इस उपदेशतैं पूजनादि कार्य छोड़े अर हिंसारहित सामायिकादि धर्मविषै उपयोग लागै नाहीं, तब वाका तो बुरा ही होय। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसे कोई औषधि गुणकारी है परन्तु आपके यावत् तिस औषधितैं हित होय, तावत् तिसका ग्रहण करै। जो शीत मिटे भी उष्ण औषधिका सेवन किया ही करै तो उल्टा रोग होय। तैसे कोई धर्म कार्य

१. जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि हत्तेसु।
   जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं।।१८।। (सूत्रपाहुड)
२. रोसोवि खमाकोसो सुत्तं भासंत जस्सणधणस्स।
   उस्सुतेण खमाविय दोस महामोहआवासो।।१४।।

है परन्तु आपकै यावत् तिस धर्मकार्य तैं हित होय तावत् तिसका ग्रहण करै। जो ऊँची दशा होते नीची दशा सम्बन्धी धर्मका सेवनविषै लागै तो उल्टा विकार ही होय। यहाँ उदाहरण- जैसे पाप मेटने के अर्थि प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य कहे, बहुरि आत्मानुभव होते प्रतिक्रमणादिकका विकल्प करै तो उल्टा विकार बधै, याहीतैं समयसार विषैं प्रतिक्रमणादिकको विष कह्या है। बहुरि जैसे अव्रतीकै करने योग्य प्रभावनादि धर्मकार्य कहे, तिनको व्रती होयकरि करै तो पाप ही बाँधे। व्यापारादि आरम्भ छोड़ि चैत्यालयादि कार्यनिका अधिकारी होय सो कैसे बनै? ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसे पाकादिक औषधि पुष्टकारी है परन्तु ज्वरवान् ग्रहण करै तो महादोष उपजै। तैसे ऊँचा धर्म बहुत भला है परन्तु अपने विकारभाव दूरि न होय अर ऊँचा धर्म ग्रहै तो महादोष उपजै। यहाँ उदाहरण-जैसे अपना अशुभविकार भी न छूट्या अर निर्विकल्प दशाको अंगीकार करै तो उल्टा विकार बधै। बहुरि जैसे भोजनादि विषयनिविषै आसक्त होय अर आरम्भ त्यागादि धर्मको अंगीकार करै तो दोष ही उपजै। बहुरि जैसे व्यापारादि करनेका विकार तो न छूटै अर त्यागका भेषरूप धर्म अंगीकार करै तो महादोष उपजै। ऐसे ही अन्यत्र जानना।

याही प्रकार और भी साँचा विचारतैं उपदेशको यथार्थ जानि अंगीकार करना। बहुत विस्तार कहाँ ताईं कहिए। अपने सम्यग्ज्ञान भए आपहीको यथार्थ भासै। उपदेश तो वचनात्मक है। बहुरि वचनकरि अनेक अर्थ युगपत् कहे जाते नाहीं । तातैं उपदेश तो एक ही अर्थकी मुख्यता लिए हो है। बहुरि जिस अर्थका जहाँ वर्णन है, तहाँ तिसहीकी मुख्यता है। दूसरे अर्थ की तहाँ ही मुख्यता करै तो दोऊ उपदेश दृढ़ न होय। तातैं उपदेशविषै एक अर्थको दृढ़ करै। परन्तु सर्व जिनमत का चिह्न स्याद्वाद है सो 'स्यात्' पदका अर्थ कथंचित् है। **तातैं जो उपदेश होय ताको सर्वथा न जानि लेना। उपदेशका अर्थको जानि तहाँ इतना विचार करना, यहु उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन लिए है, किस जीवको कार्यकारी है?** इत्यादि विचारकरि तिसका यथार्थ अर्थ ग्रहण करै, पीछै अपनी दशा देखै, जो उपदेश जैसे आपको कार्यकारी होय तिसको तैसे आप अंगीकार करै अर जो उपदेश जानने योग्य ही होय तो ताको यथार्थ जानि लै। ऐसे उपदेश के फलको पावै।

यहाँ **कोई कहै**- जो तुच्छ बुद्धि इतना विचार न करि सकै सो कहा करै?

ताका **उत्तर**- जैसे व्यापारी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमें समझै सो थोरा वा बहुत व्यापार करै परन्तु नफा टोटाका ज्ञान तो अवश्य चाहिए। तैसे विवेकी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमें समझै सो थोरा वा बहुत उपदेशको ग्रहै परन्तु मुझको यहु कार्यकारी है, यहु कार्यकारी नाहीं- इतना तो ज्ञान अवश्य चाहिए। सो कार्य तो इतना है- **यथार्थ श्रद्धानज्ञानकरि रागादि घटावना। सो यहु कार्य अपने सधै, सोई उपदेशका प्रयोजन ग्रहै। विशेष ज्ञान न होय तो प्रयोजनको तो भूलै नाहीं, यहु तो सावधानी अवश्य चाहिए।** जिसमें अपने हितकी हानि होय, तैसे उपदेशका अर्थ समझना योग्य नाहीं। या प्रकार स्याद्वाददृष्टि लिए जैनशास्त्रनिका अभ्यास किए अपना कल्याण हो है।

यहाँ कोई प्रश्न करै- जहाँ अन्य-अन्य प्रकार सम्भवै, तहाँ तो स्याद्वाद सम्भवै। बहुरि एक ही प्रकारकरि शास्त्रनिविषै परस्पर विरुद्ध भासै तहाँ कहा करिए? जैसे प्रथमानुयोगविषै एक तीर्थंकरकी साथि हजारों मुक्ति गए बताए। करणानुयोगविषै छह महीना आठ समयविषै छहसै आठ जीव मुक्ति जांय- ऐसा नियम किया। प्रथमानुयोगविषै ऐसा कथन किया-देव देवांगना उपजि पीछे मरि साथ ही मनुष्यादि पर्यायविषै उपजैं; करणानुयोगविषै देवका सागरों प्रमाण, देवांगनाका पल्यों प्रमाण आयु कह्या। इत्यादि विधि कैसे मिलै?

ताका उत्तर- करणानुयोगविषै कथन है, सो तो तारतम्य लिए है, अन्य अनुयोगविषै कथन प्रयोजन अनुसार है। तातैं करणानुयोगका कथन तो जैसे किया है तैसे ही है। औरनिका कथनकी जैसे विधि मिलै, तैसे मिलाय लेनी। हजारों मुनि तीर्थंकरकी साथि मुक्ति गए बताए, तहाँ यहु जानना-एक ही काल इतने मुक्ति गए नाहीं। जहाँ तीर्थंकर गमनादि क्रिया मैटि स्थिर भए, तहाँ तिनके साथ इतने मुनि तिष्ठे, बहुरि मुक्ति आगे-पीछै गए। ऐसे प्रथमानुयोग करणानुयोगका विरोध दूरि हो है; बहुरि देव-देवांगना साथि उपजैं; पीछै देवांगना चयकरि बीचमें अन्य पर्याय धरैं, तिनका प्रयोजन न जानि कथन न किया। पीछे वह साथि मनुष्य पर्यायविषै उपजै, ऐसे विधि मिलाए विरोध दूरि हो है। ऐसे ही अन्यत्र विधि मिलाय लेनी।

बहुरि प्रश्न- जो ऐसे कथननिविषै भी कोई प्रकार विधि मिलै परन्तु कहीं नेमिनाथ स्वामीका सौरीपुरविषै, कहीं द्वारावतीविषै जन्म कह्या, रामचन्द्रादिककी कथा अन्य-अन्य प्रकार लिखी इत्यादि। एकेन्द्रियादिक को कहीं सासादन गुणस्थान लिख्या, कहीं न लिख्या इत्यादि इन कथननिकी विधि कैसे मिलै?

ताका उत्तर- ऐसे विरोध लिए कथन कालदोषतैं भए हैं। इस कालविषै प्रत्यक्ष ज्ञानी वा बहुश्रुतनिका तो अभाव भया अर स्तोकबुद्धि ग्रन्थ करने के अधिकारी भए। तिनके भ्रमतैं कोई अर्थ अन्यथा भासै ताको तैसे लिखै अथवा इस कालविषै भी कषायी भए हैं सो तिनने कोई कारण पाय अन्यथा कथन लिख्या है। ऐसे अन्यथा कथन भया, तातैं जैनशास्त्रनिविषैं विरोध भासने लागा। जहाँ विरोध भासै तहाँ इतना करना कि इस कथन करनेवाले बहुत प्रमाणीक हैं कि इस कथन करने वाले बहुत प्रमाणीक हैं। ऐसा विचारकरि बड़े आचार्यादिकनिका कह्या कथन प्रमाण करना। बहुरि जिनमतके बहुत शास्त्र हैं तिनकी आम्नाय मिलावनी। जो परम्पराआम्नायतैं मिलै, सो कथन प्रमाण करना। ऐसे विचार किए भी सत्य- असत्यका निर्णय न होय सकै तो जैसे केवलीको भास्या है तैसे प्रमाण है, ऐसे मानि लेना। जातैं देवादिकका वा तत्त्वनिका निर्द्धार भए बिना तो मोक्षमार्ग होय नाहीं। तिनिका तो निर्द्धार भी होय सकै है, सो कोई इनका स्वरूप विरुद्ध कहै तो आपहीको भासि जाय। बहुरि अन्य कथनका निर्द्धार न होय वा संशयादि रहै वा अन्यथा भी जानपना होय जाय अर केवलीका कह्या प्रमाण है ऐसा श्रद्धान रहै तो मोक्षमार्गविषै विघ्न नाहीं, ऐसा जानना।

यहाँ कोई तर्क करै- जैसे नाना प्रकार कथन जिनमतविषै कह्या, तैसे अन्यमतविषै भी कथन पाइए है। सो तुम्हारे मतके कथनका तो तुम जिस तिस प्रकार स्थापन किया, अन्यमतविषै ऐसे कथनको तुम दोष लगावो हो, सो यहु तुम्हारे रागद्वेष है।

ताका **समाधान**- कथन तो नाना प्रकार होय अर प्रयोजन एकहीको पोषै तो कोई दोष है नाहीं। अर कहीं कोई प्रयोजन पोषै, कहीं कोई प्रयोजन पोषै तो दोष ही है। सो जिनमतविषै तो एक प्रयोजन रागादि मेटने का है, सो कहीं बहुत रागादि छुड़ाय थोड़ा रागादि करावनेका प्रयोजन पोष्या है, कहीं सर्व रागादि मिटावने का प्रयोजन पोष्या है परन्तु रागादि बधावने का प्रयोजन कहीं भी नाहीं तातैं जिनमत का कथन सर्व निर्दोष है। अर अन्यमतविषै कहीं रागादि मिटावने का प्रयोजन लिए कथन करै, कहीं रागादि बधावने का प्रयोजन लिए कथन करै, ऐसे ही और भी प्रयोजन की विरुद्धता लिए कथन करै हैं तातैं अन्यमतका कथन सदोष है। लोकविषै भी एक प्रयोजन को पोषतै नाना वचन कहै, ताको प्रमाणीक कहिए है अर प्रयोजन और-और पोषती बातैं करै, ताको बावला कहिए है। बहुरि जिनमतविषै नाना प्रकार कथन है सो जुदीजुदी अपेक्षा लिए है, तहाँ दोष नाहीं। अन्यमतविषै एक ही अपेक्षा लिए अन्य-अन्य कथन करै तहाँ दोष है। जैसे जिनदेवके वीतरागभाव है अर समवसरणादि विभूति भी पाइए है, तहाँ विरोध नाहीं। समवसरणादि विभूति की रचना इन्द्रादिक करै हैं, इनकै तिसविषै रागादिक नाहीं, तातैं दोऊ बात सम्भवै हैं। अर अन्यमतविषै ईश्वरको साक्षीभूत वीतराग भी कहै अर तिसहीकरि किए काम-क्रोधादि भाव निरूपण करै, सो एक आत्मा ही के वीतरागपनो अर काम-क्रोधादि भाव कैसे सम्भवै? ऐसे ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कालदोषतैं जिनमतविषै एकही प्रकारकरि कोई कथन विरुद्ध लिख्या है। सो यहु तुच्छ बुद्धीनिकी भूलि है, किछू मतविषै दोष नाहीं। सो भी जिनमत का अतिशय इतना है कि प्रमाणविरुद्ध कथन कोई कर सकै नाहीं। कहीं सौरीपुरविषै कहीं द्वारावतीविषै नेमिनाथस्वामीका जन्म लिख्या है, सो कठै ही होहु परन्तु नगरविषै जन्म होना प्रमाणविरुद्ध नाहीं। अब भी होता दीसे है।

आगमाभ्यास का उपदेश

बहुरि अन्यमतविषै सर्वज्ञादिक यथार्थ ज्ञानी के किये ग्रन्थ बतावै, बहुरि तिनिविषै परस्पर विरुद्ध भासै। कहीं तो बालब्रह्मचारी की प्रशंसा करै, कहीं कहैं **"पुत्र बिना गति ही होय नाहीं"** सो दोऊ साँचा कैसे होय। सो ऐसे कथन तहाँ बहुत पाइए हैं। बहुरि प्रमाणविरुद्ध कथन तिनविषै पाइए है। जैसे वीर्य मुखविषै पड़नेतैं मछलीके पुत्र हूवो, सो ऐसे अबार काहूकै होता दीसै नाहीं, अनुमानतैं मिलै नाहीं। सो ऐसे भी कथन बहुत पाइए हैं। सो यहाँ सर्वज्ञादिक की भूलि मानिए सो तो वे कैसे भूलै अर विरुद्ध कथन मानने में आवे नाहीं, तातैं तिनके मतविषै दोष ठहराइए है। ऐसा जानि **एक जिनमत ही का उपदेश ग्रहण करने योग्य है।**

तहाँ प्रथमानुयोगादिक का अभ्यास करना। तहाँ पहिले याका अभ्यास करना, पीछे याका करना, ऐसा नियम नाहीं।[1] अपने परिणामनिकी अवस्था देखि जिसके अभ्यासतैं अपने धर्मविषै प्रवृत्ति होय, तिसही का अभ्यास करना। अथवा कदाचित् किसी शास्त्र का अभ्यास करै, कदाचित् किसी शास्त्र का अभ्यास

१. पूजा के अन्त में बोले जाने वाले शान्तिपाठ में चारों अनुयोगों का क्रम इस तरह बताया है- **प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः** यह क्रमपद परम्परा से चल रहा है और यह क्रम स्वाध्याय के लिए अनुकरणीय है।

करै। बहुरि जैसे रोजनामाविषै तो अनेक रकम जहाँ तहाँ लिखी हैं, तिनिको खाते में ठीक खतावै तो लेना-देना का निश्चय होय तैसे शास्त्रनिविषै तो अनेक प्रकार उपदेश जहाँ-तहाँ दिया है, ताको सम्यग्ज्ञानविषै यथार्थ प्रयोजन लिए पहिचानै तो हित-अहित का निश्चय होय। तातैं स्यात्पद की सापेक्ष लिए सम्यग्ज्ञानकरि जे जीव जिनवचननिविषै रमै हैं, ते जीव शीघ्र ही शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त हो हैं। मोक्षमार्गविषै पहिला उपाय आगमज्ञान कहा है। आगमज्ञान बिना और धर्म का साधन होय सकै नाहीं। तातैं तुमको भी यथार्थ बुद्धिकरि आगम अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै उपदेशस्वरूप-
प्रतिपादक नामा आठवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया।

卐 卐 卐

ॐ

卐 नवमा अधिकार 卐

मोक्षमार्ग का स्वरूप

❋ दोहा ❋

शिवउपाय करते प्रथम, कारन मंगलरूप ।

विघनविनाशक सुखकरन, नमौं शुद्ध शिवभूप ।।१।।

अथ मोक्षमार्ग का स्वरूप कहिए है- पहिलै मोक्षमार्ग के प्रतिपक्षी मिथ्यादर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाया। तिनिको तो दुःख रूप दुःख का कारन जानि हेय मानि तिनिका त्याग करना। बहुरि बीच में उपदेश का स्वरूप दिखाया। ताको जानि उपदेशको यथार्थ समझना। अब मोक्ष के मार्ग सम्यग्दर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाइए है। इनिको सुखरूप सुखका कारण जानि उपादेय मानि अंगीकार करना। जातैं **आत्मा का हित मोक्ष ही है।** तिसहीका उपाय आत्माको कर्तव्य है। तातैं इसहीका उपदेश यहाँ दीजिए है। तहाँ आत्माका हित मोक्ष ही है और नाहीं- ऐसा निश्चय कैसे होय सो कहिए है-

आत्मा का हित एक मोक्ष ही है

आत्माके नाना प्रकार गुणपर्यायरूप अवस्था पाइए है। तिनविषै और तो कोई अवस्था होहू, किछु आत्माका बिगाड़ सुधार नाहीं। एक दुःख सुख अवस्थातैं बिगाड़ सुधार है। सो इहाँ किछु हेतु दृष्टांत चाहिए नाहीं। प्रत्यक्ष ऐसे ही प्रतिभासै है।

लोकविषै जेते आत्मा हैं, तिनिकै एक उपाय यहु पाईए है-दुःख न होय, सुख ही होय। बहुरि अन्य उपाय भी जेते करै हैं, तेते एक इस ही प्रयोजन लिये करै हैं, दूसरा प्रयोजन नाहीं। जिनके 'निमित्ततैं' दुःख होता जानै, तिनिको दूर करने का उपाय करै हैं अर जिनके निमित्ततैं सुख होता जानैं, तिनिके होने का उपाय करै हैं। बहुरि संकोच विस्तार आदि अवस्था भी आत्माहीकै हो है। वा अनेक परद्रव्यनिका भी संयोग मिलै है परन्तु जिनकरि सुख-दुःख होता न जानै, तिनके दूर करने का वा होने का कुछ भी उपाय कोऊ करै नाहीं। सो इहाँ आत्मद्रव्यका ऐसा ही स्वभाव जानना। और तो सर्व अवस्थाको सहि सकै, एक दुःखको सह सकता नाहीं। परवश दुःख होय तो यहु कहा करै ताको भोगवै परन्तु स्ववशपने तो किंचित् भी दुःखको न सहै। अर संकोच विस्तारादि अवस्था जैसी होय तैसी होहु, तिनिको स्ववशपने भी भोगवै, सो **स्वभावविषै**

तर्क नाहीं। आत्माका ऐसा ही स्वभाव जानना। देखो, दुःखी होय तब सूता चाहै, सो सोवने में ज्ञानादिक मन्द हो जाय है परन्तु जड़ सरिखा भी होय दुःखको दूरि किया चाहै है वा मूआ चाहै। सो मरने में अपना नाश मानै है परन्तु अपना भी अस्तित्व खोय दुःख दूर किया चाहै है। तातैं एक दुःखरूप पर्यायका अभाव करना ही याका कर्तव्य है। बहुरि दुःख न होय सो ही सुख है। जातैं आकुलतालक्षण लिए दुःख तिसका अभाव सोई **निराकुल लक्षण सुख है।** सो यहु भी प्रत्यक्ष भासै है। बाह्य कोई सामग्री का संयोग मिलो, जाकै अंतरंगविषै आकुलता है सो दुःखी ही है। जाकै आकुलता नाहीं सो सुखी है। बहुरि आकुलता हो है, सो रागादिक कषायभाव भये हो है। जातैं रागादिभावनिकरि यहु तो द्रव्यनिको और भाँति परिणमाया चाहै अर वे द्रव्य और भाँति परिणमैं, तब याकै आकुलता होय तहाँ कै तो आपकै रागादिक दूरि होय, कै आप चाहै तैसे ही सर्व द्रव्य परिणमै तो आकुलता मिटै। सो सर्वद्रव्य तो याके आधीन नाहीं। कदाचित् कोई द्रव्य जैसी याकी इच्छा होय तैसे ही परिणमै, तो भी याकी सर्वथा आकुलता दूरि न होय। सर्व कार्य याका चाह्या ही होय, अन्यथा न होय, तब यहु निराकुल रहै। सो यहु तो होय ही सकै नाहीं। जातैं **कोई द्रव्यका परिणमन कोई द्रव्यके आधीन नाहीं** तातैं अपने रागादि भाव दूरि भए निराकुलता होय सो यहु कार्य बनि सकै है। जातैं **रागादिक भाव आत्माका स्वभाव भाव तो है नाहीं, उपाधिकभाव हैं, परनिमित्ततैं भए हैं, सो निमित्त मोहकर्मका उदय है।** ताका अभाव भए सर्व रागादिक विलय होय जांय, तब आकुलता नाश भए दुःख दूरि होय सुखकी प्राप्ति होय। तातैं मोहकर्मका नाश हितकारी है।

बहुरि तिस आकुलताको सहकारी कारण ज्ञानावर्णादिकका उदय है। ज्ञानावर्ण दर्शनावर्णके उदयतैं ज्ञानदर्शन सम्पूर्ण न प्रगटै, तातैं याकै देखने जाननेकी आकुलता होय अथवा यथार्थ सम्पूर्ण वस्तुका स्वभाव न जानै, तब रागादिरूप होय प्रवर्तै, तहाँ आकुलता होय।

बहुरि अंतरायके उदयतैं इच्छानुसार दानादि कार्य न बनै, तब आकुलता होय। इनिका उदय है, सो मोहका उदय होते आकुलताको सहकारी कारण है। मोहके उदयका नाश भए इनिका बल नाहीं। अंतर्मुहूर्तकालकरि आपै आप नाशको प्राप्त होय। परन्तु सहकारी कारण भी दूरि होय जाय, तब प्रगट रूप निराकुल दशा भासै। तहाँ केवलज्ञानी भगवान अनन्तसुखरूप दशाको प्राप्त कहिए।

बहुरि अघाति कर्मनिका उदयके निमित्ततैं शरीरादिकका संयोग हो है, सो मोहकर्म का उदय होतैं शरीरादिकका संयोग आकुलताको बाह्य सहकारी कारण है। अंतरंग मोहका उदयतैं रागादिक होय अर बाह्य अघाति कर्मनिके उदयतैं रागादिकको कारण शरीरादिकका संयोग होय, तब आकुलता उपजै है। बहुरि मोहका उदय नाश भए भी अघातिकर्मका उदय रहै है, सो किछू भी आकुलता उपजाय सकै नाहीं। परन्तु पूर्वै आकुलताका सहकारी कारण था, तातैं अघाति कर्मनिका भी नाश आत्माको इष्ट ही है। सो केवलीकै इनिके होते किछु दुःख नाहीं तातैं इनिके नाशका उद्यम भी नाहीं। परन्तु मोहका नाश भए ए कर्म आपै आप थोरे ही कालमें सर्व नाशको प्राप्त होय जाय हैं। ऐसे सर्व कर्मका नाश होना आत्माका हित है। बहुरि सर्व कर्मके नाशहीका नाम मोक्ष है। तातैं आत्माका हित एक मोक्ष ही है- और किछू नाहीं, ऐसा निश्चय करना।

इहाँ कोऊ कहै- संसार दशाविषै पुण्यकर्मका उदय होते भी जीव सुखी हो है, तातैं केवल मोक्ष ही हित है, ऐसा काहेको कहिए?

सांसारिक सुख दुःख ही है

ताका **समाधान**- संसारदशाविषै सुख तो सर्वथा है ही नाहीं, दुःख ही है। परन्तु काहूके कबहूँ बहुत दुःख हो है, काहूकै कबहूँ थोरा दुःख हो है। सो पूर्वै बहुत दुःख था वा अन्य जीवनिकैं बहुत दुःख पाइए है, तिस अपेक्षातैं थोरे दुःखवालेको सुखी कहिए। बहुरि तिस ही अभिप्रायतैं थोरे दुःखवाला आपको सुखी मानै है। परमार्थतैं सुख है नाहीं। बहुरि जो थोरा भी दुःख सदाकाल रहै है, तो वाका भी हित ठहराइए, सो भी नाहीं। थोरे काल ही पुण्यका उदय रहै, तहाँ थोरा दुःख होय पीछै बहुत दुःख होइ जाय। तातैं संसार अवस्था हितरूप नाहीं। जैसे काहूकै विषम ज्वर है, ताकै कबहू असाता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी असाता होय, तब वह आपको नीका मानै लोक भी कहैं-नीका है। परन्तु परमार्थतैं यावत् ज्वर का सद्भाव है, तावत् नीका नाहीं है। तैसे संसारीकै मोहका उदय है। ताकै कबहू आकुलता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है, थोरी आकुलता होय तब वह आपको सुखी मानै। लोक भी कहैं-सुखी है। परन्तु **परमार्थतैं यावत् मोहका सद्भाव है, तावत् सुख नाहीं**। बहुरि सुनि, संसार दशाविषै भी आकुलता घटे सुख नाम पावै है। आकुलता बधे दुःख नाम पावै है। किछू बाह्य सामग्रीतैं सुख दुःख नाहीं। जैसे काहू दरिद्रीकै किंचित् धनकी प्राप्ति भई, तहाँ किछू आकुलता घटनेतैं वाको सुखी कहिए अर वह भी आपको सुखी मानै। बहुरि काहू बहुत धनवानकै किंचित् धनकी हानि भई, तहाँ किछू आकुलता बधनेतैं वाको दुःखी कहिए अर वह भी आपको दुःखी मानै है। ऐसे ही सर्वत्र जानना।

बहुरि आकुलता घटना-बधना भी बाह्य सामग्री के अनुसार नाहीं, कषाय भावनिके घटने-बधनेके अनुसार है।

विशेष : स्वयं पण्डित टोडरमलजी इसी ग्रन्थ के आठवें अधिकार में 'चरणानुयोग में दोषकल्पना का निराकरण' प्रकरण में लिखते हैं- **"अथवा बाह्य पदार्थ का आश्रय पाय परिणाम होय सकै है। तातैं परिणाम मेटने के अर्थि बाह्य वस्तु का निषेध करना समयसारादि विषै कह्या है।"**

समयसार सदृश आध्यात्मिक ग्रन्थ में भी कहा है कि **तत एव चाध्यवसानाश्रयभूतस्य बाह्यवस्तुनोऽत्यन्तप्रतिषेधः (कृतः)। हेतुप्रतिषेधेनैव हेतुमत् प्रतिषेधात्। अर्थ** : इसीलिए रागादि की आश्रयभूत बाह्यवस्तु का अत्यन्त निषेध किया है-त्याग कराया है। क्योंकि कारण के निषेध से ही कार्य का निषेध हो जाता है। **(स.सा. २६५)**

जैसे काहूकै थोरा धन है अर वाकै संतोष है, तो वाकै आकुलता थोरी है। बहुरि काहूकै बहुत धन है अर वाकै तृष्णा है, तो वाकै आकुलता घनी है। बहुरि काहूको काहूने बहुत बुरा कह्या अर वाकै क्रोध

न भया, सो याकै आकुलता न हो है अर थोरी बातैं कहे ही क्रोध होय आवै, तो याकै आकुलता घनी हो है। बहुरि जैसे गउकै बछड़ेतैं किछू भी प्रयोजन नाहीं परन्तु मोह बहुत, तातैं याकी रक्षा करनेकी बहुत आकुलता हो है। बहुरि सुभटके शरीरादिकतैं घने कार्य सधै हैं परन्तु रणविषै मानादिककरि शरीरादिकतैं मोह घटि जाय, तब मरनेकी भी थोरी आकुलता हो है। तातैं ऐसा जानना- संसार अवस्थाविषै भी आकुलता घटने बधने ही तैं सुख-दुःख मानिए है। बहुरि आकुलताका घटना बधना रागादिक कषाय घटने बधने के अनुसार है। बहुरि परद्रव्यरूप बाह्य सामग्रीके अनुसारि सुख दुःख नाहीं। कषायतैं याकै इच्छा उपजै अर याकी इच्छा अनुसारि बाह्य सामग्री मिले, तब याका किछू कषाय उपशमनेतैं आकुलता घटै, तब सुख मानै अर इच्छानुसारि सामग्री न मिले, तब कषाय बधनेतैं आकुलता बधै, तब दुःख मानै। सो है तो ऐसे अर यह जानै- मोकूं परद्रव्यके निमित्ततैं सुख-दुःख हो है। सो ऐसा जानना भ्रम ही है। तातैं इहाँ ऐसा विचार करना, जो संसार अवस्थाविषै किंचित् कषाय घटे सुख मानिए, ताको हित जानिए, तो जहाँ सर्वथा कषाय दूर भए वा कषायके कारण दूरि भए परम निराकुलता होनेकरि अनन्तसुख पाइए ऐसी मोक्षअवस्था को कैसे हित न मानिए? बहुरि संसार अवस्थाविषै उच्च पदको पावै, तो भी कै तो विषयसामग्री मिलावनेकी आकुलता होय, कै विषय-सेवनकी आकुलता होय, कै अपने और कोई क्रोधादि कषायतैं इच्छा उपजै, ताको पूरण करनेकी आकुलता होय, कदाचित् सर्वथा निराकुल होय सकै नाहीं, अभिप्रायविषै तो अनेक प्रकार आकुलता बनी ही रहै। अर बाह्य कोई आकुलता मेटनेके उपाय करै, सो प्रथम तो कार्य सिद्ध होय नाहीं अर जो भवितव्य योगतैं वह कार्य सिद्ध होय जाय, तो तत्काल और आकुलता मेटनेका उपायविषै लागै। ऐसे आकुलता मेटनेकी आकुलता निरन्तर रह्या करै। जो ऐसी आकुलता न रहै तो नये-नये विषयसेवनादि कार्यनिविषै काहेको प्रवर्त्तै है? तातैं संसार अवस्थाविषै पुण्यका उदयतैं इन्द्र अहमिन्द्रादि पद पावै तो भी निराकुलता न होय, दुःखी ही रहै। तातैं संसार अवस्था हितकारी नाहीं।

बहुरि मोक्षअवस्थाविषै कोई ही प्रकारकी आकुलता रही नाहीं तातैं आकुलता मेटनेका उपाय करने का भी प्रयोजन नाहीं। सदा काल शांतरसकरि सुखी रहै। तातैं मोक्ष अवस्थाही हितकारी है। पूर्वै भी संसार अवस्थाका दुःखका अर मोक्ष अवस्थाका सुखका विशेष वर्णन किया है, सो इसही प्रयोजनके अर्थि किया है। ताको भी विचारि मोक्षको हितरूप जानि मोक्षका उपाय करना, सर्व उपदेशका तात्पर्य इतना है।

इहाँ प्रश्न- जो मोक्षका उपाय काललब्धि आए भवितव्यानुसारि बनै है कि मोहादिकका उपशमादि भए बनै है कि अपने पुरुषार्थतैं उद्यम किए बनै है, सो कहो। जो पहिले दोय कारण मिले बनै है, तो हमको उपदेश काहेको दीजिए है अर पुरुषार्थतैं बनै है, तो उपदेश सर्व सुनै, तिनविषै कोई उपाय कर सकै, कोई न करि सकै सो कारण कहा?

मोक्षसाधन में पुरुषार्थ की मुख्यता

ताका समाधान- एककार्यहोनेविषै अनेक कारण मिलै हैं। सो मोक्षका उपाय बनै हैं। तहाँ तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलै हैं अर न बनै हैं, तहाँ तीनों ही कारण न मिलै हैं। पूर्वोक्त तीन कारण कहे,

तिनविषै काललब्धि वा होनहार तो किछू वस्तु नाहीं। जिस कालविषै कार्य बनै सोई काललब्धि अर जो कार्य भया सोई होनहार।

विशेष : इस कथन में पण्डितजी ने काललब्धि का सामान्य कथन किया है। विशेष की अपेक्षा इस वाक्य पर सीधी **पंडित मोतीचन्दजी व्याकरणाचार्य { अष्टसहस्री व समयसार के महाटीकाकार }** द्वारा प्रवर्णित समीक्षा यहाँ उद्धृत की जाती है-

" काललब्धि जिनागम का पारिभाषिक शब्द है। उसका अर्थ जानने के लिए निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत हैं। देखिए- (१) तत्र काललब्धिस्तावत् कर्माविष्ट आत्मा भव्यः कालेऽर्द्धपुद्गल-परिवर्तनाख्येऽवशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य योग्यो भवति। इयम् एका काललब्धिः (२) अपरा कर्मस्थितिका काललब्धिः। उत्कृष्ट-स्थितिकेषु कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु च प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति। क्व तर्हि भवति? अन्तःकोटाकोटिसागरोपमस्थितिकेषु कर्मसु बन्धमापद्यमानेसु विशुद्धिपरिणामवशात् सत्कर्मसु च ततः संख्येयसागरोपमसहस्रोनायामन्तः कोटाकोटिसागरोपमस्थितौ स्थापितेषु प्रथमसम्यक्त्वयोग्यो भवति (३) अपरा काललब्धिर्भवापेक्षया। भव्यः पञ्चेन्द्रियः संज्ञीपर्याप्तकः सर्वविशुद्धः प्रथम-सम्यक्त्वमुत्पादयति।

अर्थ- काललब्धि का स्वरूप कहा जाता है-(१) कर्मबद्ध भव्यात्मा अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनसंज्ञक काल शेष रहने पर प्रथम सम्यक्त्व-ग्रहण के योग्य होता है, अधिक काल शेष रहने पर प्रथम सम्यक्त्व ग्रहण के योग्य नहीं होता। इस प्रकार यह एक काललब्धि हुई।(२) दूसरी काललब्धि कर्मस्थितिक है- कर्म उत्कृष्ट स्थिति वाला और जघन्य स्थिति वाला होने पर सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती। यदि ऐसा है तो वह कब होती है?

अन्तःकोटाकोटी सागरोपम स्थिति वाले कर्म जब होते हैं और जब विशुद्धि परिणाम के कारण संख्यात सागरोपमसहस्र कम अन्तःकोटाकोटीसागरोपम स्थिति वाले कर दिये जाते हैं तब जीव प्रथम सम्यक्त्व के योग्य होता है।

(३) भव की अपेक्षा से अन्य काललब्धि-भव्य, पंचेन्द्रिय, संज्ञी, पर्याप्तक और सर्वविशुद्ध जीव प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति करता है। इस प्रकार तीन काललब्धियाँ होने पर सम्यक्त्व मात्र या सम्यक्त्व व संयम दोनों हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

सार- ऊपर जो सर्वार्थसिद्धि २/३ तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक २/३/२ तथा अमितगति पंचसंग्रह संस्कृत १/२८६ तथा अनगार धर्मामृत टीका २/४६ का सार रूप संस्कृत प्रकरण देकर अर्थ किया है उसमें लिखा काललब्धि का स्वरूप उचित है। अतः मोक्षमार्गप्रकाशक का कथन सामान्य कथन है।

बहुरि जो कर्मका उपशमादिक है, सो पुद्‌गल की शक्ति है, ताका आत्मा कर्त्ता-हर्त्ता नाहीं। बहुरि पुरुषार्थतैं उद्यम करिए है, सो यहु आत्माका कार्य है। तातैं आत्माको पुरुषार्थकरि उद्यम करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ यहु आत्मा जिस कारणतैं कार्यसिद्धि अवश्य होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ तो अन्य कारण मिलै ही मिलै अर कार्यकी भी सिद्धि होय ही होय। बहुरि जिस कारणतैं कार्य की सिद्धि होय अथवा नाहीं भी होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ अन्य कारणं मिलै तो कार्यसिद्धि होय, न मिलै तो सिद्धि न होय। सो जिनमतविषै जो मोक्षका उपाय कह्या है, सो इसतैं मोक्ष होय ही होय। तातैं जो जीव पुरुषार्थकरि जिनेश्वरका उपदेश अनुसार मोक्ष का उपाय करै है, ताकै काललब्धि वा होनहार भी भया अर कर्मका उपशमादि भया है तो यहु ऐसा उपाय करै है। तातैं **जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय करै है, ताकै सर्वकारण मिलै हैं, ऐसा निश्चय करना अर वाकै अवश्य मोक्षकी प्राप्ति हो है।** बहुरि जो जीव पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै, ताकै काललब्धि वा होनहार भी नाहीं अर कर्मका उपशमादि न भया है तो यहु उपाय न करै है। तातैं जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै है, ताकै कोई कारण मिलै नाहीं ऐसा निश्चय करना अर वाकै मोक्षकी प्राप्ति न हो है। बहुरि तू **कहै है**- उपदेश तो सर्व सुनै है, कोई मोक्ष का उपाय करि सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा? सो कारण यहु ही है- **जो उपदेश सुनि पुरुषार्थ करै है, सो मोक्षका उपाय करि सकै है अर पुरुषार्थ न करै है सो मोक्षका उपाय न करि सकै है। उपदेश तो शिक्षा मात्र है, फल पुरुषार्थ करै तैसा लागै।**

द्रव्यलिंगी के मोक्षोपयोगी पुरुषार्थ का अभाव

बहुरि **प्रश्न**- जो द्रव्यलिंगी मुनि मोक्षके अर्थि गृहस्थपनो छोड़ि तपश्चरणादि करै है, तहाँ पुरुषार्थ तो किया, कार्य सिद्ध न भया, तातैं पुरुषार्थ किए तो किछू सिद्धि नाहीं।

ताका **समाधान**- अन्यथा पुरुषार्थकरि फल चाहै, तो कैसे सिद्धि होय? तपश्चरणादि व्यवहार-साधनविषै अनुरागी होय प्रवर्त्तै, ताका फल शास्त्रविषै तो शुभबंध कह्या अर यहु तिसतैं मोक्ष चाहै है, तो कैसे होय। यहु तो भ्रम है।

बहुरि **प्रश्न**- जो भ्रमका भी तो कारण कर्म ही है, पुरुषार्थ कहा करै?

ताका **उत्तर**- सांचा उपदेशतैं निर्णय किए भ्रम दूरि हो है। सो ऐसा पुरुषार्थ न करै है, तिसहीतैं भ्रम रहै है। निर्णय करनेका पुरुषार्थ करै, तो भ्रमका कारण मोहकर्म ताका भी उपशमादि होय, तब भ्रम दूरि होय जाय। जातैं निर्णय करतां परिणामनिकी विशुद्धता होय, तिसतैं मोहका स्थिति अनुभाग घटै है।

बहुरि **प्रश्न**- जो निर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै है, ताका भी तो कारण कर्म है।

ताका **समाधान**- एकेन्द्रियादिककै विचार करने की शक्ति नाहीं, तिनकै तो कर्महीका कारण है। याकै तो ज्ञानावरणादिकका क्षयोपशमतैं निर्णय करने की शक्ति भई। जहाँ उपयोग लगावै, तिसहीका निर्णय होय सकै। परन्तु यह अन्य निर्णय करनेविषै उपयोग लगावै, यहाँ उपयोग न लगावै। सो यह तो याहीका दोष है, कर्मका तो किछु प्रयोजन नाहीं।

बहुरि प्रश्न-जो सम्यक्त्व चारित्रका घातक मोह है, ताका अभाव भए बिना मोक्षका उपाय कैसे बनै?

ताका उत्तर- तत्त्वनिर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै, सो तो याहीका दोष है। बहुरि पुरुषार्थकरि तत्त्वनिर्णयविषै उपयोग लगावै, तब स्वयमेव ही मोहका अभाव भए सम्यक्त्वादिरूप मोक्षके उपायका पुरुषार्थ बनै है। सो मुख्यपने तो तत्त्वनिर्णयविषै उपयोग लगावनेका पुरुषार्थ करना, बहुरि उपदेश भी दीजिए है सो इस ही पुरुषार्थ करावने के अर्थि दीजिए है बहुरि इस पुरुषार्थतैं मोक्षके उपायका पुरुषार्थ आपहीतैं सिद्ध होयगा। अर तत्त्वनिर्णय न करनेविषै कोई कर्म का दोष है नाहीं, तेरा ही दोष है। अर तू आप तो महन्त रह्या चाहै अर अपना दोष कर्मादिककै लगावै, सो जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भवै नाहीं। तोको विषय-कषायरूपही रहना है, तातैं झूंठ बोलै है। मोक्षकी सांची अभिलाषा होय, तो ऐसी युक्ति काहेको बनावै। संसारीक कार्यनिविषै अपना पुरुषार्थतैं सिद्धि न होती जानै तौ भी पुरुषार्थकरि उद्यम किया करै, यहाँ पुरुषार्थ खोय बैठै। सो जानिए है, मोक्षको देखादेखी उत्कृष्ट कहै है। वाका स्वरूप पहचानि ताको हितरूप न जानै है। हित जानि ताका उद्यम बनै सो न करै, यहु असम्भव है।

द्रव्य और भाव कर्म की परम्परा में पुरुषार्थ के न होने का खण्डन

इहाँ प्रश्न- जो तुम कह्या सो सत्य, परन्तु द्रव्यकर्म के उदयतैं भावकर्म होय, भावकर्मतैं द्रव्यकर्म का बंध होय, बहुरि ताके उदयतैं भावकर्म होय, ऐसे ही अनादितैं परम्परा है, तब मोक्ष का उपाय कैसे होय सकै?

ताका समाधान- कर्म का बंध वा उदय सदाकाल समान ही हुवा करै तो तो ऐसे ही है; परन्तु परिणामनिके निमित्ततैं पूर्वबद्ध कर्मका भी उत्कर्षण-अपकर्षण-संक्रमणादि होतैं तिनकी शक्ति हीन अधिक होय है तातैं तिनका उदय भी मन्द तीव्र हो है। तिनके निमित्ततैं नवीन बंध भी मन्द तीव्र हो है। तातैं संसारी जीवनिकै कर्मउदयके निमित्त करि कबहूँ ज्ञानादिक घने प्रगट हो हैं, कबहूँ थोरे प्रगट हो हैं। कबहूँ रागादिक मन्द हो हैं कबहूँ तीव्र हो है। ऐसे पलटनि हुवा करै है। तहाँ कदाचित् संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पर्याय पाया, तब मनकरि विचार करने की शक्ति भई। बहुरि याकै कबहूँ तीव्र रागादिक होय, कबहूँ मन्द होय। तहाँ रागादिकका तीव्र उदय होतैं तो विषयकषायादिकके कार्यनिविषै ही प्रवृत्ति होय। बहुरि रागादिकका मन्द उदय होतैं बाह्य उपदेशादिकका निमित्त बनै अर आप पुरुषार्थकरि तिन उपदेशादिक विषै उपयोगको लगावै तो धर्मकार्यनिविषै प्रवृत्ति होय। अर निमित्त न बनै वा आप पुरुषार्थ न करै, तो अन्य कार्यनिविषै ही प्रवर्त्तै परन्तु मन्द रागादि लिए प्रवर्त्तै, ऐसे अवसरविषै उपदेश कार्यकारी है। विचारशक्तिरहित एकेन्द्रियादिक हैं, तिनिकै तो उपदेश समझनेका ज्ञान ही नाहीं। अर तीव्ररागादिसहित जीवनिका उपदेशविषै उपयोग लागै नाहीं। **तातैं जो जीव विचारशक्तिसहित होय अर जिनकै रागादि मंद होय, तिनको उपदेशका निमित्ततैं धर्मकी प्राप्ति होय जाय, तो ताका भला होय। बहुरि इस ही अवसरविषै पुरुषार्थ कार्यकारी है।** एकेन्द्रियादिक तो धर्मकार्य करने को समर्थ ही नाहीं, कैसे पुरुषार्थ करै अर तीव्रकषायी पुरुषार्थ करै सो पाप

ही का करै- धर्मकार्यका पुरुषार्थ होय सकै नाहीं। तातैं विचारशक्तिसहित होय अर जिसके रागादिक मन्द होय, सो जीव पुरुषार्थकरि उपदेशादिकके निमित्ततैं तत्त्वनिर्णयादिविषै उपयोग लगावै, तो याका उपयोग तहाँ लगै, तब याका भला होय। बहुरि इस अवसरविषै भी तत्त्वनिर्णय करनेका पुरुषार्थ न करै, प्रमादतैं काल गमावै। कै तो मन्दरागादि लिए विषयकषायनिके कार्यनिहीविषै प्रवर्त्तै, कै व्यवहार धर्मकार्यनिविषै प्रवर्त्तै, तब अवसर तो जाता रहै, संसारहीविषै भ्रमण होय।

बहुरि इस अवसरविषै जे जीव पुरुषार्थकरि तत्त्वनिर्णय करने विषै उपयोग लगावनेका अभ्यास राखै, तिनिकै विशुद्धता बधै, ताकरि कर्मनिकी शक्ति हीन होय। कितेक कालविषै आपैआप दर्शनमोहका उपशम होय तब याकै तत्त्वनिकी यथावत् प्रतीति आवै। सो याका तो कर्त्तव्य तत्त्वनिर्णयका अभ्यास ही है। इसहीतैं दर्शनमोहका उपशम तो स्वयमेव होय। यामें जीवका कर्त्तव्य किछू नाहीं। बहुरि ताको होते जीवकै स्वयमेव सम्यग्दर्शन होय। बहुरि सम्यग्दर्शन होतैं श्रद्धान तो यहु भया- मैं आत्मा हूँ , मुझको रागादिक न करने परन्तु चारित्रमोहके उदयतैं रागादिक हो हैं। तहाँ तीव्र उदय होय, तब तो विषयादिविषै प्रवर्त्तै है। अर मन्द उदय होय, तब अपने पुरुषार्थतैं धर्मकार्यनिविषै वा वैराग्यादिभावनाविषै उपयोगको लगावै है ताके निमित्ततैं चारित्रमोह मन्द होता जाय, ऐसे होतैं देशचारित्र वा सकलचारित्र अंगीकार करने का पुरुषार्थ प्रगट होय। बहुरि चारित्रको धारि अपना पुरुषार्थकरि धर्मविषै परणतिको बधावै, तहाँ विशुद्धता करि कर्मकी हीन शक्ति होय, तातैं विशुद्धता बधै, ताकरि अधिक कर्मकी शक्ति हीन होय। ऐसे क्रमतैं मोहका नाश करै तब सर्वथा परिणाम विशुद्ध होय तिनकरि ज्ञानावर्णादिका नाश होय तब केवलज्ञान प्रगट होय। तहाँ पीछे बिना उपाय अघाति कर्मका नाशकरि शुद्धसिद्धपदको पावै। ऐसे उपदेशका तो निमित्त बनै अर अपना पुरुषार्थ करै, तो कर्मका नाश होय।

बहुरि जब कर्मका उदय तीव्र होय, तब पुरुषार्थ न होय सकै है। ऊपरले गुणस्थाननितैं भी गिर जाय है। तहाँ तो जैसा होनहार होय तैसा ही होय। परन्तु जहाँ मन्द उदय होय अर पुरुषार्थ होय सकै, तहाँ तो प्रमादी न होना-सावधान होय अपना कार्य करना। जैसे कोऊ पुरुष नदीका प्रवाहविषै पड़्या बहै है, तहाँ पानीका जोर होय तब तो वाका पुरुषार्थ किछू नाहीं, उपदेश भी कार्यकारी नाहीं। और पानीका जोर थोरा होय, तब जो पुरुषार्थकरि निकसै तो निकसि आवै, तिसहीको निकसनेकी शिक्षा दीजिए है। अर न निकसै तो होलै-होलै बहै, पीछै पानीका जोर भए बह्या चल्या जाय। तैसे जीव संसारविषै भ्रमै है, तहाँ कर्मनिका तीव्र उदय होय तब तो वाका पुरुषार्थ किछू नाहीं, उपदेश भी कार्यकारी नाहीं। अर कर्मका मन्द उदय होय, तब पुरुषार्थकरि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै तो मोक्ष पावै; तिसहीको मोक्षमार्ग का उपदेश दीजिए है। अर मोक्षमार्गविषै न प्रवर्त्तै तो किंचित् विशुद्धता पाय पीछे तीव्र उदय आए निगोदादि पर्यायको पावै। तातैं अवसर चूकना योग्य नाहीं। अब सर्व प्रकार अवसर आया है, ऐसा अवसर पावना कठिन है। तातैं श्रीगुरु दयालु होय मोक्षमार्गको उपदेशैं, तिसविषै भव्य जीवनिको प्रवृत्ति करनी। अब मोक्षमार्ग का स्वरूप कहिए है।

मोक्षमार्ग का स्वरूप

जिनके निमित्ततैं आत्मा अशुद्ध दशाको धारि दुःखी भया, ऐसे जो मोहादिक कर्म तिनिका सर्वथा नाश होते केवल आत्माकी जो सर्व प्रकार शुद्ध अवस्था का होना, सो मोक्ष है। ताका जो उपाय-कारण, सो मोक्षमार्ग जानना। सो कारण तो अनेक प्रकार हो हैं। कोई कारण तो ऐसे हो हैं, जाके भए बिना तो कार्य न होय अर जाके भए कार्य होय वा न भी होय। जैसे मुनिलिंग धारे बिना तो मोक्ष न होय अर मुनिलिंग धारे मोक्ष होय भी अर नाहीं भी होय। बहुरि **कोई कारण ऐसे हैं, जो मुख्यपने तो जाके भए कार्य होय अर काहूके बिना भए भी कार्यसिद्धि होय। जैसे अनशनादि बाह्य तप का साधन किए मुख्यपने मोक्ष पाइए है, भरतादिकके बाह्य तप किए बिना ही मोक्षकी प्राप्ति भई।**

विशेष-पूज्य भरत ने सर्वप्रथम अर्ककीर्ति को राज्य दिया था फिर उपवास ग्रहण कर जिनदीक्षा-नग्न मुद्रा धारण की, सिर के केशों का लोच किया, जो कि उग्र तप है[१] (केशलोच मूलगुण के साथ-साथ **कायक्लेश नामक बाह्यतप** स्वरूप भी है[२]), फिर हिंसादि पापों की निवृत्तिरूप पंच महाव्रत ग्रहण किये। फिर दृढ़ आसनपूर्वक ध्यान में विराजमान होकर समस्त विकल्प रहित हुए और अन्तर्मुहूर्त में ही मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त किया। फिर अन्तर्मुहूर्त बाद केवलज्ञान प्राप्त हुआ। फिर सब देशों में चिरकाल तक विहार किया। आयु के अन्त में योगनिरोध कर मोक्ष गये। परन्तु स्तोक काल (अन्तर्मुहूर्त) में ही केवलज्ञान हो जाने से महाव्रत, मूलगुण, समिति, संयम तथा उभयविध तप की लोक में प्रसिद्धि नहीं हुई।[३] पर भैया! तपःकर्म का जघन्य काल तो अन्तर्मुहूर्त ही है।[४]

किंच, भरत जी ने इस पर्याय में तो सूक्ष्मदृष्ट्या यह अल्पकालिक तथा अल्पतम बाह्य तप ही किया अतएव स्थूलतः "बाह्य तप बिना ही मुक्ति को गए" कहा जाता है। पर साथ ही साथ इसके पीछे भरतजी की पूर्व भव की साधना भी निहित है। भरतजी ने अपने कुछ भवों पूर्व की सिंह पर्याय में शिलातल पर शान्त भाव से बैठकर समाधि धारण की थी। उस सिंह ने ८ दिन तक आठ महोपवास रूप घोर तपश्चर्या की। फिर आयु के अन्त में परम शान्त भाव से देह-विसर्जन कर वह ईशान स्वर्ग में दिवाकरप्रभ देव हुआ था।[५]

इस प्रकार बहिरंग तपों का सर्वथा अतिक्रमण करके तो कोई भी जीव मोक्ष नहीं जाता। बहिरंग तप भी साधक के किंचित् कथंचित् बन ही जाते हैं।

१. भ.आ. ६ पृष्ठ १२६ (जीवराज ग्रन्थमाला) तथा भ.आ. २२२-२३ वीं गाथा।

२. मूलाचार प्रदीप ४/७५।

३. आदिपुराण पर्व ४७ श्लोक ३६३-६४-६५; ३६७-६८ तथा परमात्मप्रकाश २/५२ पृष्ठ १७३-७४ (राजचन्द्र शास्त्रमाला)

४. धवल १३/१०८। ५. आदिपुराण ८/२१ पृ. ३०१ (श्री महावीरजी प्रकाशन)

द्रव्यलिंग (नग्न मुनि बाना) धारण किये बिना तीन काल में न किसी को मुक्ति हुई है, न होगी (**भावप्राभृत गा. ७०**) अतः द्रव्यलिंग भी मुक्ति में कारण माना गया है (**भा. पा. गाथा. ७०**)

भगवान महावीर के परम्परागत उपदेशों में उसे कारण कहा गया है।

जेण विणा जं ण होदि चेव तं तस्स कारणं (धवल १४/९०)

अर्थात् जिसके बिना जो नहीं हो वह उसका कारण है। ऐसा नहीं कि जिसके बिना जो नहीं हो तथा जिसके होने पर हो ही जाय; वही कारण है शास्त्रों में कारणों की विविध परिभाषाएँ बताई गई हैं; उनमें से एक को ग्रहण कर इतर को अमान्य करने वाला मिथ्यादृष्टि होता है। कहा भी है:- जिन भगवान की वाणी के एक अक्षर को भी जो अस्वीकार करता है-अमान्य करता है वह शेष सम्पूर्ण आगम को मानता हुआ भी मिथ्यादृष्टि है। {**भगवती आराधना ३९**} यदि यह कहा जाय कि मात्र अंतरंग कारण से ही कार्य हो जाएगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि

"उपादानकारणं सहकारीकारणम् अपेक्षते" (स्व. स्तोत्र ६२ टीका)

अर्थ- उपादान कारण सहकारी कारण की अपेक्षा रखता है। **न हि किंचित् स्वस्मादेव जायते (न्यायदीपिका २/४/२७) अर्थ**- कोई भी वस्तु अपने से ही पैदा नहीं होती, किन्तु अपने से भिन्न कारणों से पैदा होती है। इससे विपरीत मान्यता रखने पर अनेक दोष प्राप्त होंगे। {**परीक्षामुख ६/६३ तथा जयधवल १/२९५**} अतः हे भव्य पुरुषो! द्रव्यलिंग भी मोक्ष का कारण है- आवश्यक कारण है। इतना अवश्य है कि वह भावलिंग के साथ ही कार्य (मोक्ष) का सम्पादन करता है।

बहुरि केई कारण ऐसे हैं, जाके भए कार्यसिद्धि ही होय और जाके न भए सर्वथा कार्यसिद्धि न होय। जैसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता भए तो मोक्ष होय ही होय, अर ताको न भए सर्वथा मोक्ष न होय। ऐसे ए कारण कहे, तिनविषै अतिशयकरि नियमतैं मोक्ष का साधक जो सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्र का एकीभाव, सो मोक्षमार्ग जानना। इन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रनिविषै एक भी न होय तो मोक्षमार्ग न होय। सोई **तत्त्वार्थसूत्रविषै** कह्या है-

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ।।१।।

इस सूत्र की टीकाविषै कह्या है- जो यहाँ "मोक्षमार्गः" ऐसा एक वचन कह्या ताका अर्थ यहु है- जो तीनों मिले एक मोक्षमार्ग है। जुदे-जुदे तीन मार्ग नाहीं हैं।

यहाँ **प्रश्न**-जो असंयतसम्यग्दृष्टी कै तो चारित्र नाहीं, वाकै मोक्षमार्ग भया है कि न भया है।

ताका **समाधान**-मोक्षमार्ग याकै होसी, यहु तो नियम भया। तातैं उपचारतैं याकै मोक्षमार्ग भया भी कहिए। **परमार्थतैं सम्यक्चारित्र भए ही मोक्षमार्ग हो है।** जैसे कोई पुरुष कै किसी नगर चालने का निश्चय भया तातैं वाको व्यवहारतैं ऐसा भी कहिए " यहु तिस नगर को चल्या है", परमार्थतैं मार्गविषै गमन किए ही चलना होसी। तैसे असंयतसम्यग्दृष्टी के वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग का श्रद्धान भया, तातैं वाको उपचारतैं मोक्षमार्गी कहिए, परमार्थतैं वीतरागभावरूप परिणमे ही मोक्षमार्ग होसी। बहुरि **प्रवचनसार** विषै भी तीनों की एकाग्रता भए ही मोक्षमार्ग कह्या है, तातैं यहु जानना - **तत्त्वश्रद्धान ज्ञान बिना तो रागादि घटाए मोक्षमार्ग नाहीं अर रागादि घटाए बिना तत्त्वश्रद्धानज्ञानतैं भी मोक्षमार्ग नाहीं।** तीनों मिले साक्षात् मोक्षमार्ग हो है।

लक्षण और उसके दोष

अब इनका निर्देश कर लक्षण निर्देश अर परीक्षाद्वारकरि निरूपण कीजिए है। तहाँ 'सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है,' ऐसा नाम मात्र कथन सो तो '**निर्देश**' जानना। बहुरि अतिव्याप्ति अव्याप्ति असम्भवपनाकरि रहित होय अर जाकरि इनको पहिचानिए, सो '**लक्षण**' जानना। ताका जो निर्देश कहिए, निरूपण सो '**लक्षण निर्देश**' जानना। तहाँ जाको पहिचानना होय, ताका नाम **लक्ष्य है**। उस बिना औरका नाम अलक्ष्य है। सो लक्ष्य वा अलक्ष्य दोऊविषै पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ **अतिव्याप्तिपनो** जानना। जैसे आत्माका लक्षण 'अमूर्त्तत्व' कहा। सो 'अमूर्त्तत्व' लक्षण है, सो लक्ष्य जो है आत्मा तिसविषै भी पाइए अर अलक्ष्य जो हैं आकाशादिक तिनविषै भी पाइए है। तातैं यह 'अतिव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचाने आकाशादिक भी आत्मा होय जांय, यहु दोष लागै।

बहुरि जो कोई लक्ष्यविषै तो होय अर कोई विषै न होय, ऐसा लक्ष्य का एकदेशविषै पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए, तहाँ **अव्याप्तिपनो** जानना। जैसे आत्माका लक्षण केवलज्ञानादिक कहिए, सो केवलज्ञान कोई आत्माविषै तो पाइए, कोईविषै न पाइए, तातैं यहु 'अव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचाने स्तोकज्ञानी आत्मा न होय, यहु दोष लागै।

बहुरि जो लक्ष्यविषै पाइए ही नाहीं, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ **असम्भवपना** जानना। जैसे आत्माका लक्षण जड़पना कहिए सो प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि यहु विरुद्ध है जातैं यहु 'असम्भव' लक्षण है। याकरि आत्मा माने पुद्गलादिक भी आत्मा होय जांय। अर आत्मा है सो अनात्मा हो जाय, यहु दोष लागै।

ऐसे अतिव्याप्त अव्याप्त असम्भव लक्षण होय सो लक्षणाभास है। बहुरि लक्ष्यविषै तो सर्वत्र पाइए अर अलक्ष्यविषै कहीं न पाइए सो सांचा लक्षण है। जैसे आत्माका स्वरूप चैतन्य है सो यहु लक्षण सर्व ही आत्माविषै तो पाइए है, अनात्माविषै कहीं न पाइए। तातैं यहु सांचा लक्षण है। याकरि आत्मा माने आत्मा

अन्यात्मका यथार्थ ज्ञान होय, किछू दोष लागै नाहीं। ऐसे लक्षणका स्वरूप उदाहरण मात्र कह्या। अब सम्यग्दर्शनादिकका सांचा लक्षण कहिए है-

सम्यग्दर्शन का सच्चा लक्षण

विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्त्वार्थश्रद्धान सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ए सात तत्त्वार्थ हैं। इनका जो श्रद्धान-ऐसे ही हैं, अन्यथा नाहीं; ऐसा प्रतीति भाव सो तत्त्वार्थश्रद्धान है। बहुरि विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय ताकरि रहित सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ विपरीताभिनिवेशका निराकरण के अर्थि 'सम्यक्' पद कह्या है, जातैं 'सम्यक्' ऐसा शब्द प्रशंसावाचक है। सो श्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेशका अभाव भए ही प्रशंसा सम्भवै है, ऐसा जानना।

यहाँ **प्रश्न**- जो 'तत्त्व' अर 'अर्थ' ए दोय पद कहे, तिनिका प्रयोजन कहा?

ताका **समाधान**-'तत्' शब्द है सो 'यत्' शब्दकी अपेक्षा लिये है। तातैं जाका प्रकरण होय सो तत् कहिए अर जाका जो भाव कहिए स्वरूप सो तत्त्व जानना। जातैं **'तस्य भावस्तत्त्वं'** ऐसा तत्त्व शब्द का समास होय है बहुरि जो जानने में आवै ऐसा 'द्रव्य' वा 'गुण पर्याय' ताका नाम अर्थ है। बहुरि **'तत्त्वेन अर्थस्तत्त्वार्थः'** तत्त्व कहिए अपना स्वरूप, ताकरि सहित पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ जो 'तत्त्वश्रद्धान' ही कहते तो जाका यह भाव (तत्त्व) है, ताका श्रद्धान विना केवल भावहीका श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो 'अर्थश्रद्धान' ही कहते तो भाव का श्रद्धान विना पदार्थ का श्रद्धान भी कार्यकारी नाहीं। जैसे कोईकै ज्ञान-दर्शनादिक वा वर्णादिकका तो श्रद्धान होय-यह जानपना है, यह श्वेतवर्ण है, इत्यादि प्रतीति हो है परन्तु ज्ञान दर्शन आत्माका स्वभाव है-सो मैं आत्मा हूँ, बहुरि वर्णादि पुद्गलका स्वभाव है, पुद्गल मोतैं भिन्न जुदा पदार्थ है-ऐसा पदार्थका श्रद्धान न होय तो भावका श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। बहुरि जैसे 'मैं आत्मा हूँ' ऐसे श्रद्धान किया परन्तु आत्मा का स्वरूप जैसा है तैसा श्रद्धान न किया तो भावका श्रद्धान विना पदार्थका भी श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। तातैं तत्त्वकरि अर्थ का श्रद्धान हो है सोई कार्यकारी है। अथवा जीवादिकको तत्त्वसंज्ञा भी है अर अर्थ संज्ञा भी है तातैं **'तत्त्वमेवार्थस्तत्त्वार्थः'** जो तत्त्व सो ही अर्थ, तिनका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। इस अर्थकरि कहीं तत्त्वश्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहै वा कहीं पदार्थ श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहै, तहाँ विरोध न जानना। ऐसे 'तत्त्व' और 'अर्थ' दोय पद कहने का प्रयोजन है।

तत्त्व सात ही क्यों हैं

बहुरि **प्रश्न**- जो तत्त्वार्थ तो अनन्ते हैं। ते सामान्य अपेक्षाकरि जीव-अजीवविषै सर्व गर्भित भए, तातैं दोय ही कहने थे, कै अनंते कहने थे। आस्रवादिक तो जीव-अजीव ही के विशेष हैं, इनको जुदा कहने का प्रयोजन कहा?

ताका समाधान- जो यहाँ पदार्थ श्रद्धान करने का ही प्रयोजन होता तो सामान्यकरि वा विशेषकरि जैसे सर्व पदार्थनिका जानना होय तैसे ही कथन करते। सो तो यहाँ प्रयोजन है नाहीं। यहाँ तो मोक्ष का प्रयोजन है। सो जिन सामान्य वा विशेष भावनिका श्रद्धान किए मोक्ष होय अर जिनका श्रद्धान किए बिना मोक्ष न होय, तिनही का यहाँ निरूपण किया। सो जीव अजीव ए दोय तो बहुत द्रव्यनिकी एक जाति अपेक्षा सामान्यरूप तत्त्व कहे। सो ए दोय जाति जाने जीव के आपा परका श्रद्धान होय। तब परतैं भिन्न आपाको जाने, अपना हित के अर्थि मोक्ष का उपाय करे अर आपतैं भिन्न परको जाने, तब परद्रव्यतैं उदासीन होय रागादिक त्यागि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै। तातैं ए दोय जाति का श्रद्धान भए ही मोक्ष होय अर दोय जाति जाने बिना आपा परका श्रद्धान न होय, तब पर्यायबुद्धितैं संसारीक प्रयोजन ही का उपाय करै। परद्रव्यविषै रागद्वेष रूप होय प्रवर्त्तै, तब मोक्षमार्गविषै कैसे प्रवर्त्तै। तातैं इन दोय जातिनिका श्रद्धान न भए मोक्ष न होय। ऐसे ए दोय तो सामान्य तत्त्व अवश्य श्रद्धान करने योग्य कहे। बहुरि आस्रवादिक पाँच कहे, ते जीव पुद्गल की पर्याय हैं। तातैं ए विशेषरूप तत्त्व हैं। सो इन पाँच पर्यायनिको जाने मोक्ष का उपाय करने का श्रद्धान होय। तहाँ मोक्ष को पहिचाने, तो ताको हित मानि ताका उपाय करै। तातैं मोक्ष का श्रद्धान करना। बहुरि मोक्षका उपाय संवर निर्जरा है सो इनको पहिचानै तो जैसे संवर निर्जरा होय तैसे प्रवर्त्तै। तातैं संवर निर्जरा का श्रद्धान करना। बहुरि संवर निर्जरा तो अभाव लक्षण लिये हैं; सो जिनका अभाव किया चाहिए, तिनको पहिचानने चाहिए। जैसे क्रोध का अभाव भए क्षमा होय सो क्रोध को पहिचानै तो ताका अभाव करि क्षमारूप प्रवर्त्तै। तैसे ही आस्रव का अभाव भए संवर होय अर बंध का एकदेश अभाव भए निर्जरा होय सो आस्रव बंध की पहिचानै तो तिनिका नाश करि संवर निर्जरारूप प्रवर्त्तै। तातैं आस्रव बंध का श्रद्धान करना। ऐसे इन पांच पर्यायनिका श्रद्धान भए ही मोक्षमार्ग होय इनको न पहिचानै तो मोक्ष की पहिचान बिना ताका उपाय काहेको करै। संवर निर्जरा की पहिचान बिना तिनविषै कैसे प्रवर्त्तै। आस्रव बंध की पहिचान बिना तिनिका नाश कैसे करे? ऐसे इन पाँच पर्यायनिका श्रद्धान न भए मोक्षमार्ग न होय। या प्रकार यद्यपि तत्त्वार्थ अनन्ते हैं, तिनिका सामान्य विशेषकरि अनेक प्रकार प्ररूपण होय। परन्तु यहाँ एक मोक्ष का प्रयोजन है तातैं दोय तो जाति अपेक्षा सामान्य तत्त्व अर पांच पर्यायरूप विशेष तत्त्व मिलाय सात ही तत्त्व कहे इनका यथार्थ श्रद्धान के आधीन मोक्षमार्ग है। इनि बिना औरनिका श्रद्धान होहु वा मति होहु वा अन्यथा श्रद्धान होहु, किसी के आधीन मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसा जानना। बहुरि कहीं पुण्य पाप सहित नव पदार्थ कहे हैं सो पुण्य पाप आस्रवादिक के ही विशेष हैं, तातैं सात तत्त्वनिविषै गर्भित भए। अथवा पुण्यपाप का श्रद्धान भए पुण्य को मोक्षमार्ग न मानै वा स्वच्छन्द होय पापरूप न प्रवर्त्तै, तातैं मोक्षमार्गविषै इनका श्रद्धान भी उपकारी जानि दोय तत्त्व विशेष के विशेष मिलाय नव पदार्थ कहे वा समयसारादिविषै इनको नव तत्त्व भी कहे हैं।

बहुरि प्रश्न- इनिका श्रद्धान सम्यग्दर्शन कह्या, सो दर्शन तो सामान्य अवलोकनमात्र अर श्रद्धान प्रतीतिमात्र, इनिकै एकार्थपना कैसे सम्भवै?

ताका उत्तर- प्रकरण के वशतैं धातु का अर्थ अन्यथा होय है। सो यहाँ प्रकरण मोक्षमार्ग का है,

तिसविषै 'दर्शन' शब्द का अर्थ सामान्य अवलोकनमात्र न ग्रहण करना। जातैं चक्षु अचक्षु दर्शनकरि सामान्य अवलोकन तौ सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि कै समान होय है, किछु याकरि मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति अप्रवृत्ति होती नाहीं। बहुरि श्रद्धान हो है सो सम्यग्दृष्टीही कै हो है, याकरि मोक्ष ार्ग की प्रवृत्ति हो है। तातैं 'दर्शन' शब्द का अर्थ भी यहाँ श्रद्धान मात्र ही ग्रहण करना।

बहुरि प्रश्न- यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान करना कह्या, सो प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान- अभिनिवेश नाम अभिप्रायका है। सो जैसा तत्त्वार्थश्रद्धान का अभिप्राय है तैसा न होय, अन्यथा अभिप्राय होय, ताका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो तत्त्वार्थश्रद्धान करने का अभिप्राय केवल तिनिका निश्चय करना मात्र ही नाहीं है। तहाँ अभिप्राय ऐसा है- जीव अजीवको पहचानि आपको वा परको जैसा का तैसा मानै। बहुरि आस्रवको पहिचानि ताको हेय मानै। बहुरि बंधको पहिचानि ताको अहित मानै। बहुरि संवर को पहचानि ताको उपादेय मानै। बहुरि निर्जराको पहचानि ताको हितका कारण मानै। बहुरि मोक्षको पहचानि ताको अपना परम हित मानै। ऐसे तत्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है। तिसतैं उलटा अभिप्राय का नाम विपरीताभिनिवेश है। सो सांचा तत्त्वार्थश्रद्धान भए याका अभाव होय। तातैं तत्त्वार्थ श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशरहित है, ऐसा यहाँ कहा है।

अथवा काहूकै आभास मात्र तत्त्वार्थश्रद्धान होय है परन्तु अभिप्रायविषै विपरीतपनो नाहीं छूटै है। कोई प्रकारकरि पूर्वोक्त अभिप्रायतैं अन्यथा अभिप्राय अन्तरंगविषै पाइए है तो वाकै सम्यग्दर्शन न होय। जैसे द्रव्यलिंगी मुनि जिनवचननितैं तत्त्वनिकी प्रतीति करै परन्तु शरीराश्रित क्रियानिविषै अहंकार वा पुण्यास्रवविषै उपादेयपनो इत्यादि विपरीत अभिप्रायतैं मिथ्यादृष्टी ही रहै है। तातैं जो तत्त्वार्थश्रद्धान विपरीताभिनिवेश रहित है सोई सम्यग्दर्शन है। ऐसे विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्त्वार्थनिका श्रद्धानपना सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। सम्यग्दर्शन लक्ष्य है। सोइ तत्त्वार्थसूत्र विषै कह्या है- "तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।।१-२।।" तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सोई सम्यग्दर्शन है। बहुरि सर्वार्थसिद्धि नाम सूत्रनिकी टीका है, तिसविषै तत्त्वादिक पदनिका अर्थ प्रगट लिख्या है, वा सात ही तत्त्व कैसे कहे सो प्रयोजन लिख्या है, ताका अनुसारतैं यहाँ किछू कथन किया है ऐसा जानना।

बहुरि पुरुषार्थसिद्धयुपाय विषै भी ऐसे ही कह्या है-

> जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।
> श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत् ।।२२।।

याका अर्थ- विपरीताभिनिवेशकरि रहित जीव अजीव आदि तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है। सो यहु श्रद्धान आत्माका स्वरूप है दर्शनमोह उपाधि दूर भए प्रगट हो है, तातैं आत्माका स्वभाव है। चतुर्थादि गुणस्थानविषै प्रगट हो है। पीछै सिद्ध अवस्थाविषै भी सदाकाल याका सद्भाव रहै है, ऐसा जानना।

तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण में अव्याप्ति-अतिव्याप्ति असंभव-दोष का परिहार

तिर्यंचों के सात तत्त्वों का श्रद्धान

यहाँ **प्रश्न** उपजै है- जो तिर्यंचादि तुच्छज्ञानी केई जीव सात तत्त्वनिका नाम भी न जानि सकै, तिनिकै भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति शास्त्रविषै कही है। तातैं तत्त्वार्थश्रद्धानपना तुम सम्यक्त्वका लक्षण कह्या, तिसविषै अव्याप्तिदूषण लागै है।

ताका **समाधान**- जीव अजीवादिकका नामादिक जानो वा मति जानो वा अन्यथा जानो, उनका स्वरूप यथार्थ पहचानि श्रद्धान किए सम्यक्त्व हो है। तहाँ कोई सामान्यपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै। कोई विशेषपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै। तातैं तुच्छज्ञानी तिर्यंचादिक सम्यग्दृष्टी हैं सो जीवादिक का नाम भी न जानै हैं, तथापि उनका सामान्यपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै हैं। तातैं उनकै सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो है। जैसे कोई तिर्यंच अपना वा औरनिका नामादिक तो नाहीं जानै परन्तु आपही विषै आपो मानै है, औरनिको पर मानै है। तैसे तुच्छज्ञानी जीव अजीवका नाम न जानै परन्तु जो ज्ञानादिस्वरूप आत्मा है तिसविषै तो आपो मानै है अर जो शरीरादि है तिनको पर मानै है- ऐसा श्रद्धान वाकै हो है, सो ही जीव अजीवका श्रद्धान है। बहुरि जैसे सोई तिर्यंच सुखादिकका नामादिक न जानै है, तथापि सुख अवस्थाको पहिचानि ताके अर्थि आगामी दुःख का कारणको पहिचानि ताका त्यागको किया चाहै है। बहुरि जो दुःख का कारण बनि रह्या है, ताके अभाव का उपाय करै है। तैसे तुच्छज्ञानी मोक्षादिकका नाम न जानै, तथापि सर्वथा सुखरूप मोक्षअवस्थाको श्रद्धान करता ताके अर्थि आगामी बंधका कारण रागादिक आस्रव ताका त्यागरूप संवरको किया चाहै है। बहुरि जो संसार दुःखका कारण है, ताकी शुद्धभावकरि निर्जरा किया चाहै है। ऐसे आस्रवादिकका वाकै श्रद्धान है। या प्रकार वाकै भी सप्ततत्त्वका श्रद्धान पाइए है। जो ऐसा श्रद्धान न होय, तो रागादि त्यागि शुद्ध भाव करने की चाह न होय। सोई कहिए है-

जो जीव अजीवकी जाति न जानि आपापरको न पहिचानै तो परविषै रागादिक कैसे न करै? रागादिकको न पहिचानै तो तिनिका त्याग कैसे किया चाहै। सो **रागादिक ही आस्रव हैं**। रागादिकका फल बुरा न जानै तो काहे को रागादिक छोड़्या चाहै। सो **रागादिकका फल सोई बंध है**। बहुरि रागादि रहित परिणामको पहिचानै है तो तिसरूप हुआ चाहै है। सो **रागादिरहित परिणामका ही नाम संवर है**। बहुरि पूर्व संसार अवस्थाका कारण की हानिको पहिचानै है तो ताके अर्थि तपश्चरणादिकरि शुद्धभाव किया चाहै है। सो पूर्व संसार अवस्थाका कारण **कर्म है, ताकी हानि सोई निर्जरा है**। बहुरि संसार अवस्था का अभावको न पहिचानै तो संवर निर्जरारूप काहेको प्रवर्तै। सो **संसार अवस्था का अभाव सो ही मोक्ष है**। तातैं सातों तत्त्वनिका श्रद्धान भए ही रागादिक छोड़ि शुद्ध भाव होने की इच्छा उपजै है। जो इनविषै एक भी तत्त्वका श्रद्धान न होय तो ऐसी चाह न उपजै। बहुरि ऐसी चाह तुच्छज्ञानी तिर्यंचादि सम्यग्दृष्टीकै होय ही है। तातैं वाकै सप्त तत्त्वनिका श्रद्धान पाइए है, ऐसा निश्चय करना। ज्ञानावरण का क्षयोपशम थोरा होते विशेषपने तत्त्वनिका ज्ञान न होवै, तथापि दर्शनमोहका उपशमादिकतैं सामान्यपने तत्त्वश्रद्धान की शक्ति प्रगट हो है। ऐसे इस लक्षणविषै अव्याप्ति दूषण नाहीं है।

विषयसेवन के समय सम्यक्त्वी के श्रद्धान का विनाश नहीं

बहुरि प्रश्न- जिसकालविषै सम्यग्दृष्टी विषयकषायनिके कार्यविषै प्रवर्त्तै है तिसकालविषै सप्त तत्त्वनिका विचार ही नाहीं, तहाँ श्रद्धान कैसे सम्भवै? अर सम्यक्त्व रहै ही है, तातैं तिस लक्षणविषै अव्याप्ति दूषण आवै है।

ताका समाधान- विचार है, सो तो उपयोग के आधीन है। जहाँ उपयोग लागै, तिसहीका विचार हो है। बहुरि श्रद्धान है, सो प्रतीतिरूप है। तातैं अन्य ज्ञेयका विचार होतैं वा सोवना आदि क्रिया होते तत्त्वनिका विचार नाहीं, तथापि तिनकी प्रतीति बनी रहै है, नष्ट न हो है। तातैं वाकै सम्यक्त्वका सद्भाव है। जैसे कोई रोगी मनुष्यकै ऐसी प्रतीति है- मैं मनुष्य हूँ, तिर्यंचादि नाहीं हूँ। मेरे इस कारणतैं रोग भया है सो अब कारण मेटि रोगको घटाय नीरोग होना। बहुरि वो ही मनुष्य अन्य विचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है। तैसे इस आत्माकै ऐसी प्रतीति है- मैं आत्मा हूँ, पुद्गलादि नाहीं हूँ, मेरे आस्रवतैं बन्ध भया है, सो अब संवरकरि निर्जराकरि मोक्षरूप होना। बहुरि सोई आत्मा अन्यविचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है।

बहुरि प्रश्न- जो ऐसा श्रद्धान रहै है, तो बंध होनेके कारणविषै कैसे प्रवर्तै है?

ताका उत्तर- जैसे सोई मनुष्य कोई कारण के वशतैं रोग बधने के कारणनिविषै भी प्रवर्त्तै है, व्यापारादिक कार्य वा क्रोधादिक कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। तैसे सोई आत्मा कर्म उदय निमित्त के वशतैं बन्ध होनेके कारणनिविषै भी प्रवर्त्तै है, विषयसेवनादि कार्य वा क्रोधादि कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। **इसका विशेष निर्णय आगे करेंगे।** ऐसे सप्त तत्त्व का विचार न होतैं भी श्रद्धानका सद्भाव पाइए है, तातैं तहाँ अव्याप्तिपना नाहीं है।

निर्विकल्प दशा में भी तत्त्वार्थ श्रद्धान का सद्भाव

बहुरि प्रश्न- ऊँची दशाविषै जहाँ निर्विकल्प आत्मानुभव हो है, तहाँ तो सप्त तत्त्वादिकका विकल्प भी निषेध किया है। सो सम्यक्त्व के लक्षणका निषेध करना कैसे सम्भवै? अर तहाँ निषेध सम्भवै है तो अव्याप्ति दूषण आया।

ताका उत्तर- नीचली दशाविषै सप्ततत्त्वनिके विकल्पनिविषै उपयोग लगाया, ताकरि प्रतीतिको दृढ़ कीन्हीं अर विषयादिकतैं उपयोग छुड़ाय रागादि घटाया। बहुरि कार्य सिद्ध भए कारणनिका भी निषेध कीजिए है। तातैं जहाँ प्रतीति भी दृढ़ भई अर रागादिक दूर भए तहाँ उपयोग भ्रमावने का खेद काहेको करिए। तातैं तहाँ तिन विकल्पनिका निषेध किया है। बहुरि सम्यक्त्व का लक्षण तो प्रतीति ही है। सो प्रतीतिका तो निषेध न किया। जो प्रतीति छुड़ाई होय, तो इस लक्षणका निषेध किया कहिए। सो तो है नाहीं। सातों तत्त्वनिकी प्रतीति तहाँ भी बनी रहै है। तातैं यहाँ अव्याप्तिपना नाहीं है।

बहुरि प्रश्न- जो छद्मस्थकै तो प्रतीति अप्रतीति कहना सम्भवै, तातैं तहाँ सप्ततत्त्वनिकी प्रतीति

सम्यक्त्वका लक्षण कह्या सो हम मान्या परन्तु केवली सिद्ध भगवानकै तो सर्वका जानपना समानरूप है, तहाँ सप्ततत्त्वनिकी प्रतीति कहना सम्भवै नाहीं अर तिनकै सम्यक्त्व गुण पाइए ही है, तातैं तहाँ तिस लक्षणविषै अव्याप्तिपना आया।

ताका **समाधान**- जैसे छद्मस्थकै श्रुतज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है, तैसे केवली सिद्धभगवानके केवलज्ञान के अनुसार प्रतीति पाइए है। जो सप्त तत्त्वनिका स्वरूप पहलै ठीक किया था, सो ही केवलज्ञानकरि जान्या। तहाँ प्रतीतिको परम अवगाढ़पनो भयो। याहीतैं परमअवगाढ़ सम्यक्त्व कह्या। जो पूर्वै श्रद्धान किया था, ताको झूठ जान्या होता तो तहाँ अप्रतीति होती। सो तो जैसा सप्त तत्त्वनिका श्रद्धान छद्मस्थकै भया था, तैसा ही केवली सिद्ध भगवानकै पाइए है तातैं **ज्ञानादिककी हीनता अधिकता होतैं भी तिर्यंचादिक वा केवली सिद्ध भगवान तिनकै सम्यक्त्व गुण समान ही कह्या।**[1] बहुरि पूर्वअवस्थाविषै यहु मानै थे- संवर निर्जराकरि मोक्षका उपाय करना। पीछै मुक्त अवस्था भए ऐसे मानने लगे, जो संवर निर्जराकरि हमारै मोक्ष भई। बहुरि पूर्वै ज्ञानकी हीनताकरि जीवादिकके थोड़े विशेष जानै था, पीछे केवलज्ञान भए तिनके सर्वविशेष जानै परन्तु मूलभूत जीवादिकके स्वरूपका श्रद्धान जैसा छद्मस्थकै पाइए है तैसा ही केवली के पाइए है। बहुरि यद्यपि केवली सिद्ध भगवान अन्यपदार्थनिको भी प्रतीति लिए जानै है तथापि ते पदार्थ प्रयोजनभूत नाहीं। तातैं सम्यक्त्व गुणविषै सप्त तत्त्वनिहीका श्रद्धान ग्रहण किया है। केवली सिद्ध भगवान रागादिरूप न परिणमै हैं, संसार अवस्थाको न चाहै हैं। सो यह इस श्रद्धानका बल जानना।

बहुरि **प्रश्न**- जो सम्यग्दर्शन को तो मोक्षमार्ग कह्या था, मोक्षविषै याका सद्भाव कैसे कहिए है?

ताका **उत्तर-कोई कारण ऐसा भी हो है, जो कार्य सिद्ध भए भी नष्ट न होय।** जैसे काहू वृक्ष कै कोई एक शाखाकरि अनेक शाखायुक्त अवस्था भई, तिसको होतैं वह शाखा नष्ट न हो है तैसे काहू आत्मा कै सम्यक्त्व गुणकरि अनेकगुणयुक्त मुक्त अवस्था भई, ताको होतैं सम्यक्त्व गुण नष्ट न हो है। ऐसे केवली सिद्ध भगवान कै भी तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण ही पाइए है, तातैं यहाँ अव्याप्तिपनो नाहीं है।

---

[1] तिर्यंच, मनुष्य तथा केवली के सामान्य (सदृश परिणाम) की अपेक्षा सभी सम्यग्दर्शनों में एकत्व है। विशेष (विसदृश परिणाम) की अपेक्षा सम्यग्दर्शन के असंख्यात लोक प्रमाण भेद (अनेकत्व) हैं ही।

(विशेष हेतु देखो - पं. रतनचन्द मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व ग्रन्थ पृ. ३६३-३६५ तथा पृ. ७७०)

सभी क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों के सम्यक्त्व परिणाम समान ही होते हैं क्योंकि "क्षायिकभावानां न हानिर्नापि वृद्धिरिति" (**श्लोकवार्तिक १/१/४४-४५**); क्षायिक भावों में न हानि होती है, न वृद्धि।

इसी तरह प्रथम उपशम सम्यग्दृष्टि जीवों में भी परस्पर के लिए कहना चाहिए। परन्तु क्षायिक दर्शन तथा क्षयोपशम सम्यग्दर्शन रूप परिणाम परस्पर कभी समान नहीं होते।

इसी तरह क्षयोपशम (वेदक) सम्यग्दृष्टि जीवों के क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन रूप परिणाम भी परस्पर समान नहीं होते, क्योंकि क्षायोपशम सम्यक्त्व के असंख्यात लोक प्रमाण भेद होते है। (**धवला १/३६८**)

सारतः संसार के सभी जीवों में सम्यग्दर्शनों में समानता सर्वसम्यग्दृष्टिजीव व्यापी सामान्य सम्यग्दर्शनपने (सदृश परिणाम) की अपेक्षा ही है, अन्य प्रकार से नहीं।

बहुरि **प्रश्न** - मिथ्यादृष्टी के भी तत्त्वश्रद्धान हो है, ऐसा शास्त्रविषै निरूपण है। **प्रवचनसारविषै** आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान अकार्यकारी कह्या है। तातैं सम्यक्त्व का लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान कह्या है, तिस विषै अतिव्याप्ति दूषण लागै है।

ताका **समाधान** - मिथ्यादृष्टि कै जो भी तत्त्वश्रद्धान कह्या है, सो नामनिक्षेपकरि कह्या है। जामैं तत्त्वश्रद्धान का गुण नाहीं अर व्यवहारविषै जाका नाम तत्त्वश्रद्धान कहिए सो मिथ्यादृष्टी के हो है अथवा आगमद्रव्य निक्षेपकरि हो है। तत्त्वार्थश्रद्धान के प्रतिपादक शास्त्रनिको अभ्यासै है, तिनिका स्वरूप निश्चय करनेविषै उपयोग नाहीं लगावै है, ऐसा जानना। बहुरि यहाँ सम्यक्त्व का लक्षण तत्त्वार्थ श्रद्धान कह्या है सो भाव निक्षेपकरि कह्या है। सो गुणसहित सांचा तत्त्वार्थश्रद्धान मिथ्यादृष्टी के कदाचित् न होय। बहुरि आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान कह्या है, तहाँ भी सोई अर्थ जानना। सांचा जीव अजीवादिक का जाकै श्रद्धान होय, ताकै आत्मज्ञान कैसे न होय? होय ही होय। ऐसे कोई ही मिथ्यादृष्टी के सांचा तत्त्वार्थश्रद्धान सर्वथा न पाइए है, तातैं तिस लक्षणविषै अतिव्याप्ति दूषण न लागै है।

बहुरि जो यहु तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या, सो असम्भवी भी नाहीं है। जातैं सम्यक्त्व का प्रतिपक्षी मिथ्यात्व- यह नाहीं है, वाका लक्षण इसतैं विपरीतता लिये है।

ऐसे अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भविपनाकरि रहित सर्व सम्यग्दृष्टीनिविषै तो पाईए अर कोई मिथ्यादृष्टिविषै न पाइए ऐसा सम्यग्दर्शन का सांचा लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान है।

बहुरि **प्रश्न** उपजै है-जो यहाँ सातों तत्त्वनिके श्रद्धान का नियम कहो हो सो बनै नाहीं, जातैं कहीं परतैं भिन्न आपका श्रद्धानहीको सम्यक्त्व कहै है। **समयसारविषै**[1] 'एकत्वे नियतस्य' इत्यादि कलशा (लिखा) है, तिसविषै ऐसा कह्या है- जो इस आत्मा का परद्रव्यतैं भिन्न अवलोकन सो ही नियमतैं सम्यग्दर्शन है। तातैं नव तत्त्व की संतति को छोड़ि हमारे यहु एक आत्मा ही होहु। बहुरि कहीं एक आत्मा के निश्चय ही को सम्यक्त्व कहै है। **पुरुषार्थसिद्ध्युपायविषै**[2] 'दर्शनमात्मविनिश्चितिः' ऐसा पद है। सो याका यहु ही अर्थ है। तातैं जीव अजीव ही का वा केवल जीव ही का श्रद्धान भए सम्यक्त्व हो है। सातों का श्रद्धान का नियम होता तो ऐसा काहेको लिखते।

ताका **समाधान**- परतैं भिन्न आपका श्रद्धान हो है, सो आस्रवादिक का श्रद्धान करि रहित हो है कि सहित हो है। जो रहित हो है, तो मोक्ष का श्रद्धान बिना किस प्रयोजन के अर्थि ऐसा उपाय करै है। संवर निर्जरा का श्रद्धान बिना रागादिकरहित होय स्वरूपविषै उपयोग लगावने का काहेको उद्यम राखै

---

१. एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः।
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्।।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम्।
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः।। जीवाजीव. अ. कलश।।६।।

२. दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः।। पु.सि. २१६।।

है। आस्रव बंध का श्रद्धान बिना पूर्व अवस्था को काहेको छांडै है। तातैं आस्रवादिक का श्रद्धान रहित आपापरका श्रद्धान करना सम्भवै नाहीं। बहुरि जो आस्रवादिक का श्रद्धान सहित हो है, तो स्वयमेव ही सातों तत्त्वनिके श्रद्धान का नियम भया। बहुरि केवल आत्मा का निश्चय है, सो परका पररूप श्रद्धान भए बिना आत्मा का श्रद्धान न होय, तातैं अजीव का श्रद्धान भए ही जीव का श्रद्धान होय। बहुरि ताकै पूर्ववत् आस्रवादिक का भी श्रद्धान होय ही होय। तातैं यहाँ भी सातों तत्त्वनिके ही श्रद्धान का नियम जानना। बहुरि आस्रवादिक का श्रद्धान बिना आपापर का श्रद्धान वा केवल आत्मा का श्रद्धान सांचा होता नाहीं। जातैं आत्मा द्रव्य है, सो तो शुद्ध अशुद्ध पर्याय लिये है। जैसे तन्तु अवलोकन बिना पटका अवलोकन न होय, तैसे शुद्ध-अशुद्ध पर्याय पहिचाने बिना आत्मद्रव्य का श्रद्धान न होय। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्था की पहिचानि आस्रवादिक की पहिचानतैं हो है। बहुरि आस्रवादिक का श्रद्धान बिना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्मा का श्रद्धान कार्यकारी भी नाहीं। जातैं श्रद्धान करो वा मति करो, आप है सो आप है ही, पर है सो पर है। बहुरि आस्रवादिक का श्रद्धान होय, तो आस्रव बंध का अभावकरि संवर-निर्जरारूप उपायतैं मोक्षपद को पावै। बहुरि जो आपापरका भी श्रद्धान कराइए है, सो तिस ही प्रयोजन के अर्थि कराइए है। तातैं आस्रवादिक का श्रद्धानसहित आपापरका जानना वा आपका जानना कार्यकारी है।

यहाँ **प्रश्न**-जो ऐसे है, तो शास्त्रनिविषै आपा पर का श्रद्धान वा केवल आत्मा का श्रद्धानहीको सम्यक्त्व कह्या वा कार्यकारी कह्या बहुरि नव तत्त्व की सन्तति छोड़ि हमारे एक आत्मा ही होहु, ऐसा कह्या। सो कैसे कह्या?

ताका **समाधान**- जाकै सांचा आपापरका श्रद्धान वा आत्मा का श्रद्धान होय, ताकै सातों तत्त्वनिका श्रद्धान होय ही होय। बहुरि जाकै सांचा सात तत्त्वनिका श्रद्धान होय, ताकै आपापरका वा आत्मा का श्रद्धान होय ही होय। ऐसा परस्पर अविनाभावीपना जानि आपापरका श्रद्धान को वा आत्मश्रद्धान ही को सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि इस छलकरि कोई सामान्यपने आपापरको जानि वा आत्मा को जानि कृतकृत्यपनो मानै, तो वाकै भ्रम है। तातैं ऐसा कह्या है- **'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत्।'** याका अर्थ यहु- जो विशेषरहित सामान्य है सो गधे के सींग समान है। जातैं प्रयोजनभूत आस्रवादिक विशेषनिसहित आपापरका वा आत्मा का श्रद्धान करना योग्य है। अथवा सातों तत्त्वार्थनिका श्रद्धानकरि रागादिक मेटने के अर्थि परद्रव्यनिको भिन्न भावै है वा अपने आत्मा ही को भावै है, ताकै प्रयोजन की सिद्धि हो है। तातैं मुख्यताकरि भेदविज्ञान को वा आत्मज्ञान को कार्यकारी कह्या है। बहुरि तत्त्वार्थश्रद्धान किए बिना सर्व जानना कार्यकारी नाहीं। जातैं प्रयोजन तो रागादिक मेटने का है, सो आस्रवादिक का श्रद्धान बिना यह प्रयोजन भासै नाहीं। तब केवल जानने ही तैं मानको बधावै, रागादिक छांड़ै नाहीं, तब वाका कार्य कैसे सिद्धि होय। बहुरि नवतत्त्वसंततिका छोड़ना कह्या है। सो पूर्वै नवतत्त्व के विचार करि सम्यग्दर्शन भया, पीछै निर्विकल्पदशा होने के अर्थि नवतत्त्वनिका भी विकल्प छोड़ने की चाह करी। बहुरि जाकै पहिले ही नवतत्त्वनिका विचार नाहीं, ताकै तिस विकल्प छोड़ने का कहा प्रयोजन है। अन्य अनेक विकल्प आपके पाइए है, तिनही का त्याग करो, ऐसे आपापरका श्रद्धानविषै वा आत्मश्रद्धानविषै सप्ततत्त्व श्रद्धान की सापेक्षा पाइए है, तातैं तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण है।

बहुरि प्रश्न- जो कहीं शास्त्रनिविषै अरहन्तदेव निर्ग्रन्थ गुरु हिंसारहित धर्म का श्रद्धान को सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसे है?

ताका समाधान- अरहंत देवादिक का श्रद्धानतैं कुदेवादिक का श्रद्धान दूरि होनेकरि गृहीत मिथ्यात्व का अभाव हो है। तिस अपेक्षा याको सम्यक्त्व कह्या है। सर्वथा सम्यक्त्व का लक्षण यहु नाहीं। जातैं द्रव्यलिंगी मुनि आदि व्यवहार धर्म के धारक मिथ्यादृष्टी तिनिकै भी ऐसा श्रद्धान हो है। अथवा जैसे अणुव्रत महाव्रत होतैं तो देशचारित्र सकलचारित्र होय वा न होय परन्तु अणुव्रत महाव्रत भए बिना देशचारित्र सकलचारित्र कदाचित् न होय। तातैं इनि व्रतनिको अन्वयरूप कारण जानि कारणविषै कार्य का उपचार करि इनको चारित्र कह्या। तैसे अरहन्त देवादिक का श्रद्धान होतैं तो सम्यक्त्व होय वा न होय परन्तु अरहंतादिकका श्रद्धान भए बिना तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप सम्यक्त्व कदाचित् न होय। तातैं अरहन्तादिक के श्रद्धान को अन्वयरूप कारण जानि कारणविषै कार्यका उपचारकरि इस श्रद्धान को सम्यक्त्व कह्या है। याहीतैं याका नाम व्यवहारसम्यक्त्व है। अथवा जाकै तत्त्वार्थश्रद्धान होय, ताकै सांचा अरहन्तादिक के स्वरूप का श्रद्धान होय ही होय। तत्त्वार्थश्रद्धान बिना पक्षकरि अरहन्तादिक का श्रद्धान करै परन्तु यथावत् स्वरूप की पहिचान लिए श्रद्धान होय नाहीं। बहुरि जाकै सांचा अरहन्तादिक के स्वरूप का श्रद्धान होय, ताकै तत्त्वश्रद्धान होय ही होय। जातैं अरहन्तादिक का स्वरूप पहिचाने जीव अजीव आस्रवादिक की पहिचान हो है। ऐसे इनको परस्पर अविनाभावी जानि कहीं अरहन्तादिक के श्रद्धान को सम्यक्त्व कह्या है।

यहाँ प्रश्न- जो नारकादिक जीवनिकै देवकुदेवादिकका व्यवहार नाहीं अर तिनिके सम्यक्त्व पाइए है, तातैं सम्यक्त्व होते अरहंतादिकका श्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाहीं?

ताका समाधान- सप्त तत्त्वनिका श्रद्धानविषै अरहंतादिकका श्रद्धान गर्भित है। जातैं तत्त्वश्रद्धानविषै मोक्षतत्त्वको सर्वोत्कृष्ट मानै है। सो मोक्षतत्त्व तो अरहंत सिद्धका लक्षण है। जो लक्षणको उत्कृष्ट मानै, सो ताके लक्ष्यको उत्कृष्ट मानै ही मानै। तातैं उनको भी सर्वोत्कृष्ट मान्या, और को न मान्या, सो ही देवका श्रद्धान भया। बहुरि मोक्षके कारण संवर निर्जरा हैं, तातैं इनको भी उत्कृष्ट मानै है। सो संवर निर्जरा के धारक मुख्यपने मुनि हैं। तातैं मुनिको उत्तम मान्या, और को न मान्या, सो ही गुरुका श्रद्धान भया। बहुरि रागादिकरहित भावका नाम अहिंसा है, ताहीको उपादेय मानै है, और को न मानै है, सोई धर्मका श्रद्धान भया। ऐसे तत्त्वश्रद्धान विषै गर्भित अरहंतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है।अथवा जिस निमित्ततैं याकै तत्त्वार्थ श्रद्धान हो है, तिस निमित्ततैं अरहंतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। तातैं सम्यक्त्वविषै देवादिकके श्रद्धान का नियम है।

बहुरि प्रश्न- जो केई जीव अरहंतादिकका श्रद्धान करै हैं, तिनिके गुण पहिचानै हैं अर उनकै तत्त्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्व न हो है। तातैं जाकै सांचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्त्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाहीं?

ताका समाधान- तत्त्वश्रद्धान बिना अरहंतादिकके छियालीस आदि गुण जानै है, सो पर्यायाश्रित गुण जानै है परन्तु जुदा-जुदा जीव पुद्गलविषै जैसे सम्भवै तैसे यथार्थ नाहीं पहिचानै है। तातैं सांचा श्रद्धान

भी न होय। जातैं जीव अजीवकी जाति पहिचाने विना अरहंतादिकके आत्माश्रित गुणनिको वा शरीराश्रित गुणनिको भिन्न-भिन्न न जानै। जो जानै तो अपने आत्माको परद्रव्यतैं भिन्न कैसे न मानै? तातैं **प्रवचनसारविषै** ऐसा कह्या है-

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।।८०।।

याका **अर्थ** यहु- जो अरहंतको द्रव्यत्व गुणत्व पर्यायत्वकरि जानै है, सो आत्माको जानै है। ताका मोह विलयको प्राप्त हो है। तातैं जाकै जीवादिक तत्त्वनिका श्रद्धान नाहीं, ताकै अरहंतादिकका भी सांचा श्रद्धान नाहीं। बहुरि मोक्षादिक तत्त्वका श्रद्धान विना अरहंतादिकका माहात्म्य यथार्थ न जानै। लौकिक अतिशयादिककरि अरहंत का, तपश्चरणादिकरि गुरुका अर परजीवनिकी अहिंसादिकरि धर्मकी महिमा जानै, सो ए पराश्रित भाव हैं। बहुरि आत्माश्रित भावनिकरि अरहंतादिकका स्वरूप तत्त्वश्रद्धान भए ही जानिए है। तातैं जाकै सांचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्त्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम जानना। या प्रकार सम्यक्त्वका लक्षणनिर्देश किया।

यहाँ **प्रश्न**-जो सांचा तत्त्वार्थश्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान वा देवगुरुधर्मका श्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण कह्या। बहुरि इन सर्व लक्षणनिकी परस्पर एकता भी दिखाई सो जानी। परन्तु अन्य-अन्य प्रकार लक्षण कहनेका प्रयोजन कहा?

ताका **उत्तर**- ए चारि लक्षण कहे, तिनिविषै सांची दृष्टिकरि एक लक्षण ग्रहण किए चार्‍यों लक्षण का ग्रहण हो है। तथापि मुख्य प्रयोजन जुदा-जुदा विचारि अन्य-अन्य प्रकार लक्षण कहे हैं। जहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तो यहु प्रयोजन है जो इन तत्त्वनिको पहिचानै तो यथार्थ वस्तु के स्वरूपका वा अपने हित अहितका श्रद्धान करै तब मोक्षमार्गविषै प्रवर्तै। बहुरि जहाँ आपापरका भिन्न श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तत्त्वार्थ श्रद्धानका प्रयोजन जाकरि सिद्ध होय, तिस श्रद्धानको मुख्य लक्षण कह्या है। जीव अजीव के श्रद्धान का प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धान करना है। बहुरि आस्रवादिकके श्रद्धानका प्रयोजन रागादिक छोड़ना है सो आपापरका भिन्न श्रद्धान भए परद्रव्यविषै रागादि न करनेका श्रद्धान हो है ऐसे तत्त्वार्थ श्रद्धान का प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धानतैं सिद्ध होता जानि इस लक्षणको कहा है। बहुरि जहाँ आत्मश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ आपापरका भिन्न--श्रद्धानका प्रयोजन इतना ही है--आपको आप जानना। आपको आप जाने परका भी विकल्प कार्यकारी नाहीं। ऐसा मूलभूत प्रयोजनकी प्रधानता जानि आत्मश्रद्धानको मुख्य लक्षण कह्या है। बहुरि जहाँ देवगुरुधर्मका श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ बाह्य साधनकी प्रधानता करी है। जातैं अरहन्तदेवादिक का श्रद्धान सांचा तत्त्वार्थश्रद्धान को कारण है अर कुदेवादिक का श्रद्धान कल्पित तत्त्वश्रद्धान को कारण है। सो बाह्य कारण की प्रधानता करि कुदेवादिकका श्रद्धान छुड़ाय सुदेवादिक का श्रद्धान करावने के अर्थि देवगुरुधर्म का श्रद्धान को मुख्यलक्षण कह्या है। ऐसे जुदे-जुदे प्रयोजननिकी मुख्यता करि जुदे-जुदे लक्षण कहे हैं।

इहाँ प्रश्न- जो ए चारि लक्षण कहे, तिनविषै यहु जीव किस लक्षण को अंगीकार करै?

ताका **समाधान**- मिथ्यात्वकर्म का उपशमादि होतैं विपरीताभिनिवेश का अभाव हो है तहाँ च्यारों लक्षण युगपत् पाइए है। बहुरि विचार अपेक्षा मुख्यपने तत्त्वार्थनिको विचारै है। कै आपापरका भेद विज्ञान करै है। कै आत्मस्वरूपहीको सम्भारै है। कै देवादिक का स्वरूप विचारै है। ऐसे ज्ञानविषै तौ नाना प्रकार विचार होय परन्तु श्रद्धानविषै सर्वत्र परस्पर सापेक्षपनो पाइए है। तत्त्वविचार करै है तो भेदविज्ञानादिकका अभिप्राय लिए करै है अर भेदविज्ञान करै है तो तत्त्वविचार आदिक का अभिप्राय लिए करै है। ऐसे ही अन्यत्र भी परस्पर सापेक्षपणों है। तातैं सम्यग्दृष्टी के श्रद्धानविषै च्यारों ही लक्षणनिका अंगीकार है। बहुरि जाकै मिथ्यात्व का उदय है ताकै विपरीताभिनिवेश पाइए है। ताकै ए लक्षण आभास मात्र होय, साँचे न होय। जिनमत के जीवादिकतत्त्वनिको मानै, और को न मानै, तिनके नाम-भेदादिक को सीखै है, ऐसे तत्त्वार्थश्रद्धान होय परन्तु तिनिका यथार्थ भाव का श्रद्धान न होय। बहुरि आपापरका भिन्नपना की बातैं करै अर वस्त्रादिकविषै परबुद्धिको चिंतवन करै परन्तु जैसे पर्यायविषै अहंबुद्धि है अर वस्त्रादिकविषै परबुद्धि है, तैसे आत्माविषै अहंबुद्धि अर शरीरादि विषै परबुद्धि न हो है। बहुरि आत्मा को जिनवचनानुसार चिन्तवै परन्तु प्रतीतिरूप आपको आप श्रद्धान न करै है। बहुरि अरहन्तदेवादिक बिना और कुदेवादिक को न मानै परन्तु तिनके स्वरूप को यथार्थ पहचानि श्रद्धान न करै, ऐसे ए लक्षणाभास मिथ्यादृष्टी कै हो हैं। इन विषै कोई होय, कोई न होय। तहाँ इनकै भिन्नपनो भी सम्भवै है। बहुरि इन लक्षणाभासनिविषै इतना विशेष है जो **पहिले तो देवादिक का श्रद्धान होय, पीछे तत्त्वनिका विचार होय, पीछे आपापरका चिंतवन करै, पीछे केवल आत्मा को चिन्तवै। इस अनुक्रमतैं साधन करै तो परम्परा सांचा मोक्षमार्ग को पाय कोई जीव सिद्धपद को भी पावै।** बहुरि इस अनुक्रम का उलंघन करि जाकै देवादिक मानने का तो किछू ठीक नाहीं अर बुद्धि की तीव्रतातैं तत्त्वविचारादिकविषै प्रवर्तै है तातैं आपको ज्ञानी जानै है। अथवा तत्त्वविचारविषै भी उपयोग न लगावै है, आपापरका भेदविज्ञानी हुवा रहै है। अथवा आपापरका भी ठीक न करै है अर आपको आत्मज्ञानी मानै है। सो ए सर्व चतुराई की बातैं हैं। मानादिक कषाय के साधन हैं। किछू भी कार्यकारी नाहीं। तातैं जो जीव अपना भला किया चाहै, तिसको यावत् सांचा सम्यग्दर्शन की प्राप्ति न होय, तावत् इनिको भी अनुक्रमहीतैं अंगीकार करना। सोई कहिए है-

सम्यक्त्व के उपाय

१. पहले तो आज्ञादिकरि वा कोई परीक्षाकरि कुदेवादिक का मानना छोड़ि अरहंतदेवादिक का श्रद्धान करना। जातैं इस श्रद्धान भए गृहीतमिथ्यात्व का तो अभाव हो है। बहुरि मोक्षमार्ग के विघ्नकरनहारे कुदेवादिक का निमित्त दूरि हो है। मोक्षमार्ग का सहाई अरहंतदेवादिक का निमित्त मिलै है। सो पहिले देवादिक का श्रद्धान करना। २. बहुरि पीछे जिनमतविषै कहे जीवादिक तत्त्व तिनिका विचार करना। नाम लक्षणादि सीखने। जातैं इस अभ्यासतैं तत्त्वार्थ श्रद्धान की प्राप्ति होय। ३. बहुरि पीछे आपापरका भिन्नपना जैसे भासै तैसे विचार किया करै । जातैं इस अभ्यासतैं भेदविज्ञान होय। ४. बहुरि पीछे आपविषै आपो मानने के अर्थि स्वरूप का विचार किया करै। जातैं इस अभ्यास तैं आत्मानुभव की प्राप्ति हो है। बहुरि

ऐसे अनुक्रमतैं इनको अंगीकार करि ५. पीछे इनहीविषै कबहू देवादिक का विचारविषै, कबहू तत्त्वविचारविषै, कबहू आपापरका विचारविषै, कबहू आत्मविचारविषै उपयोग लगावै। ऐसे अभ्यासतैं दर्शनमोह मन्द होता जाय तब कदाचित् साँचा सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होय; बहुरि ऐसा नियम तो है नाहीं। कोई जीव कै कोई विपरीत कारण प्रबल बीच में होय जाय, तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नाहीं भी होय परन्तु मुख्यपने घने जीवनि कै तो इस अनुक्रमतैं कार्यसिद्धि हो है। तातैं इनिको ऐसे अंगीकार करने। जैसे पुत्र का अर्थी विवाहादि कारणनिको मिलावै, पीछे घने पुरुषनिकै तो पुत्र की प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय तो न होय। याको तो उपाय करना। **तैसे सम्यक्त्व का अर्थी इनि कारणनिको मिलावै, पीछे घने जीवनि कै तो सम्यक्त्व की प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय तो नाहीं भी होय। परन्तु याको तो आपतैं बने सो उपाय करना।** ऐसे सम्यक्त्व का लक्षण निर्देश किया।

यहाँ **प्रश्न**- जो सम्यक्त्व के लक्षण तो अनेक प्रकार कहै, तिन विषै तुम तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण को मुख्य किया, सो कारण कहा?

ताका **समाधान**- तुच्छबुद्धीनिको अन्य लक्षणविषै प्रयोजन प्रगट भासै नाहीं वा भ्रम उपजै। अर इस तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणविषै प्रगट प्रयोजन भासै किछू भ्रम उपजै नाहीं। तातैं इस लक्षण को मुख्य किया है। सोई दिखाइए है-

देवगुरुधर्म का श्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिको यहु भासै- अरहंतदेवादिकको मानना और को न मानना, इतना ही सम्यक्त्व है। तहाँ जीव अजीव का वा बंधमोक्ष के कारणकार्य का स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजन की सिद्धि न होय वा जीवादिक का श्रद्धान भए बिना इस ही श्रद्धानविषै सन्तुष्ट होय आपको सम्यक्त्वी मानै। एक कुदेवादिकतैं द्वेष तो राखै, अन्य रागादि छोड़ने का उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आपापरका श्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिको यहु भासै कि आपापरका ही जानना कार्यकारी है। इसतैं ही सम्यक्त्व हो है। तहाँ आस्रवादिकका स्वरूप न भासै। तब मोक्षमार्ग प्रयोजन की सिद्धि न होय वा आस्रवादिक का श्रद्धान भए बिना इतना ही जाननेविषै सन्तुष्ट होय आपको सम्यक्त्वी मान स्वच्छन्द होय रागादि छोड़ने का उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आत्मश्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिको यहु भासै कि आत्माही का विचार कार्यकारी है। इसहीतैं सम्यक्त्व हो है। तहाँ जीव अजीवादिक का विशेष वा आस्रवादिक का स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजन की सिद्धि न होय वा जीवादिक का विशेष वा आस्रवादिक का श्रद्धान भए बिना इतना ही विचारतैं आपको सम्यक्त्वी माने स्वच्छन्द होय रागादि छोड़ने का उद्यम न करै। याकै भी ऐसा भ्रम उपजै है। ऐसा जानि इन लक्षणनिको मुख्य न किए।

बहुरि तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणविषै जीव अजीवादिक का वा आस्रवादिक का श्रद्धान होय। तहाँ सर्व का स्वरूप नीकै भासै, तब मोक्षमार्ग के प्रयोजन की सिद्धि होय। बहुरि इस श्रद्धान भए सम्यक्त्व होय परन्तु यहु सन्तुष्ट न हो है। आस्रवादिक का श्रद्धान होने तैं रागादि छोड़ि मोक्ष का उद्यम राखै है। याकै भ्रम न उपजै है। तातैं तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणको मुख्य किया है। अथवा तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणविषै तो देवादिक का श्रद्धान वा आपापर का श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान गर्भित हो है सो तो तुच्छबुद्धीनिको भी भासै। बहुरि अन्य

लक्षणनिविषै तत्त्वार्थश्रद्धान का गर्भितपनो विशेष बुद्धिमान होय, तिनहीको भासै; तुच्छबुद्धीनिको न भासै तातैं तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण को मुख्य किया है। अथवा मिथ्यादृष्टी के आभास मात्र ए होय। तहाँ तत्त्वार्थनिका विचार तो शीघ्रपने विपरीताभिनिवेश दूर करने को कारण हो है, अन्य लक्षण शीघ्र कारण नाहीं होय वा विपरीताभिनिवेश का भी कारण होय जाय। तातैं यहाँ सर्वप्रकार प्रसिद्ध जानि **विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सोही सम्यक्त्व का लक्षण है,** ऐसा निर्देश किया। ऐसे लक्षण निर्देश का निरूपण किया। ऐसा लक्षण जिस आत्मा का स्वभावविषै पाइए है, सो ही सम्यक्त्वी जानना।

सम्यक्त्व के भेद और उनका स्वरूप

अब इस सम्यक्त्व के भेद दिखाईए है, तहाँ प्रथम निश्चय व्यवहार का भेद दिखाईए है- विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप आत्मा का परिणाम सो तो निश्चय सम्यक्त्व है, जातैं यहु सत्यार्थ सम्यक्त्व का स्वरूप है। सत्यार्थही का नाम निश्चय है। बहुरि विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान को कारणभूत श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है, जातैं कारणविषै कार्य का उपचार किया है। सो उपचार ही का नाम व्यवहार है। तहाँ सम्यग्दृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिक सांचा श्रद्धान है तिसही निमित्ततैं याकै श्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेश का अभाव है। सो यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान सो तो निश्चय सम्यक्त्व है अर देवगुरु धर्मादिक का श्रद्धान है सो यह व्यवहार सम्यक्त्व है। ऐसे एक ही कालविषै दोऊ सम्यक्त्व पाइए[1]

आगम में निश्चय सम्यग्दर्शन तथा व्यवहार सम्यग्दर्शन का कथन अनेक दृष्टियों से किया गया है। गुण-गुणी की अभेद दृष्टि से सम्यक्त्व का कथन (सम्यक्त्व ही आत्मा है या आत्मा ही सम्यक्त्व है) निश्चय सम्यग्दर्शन है तथा जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान या आत्मा का श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है क्योंकि यह भेद दृष्टि का कथन है। निश्चय और व्यवहार सम्यग्दर्शन के लक्षण इस प्रकार करने पर एक जीव में दोनों सम्यग्दर्शन साथ-साथ रह सकते हैं।

इसी तरह विपरीताभिनिवेश रहित आत्म-श्रद्धा निश्चय सम्यक्त्व तथा देवगुरुशास्त्र का श्रद्धान व्यवहार सम्यक्त्व है ही क्योंकि ये क्रमशः निश्चय (एक द्रव्याश्रित होने से) तथा व्यवहार (भिन्नद्रव्याश्रित कथन होने से) नय के कथन हैं।

परन्तु जहाँ पर सराग सम्यग्दर्शन को अथवा सविकल्प सम्यग्दर्शन को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है और वीतराग सम्यग्दर्शन को अथवा निर्विकल्प सम्यग्दर्शन को निश्चय सम्यग्दर्शन कहा है वहाँ पर निश्चय तथा व्यवहार सम्यग्दर्शन दोनों साथ-साथ कदापि नहीं रह सकते। (पं. रतनचन्द मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व पृ. ८९९-९०१) क्योंकि चौथे से छठे गुणस्थान तक बुद्धिपूर्वक राग रूप प्रवृत्ति होती है अतः इन तीन गुणस्थानों में सराग सम्यक्त्व कहा। सातवें गुणस्थान से बुद्धिपूर्वक रागरूप प्रवृत्ति का अभाव हो जाता है अतः सातवें से वीतराग सम्यक्त्व कहा है। (समयसार गाथा ७७ तात्पर्यवृत्ति) यह वीतराग सम्यक्त्व वीतराग चारित्र के साथ ही रहता है तथा इसे ही निश्चय सम्यक्त्व कहा है। यथा - वीतरागसम्यक्त्वं निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं वीतरागचारित्राविनाभूतं तदेव निश्चयसम्यक्त्वमिति (परमात्मप्रकाश २/१७ टीका)। यही बात बृहद्द्रव्यसंग्रह २२ की टीका, समयसार गा. १३ ता. वृ. तथा समयसार पृष्ठ १५ अजमेर प्रकाशन में लिखी है। अतः उपर्युक्त लक्षण वाला यह निश्चय सम्यक्त्व यानी वीतराग सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान में कदापि नहीं हो सकता। यह तो पाँचवें छठे गुणस्थान में भी नहीं हो सकता। (पं. रतनचन्द मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. ९२१-२२)

हैं। बहुरि मिथ्यादृष्टी जीव के देवगुरुधर्मादिक का श्रद्धान आभास मात्र हो है अर याके श्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेश का अभाव न हो है। तातैं यहाँ निश्चयसम्यक्त्व तो है नाहीं अर व्यवहार सम्यक्त्व भी आभासमात्र है जातैं याकै देवगुरुधर्मादिक का श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेश के अभाव को साक्षात् कारण भया नाहीं, कारण भए बिना उपचार सम्भवै नाहीं। तातैं साक्षात् कारण अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त्व भी याकै न सम्भवै है। अथवा याकै देवगुरुधर्मादिक का श्रद्धान नियमरूप हो है सो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान को परम्परा कारणभूत है। यद्यपि नियमरूप कारण नाहीं, तथापि मुख्यपने कारण है। बहुरि कारणविषै कार्य का उपचार सम्भवै है। तातैं मुख्यरूप परम्परा कारण अपेक्षा मिथ्यादृष्टी कै भी व्यवहार सम्यक्त्व कहिए है।

यहाँ **प्रश्न**- जो केई शास्त्रनिविषै देवगुरुधर्म का श्रद्धानको वा तत्त्वश्रद्धानको तो व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है अर आपापरका श्रद्धान को वा केवल आत्मा के श्रद्धानको निश्चय सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसे है?

ताका **समाधान**- देवगुरुधर्म का श्रद्धानविषै तो प्रवृत्ति की मुख्यता है, जो प्रवृत्तिविषै अरहंतादिकको देवादिक मानै, और को न मानै, सो देवादिक का श्रद्धानी कहिए है अर तत्त्वश्रद्धानविषै तिनकै विचार की मुख्यता है। जो ज्ञानविषै जीवादिकतत्त्वनिको विचारै, ताको तत्त्वश्रद्धानी कहिए है। ऐसे मुख्यता पाइए है। सो ए दोऊ काहू जीव कै सम्यक्त्व को कारण तो होय परन्तु इनिका सद्भाव मिथ्यादृष्टी के भी सम्भवै है। तातैं इनिको व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि आपापर का श्रद्धानविषै वा आत्मश्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेश रहितपना की मुख्यता है। जो आपापरका भेदविज्ञान करै वा अपने आत्मा को अनुभवै, ताकै मुख्यपने विपरीताभिनिवेश न होय। तातैं भेदविज्ञानी को वा आत्मज्ञानी को सम्यग्दृष्टी कहिए है। ऐसे मुख्यताकरि आपापर का श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान सम्यग्दृष्टी ही कै पाइए है। तातैं इनिको निश्चय सम्यक्त्व कह्या, सो ऐसा कथन मुख्यता की अपेक्षा है। तारतम्यपने ए च्यारों आभासमात्र मिथ्यादृष्टी कै होय। सांचे सम्यग्दृष्टी कै होय। तहाँ आभासमात्र हैं सो तो नियम बिना परम्परा कारण हैं अर सांचे हैं सो नियम रूप साक्षात् कारण हैं। तातैं इनिको व्यवहाररूप कहिये। इनिके निमित्ततैं जो विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान भया सो निश्चय सम्यक्त्व है, ऐसा जानना।

प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य की अभिव्यक्ति लक्षणवाला सराग सम्यग्दर्शन होता है, यही व्यवहार सम्यग्दर्शन है। इसका गुणस्थान चौथे से छठे तक ही है। सरागसम्यक्त्वं तदेव व्यवहारसम्यक्त्वमिति (परमात्मप्रकाश २/१७ टीका, समयसार ७७ तात्पर्यवृत्ति)। राजवार्तिक में जो क्षायिक सम्यक्त्व को वीतराग सम्यक्त्व कहा है (रा.वा. १/२/२९-३१) वह इस दृष्टि से कहा गया है कि अनन्तकाल तक स्थिर रहने वाले वीतराग चारित्र की उत्पत्ति तो क्षायिक सम्यक्त्वी मुनि को ही हो सकती है अतः क्षायिक सम्यक्त्व को वीतराग सम्यक्त्व कहा। (विशेष हेतु देखो पं. रतनचन्द मुख्तार: व्यक्तित्व और कृतित्व पृ. ३६७, ९०६)

स्मरण रहे कि सराग सम्यक्त्व या व्यवहार सम्यक्त्व भी वास्तविक सम्यक्त्व है। क्योंकि चौथे से छठे गुणस्थान तक सम्यक्त्व का अस्तित्व मिथ्या नहीं है। (विशेष हेतु देखो - वही ग्रन्थ पृ. ८९८)

बहुरि **प्रश्न**- केई शास्त्रनिविषै लिखे हैं-आत्मा है सो ही निश्चय सम्यक्त्व है, और सर्व व्यवहार है सो कैसे है?

ताका **समाधान**- विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो आत्मा ही का स्वरूप है, तहाँ अभेदबुद्धि करि आत्मा अर सम्यक्त्वविषै भिन्नता नाहीं, तातैं निश्चयकरि आत्माही को सम्यक्त्व कह्या। और सर्व सम्यक्त्वको निमित्तमात्र हैं वा भेदकल्पना किए आत्मा अर सम्यक्त्वकै भिन्नता कहिए है तातैं और सर्व व्यवहार कह्या है, ऐसे जानना। या प्रकार निश्चयसम्यक्त्व अर व्यवहार सम्यक्त्वकरि सम्यक्त्व के दोय भेद हैं अर अन्य निमित्तादि अपेक्षा आज्ञासम्यक्त्वादि सम्यक्त्व के दश भेद कहे हैं, सो आत्मानुशासनविषै कह्या है-

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात् ।
विस्तारार्थाभ्यां भवमवगाढपरमावगाढं च ।।११।।

याका अर्थ- जिनआज्ञातैं तत्त्वश्रद्धान भया होय सो आज्ञा सम्यक्त्व है। यहाँ इतना जानना-"मोको जिनआज्ञा प्रमाण है", इतना ही श्रद्धान सम्यक्त्व नाहीं है। आज्ञा मानना तो कारणभूत है। याहीतैं यहाँ आज्ञातैं उपज्या कह्या है। तातैं पूर्वै जिनआज्ञा माननेतैं पीछै जो तत्त्वश्रद्धान भया सो **आज्ञासम्यक्त्व** है। ऐसे ही निर्ग्रन्थमार्ग के अवलोकनेतैं तत्त्वश्रद्धान भया सो **मार्गसम्यक्त्व**[1] है।

(बहुरि उत्कृष्ट पुरुष तीर्थंकरादिक तिनके पुराणनिका उपदेशतैं जो उपज्या सम्यग्ज्ञान ताकरि उत्पन्न आगमसमुद्रविषै प्रवीणपुरुषनिकरि उपदेश आदितैं भई जो उपदेशदृष्टि सो **उपदेशसम्यक्त्व** है। मुनि के आचरण का विधानको प्रतिपादन करता जो आचारसूत्र ताहि सुनकरि श्रद्धान करना जो होय सो सूत्रदृष्टि भलेप्रकार कही है। यहु **सूत्रसम्यक्त्व** है। बहुरि बीज जे गणितज्ञान को कारण तिनकरि दर्शनमोहका अनुपम उपशम के बलतैं, दुष्कर है जानने की गति जाकी ऐसा पदार्थनिका समूह, ताकी भई है उपलब्धि अर्थात् श्रद्धानरूप परणति जाकै, ऐसा करणानुयोग का ज्ञानी भया, ताकै बीजदृष्टि हो है। यहु **बीज सम्यक्त्व** जानना। बहुरि पदार्थनिको संक्षेपपनेतैं जानकरि जो श्रद्धान भया सो भली संक्षेपदृष्टि है। यह **संक्षेपसम्यक्त्व** जानना। जो द्वादशांगवानी को सुन कीन्हीं जो रुचि श्रद्धान, ताहि विस्तारदृष्टि हे भव्य तू जानि। यह **विस्तारसम्यक्त्व** है। बहुरि जैनशास्त्र के वचनविना कोई अर्थका निमित्ततैं भई सो अर्थदृष्टि है। यह **अर्थसम्यक्त्व** जानना।) ऐसे आठ भेद तो कारण अपेक्षा किए। बहुरि अंग अर अंगबाह्यसहित जैनशास्त्र ताको अवगाह करि जो निपजी सो अवगाढदृष्टि है। यह **अवगाढसम्यक्त्व** जानना। बहुरि श्रुतकेवली कै जो तत्त्वश्रद्धान है, ताको **अवगाढसम्यक्त्व कहिए**। केवलज्ञानी कै जो तत्त्वश्रद्धान है, ताको **परमावगाढसम्यक्त्व**

---

१. मार्ग सम्यक्त्व के बाद मल्लजी की हस्तलिखित प्रति में तीन लाइन का स्थान अन्य सम्यक्त्वों के लक्षण लिखने के लिए छोड़ा गया है। यहाँ ये लक्षण मुद्रित तथा हस्तलिखित अन्य प्रतियों के अनुसार दिये गये हैं।

कहिए[1] ऐसे दोय भेद ज्ञानका सहकारीपनाकी अपेक्षा किए। या प्रकार दशभेद सम्यक्त्व के किए। तहाँ सर्वत्र सम्यक्त्वका स्वरूप तत्त्वार्थ श्रद्धान ही जानना।

बहुरि सम्यक्त्व के तीन भेद किए हैं। १. औपशमिक २. क्षायोपशमिक ३. क्षायिक। सो ए तीन भेद दर्शनमोहकी अपेक्षा किए हैं। तहाँ औपशमिकसम्यक्त्व के दोय भेद हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। तहाँ मिथ्यात्वगुणस्थानविषै करणकरि दर्शनमोहको उपशमाय सम्यक्त्व उपजै, ताको प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिए है। तहाँ इतना विशेष है- अनादि मिथ्यादृष्टिकै तो एक मिथ्यात्व प्रकृतिहीका उपशम होय है, जातैं याकै मिश्रमोहनी अर सम्यक्त्व-मोहनी की सत्ता है नाहीं। जब जीव उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होय, तहाँ तिस सम्यक्त्वके कालविषै मिथ्यात्व के परमाणूनिको मिश्रमोहनीरूप वा सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै है, तब तीन प्रकृतीनिकी सत्ता हो है। तातैं अनादि मिथ्यादृष्टी कै एक मिथ्यात्वप्रकृतिकी ही सत्ता है। तिसहीका उपशम हो है।

बहुरि सादिमिथ्यादृष्टिकै काहूकै तीन प्रकृतीनिकी सत्ता है, काहूकै एक ही की सत्ता है। जाकै सम्यक्त्वकालविषै तीनकी सत्ता भई थी, सो सत्ता पाईए, ताकै तीनकी सत्ता है अर जाकै मिश्रमोहनी सम्यक्त्वमोहनी की उद्वेलना होय गई होय, उनके परमाणु मिथ्यात्वरूप परिणमि गए होय, ताकै एक मिथ्यात्व की सत्ता है। तातैं सादि मिथ्यादृष्टी कै तीन प्रकृतीनिका वा एक प्रकृतिका उपशम हो है।

विशेष- जिस जीव के सम्यक्त्व काल में तीन की सत्ता हुई थी वह जिस मिथ्यात्वी के पाई जाती है और वह उपशम सम्यक्त्व के योग्य होता है तो तीन का उपशम करता है। यदि उसके सम्यक्त्व की उद्वेलना हो गई हो तो मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व; ऐसे दो का सत्त्व रहता है। तथा जिसके सम्यग्मिथ्यात्व की भी उद्वेलना हो गई हो तो वह एक (मिथ्यात्व) का उपशम करता है इस तरह सादि मिथ्यादृष्टि के किसी के तीन प्रकृति की सत्ता है, किसी के दो प्रकृति की सत्ता है तथा किसी के एक ही की सत्ता है।.... इस कारण सादि मिथ्यादृष्टि के तीन प्रकृति का या दो प्रकृति का या एक प्रकृति का उपशम होता है। ऐसा कथन समीचीन है।

बात यह है कि सम्यक्त्व के उद्वेलना-काल से सम्यग्मिथ्यात्व का उद्वेलना-काल विशेष अधिक है। कहा भी है-**सम्मत्तुव्वेलणकालादो सम्मामिच्छत्तुव्वेलणकालस्स विसेसाहियत्तादो (श्री जयधवल ८/८०)** यही कारण है कि सादि मिथ्यात्वी के जब सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वेलना हो जाती है तब उस विवक्षित क्षण में भी सम्यग्मिथ्यात्व का सत्त्व बना रहता है। और इसी कारण २७ सत्त्व स्थान बन जाता है। तथा इस २७ प्रकृतिक सत्त्वस्थान का काल मिथ्यात्वी के

१. सम्यक्त्व के इन दस भेदों का कथन निम्नलिखित ग्रन्थों में भी है – राजवार्तिक ३/३६/२/२०१, दर्शनपाहुड़ टीका १२, यशस्तिलकचम्पू ६/२३७ पृ. २८६, अनगारधर्मामृत २/६२, उत्तरपुराण ७६/५६४ तथा ५४/२२६, पं. रतनचन्द मुख्तार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व-पृ. ३६४।

उत्कृष्टतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग रूप है। इस काल में वह यदि सम्यक्त्व पाता है तो उपशम सम्यक्त्व ही पावेगा तथा दो का (मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व का) उपशम करके उपशम सम्यग्दृष्टि बन जायगा। कहा भी है-

अट्ठाविससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण सम्मत्ते उव्वेल्लिदे सत्तावीसविहत्ती होदि। तदो सव्वुक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागमेत्तकालेण जाव सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लेदि ताव सत्तावीसविहत्तीए पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागमेत्तुक्कस्सकालुवलंभादो। (श्री जयधवल २/२५५)

अर्थ- "२८ प्रकृतियों की सत्ता वाला (यानी दर्शनमोह की ३ प्रकृति वाला) मिथ्यात्वी जीव पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल द्वारा सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वेलना करके २७ प्रकृतिक (यानी दर्शनमोह की दो) सत्ता वाला होता है। इसके बाद वह जीव जब तक सबसे उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल के द्वारा सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वेलना करता है तब तक उसके २७ प्रकृतिक स्थान पाया जाता है। इस तरह २७ प्रकृतिक स्थान का उत्कृष्ट काल पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।" यानी सादि मिथ्यात्वी के दर्शनमोह की दो प्रकृति की सत्ता असंख्यात अन्तर्मुहूर्त तक रह सकती है।

अब हम उस आगम को देखते हैं जहाँ यह लिखा है कि २७ प्रकृतिक सत्त्व वाला मिथ्यात्वी भी उपशम सम्यक्त्व को पाता है।

२७ प्रकृतिक सत्त्व स्थानवाला उपशम सम्यक्त्व पाता है। (ज.ध.८/३२ विशे.) श्री जयधवल १२/२०८ में लिखा है-

अणादियमिच्छाइट्ठिस्स सादिमिच्छाइट्ठिस्स छबीससंतकम्मियस्स वा तदुवलंभादो। अहवा सम्मत्तेण विणा मोहणीयस्स सत्तावीसं पयडीओ संतकम्मं होइ, सम्मत्तमुव्वेलिय उवसमसम्मत्ताहिमुहम्मि तदविरोहादो। अथवा सम्मत्तेण सह अठावीससंतकम्मं होइ, वेदगपाओग्गकालं वोलिय सम्मत्तमणिव्वेलियूण उवसमसंम्मत्ताहिमुहम्मि तहाविहसंभवदंसणादो।

अर्थ- उपशमसम्यक्त्वाभिमुख जीव के- अनादि मिथ्यादृष्टि के तथा २६ प्रकृति सत्कर्म वाले सादि मिथ्यादृष्टि के २६ का सद्भाव पाया जाता है। अथवा सादि मिथ्यादृष्टि के सम्यक्त्व प्रकृति के बिना मोहनीय की २७ प्रकृतियाँ सत्कर्म रूप से होती हैं क्योंकि सम्यक्त्व की उद्वेलना कर उपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुए जीव के उनके होने में कोई विरोध नहीं है। अथवा, २८ प्रकृतियाँ सत्कर्म रूप से होती हैं क्योंकि वेदकसम्यक्त्व के योग्य काल का उल्लंघन कर, जिसने सम्यक्त्व प्रकृति की

उद्वेलना नहीं की है, ऐसे उपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुए जीव के २८ प्रकृतियों का सद्भाव देखा जाता है। (यही बात श्री धवल ६/२०७ में लिखी है। तथा यही बात जयधवल १२/२५७ में है। जयध.१२ प्रस्ता. पृ. २० भी देखें) इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपशम सम्यक्त्व के अभिमुख २६, २७,२८, तीनों ही सत्त्व स्थान वाले यानी दर्शनमोह की १, २,या ३ प्रकृति वाले होते हैं। यही का यही कथन अनगार धर्मामृत २/४६-४७ की स्वोपज्ञ टीका पृ. १४७ (ज्ञानपीठ) पर संस्कृत टीका में है। इस प्रकार उपशम सम्यक्त्वाभिमुख चरम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि के भी २७,२८ या २६ तीनों प्रकार के स्थान मिल सकते हैं। (ज.ध. २/२५३ से २५६) इस प्रकार दर्शनमोह उपशामना के प्रस्थापक या निष्ठापक के २६, २७, २८ तीनों ही स्थान बन जाते हैं।

जय धवल १२/३१० विशेषार्थ भी दृष्टव्य है। जिसके एक की सत्ता है वह सातिशयमिथ्यात्वी एक की ही प्रथमस्थिति करता है (अनिवृत्तिकरण में अन्तरकरण क्रिया में) जिसके दो की सत्ता है वह दो की तथा ३ की सत्ता वाला तीन की प्रथम स्थिति स्थापित करता है।

इसी तरह जितने (१, २ या ३) कर्मांश हों उतने का ही अन्तरकरण होता है। (धवल ६-जमत्थि दंसणमोहणीयं तस्स सव्वस्स अंतरं कीरदि।)

इस तरह यह सिद्ध हुआ कि सादि मिथ्यादृष्टि के किसी के एक की, किसी के दो की, किसी के तीन की सत्ता है। तथा सत्ता के अनुसार उतनी की ही {१ या २ या ३ की} उपशमक्रिया होती है। यह निर्विवाद सत्य है।

उपशम कहा? सो कहिए है-

अनिवृत्तिकरणविषै किया अंतरकरणविधानतैं जे सम्यक्त्व का कालविषै उदय आवने योग्य निषेक थे, तिनिका तो अभाव किया, तिनिके परमाणु अन्यकालविषै उदय आवने योग्य निषेकरूप किए।बहुरि अनिवृत्तिकरणही विषै किया उपशमविधानतैं जे तिसकाल के पीछे उदय आवने योग्य निषेक थे ते उदीरणारूप होय इस कालविषै उदय न आय सके, ऐसे किए। ऐसे जहाँ सत्ता तो पाइए अर उदय न पाइए, ताका नाम उपशम है। सो यहु मिथ्यात्वतैं भया प्रथमोपशम सम्यक्त्व, सो चतुर्थादि सप्तमगुणस्थानपर्यन्त पाइए है। बहुरि उपशमश्रेणी को सन्मुख होतैं सप्तम गुणस्थानविषै क्षयोपशमसम्यक्त्वतैं जो उपशम सम्यक्त्व होय, ताका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। यहाँ करणकरि तीन ही प्रकृतीनिका उपशम हो है, जातैं याकै तीनहीकी सत्ता पाइए। यहाँ भी अंतरकरणविधानतैं वा उपशमविधानतैं तिनिके उदय का अभाव करै है सोही उपशम है।सो यहु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सप्तमादि ग्यारवाँ गुणस्थानपर्यन्त हो है। पडता कोईकै छठे पाँचवें (चौथे गुणस्थान)[1] भी रहै है, ऐसा जानना। ऐसे उपशम सम्यक्त्व दोय प्रकार है। सो यहु सम्यक्त्व वर्तमान

१. "चौथे गुणस्थान" यह अन्य प्रतियों में अधिक है।

काल विषै क्षायिकवत् निर्मल है। याका प्रतिपक्षी कर्म की सत्ता पाईए है, तातैं अन्तर्मुहूर्त कालमात्र यहु सम्यक्त्व रहै है। पीछै दर्शनमोह का उदय आवै है, ऐसा जानना। ऐसे उपशम सम्यक्त्व का स्वरूप कह्या।

बहुरि जहाँ दर्शनमोह की तीन प्रकृतीनिविषै सम्यक्त्वमोहनी का उदय होय (पाइए है, ऐसी दशा जहाँ होय सो क्षयोपशम है। जातैं समलतत्त्वार्थ श्रद्धान होय, सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है।) अन्य दोय का उदय न होय, तहाँ क्षयोपशम सम्यक्त्व हो है। सो उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण भए यहु सम्यक्त्व हो है वा सादि मिथ्यादृष्टी कै मिथ्यात्व गुणस्थानतैं वा मिश्रगुणस्थानतैं भी याकी प्राप्ति हो है।

क्षयोपशम कहा? सो कहिए है-

दर्शनमोह की तीन प्रकृतीनिविषै जो मिथ्यात्व का अनुभाग है ताकै अनन्तवें भाग मिश्रमोहनी का है। ताकै अनन्तवें भाग सम्यक्त्वमोहनी का है। सो इनिविषै सम्यक्त्वमोहनी प्रकृति देशघाती है। याका उदय होतैं भी सम्यक्त्व का घात न होय। किंचित् मलीनता करै, मूलघात न करि सकै; ताहीका नाम देशघाती है। सो जहाँ मिथ्यात्व वा मिश्रमिथ्यात्वका वर्तमानकालविषै उदय आवने योग्य निषेक तिनका **उदय हुए बिना ही निर्जरा**[1] हो है सो तो **क्षय** जानना और इनिही का आगामीकालविषै उदय आवने योग्य निषेकनिकी सत्ता पाइए सो ही **उपशम** है और सम्यक्त्वमोहनी का उदय पाइए है, ऐसी दशा जहाँ होय सो **क्षयोपशम** है, तातैं समलतत्त्वार्थ श्रद्धान होय सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है। यहाँ मल लागै है, ताका तारतम्य स्वरूप तो केवली जाने है, उदाहरण दिखावने अर्थि चल-मलिन-अगाढ़पना कह्या है। तहाँ व्यवहार मात्र देवादिक की प्रतीति तो होय परन्तु अरहन्तदेवादिविषै यहु मेरा है, यहु अन्यका है, इत्यादि भाव सो **चलपना** है। शंकादि मल लागै सो **मलिनपना** है। यहु शांतिनाथ शांति का कर्त्ता है इत्यादि भाव सो **अगाढ़पना** है। सो ऐसे उदाहरण व्यवहारमात्र दिखाए परन्तु नियमरूप नाहीं। क्षयोपशम सम्यक्त्व विषै जो नियमरूप कोई मल लागै है सो केवली जाने है। इतना जानना-याकै तत्त्वार्थश्रद्धानविषै कोई प्रकार करि समलपनो हो है तातैं यहु सम्यक्त्व निर्मल नाहीं है। इस क्षयोपशम सम्यक्त्वका एक ही प्रकार है। याविषै किछू भेद नाहीं है। इतना विशेष है- जो क्षायिक सम्यक्त्व को सन्मुख होतैं अन्तर्मुहूर्त्तकाल मात्र जहाँ मिथ्यात्व की प्रकृति का क्षय करै है, तहाँ दोय ही प्रकृतीनिकी सत्ता रहै है। बहुरि पीछे मिश्रमोहनी का भी क्षय करै है। तहाँ सम्यक्त्वमोहनी की ही सत्ता रहै है। पीछे सम्यक्त्व मोहनीय की कांडकघातादि क्रिया न करै है। तहाँ कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि नाम पावै है, ऐसा जानना। बहुरि इस **क्षयोपशमसम्यक्त्व ही का नाम वेदकसम्यक्त्व है।** जहाँ मिथ्यात्वमिश्रमोहनी की मुख्यता करि कहिए, तहाँ क्षयोपशम नाम पावै है। सम्यक्त्व मोहनी की मुख्यताकरि कहिए, तहाँ वेदक नाम पावै है। सो कहने मात्र दोय नाम हैं, स्वरूपविषै भेद है नाहीं। बहुरि यहु क्षयोपशम सम्यक्त्व चतुर्थादि सप्तमगुणस्थान पर्यन्त पाइए है, ऐसे क्षयोपशम सम्यक्त्व का स्वरूप कह्या।

बहुरि तीनों प्रकृतीनि के सर्वथा सर्व निषेकनिका नाश भए अत्यन्त निर्मल तत्त्वार्थश्रद्धान होय सो **क्षायिक सम्यक्त्व** है। सो चतुर्थादि चार गुणस्थाननिविषै कहीं क्षयोपशम सम्यग्दृष्टी के याकी प्राप्ति हो है।

१. अर्थात् सर्वघाती रूप से उदय न होकर सम्यक्त्व के देशघाती स्पर्धक रूप से उदय में आना।

कैसे हो है? सो कहिए है-प्रथम तीन करणकरि तहाँ मिथ्यात्व के परमाणूनिको मिश्रमोहनी वा सम्यक्त्व मोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसे मिथ्यात्व की सत्ता नाश करै। बहुरि मिश्रमोहनी के परमाणूनिको सम्यक्त्व मोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसे मिश्रमोहनी का नाश करै। बहुरि सम्यक्त्वमोहनी के निषेक उदय आय खिरै, वाकी बहुत स्थिति आदि होय तो ताको स्थितिकांडादिकरि घटावै। जहाँ अन्तर्मुहूर्तस्थिति रहै, तब कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी होय। बहुरि अनुक्रमतैं इन निषेकनिका नाश करि क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो है। सो यहु प्रतिपक्षी कर्म के अभावतैं निर्मल है वा मिथ्यात्वरूप रंजना के अभावतैं वीतराग है। याका नाश न होय। जहाँतैं उपजैं तहाँतैं सिद्ध अवस्था पर्यन्त याका सद्भाव है। ऐसे क्षायिक सम्यक्त्व का स्वरूप कह्या। ऐसे तीन भेद सम्यक्त्व के हैं।

बहुरि अनन्तानुबंधी कषाय की सम्यक्त्व होतैं दोय अवस्था हो हैं। कै तो **अप्रशस्त उपशम** हो है,कै **विसंयोजन** हो है। तहाँ जो करणकरि उपशम विधानतैं उपशम होय ताका नाम प्रशस्त उपशम है। उदय का अभाव ताका नाम अप्रशस्त उपशम है। सो अनन्तानुबंधी का प्रशस्त उपशम तो होय ही नाहीं, अन्य मोहकी प्रकृतीनिका हो है। बहुरि इस का अप्रशस्त उपशम हो है।

विशेष-लब्धिसार टीका पृ. ८३ पर सिद्धान्तशिरोमणि करणानुयोग-प्रभाकर **रतनचंद मुख्तार** लिखते हैं:- अनन्तानुबन्धी चतुष्क का न तो अन्तार होता है और न ही उपशम होता है। हाँ, परिणामों की विशुद्धता के कारण प्रतिसमय स्तिबुक संक्रमण द्वारा अनन्तानुबन्धी कषाय का अप्रत्याख्यानावरण आदि कषाय रूप परिणमन होकर परमुख-उदय होता रहता है (उपशम सम्यक्त्व के काल में)। फिर प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में अधिक से अधिक ६ आवली तथा कम-से-कम १ समय शेष रहने पर परिणाम की विशुद्धि में हानि हो जावे तो अनन्तानुबन्धी का स्तिबुक संक्रमण रुक जाता है और अनन्तानुबन्धी के परमुख उदय के बजाय स्वमुख उदय आने के कारण प्रथमोपशम सम्यक्त्व की आसादना (विराधना) हो जाती है।[1]

बहुरि जो तीन करणकरि अनन्तानुबंधीनि के परमाणूनिको अन्य चारित्रमोह की प्रकृति रूप परिणमाय तिस की सत्ता नाश करिए, ताका नाम विसंयोजन है। सो इनविषै प्रथमोपशम सम्यक्त्वविषै तो अनन्तानुबंधी का अप्रशस्त उपशम ही है। बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति पहिले अनन्तानुबंधी का विसंयोजन भए ही होय; ऐसा नियम कोई आचार्य लिखै हैं, कोई नियम नाहीं लिखे हैं। बहुरि क्षयोपशम सम्यक्त्वविषै कोई जीव कै अप्रशस्त उपशम हो है वा कोईकै विसंयोजन हो है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व है सो पहले अनन्तानुबंधी का विसंयोजन भए ही हो है, ऐसा जानना। यहाँ यह विशेष है- जो उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्वीकै अनन्तानुबंधी का विसंयोजनतैं सत्ता नाश भया था, बहुरि वह मिथ्यात्वविषै आवै तो

१. यहाँ कोई ऐसा न समझ ले कि अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना नहीं होती है, अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना होती है पर यहाँ विशेषार्थ में हमें मात्र अप्रशस्त उपशम को ही स्पष्ट करना अभीष्ट रहा है।

अनन्तानुबंधी का बंध करै, तहाँ बहुरि वाकी सत्ता का सद्भाव हो है। अर क्षायिकसम्यग्दृष्टी मिथ्यात्वविषै आवै नाहीं, तातैं वाकै अनंतानुबंधी की सत्ता कदाचित् न होय।

यहाँ प्रश्न- जो अनन्तानुबंधी तो चारित्रमोहकी प्रकृति है सो चारित्र को घातै, याकरि सम्यक्त्व का घात कैसे सम्भवै?

ताका समाधान- अनन्तानुबंधी के उदयतैं क्रोधादिरूप परिणाम हो हैं, किछु अतत्त्व श्रद्धान होता नाहीं। तातैं अनन्तानुबंधी चारित्रही को घातै है, सम्यक्त्व को नाहीं घातै है।

विशेष-अनन्तानुबन्धी कषाय ४ तथा मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व इन छह प्रकृतियों का अभाव होने पर ही सम्यक्त्व होता है तथा इनमें से एक के भी सद्भाव होने पर नियम से सम्यक्त्व नष्ट हो ही जाता है इस प्रकार इन ६ प्रकृतियों के अन्वय व व्यतिरेक में सम्यग्दर्शन का व्यतिरेक व अन्वय निश्चित है, अतः न्यायशास्त्र के अनुसार सम्यक्त्वघातक इन छह प्रकृतियों को कहा है। सम्यक्त्वघातरूप कार्य अनन्तानुबन्धी के उदय से निश्चित रूप से होता है तथा अनन्तानुबंधी के उदय रहते सम्यक्त्व का उत्पाद त्रिकाल असम्भव है। इस कारण न्यायतः अनन्तानुबन्धी भी सम्यक्त्वघातक है ही और न्याय का अपलाप नहीं किया जा सकता।

विपरीताभिनिवेश दो प्रकार का होता है- अनन्तानुबन्धी-जनित तथा मिथ्यात्वजनित। इन दोनों प्रकार के विपरीताभिनिवेशों के अभाव से ही सम्यक्त्व सम्भव है। {धवल १/१६५}

सो परमार्थतैं है तो ऐसे ही परन्तु अनन्तानुबंधी के उदयतैं जैसे क्रोधादिक हो हैं, तैसे क्रोधादिक सम्यक्त्व होत न होय। ऐसा निमित्त-नैमित्तिकपना पाईए है। जैसे त्रसपना की घातक तो स्थावरप्रकृति ही है परन्तु त्रसपना होतैं एकेन्द्रिय जाति प्रकृति का भी उदय न होय, तातैं उपचारकरि एकेन्द्रिय प्रकृति को भी त्रसपना का घातकपना कहिए तो दोस नाहीं। तैसे सम्यक्त्व का घातक तो दर्शनमोह है परन्तु सम्यक्त्व होतैं अनन्तानुबंधी कषायनिका भी उदय न होय, तातैं उपचारकरि अनन्तानुबंधीकै भी सम्यक्त्वका घातकपना कहिए तो दोष नाहीं।

बहुरि यहाँ प्रश्न- जो अनन्तानुबंधी चारित्रही को घातै है तो याके गए किछू चारित्र भया कहो। असंयत गुणस्थानविषै असंयम काहेको कहो हो?

ताका समाधान-अनन्तानुबंधी आदि भेद हैं, ते तीव्र मंद कषाय की अपेक्षा नाहीं हैं। जातैं मिथ्यादृष्टीकै तीव्र कषाय होतैं वा मंदकषाय होतैं अनन्तानुबंधी आदि च्यारों का उदय युगपत् हो है। तहाँ च्यारों के उत्कृष्ट स्पर्द्धक समान कहे हैं।

विशेष-अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान व संज्वलन के उत्कृष्ट स्पर्धक समान नहीं हैं। परमपूज्य जयधवल पु. ५ पृ. १३३-३४ पर लिखा है- ण तेसिं सव्वेसिं पि चरिमफद्दयाणि

सरिसाणि। तं कुदो णव्वदे? महाबंधसुत्तसिद्धप्पाबहुआदो तं जहा-। सेलसमाणादो अणंताणुबंधी-लोभचरिमाणु-भागफद्दयमणंतगुणहीणं। लोभचरिमाणुभागफद्दयादो मायाए चरिमाणुभागफद्दयं विसेसहीणं। तत्तो कोधचरिमफद्दयं विसेसहीणं। कोधचरिमफद्दयादो माणचरिमफद्दयं विसेसहीणं। अणंताणुबंधिमाणचरिमफद्दयादो लोभसंजलणचरिमाणुभाग-फद्दयमणंतगुणहीणं तत्तो तस्सेव मायाचरिमफद्दयं विसेसहीणं। तदो तस्सेव कोधचरिमफद्दयं विसेसहीणं। तदो तस्सेव माण-चरिमफद्दयं विसेसहीणं। माणसंजलणचरिमफद्दयादो पच्चक्खाणावरण लोभ चरिमफद्दयं अणंतगुणहीणं। तदो तस्सेव मायाचरिमफद्दयं विसेसहीणं, तदो तस्सेव कोधचरिमफद्दयं विसेसहीणं। तदो तस्सेव माणचरिमफद्दयं विसेसहीणं पच्चक्खाणावरणमाण-**चरिमफद्दयादो अपच्चक्खाणावरण लोभचरिमफद्दयमणंतगुणहीणं। तदो तस्सेव माया-चरिमफद्दयं विसेसहीणं। तदो तस्सेव-कोधचरिमफद्दयं विसेसहीणं। तदो तस्सेव माणचरिमफद्दयं विसेसहीणं। {जयधवल}**

अर्थ-चारों कषायों के अन्तिम स्पर्धक समान नहीं हैं। **शंका**-यह कैसे जाना जाता है कि मिथ्यात्वादि के अन्तिम स्पर्धक समान नहीं हैं ? **समाधान-महाबन्ध** नामक सूत्रग्रंथ {यानी श्री महाधवला} से यह जाना जाता है। यथा-मिथ्यात्व के उत्कृष्ट स्थान शैल समान अन्तिम स्पर्धक से अनन्तानुबन्धी लोभ का अन्तिम अनुभाग स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। लोभ के अन्तिम अनुभाग स्पर्धक से माया का अन्तिम अनुभाग स्पर्धक विशेषहीन है। उससे क्रोध का अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे मान का अन्तिम स्पर्धक विशेष हीन है।

अनन्तानुबन्धी मान के अन्तिम स्पर्धक से संज्वलन लोभ का अन्तिम स्पर्धक अनन्तगुणाहीन है। उससे उसी की माया का अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसी के क्रोध का अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसी के मानका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। संज्वलन मान के अन्तिम स्पर्धक से प्रत्याख्यानावरण लोभ का अन्तिम स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे उसी की माया का अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है, उससे उसी के क्रोध का अन्तिम स्पर्धक विशेष हीन है। उससे उसी के मान का अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। प्रत्याख्यानावरण मान के अन्तिम स्पर्धक से अप्रत्याख्यानावरण लोभ का अन्तिम स्पर्धक अनन्तगुणाहीन है। उससे उसी की माया का अन्तिम स्पर्धक विशेष हीन है। उससे उसी के क्रोध का अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसी के मान का अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। इस प्रकार जयधवला जी व महाधवलजी से चारों कषायों के अन्तिम स्पर्धकों की असमानता सिद्ध है। {देखें-जैन गजट दि. ७.७.७३ ई., सि. शिरोमणि ब्र. रतनचन्द मुख्तार}

इतना विशेष है- जो अनन्तानुबंधी के साथ जैसा तीव्र उदय अप्रत्याख्यानादिक का होय, तैसा ताको गए न होय। ऐसे ही अप्रत्याख्यान की साथि जैसा प्रत्याख्यान संज्वलन का उदय होय, तैसा ताको गए न

होय। बहुरि जैसा प्रत्याख्यान की साथि संज्वलन का उदय होय, तैसा केवल संज्वलन का उदय न होय। तातैं अनन्तानुबंधी के गए किछू कषायनिकी मंदता तो हो है परन्तु ऐसी मन्दता न हो है, जाकरि कोउ चारित्र नाम पावै। जातैं कषायनि के असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं। तिनविषै सर्वत्र पूर्वस्थानतैं उत्तरस्थानविषै मंदता पाईए है परन्तु व्यवहारकरि तिन स्थाननिविषै तीन मर्यादा करी। आदि के बहुत स्थान तो असंयमरूप कहे, पीछे केतेक देशसंयमरूप कहे, पीछे केतेक सकलसंयमरूप कहे। तिनविषै प्रथम गुणस्थानतैं लगाय चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त जे कषाय के स्थान हो हैं ते सर्व असंयमही के हो हैं। तातैं कषायनिकी मंदता होतैं भी चारित्र नाम न पावै है। यद्यपि परमार्थतैं कषाय का घटना चारित्र का अंश है, तथापि व्यवहारतैं जहाँ ऐसा कषायनिका घटना होय, जाकरि श्रावकधर्म वा मुनिधर्म का अंगीकार होय, तहाँ ही चारित्र नाम पावै है। सो असंयमविषै ऐसे कषाय घटै नाहीं, तातैं यहाँ असंयम कहा है। कषायनिका अधिक हीनपना होतैं भी जैसे प्रमत्तादिगुणस्थाननिविषै सर्वत्र सकलसंयम ही नाम पावै तैसे मिथ्यात्वादि असंयतपर्यंत गुणस्थाननिविषै असंयम नाम पावै है। सर्वत्र असंयम की समानता न जाननी।

विशेष-यह ठीक है कि चतुर्थ गुणस्थान में कषाय की एक चौकड़ी का अभाव हो जाता है, अतः इतने अंशों में वहाँ कषायांश तो घटता ही है, पर उसे संयमरूप चारित्र नाम नहीं मिलता है। **चारित्तं णत्थि जदो अविरद अंतेसु ठाणेसु** {गो. जी. १२} इस आर्ष वचन के अनुसार वहाँ चारित्र नहीं होता। **षट्खण्डागम** में भी चतुर्थगुणस्थान में असंयत भाव को औदयिक ही कहा; क्षायोपशमिक नहीं (**धवल ५/२११**) हाँ, चतुर्थ गुणस्थान में सम्यक्त्वाचरण चारित्र अवश्य होता है। परन्तु संयमरूप चारित्र वहाँ नहीं होता। लोक में भी संयमरूप चारित्र को ही चारित्र कहा जाता है। तथा आगम में भी संयमरूप चारित्र ही निर्जरा का कारण कहा है (**धवल ८/८३, मो. मा. प्र. पृ. ३४७ सातवाँ अधिकार तथा पृ. ३०७ अधिकार ७, धवल ३/११६, धवल ६/२७३, ल.सा.पृ. २७४ रायचन्द्र शास्त्रमाला आदि**)। सूक्ष्म वस्तु-रचना में साक्षात् सर्वज्ञरूप ही स्वीकृत, विश्वविद्यानिधि के द्रष्टा, शब्दब्रह्म १०८ भगवद् वीरसेन (**ज.ध. १६/१४६**) कहते हैं कि चारित्र के विषय में अनन्तानुबंधी का कार्य यह है कि वह अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों के उदयप्रवाह को अनन्त (अनन्तसागरकालिक-अपरिमित काल तक उदय वाली) कर देती है। इसलिए चारित्र में अनन्तानुबन्धी चतुष्क का व्यापार निष्फल नहीं है। {**धवल ६/४३**}

बहुरि यहाँ **प्रश्न** जो अनन्तानुबंधी सम्यक्त्व को न घातै है तो याके उदय होतैं सम्यक्त्वतैं भ्रष्ट होय सासादन गुणस्थान को कैसे पावै है?

ताका **समाधान**- जैसे कोई मनुष्य कै मनुष्यपर्याय नाश का कारण तीव्ररोग प्रगट भया होय, ताको मनुष्यपर्याय का छोड़नहारा कहिए। बहुरि मनुष्यपना दूर भए देवादिपर्याय होय, सो तो रोग अवस्थाविषै न भया। इहाँ मनुष्य ही की आयु है। तैसे सम्यक्त्वीकै सम्यक्त्व के नाश का कारण अनन्तानुबंधी का उदय प्रगट भया, ताको सम्यक्त्व का विरोधक सासादन कह्या बहुरि सम्यक्त्व का अभाव भए मिथ्यात्व होय सो

तो सासादनविषै न भया। यहाँ उपशमसम्यक्त्व ही का काल है, ऐसा जानना। ऐसे अनन्तानुबंधी चतुष्क की सम्यक्त्व होतैं अवस्था हो है, तातैं सात प्रकृतीनि के उपशमादिकतैं भी सम्यक्त्व की प्राप्ति कहिए है।

विशेष-(१) सासादन भी कथंचित् मिथ्यात्व है यथा **सम्यक्त्वचारित्रप्रतिबंधि - अनन्तानुबन्धि-उदयोत्पादित-विपरीताभिनिवेशस्य तत्र सद्भावात्भवति मिथ्यादृष्टिः अपि तु मिथ्यात्वकर्मोदयजनित-विपरीताभिनिवेशाभावात् न तस्य मिथ्यादृष्टिव्यपदेशः, किन्तु सासादन इति व्यपदिश्यते {धवल १/१६५}**

अर्थ- सम्यग्दर्शन और चारित्र का प्रतिबंध करने वाले अनन्तानुबंधी कषाय के उदय से उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश दूसरे गुणस्थान में पाया जाता है, इसलिए {इस दृष्टि से} द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीव मिथ्यात्वी है, किन्तु मिथ्यात्व कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश वहाँ नहीं पाया जाता है इसलिए {इस दृष्टि से} उसे मिथ्यादृष्टि नहीं कहते हैं, किन्तु सासादन सम्यक्त्वी कहते हैं।

(२) "सासादन में उपशम सम्यक्त्व का काल है।" इसका अर्थ कोई यह नहीं समझे कि दूसरे गुणस्थान में उपशम सम्यक्त्व है। क्योंकि दूसरे गुणस्थान वाला **णासियसम्मोत्तो {गो. जी. २०, प्रा. पं. सं. १/६, धवल १/१६६}** अर्थात् नाशित सम्यक्त्व (जिसका सम्यक्त्व रत्न नष्ट हो चुका ऐसा जीव) कहलाता है। सासादन गुणी असद्दृष्टि है। {धवल १/१६५} वह उपशम सम्यक्त्व के काल के अन्त में पतितनाशित सम्यक्त्व होकर ही सासादन को प्राप्त होता है; स्थितिभूत उपशम सम्यक्त्व के साथ सासादन में नहीं जाता, यह अभिप्राय है। "सासादन में उपशम सम्यक्त्व का काल है" इसका अभिप्राय यह है कि उपशम सम्यक्त्व काल की अन्तिम ६ आवली की अवधि में कोई जीव परिणाम-हानिवश सम्यक्त्वरत्न को खोकर {ल.सा.पृ. ८३ मुख्तारी} सासादन {नाशित सम्यक्त्व व मिथ्यात्वगुण के अभिमुख} हो सकता है। {जयधवल १२, लब्धिसार गा. ६६ से १०६, धवल ४/३३६-३४३ आदि}

(३) अनन्तानुबन्धी यद्यपि चारित्रमोहनीय ही है तथापि वह स्वक्षेत्र तथा परक्षेत्र में घात करने की शक्ति से युक्त है। धवल में कहा है कि:- **अणंताणुबंधिणो....सम्मत्तचारित्ताणं विरोहिणो। दुविहसत्तिसंजुदत्तादो।....एदेसिं....सिद्धं दंसणमोहणीयत्तं चारित्तमोहणीयत्तं च {धवल ६/४२-४३} अर्थ**- गुरूपदेश तथा युक्ति से जाना जाता है कि अनन्तानुबंधी कषायों की शक्ति दो प्रकार की है। इसलिए सम्यक्त्व व चारित्र इन दोनों को घातने वाली दो प्रकार की शक्ति से संयुक्त अनन्तानुबंधी है।...इस प्रकार सिद्ध होता है कि अनन्तानुबंधी दर्शनमोहनीय भी है; चारित्र मोहनीय भी है। अर्थात् सम्यक्त्व तथा चारित्र को घातने की शक्ति से संयुक्त है। {धवल ६/४३} इस प्रकार अनन्तानुबन्धी की दोनों शक्तियों को स्वीकार करना चाहिए।

बहुरि प्रश्न-सम्यक्त्वमार्गणा के छह भेद किए हैं, सो कैसे हैं?

ताका समाधान-सम्यक्त्व के तो भेद तीन ही हैं। बहुरि सम्यक्त्व का अभावरूप मिथ्यात्व है। दोऊनिका मिश्रभाव सो मिश्र है सम्यक्त्व का घातकभाव सो सासादन है। ऐसे सम्यक्त्व मार्गणाकरि जीवका विचार किये छह भेद कहे हैं। यहाँ कोई कहै कि सम्यक्त्वतैं भ्रष्ट होय मिथ्यात्वविषै आया होय, ताको मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहिए। सो यहु असत्य है, जातैं अभव्यकै भी तिसका सद्भाव पाइए है। बहुरि मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहना ही अशुद्ध है। जैसे संयममार्गणाविषै असंयम कह्या, भव्यमार्गणाविषै अभव्य कह्या, तैसे ही सम्यक्त्वमार्गणा विषै मिथ्यात्व कह्या है। मिथ्यात्व को सम्यक्त्व का भेद न जानना। सम्यक्त्व अपेक्षा विचार करते केई जीवनिकै सम्यक्त्व का अभाव भासै तहाँ मिथ्यात्व पाइए है, ऐसा अर्थ प्रगट करने के अर्थि सम्यक्त्वमार्गणा विषै मिथ्यात्व कह्या है। ऐसे ही सासादन मिश्र भी सम्यक्त्व के भेद नाहीं हैं। सम्यक्त्व के भेद तीन ही हैं, ऐसा जानना। यहाँ कर्म के उपशमादिक तैं उपशमादिक सम्यक्त्व कहे सो कर्म का उपशमादिक याका किया होता नाहीं। यहु तो तत्त्वश्रद्धान करने का उद्यम करै, तिसके निमित्ततैं स्वयमेव कर्म का उपशमादिक हो है। तब याकै तत्त्वश्रद्धान की प्राप्ति हो है, ऐसा जानना। या प्रकार सम्यक्त्व के भेद जानने। ऐसे सम्यग्दर्शन का स्वरूप कह्या।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग

बहुरि सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहे हैं। निःशंकितत्व, निःकांक्षितत्व, निर्विचिकित्सत्व, अमूढ़दृष्टित्व, उपबृंहण, स्थितीकरण, प्रभावना, वात्सल्य। तहाँ भय का अभाव अथवा तत्त्वनिविषै संशय का अभाव, सो **निःशंकितत्व** है। बहुरि परद्रव्यादिविषै रागरूप वांछा का अभाव, सो **निःकांक्षितत्व** है। बहुरि परद्रव्यादिविषै द्वेषरूप ग्लानिका अभाव, सो **निर्विचिकित्सत्व** है, बहुरि तत्त्वनिविषै वा देवादिकविषै अन्यथा प्रतीतिरूप मोह का अभाव, सो **अमूढ़दृष्टित्व** है। बहुरि आत्मधर्म का वा जिनधर्म का बधावना, ताका नाम **उपबृंहण** है। इस ही अंग का नाम **उपगूहन** भी कहिए है। तहाँ धर्मात्मा जीवनि का दोष ढांकना ऐसा ताका अर्थ जानना। बहुरि अपने स्वभावविषै वा जिनधर्मविषै आपको वा परको स्थापन करना, सो **स्थितीकरण** है। बहुरि अपने स्वरूप की वा जिनधर्म की महिमा प्रगट करना, सो **प्रभावना** है। बहुरि स्वरूपविषै वा जिनधर्मविषै वा धर्मात्मा जीवनिविषै अतिप्रीति भाव, सो **वात्सल्य** है। ऐसे ए आठ अंग जानने। जैसे मनुष्य शरीर के हस्तपादादिक अंग हैं, तैसे ए सम्यक्त्व के अंग हैं।

यहाँ प्रश्न-जो केई सम्यक्त्वी जीवनिकै भी भय इच्छा ग्लानि आदि पाइए है अर केई मिथ्यादृष्टीकै न पाइए है, तातैं निःशंकितादिक अंग सम्यक्त्व के कैसे कहो हो ?

ताका समाधान- जैसे मनुष्य शरीर के हस्तपादादि अंग कहिए है, तहाँ कोई मनुष्य ऐसा भी होय, जाकै हस्तपादादिविषै कोई अंग न होय। तहाँ वाकै मनुष्यशरीर तो कहिए परन्तु तिनि अंगनि बिना वह शोभायमान सकल कार्यकारी न होय। तैसे सम्यक्त्व के निःशंकितादि अंग कहिए है, तहाँ कोई सम्यक्ती ऐसा भी होय, जाकै निःशंकितत्वादिविषै कोई अंग न होय। तहाँ वाकै सम्यक्त्व तो कहिए परन्तु तिनि अंगनिबिना

वह निर्मल सकल कार्यकारी न होय। बहुरि जैसे बांदरेकै भी हस्तपादादि अंग हो हैं परन्तु जैसे मनुष्य के होय, तैसे न हो हैं। तैसे मिथ्यादृष्टीनिकै भी व्यवहाररूप निःशंकितादिक अंग हो हैं परन्तु जैसे निश्चय की सापेक्ष लिए सम्यक्त्वी कै होय तैसे न हो हैं। बहुरि सम्यक्त्वविषै पच्चीस मल कहे हैं- आठ शंकादिक, आठ मद, तीन मूढ़ता, षट् अनायतन, सो ए सम्यक्त्वीकै न होय। कदाचित् काहूकै कोई लागै सम्यक्त्वका सर्वथा नाश न हो है, तहाँ सम्यक्त्व मलिन ही हो है, ऐसा जानना। बहु.....

卐 卐 卐

परिशिष्ट खण्ड

परिशिष्ट १ : कथाभाग

छठा अधिकार–पृ. १५२ पंक्ति ९

(१) मुनियों को आहारदान न देने की कथा

प्रभापुर नगर के राजा श्रीनन्दन और रानी धरणी के सुरमन्यु, श्रीमन्यु, निचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनयलालस और जयमित्र ये सात पुत्र हुए। प्रीतिंकर स्वामी के केवलज्ञान को देख प्रतिबोध को प्राप्त हो पिता-पुत्र संसार से विरक्त हो गये। पिता श्रीनन्दन तो केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये और ये सातों पुत्र चारणऋद्धि आदि अनेक ऋद्धियों के धारक श्रुतकेवली हो सप्तर्षि के नाम से विहार करने लगे।

"सो चातुर्मासिक विषै मथुरा के वनविषै वट के वृक्ष तले आय विराजे। तिनके तप के प्रभावकरि चमरेन्द्र की प्रेरी मरी दूर भई।... मथुरा का समस्त मण्डल सुखरूप भया...। वे महामुनि रसपरित्यागादि तप अर बेला तेला पक्षोपवासादि अनेक तप के धारक, जिनकूं चार महीना चौमासे रहना तो मथुरा के वनविषै, अर चारणऋद्धि के प्रभावतैं चाहे जहाँ आहार कर आवे। सो एक निमिष मात्र विषै आकाश के मार्ग होय पोदनापुर पारणा कर आवै, बहुरि विजयपुर कर आवै।... एक दिन वे धीर वीर महाशान्त भाव के धारक जूड़ा प्रमाण धरती देख विहार कर ईर्यासमिति के पालनहारे आहार के समय अयोध्या आये। शुद्ध भिक्षा के लेनहारे, प्रलंबित हैं महाभुजा जिनकी, अर्हदत्त सेठ के घर आय प्राप्त भये। तब अर्हदत्त ने विचारी वर्षाकाल विषै मुनि का विहार नाहीं, ये चौमासा पहिले तो यहाँ आये नाहीं। अर मैं यहाँ जे जे साधु विराजे हैं, गुफा में, नदी के तीर, वृक्षतलै, शून्य स्थानक विषै, वन के चैत्यालयनिविषै, जहाँ-जहाँ चौमासा साधु तिष्ठे हैं, वे मैं सर्व बंदे। ये तो अब तक देखे नाहीं। ये आचारांग सूत्र की आज्ञा से पराङ्मुख इच्छाविहारी हैं, वर्षाकाल विषै भी भ्रमते फिरै हैं, जिन आज्ञा पराङ्मुख, ज्ञानरहित, निराचारी, आचार्य की आम्नाय से रहित हैं। जिन आज्ञा पालक होय तो वर्षाविषै विहार क्यों करै? सो यह तो उठ गया, अर याकै पुत्र की वधू ने अति भक्ति कर प्रासुक आहार दिया। सो मुनि आहार लेय भगवान के चैत्यालय आय जहाँ द्युतिभट्टारक विराजते हुते, ये सप्तर्षि ऋद्धि के प्रभाव कर धरती से चार अंगुल अलिप्त चले आये अर चैत्यालयविषै धरती पर पग धरते आये। आचार्य उठ खड़े भये, अति आदर से इनकूं नमस्कार किया। अर जे द्युतिभट्टारक के शिष्य हुते तिन सबने नमस्कार किया। बहुरि ये सप्त तो जिनवन्दना करि आकाश के मार्ग मथुरा गये। इनके गये पीछे अर्हदत्त सेठ चैत्यालय विषै आया। तब द्युतिभट्टारक ने कही - सप्त महर्षि महायोगीश्वर चारणमुनि यहाँ आये हुते, तुमने हूं वह वंदे हैं? वे महापुरुष महातप के धारक हैं, चार महीने मथुरा निवास किया है, अर चाहै जहाँ आहार ले जांय। आज अयोध्याविषै आहार लिया, चैत्यालय दर्शन कर गये, हमसे धर्मचर्चा करी, वे महातपोधन नगरगामी शुभ चेष्टा के धरणहारे, परम उदार, ते मुनि वन्दिवे योग्य हैं। तब वह श्रावकनिविषै अग्रणी आचार्य के मुख सूं चारणमुनिनि की महिमा सुनकर खेदखिन्न होय पश्चाताप करता भया। धिक्कार मोहि मैं सम्यक्दर्शन रहित वस्तु का स्वरूप न पिछान्या, मैं अत्याचार

मिथ्यादृष्टि, मो समान और अधर्मी कौन? वे महामुनि मेरे मन्दिर अहारकूं आये अर मैं नवधा भक्ति कर आहार न दिया। जो साधुकूं देख सन्मान न करै अर भक्ति कर अन्नजल न देय सो मिथ्यादृष्टि है। मैं पापी, पापात्मा, पाप का भाजन, महानिंद्य, मो समान और अज्ञानी कौन? मैं जिनवाणी से विमुख। अब मैं जौंलग उनका दर्शन न करूं तौंलग मेरे मन का दाह न मिटै।" जब अष्टाह्निका आई तो अर्हदत्त सेठ ने मथुरा पहुँच कर मुनियों की पूजा-स्तुति की और आहार देकर चित्त को शान्त किया।

-पद्मपुराण, पर्व ६२ अनुवाद पं. दौलतरामजी, पृ. सं. ७१२-७१४ **श्रीमहावीरजी प्रकाशन**

सातवाँ अधिकार–पृ. १८१ पंक्ति १५

(२) कुत्ते के देव होने की कथा

एक बार कुछ विप्र यज्ञ कर रहे थे, तभी एक कुत्ते ने आकर उनकी हवन-सामग्री जूठी कर दी। उन विप्रों ने उस कुत्ते को बेरहमी से इतना मारा कि वह मरणासन्न हो गया। संयोग से जीवन्धर कुमार उधर आ निकले। उन्होंने कुत्ते को मरते देख कर उसे नमस्कार मन्त्र सुनाया। मन्त्र के प्रभाव से कुत्ता मर कर यक्षों का इन्द्र सुदर्शन हुआ। अवधिज्ञान से अपने उपकारी का स्मरण कर वह जीवन्धर कुमार के पास आया और बोला कि "हे जीवन्धर! जब भी तुम पर कोई विपत्ति आये तो मेरा स्मरण करना, मैं उसी समय आकर आपकी विपत्ति दूर कर दूंगा।" यह कह कर वह चला गया। कालान्तर में जब जीवन्धर को मृत्युदण्ड मिलता है तब सुदर्शन यक्षेन्द्र आकर जीवन्धर की रक्षा करते हैं।

- क्षत्रचूड़ामणि (जीवन्धर चरित्र) ४/१-१४ तथा ५/१४,२४ आदि

सातवाँ अधिकार–पृ. १८४ तीसरी पंक्ति

(३) शिवभूति केवली की कथा

शिवभूति नामका निकटभव्य संसार से विरक्त होकर दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगा। वह कुछ पढ़ा-लिखा नहीं था। गुरुमुख ने उसने सुन रखा था कि आत्मा और शरीर इस प्रकार भिन्न है जिस प्रकार तुष और मास भिन्न होते हैं। इसी भावज्ञान के आधार पर वह साधु हुआ था और आठ प्रवचन माताओं (पाँच समिति + तीन गुप्ति) का ज्ञान होने से साधुचर्या का समीचीनतया पालन करता था। परन्तु बुद्धि की मन्दता से वह एक दिन गुरुमुख से सुने हुए इस दृष्टान्त को भी भूल गया कि आत्मा और शरीर तुष-मास की तरह भिन्न हैं। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह याद नहीं कर सका। एक दिन आहार को जाते हुए उसने किसी स्त्री को दाल धोते हुए देखा। उसने उस स्त्री से पूछा कि तुम यह क्या कर रही हो? तो स्त्री ने उत्तर दिया - मैं दाल धोकर उसके तुष (छिलके) अलग कर रही हूँ।" इतना सुनते ही उसे 'तुष-मास भिन्न' उदाहरण याद आ गया। वह जाकर ध्यान करने लगा और केवल इतने ही द्रव्य और भावश्रुत के प्रभाव से अन्तर्मुहूर्त में घातिया कर्मों को नष्ट कर अरहन्त केवली बन गया। अनन्तर शेष चार घातिया कर्मों को भी नष्ट कर मोक्ष गया।

- षट्प्राभृत-भावप्राभृत गाथा ५३ की टीका

सातवाँ अधिकार–पृ. १९५ पंक्ति २७

(४) भव्यसेन मुनि की कथा

विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के मेघकूटपुर नामक नगर में राजा चन्द्रप्रभ अपनी सुमति नामकी पटरानी के साथ राज्य करता था। एक दिन राजा अपने पुत्र चन्द्रशेखर को राज्य देकर, कुछ विद्यायें साथ लेकर, मुनिवन्दना करने हेतु दक्षिण मथुरा गया और मुनिगुप्त आचार्य के पास श्रावक के व्रत ग्रहण कर क्षुल्लक बन गया। वहाँ से जब वह मुनियों की वन्दना करने हेतु चला तो उसने गुरुदेव से पूछा कि प्रभो किसी को कुछ कहना हो तो मुझे बता दीजिए - मैं जा रहा हूँ - कह दूंगा। आचार्य ने कहा कि सुव्रत मुनि को नमोऽस्तु कहना और वरुण महाराज की पत्नी रेवती को धर्मवृद्धि कहना। क्षुल्लक ने पुनः पूछा कि और किसी को तो कुछ नहीं कहना है? आचार्य ने मना कर दिया। क्षुल्लक ने पुनः पूछा तो भी आचार्य ने वही उत्तर दिया। क्षुल्लक ने मन में सोचा कि "वहाँ भव्यसेन नाम के मुनि भी रहते हैं लेकिन गुरु ने उनका नाम भी नहीं लिया, इसका क्या कारण है? चलो, वहीं चल कर देखूंगा कि क्या बात है?" इस प्रकार विचार कर क्षुल्लक उत्तर मथुरा पहुँचा और सुव्रत मुनि को आचार्य का नमोस्तु कह कर भव्यसेन मुनि के स्थान पर गया। भव्यसेन मुनि ने क्षुल्लक से बात भी नहीं की। जब भव्यसेन कमण्डलु लेकर बाहर जाने लगा तो क्षुल्लक भी उसके साथ हो लिया। उसने विद्या के प्रभाव से सारे रास्ते में घास ही घास पैदा कर दी। भव्यसेन मुनिराज घास को देख कर भी उस पर पैर रखकर चले गये। इसके बाद जब भव्यसेन शौच से निवृत्त हुए तो क्षुल्लक ने अपनी विद्या से कमण्डलु का पानी सुखा दिया और मुनि से कहा कि "भगवन्! कमण्डलु में पानी नहीं है और न कोई प्रासुक ईंट ही दिखाई देती है अतः मिट्टी लेकर इस तालाब में आप शुचि कर लें।" भव्यसेन मुनि ने इसको अनाचार समझकर भी आगम की उपेक्षा कर शुद्धि कर ली। भव्यसेन मुनि के इस प्रकार के आचरण से क्षुल्लक ने समझ लिया कि ये मुनि द्रव्यलिंगी हैं। अतः उनका नाम उसने भव्यसेन की जगह अभव्यसेन कर दिया।

- षट्प्राभृत-भावप्राभृत-गाथा ५२ टीका

सातवाँ अधिकार–पृ. १९७ पंक्ति २५

(५) यमपाल चाण्डाल की कथा

काशी के राजा पाकशासन ने एक समय अपनी प्रजा को महामारी से पीड़ित देख कर ढिंढोरा पिटवा दिया कि "नन्दीश्वर पर्व में आठ दिन पर्यन्त किसी जीव का वध न हो। इस राजाज्ञा का उल्लंघन करने वाला प्राणदण्ड का भागी होगा।" वहीं एक सेठपुत्र रहता था। उसका नाम तो था धर्म, पर असल में वह महा अधर्मी था। सप्त व्यसनों का सेवन करने वाला था। उसे मांस खाने की बुरी आदत पड़ी हुई थी। एक दिन भी बिना मांस खाये उससे नहीं रहा जाता था। एक दिन वह गुप्तरीति से राजा के बगीचे में गया। वहाँ राजा का एक खास मेंढ़ा बँधा करता था। उसने उसे मार डाला और उसके कच्चे ही मांस को खाकर उसकी हड्डियों को एक गड्ढे में गाड़ दिया।

दूसरे दिन जब राजा ने बगीचे में मेंढा नहीं देखा और बहुत खोज करने पर जब उसका पता नहीं चला तब उन्होंने उसका पता लगाने के लिए अपने गुप्तचर नियुक्त किये। एक गुप्तचर राजा के बाग में भी चला गया। वहाँ का बागवान रात को सोते समय अपनी स्त्री से सेठपुत्र के द्वारा मेंढे के मारे जाने का हाल कह रहा था। उसे गुप्तचर ने सुन लिया। उसने महाराज से जाकर सब हाल कह दिया। राजा को यह सुनकर सेठपुत्र पर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने कोतवाल को बुलाकर आज्ञा की कि पापी सेठपुत्र ने एक तो जीवहिंसा की और दूसरे राजाज्ञा का उल्लंघन किया है, अतः उसे ले जाकर शूली पर चढ़ा दो।

कोतवाल सेठपुत्र को पकड़ कर शूली के स्थान पर ले गया और नौकरों को भेज कर उसने यमपाल चाण्डाल को बुलवाया क्योंकि शूली पर चढ़ाने का काम उसी का था। पर यमपाल ने एक दिन सर्वौषधि ऋद्धिधारी मुनिराज के द्वारा जिनधर्म का पवित्र उपदेश सुन कर यह प्रतिज्ञा ली थी कि "मैं चतुर्दशी के दिन कभी जीवहिंसा नहीं करूंगा।" इसलिए उसने राजसेवकों को आते हुए देखकर अपने व्रत की रक्षा के लिए अपनी स्त्री से कहा - "प्रिये! किसी को मारने के लिए मुझे बुलाने हेतु राजसेवक आ रहे हैं, सो तुम उनसे कह देना कि वे घर में नहीं हैं, दूसरे गाँव गये हुए हैं।" इस प्रकार अपनी पत्नी को कह कर वह अपने घर में ही छिप गया। जब राजसेवक उसके घर पर आये तो चाण्डाल की स्त्री ने अपने स्वामी के बाहर जाने का समाचार कह दिया तो सेवकों ने बड़े खेद के साथ कहा - "हाय, वह बड़ा अभागा है। आज ही तो एक सेठपुत्र को मारने का मौका आया था। यदि वह आज सेठपुत्र को मारता तो उसे उसके सब वस्त्राभूषण प्राप्त होते।" वस्त्राभूषण का नाम सुनते ही चांडालिनी के मुँह में पानी भर आया। वह अपने लोभ के सामने अपने स्वामी का हानि-लाभ कुछ नहीं सोच सकी। उसने रोने का ढोंग बनाकर और यह कहते हुए कि हाय! वे आज ही गाँव को चले गये, आती हुई लक्ष्मी को उन्होंने पाँव से ठुकरा दिया, हाथ के इशारे से घर के भीतर छिपे हुए अपने स्वामी को बता दिया। यह देख राजसेवकों ने उसे घर से बाहर निकाला। निकलते ही निर्भय होकर उसने कहा - "आज चतुर्दशी है और मुझे आज अहिंसाव्रत है, इसलिए मैं किसी तरह-चाहे मेरे प्राण ही क्यों न जायें, हिंसा नहीं करूंगा।" सेवक उसे राजा के पास ले गये। वहाँ भी वैसा ही कहा। ठीक है - "यस्य धर्मे सुविश्वासः क्वापि भीतिं न याति सः।"

राजा सेठपुत्र के अपराध के कारण उसपर तो अत्यन्त कुपित थे ही, चाण्डाल की निर्भयपने की बात ने उन्हें और अधिक क्रोधी बना दिया। उन्होंने उसी समय आज्ञा दी कि - "जाओ, इन दोनों को ले जाकर मगरमच्छादि क्रूर जीवों से भरे तालाब में डाल दो।" वही किया गया। कोतवाल ने दोनों को तालाब में डलवा दिया। तालाब में डालते ही पापी सेठपुत्र को तो जलजीवों ने खा लिया। रहा यमपाल-सो वह अपने जीवन की कुछ भी परवाह न कर अपने व्रतपालन में निश्चल बना रहा। उसके उच्च भावों और व्रत के प्रभाव से देवों ने आकर उसकी रक्षा की। उन्होंने धर्मानुराग से तालाब में ही एक सिंहासन पर यमपाल चाण्डाल को बैठाया, उसका सत्कार किया और उसे खूब स्वर्गीय वस्त्राभूषण प्रदान किये। जब राजा प्रजा को यह हाल सुन पड़ा तो उन्होंने भी उस चाण्डाल का हर्षपूर्वक सम्मान किया। व्रतपालन का ऐसा अचिन्त्य प्रभाव देखकर भव्य पुरुषों को उचित है कि वे स्वर्गमोक्ष का सुख देने वाले जिनधर्मोपदिष्ट व्रत-संयमपालन में अपनी बुद्धि लगावें।

- आराधना कथाकोश : प्रथम भाग : २४वीं कथा

मूल - ब्र. नेमिदत्त, अनु. उदयलाल कासलीवाल

आठवाँ अधिकार—पृ. २३५ पंक्ति २४

(६) विष्णुकुमार मुनि की कथा

उज्जैन में किसी समय राजा श्रीवर्मा राज्य करता था। उसके चार मन्त्री थे। बलि, बृहस्पति, प्रह्लाद और नमुचि। एक बार आचार्य अकम्पन अपने संघके ७०० मुनियों के साथ विहार करते हुए उज्जैन आये। प्रजा की देखा-देखी उक्त चारों मन्त्री और राजा भी मुनियों के दर्शन करने गये। परन्तु आचार्य ने अपने दिव्यज्ञान से राज्याधिकारियों को मिथ्यादृष्टि जानकर समस्त संघको उनसे वार्तालाप करने की मनाही कर दी। मन्त्रियों ने पहुँचकर मुनियों को नमस्कार किया। किन्तु जब उन्होंने नमस्कार के बदले किसीको आशीर्वाद देते तक भी न देखा तो उन्होंने मुनियों की हँसी की और कहा "ये सब बैल हैं, कुछ नहीं जानते।" नगर को लौटते समय उन्हें आहार लेकर आते हुए श्रुतसागर मुनि दीख पड़े। वहाँ उन मुनि से चारों ब्राह्मणों का विवाद हो गया और वे पराजित हो गये। मुनि अपने संघमें पहुँचे और उन्होंने मार्ग का सब वृत्तान्त आचार्य से निवेदन किया। आचार्य ने उन्हें प्रायश्चित्तस्वरूप जहाँ विवाद हुआ था, रात भर वहीं कायोत्सर्ग करने के लिए कहा। मुनि ने वैसाही किया। वे चारों मन्त्री पराजय के अपमानसे दुःखी होकर रात में संघको मारने चले। किन्तु मार्ग में उन्हीं मुनि को खड़ा देखकर पहले उन्हीं को मारना चाहा। मुनि के वध के लिए जैसे ही उन्होंने तलवार उठाई कि नगर-देवता ने उन्हें उसी प्रकार कील दिया। प्रातः लोगों ने उन्हें उस प्रकार खड़ा देखकर बड़ा धिक्कारा, और राजाने उन्हें गधेपर चढ़ा कर नगर से निकाल दिया। इधर हस्तिनागपुरका राजा महापद्म अपने बड़े पुत्र पद्म को राज्य देकर छोटे पुत्र विष्णुकुमार सहित मुनि हो गया। वे चारों मन्त्री वहाँ से निकलकर हस्तिनागपुर में उसी राजा पद्म के मन्त्री हो गये। उन्होंने राजा पद्म के अजेय शत्रु राजा सिंहबलको किसी प्रकार पकड़ कर पद्म के सामने ला दिया। पद्म इस पर प्रसन्न हो गया और उनसे वर मांगने के लिए कहा। मन्त्रियों ने कहा 'समय आने दीजिए, हम अपना वर मांग लेंगे।'

संयोग से वे ही आचार्य अकम्पन अपने संघके ७०० मुनियों के साथ विहार करते हुए हस्तिनागपुर पहुँचे। उन्हें देखकर मन्त्रियों ने अपने पूर्व अपमान का बदला लेना चाहा। राजा को मुनिभक्त जानकर उन्होंने उस समय अपना वर माँगना उचित समझा और उसे पूरा करने के लिए राजा से सात दिन के लिए राज्य की याचना की। राजा ने उसे स्वीकार कर लिया। राज्य पाकर उन मन्त्रियों ने कायोत्सर्ग से खड़े हुए उन मुनियों को चारों ओर से घेर कर एक यज्ञमण्डप बनवाया और वे यज्ञ करने लगे। यज्ञ में पशुओं की चर्बी और चर्म आदि के जलने से जो धुँआ उठा, उससे मुनियों के गले रुंध गये। यहाँ तक कि अपने कण्ठगत प्राण देखकर मुनियों ने संन्यास धारण कर लिया। इधर मिथिलानगरी में आधी रातको आचार्य श्रुतसागर ने श्रवण नक्षत्र को कम्पायमान देखा। अवधि-ज्ञान से मुनियों पर उपसर्ग जानकर उनके मुँह से 'हा' निकल पड़ा। पास बैठे हुए पुष्पधर नाम के एक क्षुल्लकने आचार्य से इसका कारण पूछा। आचार्य ने उपसर्ग का सब वृत्तान्त कह दिया और उसके निवारण का उपाय बताया कि धरणिभूषण पर्वतपर

विष्णुकुमार मुनि को विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हुई है। वे उपसर्ग दूर कर सकते हैं। क्षुल्लक विष्णुकुमार मुनि के पास गया और ७०० मुनियों के उपसर्ग की बात कह कर उन्हें विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न होने की बात कही। परीक्षा के लिए विष्णुकुमार मुनि ने ज्योंही अपना हाथ पसारा कि वह पर्वतादिक से बिना रुके हुए बहुत दूर चला गया। इस तरह ऋद्धि की परीक्षा कर अपना बावन का रूप बनाकर, उन मन्त्रियों के पास, जो उस समय राजा थे, पहुँचे। वहाँ जाकर खूब वेदध्वनिकी और दक्षिणा में तीन पैंड पृथ्वी माँगी, राजाने स्वीकार कर लिया। मुनि ने अपना एक पैर सुमेरु पर रक्खा, दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर, तीसरा देव-गन्धर्वों में क्षोभ पैदा कर राजा बलिकी पीठपर रख दिया। इस तरह सारी पृथ्वी अपने अधिकार में कर मुनियों का उपसर्ग दूर किया। वे मन्त्री लज्जित होकर मुनिसंघ के पैरों पर गिर पड़े और तबसे सम्यग्दृष्टि श्रावक हो गये।

(१) आराधना कथाकोश (ब्र.नेमिदत्त अनु. उदयलाल कासलीवाल) प्रथम भाग - १२ वीं कथा

(२) प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (सम्यक्त्व का वात्सल्य अंग)

आठवाँ अधिकार—पृ. २३७ पंक्ति ७

(७) वज्रकर्ण सिंहोदर की कथा

दशांगपुर नगर का राजा वज्रकर्ण बड़ा धर्मात्मा और साधुचरित पुरुष था। उसके यह प्रतिज्ञा थी कि मैं देव, शास्त्र, गुरुको छोड़कर अन्य किसी को नमस्कार नहीं करूंगा। अपनी प्रतिज्ञा के निर्वाह के लिए उसने अँगूठी में अरहंतका एक छोटा सा प्रतिबिम्ब जड़वा लिया था। वह जब किसी को नमस्कार करता, तब उसी अँगूठी के प्रतिबिम्ब को धोक देता लेकिन मालूम ऐसा पड़ता कि सामने वाले आदमी को नमस्कार कर रहा है। वह अपने स्वामी राजा सिंहोदर के साथ भी यही व्यवहार करता था। उसका यह भेद किसी ने राजा सिंहोदर से कह दिया। सिंहोदरने क्रोध में आकर उसे पकड़ लानेके लिए सेना भेजी लेकिन वह अपने दुर्ग में जाकर छिपकर बैठ गया। सिंहोदर तब स्वयं युद्ध-साधनों से सज्जित होकर दशपुर नगर आया और एक दूत द्वारा वज्रकर्ण से कहलवाया कि 'वह शीघ्र मुझे आकर नमस्कार करे अन्यथा उसे उसकी ढीठताका फल भोगना होगा।' वज्रकर्ण ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इस पर सिंहोदर ने उसका सारा नगर उजाड़ दिया। संयोग से उधर राम, लक्ष्मण और सीता घूमते हुए आ निकले और एक आदमी से नगर के उजड़ने का कारण जानकर वहीं ठहर गये। दूसरे दिन प्रातःकाल ही लक्ष्मण खाना लाने के लिए नगर में गये और सीधे वज्रकर्ण के यहाँ पहुँचे। वज्रकर्ण ने लक्ष्मण को आदरपूर्वक बड़े ही सुस्वादु व्यंजन दिये। लक्ष्मण उन्हें लेकर राम के पास आये। जब सब खा चुके तब रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से वज्रकर्ण की सहायता करने के लिए कहा। लक्ष्मण बिना कुछ हथियार लिये सिंहोदर के कटक में पहुँचे और वज्रकर्ण को छोड़ देने के लिये कहा। जब सिंहोदरने इन्कार किया तब दोनों ओर से युद्ध हुआ। युद्ध में लक्ष्मण ने सिंहोदर को पकड़ लिया और वज्रकर्ण से क्षमायाचना कराकर उसका राज्य लौटा दिया।

–पद्मपुराण भाग २, सर्ग ३३ पृ. १०१-१२४

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

परिशिष्ट - २

ग्रन्थगत पारिभाषिक शब्दकोश

अकामनिर्जरा - सहने की हार्दिक इच्छा न होने पर भी क्षुधादिक से विवश होने पर मन्दकषाय की दशा में फल देकर कर्मों का स्वयमेव झड़ जाना।

अगुरुलघु - गोत्र कर्म के अभाव से होने वाला सिद्धों का एक गुण।

अगृहीत -जो बाह्य कारण बिना, स्वभाव से होता है वह।

अघातिया कर्म - आत्मगुणों का घात न करने वाला कर्म।

न - चक्षु को छोड़ कर अन्य इन्द्रियों से होने वाला दर्शन।

अछेरा - आश्चर्यजनक घटनायें।

अणुव्रत - पापों का स्थूल त्याग।

अतिचार - व्रत की अपेक्षा रखते हुए उसका एकदेश भंग।

अधःकरण - जहाँ ऊपर और नीचे के समयवर्ती जीवों के परिणाम समान हों।

अनाचार - व्रत का पूर्ण भंग।

अनायतन - अयोग्य स्थान। सम्यक्त्व में दोषजनक कुदेवादिक की प्रशंसा।

अनिवृत्तिकरण - जहाँ एक समयवर्ती जीवों के परिणामों की विशुद्धता में कोई भेद न हो; नौवाँ गुणस्थान।

अनुप्रेक्षा - संसार, शरीर और भोगों के स्वरूप का बार-बार विचार। अनित्यादि बारह भावनाएँ।

अनुभाग - कर्मों की फलदान शक्ति।

अनेकान्त -

को विरोधरहित अनेकधर्मात्मक कथन करने वाला सिद्धान्त।

अपकर्षण - कर्मों की स्थिति-अनुभाग का घट जाना।

अपर्याप्तक आहारादि छह पर्याप्तियों में से जिस जीव की एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हुई हो।

जहाँ भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम अपूर्व ही अपूर्व हो; आठवाँ गुणस्थान।

अभव्य - कभी मुक्त न होने वाला 'जीव'।

अमूर्तिक - रूप, रस, गन्ध, स्पर्श से रहित पदार्थ।

अरिहन्त - घातियाकर्मरहित, ३४ अतिशय सहित और १८ दोष रहित परमेष्ठी

अर्थापत्ति - एक वाक्य से अन्य अर्थ का बोध होना। जैसे मोटा देवदत्त दिन में नहीं खाता। इस वाक्य से देवदत्त के रात में खाने का बोध होता है।

अलोक - जहाँ केवल आकाश द्रव्य ही होता है, अन्य द्रव्य नहीं होते।

अवगाहनत्व - आयु कर्म के अभाव से पैदा होने वाला सिद्धों का एक गुण। परस्पर में बिना ही मिले अवगाहन करने की शक्ति।

अवधिज्ञान - इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना मूर्तिक पदार्थों को मर्यादापूर्वक जान लेने वाला ज्ञान। इसका दूसरा नाम सीमाज्ञान भी है।

अविरति - पापों में प्रवृत्ति, व्रतहीनता। एक से चौथे गुणस्थान तक में अविरति होती है।

अशुभोपयोग - कषाय, पाप और व्यसन आदि निन्द्य कार्यों की ओर मन-वचन काय का लक्ष्य होना।

असंज्ञी - मनरहित जीव।

अहमिन्द्र - सोलह स्वर्गों से ऊपर के देव जिनमें इन्द्र आदि का भेद नहीं होता।

आगमद्रव्यनिक्षेप - आगम का ज्ञाता किन्तु आगम के उपयोग से रहित आत्मा।

आबाधाकाल - कर्मों के उदय या उदीरणा होने से पहले का समय।

आर्तध्यान - इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, वेदना और निदान आदि से चिन्तित रहना।

काल का एक परिणाम। असंख्यात समयों की एक आवली होती है।

अवश्य करने योग्य दैनिक कर्तव्य।

इतरेतराश्रयदोष - दो चीजें जहाँ परस्पर आश्रित बताई

जाँय। न्याय का एक दोष।

इतरनिगोद - त्रसराशि से निकल कर पुनः निगोद में जाने वाले जीव।

उत्कर्षण - कर्मों की स्थिति व अनुभाग का बढ़ना।

उदय - कर्मों का फल देना।

उदीरणा - समय के पहले ही कर्मों का फल देना।

उद्वेलना - एक कर्मप्रकृति का सजातीय कर्मप्रकृति रूप परिणमन करा कर नाश करना।

उपभोग - बार-बार भोग में आ सकने वाली वस्तु।

उपमान - प्रमाण का एक भेद। एक की समानता से दूसरे का ज्ञान करना।

उपयोग - जीव की ज्ञानदर्शन शक्ति। जानने-देखने रूप चेतना का परिणाम विशेष।

उपशमकरण - कर्मों का अनुदय।

उपाधि - कर्म।

(उ) पोसह - उपवास।

एकेन्द्रिय - स्पर्शन इन्द्रिय वाले जीव।

एकाशन - दिन में एक बार भोजन करना।

एकान्त पक्ष - अनेक धर्मों की सत्ता की अपेक्षा नहीं करके वस्तु को सर्वथा एक रूप मानना।

एषणा समिति - निर्दोष विधि से आहार लेना।

औदारिक शरीर - मनुष्य और तिर्यञ्चों का स्थूल शरीर।

औपाधिक भाव - कर्मजन्य भाव।

अंग - गौतम गणधर कृत जैनों का मूल साहित्य।

अन्तरकरण - आगे उदय में आने वाले कर्म के कुछ निषेकों को बीच से उठाकर आगे-पीछे करना।

अन्तर्मुहूर्त - आवली से ऊपर और मुहूर्त से नीचे का समय।

करण - परिणाम। इन्द्रिय। गणितसूत्र।

कर्म - योग और कषाय के निमित्त से आत्मा से सम्बन्ध को प्राप्त होने वाला एक प्रकार का पुद्‌गल द्रव्य, जो आत्मा के असली स्वभाव को ढकता है।

कषाय - जो आत्मा को कषता, दुःख देता और पराधीन करता है। क्रोध, मान, माया, लोभादि रूप परिणाम।

कापोतलेश्या - परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, छिद्रान्वेषणता, विवेकहीनता आदि रूप परिणाम विशेष

कुटीचर - हिन्दू संन्यासियों का एक भेद। मिथ्यावेशधारी पुरुष।

सर्वज्ञ।

केवलदर्शन - त्रिकाल और त्रिलोक को युगपत् देखना।

केवलज्ञान - समस्त पदार्थों की त्रिकाल और त्रिलोक में होने वाली समस्त पर्यायों को एक साथ जानने वाला ज्ञान।

कृतकृत्य सम्यग्दृष्टि - मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय को नष्ट कर अन्तर्मुहूर्त में क्षायिक सम्यग्दृष्टि होने वाला जीव।

कृष्णलेश्या - निर्दय, दुष्ट और अत्याचारी, परिणाम विशेष।

गणधर - तीर्थंकरों के साक्षात् शिष्य जो उनके उपदेशों को बारह अंगों में निबद्ध करते हैं।

गति - गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त होने वाली जीव की पर्याय।

गुण - जो द्रव्य में रहता है परन्तु जिसमें स्वयं गुण नहीं रहता।

गुणव्रत - मूलगुणों और अणुव्रतों को दृढ़ करने वाले व्रत।

गुणश्रेणी निर्जरा - असंख्यातगुणी-९ निर्जरा।

गुणस्थान - मोह और योग के भाव तथा अभाव से होने वाला आत्मा का क्रमिक विकास।

मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को भली प्रकार रोकना।

ग्रैवेयक - सोलहवें स्वर्ग से ऊपर और अनुदिशों से नीचे के देवों का निवासस्थान।

गृहीतमिथ्यात्व - दूसरे के उपदेश आदि से ग्रहण किया गया मिथ्यात्व।

घातियाकर्म - आत्मगुणों का घात करने वाले कर्म।

चक्षुज्ञान से पहले होने वाला दर्शन।

चारित्रमोह - चारित्र का घातक मोहनीय कर्म।

चेतना - ज्ञान-दर्शन शक्ति।

चौइन्द्रिय - चार (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु) इन्द्रियों वाला जीव।

प्रतिमा, मूर्ति।

छद्मस्थ - अल्पज्ञानी। केवलज्ञान से पहले का सब ज्ञान।

जन्म - जीव के नवीन पर्याय का उत्पाद।

जन्मकल्याणक - तीर्थंकरों के जन्मसमय देवों द्वारा मनाया जाने वाला उत्सव।

जिनवाणी - तीर्थंकरों का उपदेश।

जुगुप्सा - ग्लानि भाव।

ज्योतिष्क - सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र तारा आदि ज्योतिष्क जाति के देव।

तादात्म्य - गुण और गुणी का अभेद।

तीन इन्द्रिय - तीन (स्पर्शन, रसना, घ्राण) इन्द्रिय वाले जीव।

तीर्थंकर - तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करने वाले धर्म के प्रवर्तक आत्मा विशेष।

तुषमासभिन्न - धान्य और उसके छिलके की तरह आत्मा और शरीर को अलग-अलग समझना।

त्रस - एकेन्द्रिय को छोड़ कर शेष सब संसारी जीव।

दर्शन - ज्ञान से पहले होने वाला उपयोग। उपयोग से उपयोगान्तर होने में आत्मा की अवस्था विशेष।

दर्शनमोह - सम्यग्दर्शन को घात करने वाला मोहनीय कर्म।

दशकरण - बंध, उत्कर्षण, संक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति, निकाचना-कर्मों में होने वाली ये दस क्रियायें।

दशपूर्वधारी - उत्पाद पूर्व से लेकर विद्यानुवाद पूर्व तक दस पूर्वों के ज्ञाता।

दिव्यध्वनि - तीर्थंकर सर्वज्ञ की वाणी।

द्वितीयोपशम - अनन्तानुबन्धी के विसंयोजनपूर्वक होने वाला उपशम-सम्यक्त्व। उपशम श्रेणी चढ़ने के सम्मुख अवस्था में होने वाला सम्यक्त्व। यह सम्यक्त्व वेदक सम्यक्त्वी को ही प्राप्त होता है। जब कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व को मिथ्यादृष्टि जीव प्राप्त करता है।

देवमूढ़ता - वर आदि की चाह से रागीद्वेषी देवों की पूजा।

देशघाती - आत्मगुणों का आंशिक घात करने वाला कर्म।

देशचारित्र - बारह व्रतरूप श्रावकों का चारित्र।

देशव्रती - श्रावक के व्रतों का पालक पंचमगुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जीव।

दो इन्द्रिय - स्पर्शन और रसना इन्द्रिय वाले जीव।

द्रव्य - गुण और पर्याय सहित वस्तु।

द्रव्यकर्म - कर्मशक्ति को प्राप्त पुद्गल पिण्ड, ज्ञानावरणादि कर्म।

द्रव्यप्राण - पाँच इन्द्रियाँ, तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास।

द्रव्यलिंग - मुनिवेशी किन्तु अंतरंग से प्रमत्तसंयत गुणस्थान से रहित, १ से ५ तक किसी एक गुणस्थानवाला जीव।

द्रव्यदृष्टि - सामान्य को ग्रहण करने वाली दृष्टि। द्रव्यार्थिक नय।

द्रव्यमन - हृदय में आठ पाँखुड़ी के कमल के आकार एक प्रकार की शारीरिक रचना जो सोचने-विचारने में सहायक है।

द्रव्येन्द्रिय - स्पर्शन, रसना आदि बाह्य इन्द्रियाँ।

ध्यान - सब विकल्प छोड़ कर चित्त को एक लक्ष्य में स्थिर करना।

नय - जो वस्तु के एकदेश को जानता है। वस्तु का आंशिक ज्ञान।

निक्षेप - प्रमाणों और नयों से प्रचलित लोक-व्यवहार।

नामनिक्षेप - गुण न होने पर भी पदार्थ को उस नाम से कहना जैसे - जन्मान्ध का नाम सुलोचन रख लेना।

नारकी - नरक के दुःख भोगने वाला जीव।

निगोद - जिनका आहार, श्वासोच्छ्वास, जन्म-मरण और लक्षण समान होता है, वे साधारण जीव।

नित्यनिगोद - वह जीव जिसने कभी त्रस पर्याय नहीं पाई है।

निर्जरा - बँधे हुए कर्मों का आत्मा से अलग होना।

निर्ग्रन्थ - परिग्रह रहित, दिगम्बर भाव।

निषेक - एक समय में उदय में आने वाले कर्मपरमाणुओं का समूह।

नीललेश्या - अधिक निद्रा, पर-वञ्चकता, तीव्र विषयासक्ति आदि परिणाम।

नीहार - मलमूत्रादि।

नोकर्म - तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल परमाणुओं का ग्रहण। कर्मोदय में सहायक द्रव्य।

नन्दीश्वर - मध्यलोक का आठवाँ द्वीप जहाँ देव अष्टाह्निका पर्वोत्सव मनाते हैं।

पडिकमण-प्रतिक्रमण -'मेरे पाप मिथ्या हों' इस प्रकार का भाव।

परमहंस - हिन्दुओं के नग्न साधु, नागासम्प्रदाय के साधु।

परिवर्तन - द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव रूप संसारचक्र में परिभ्रमण।

परीषह - कर्म-निर्जरा के लिए समताभाव से भूख-प्यास आदि के कष्ट सहना। इनकी संख्या २२ है।

परोक्षज्ञान - इन्द्रियादिक की सहायता से वस्तु को जानने वाला ज्ञान।

पर्याप्तक - आहार, शरीरादि छहों पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त जीव।

पर्याय - द्रव्य की अवस्था विशेष। गुणों का विकार।

पर्यायदृष्टि - विशेष को ग्रहण करने वाली दृष्टि। विशेषापेक्षा कथन।

पल्य - उपमा प्रमाण का एक भेद।

पंचेन्द्रिय - स्पर्शनादि पाँच इन्द्रिय वाले जीव।

पारिणामिक भाव -कर्म के निमित्त बिना स्वभावतः होने वाले जीव के भाव।

पुद्गल - रूप रस गंध स्पर्शादि गुण वाला भौतिक पदार्थ।

पुद्गल परावर्तन -कर्म, नोकर्म परमाणुओं को ग्रहण करने की अपेक्षा संसार-परिभ्रमण का सूचक कालविशेष।

प्रकृति बंध - ज्ञानावरणादि कर्मों का बंध।

प्रतिच्छेद - शक्ति के अविभागी अंश।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व -मोहनीय की सात प्रकृतियों के उपशम से होने वाला सम्यक्त्व।

प्रदेश - अणु के बराबर स्थान।

प्रदेशबन्ध - सूक्ष्म अनन्तानन्त कर्म-परमाणुओं का आत्मा से सम्बन्ध होना।

प्रतिमाधारी - दर्शन, व्रत आदि प्रतिमाओं को धारण करने वाला श्रावक।

प्रत्यक्ष ज्ञान - बिना सहायता के पदार्थों का स्पष्ट ज्ञाता ज्ञान।

प्रत्येक - जिसमें एक शरीर का स्वामी एक प्राणी होता है, ऐसे वृक्ष, फल आदि।

प्रमाण - सच्चा ज्ञान। यथार्थ ज्ञान।

प्रमादपरिणति - कषाय या इन्द्रियासक्ति रूप आचरण।

प्रशस्त राग - शुभ राग।

पंचम काल - कलिकाल। जैनों की मान्यतानुसार भगवान महावीर के निर्वाण के ३ वर्ष ८$\frac{१}{२}$ महीने बाद से प्रारम्भ होने वाला २१००० वर्ष का काल।

बहूदक - हिन्दू संन्यासी का एक भेद।

भवनवासी - देवों की एक जाति।

भव्य - मुक्त होने की योग्यता या रत्नत्रय की प्राप्ति की योग्यतायुक्त जीव।

भावकर्म - आत्मा के रागद्वेषादि भाव।

भावनिक्षेप - वर्तमान पर्यायसंयुक्त पदार्थ-जैसे राज्य करते हुए को ही राजा कहना।

भावलिंगी - बाहर से नग्न तथा अन्तरंग से छठे गुणस्थान वाला मुनि।

भेदविज्ञान - शरीर और आत्मा का पृथक् अनुभवन।

मतिज्ञान - इन्द्रियों और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान।

मद - ज्ञान, जाति, कुल, पूजा, बल, ऋद्धि, तप और शरीर का गर्व।

मनःपर्यय - द्रव्यादिक की अपेक्षा परकीय मनोगत सरल और गूढ़ रूपी पदार्थ को जानने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान।

महाव्रत - स्थूल और सूक्ष्म पापों का सर्वथा त्याग।

मार्गणा - जीवों को खोजने के धर्मविशेष।

मिथ्यात्व - अतत्त्व श्रद्धान।

मिथ्याज्ञान - मिथ्यादर्शन के साथ होने वाला ज्ञान।

मिथ्याचारित्र - मिथ्यात्व के साथ होने वाला चारित्र।

मिश्रगुणस्थान - जहाँ मिथ्यात्व और सम्यक्त्वरूप मिश्र भाव रहते हैं।

मिश्रमोहनीय - वह कर्म जिसके उदय से सम्यक्त्व और मिथ्यात्व रूप मिले हुए भाव रहते हैं।

मुँहपट्टी - ढूंढक साधुओं के मुँह पर बाँधने का कपड़ा।

मूढ़ता - धर्म या सम्यक्त्व में दोषजनक अविवेकीपन के कार्य।

मूर्तिक - रूपादिमान पदार्थ।

मूलगुण - आवश्यक रूप से पालन करने के नियम।

मूलप्रकृतियाँ - कर्म के मूल आठ भेद।

मोह - सांसारिक वस्तुओं से ममत्व।

यथाख्यातचारित्र - स्वाभाविक चारित्र, संज्वलन कषाय के अभाव में होने वाला चारित्र।

योग - मन-वचन-काय की हलन-चलन।

रत्नत्रय - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र।

लब्ध्यपर्याप्तक - जिस जीव की एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती।

लेश्या - कषायमिश्रित योगों की प्रवृत्ति। जो आत्मा को कर्मों से लिप्त करे वह।

लोक - जिसमें जीवादिक छहों द्रव्य रहते हैं या देखे जाते हैं।

लोकमूढ़ता - धर्म समझ कर जलाशयों में स्नान करना, मिट्टी व पत्थर के ढेर लगाना आदि कार्य।

व्यन्तर - देवों की जाति विशेष।

वायुकाय - वायु शरीरधारी स्थावर जीव।

विक्रिया - शरीर को छोटा-बड़ा करने की शक्ति; मूल शरीर से भिन्न शरीर बनाने की शक्ति।

विनय मिथ्यात्व - अविवेकपूर्वक सभी देव-देवियों की समान विनय करना।

विपरीताभिनिवेश - अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि रखना। उल्टा अभिप्राय।

विभाव - कर्मजन्य भाव।

विसंयोजन - अनन्तानुबन्धी का अन्य कषायरूप परिणमन।

वीतरागविज्ञान - शुद्धोपयोग रूप रागरहित ज्ञान।

वेदकसम्यग्दृष्टि - क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि। सम्यक्त्व प्रकृति के उदय का वेदन करने वाला सम्यग्दृष्टि।

वैमानिक - कल्पों/स्वर्गों और ग्रैवेयकों आदि के ऊर्ध्वलोकवासी देव।

वैयावृत्य - मुनि, श्रावक की सेवा-शुश्रूषा।

शुक्लध्यान - अत्यन्त निर्मल और वीतरागतापूर्ण ध्यान।

शुद्धोपयोग - स्वानुभूति। वीतरागविज्ञान। यह सातवें गुणस्थान से ही प्रारम्भ होता है।

शुभोपयोग - पुण्यानुराग। प्रशस्तराग। देवपूजा आदि धर्मकार्यों की ओर उपयोग का लक्ष्य।

श्रुतज्ञान - मतिज्ञान से ज्ञात पदार्थ के विशेष को जानने वाला ज्ञान।

श्वेताम्बर - श्वेत वस्त्रधारी साधुओं का पूजक एक जैन सम्प्रदाय।

सकलचारित्र - महाव्रत। पूर्णचारित्र।

सप्त व्यसन - जुआ, चोरी, मांसभक्षण, मद्यपान, वेश्यासेवन, शिकार खेलना, परस्त्रीरमरण- ये सात प्रकार की बुरी आदतें।

सम्यक्त्व - तत्त्वश्रद्धान।

सम्यग्ज्ञान - सम्यग्दृष्टि का ज्ञान।

सम्यक्चारित्र - सम्यग्दृष्टि का चारित्र।

सम्मूर्च्छन - बिना गर्भ के उत्पन्न होने वाले जीवजन्तु।

समयप्रबद्ध - एक समय में बँधने वाले कर्मपरमाणुओं का समूह।

समवसरण - तीर्थंकर सर्वज्ञ के उपदेश का सभास्थल।

समिति - प्राणिपीड़ा न होने देने के अभिप्राय से मुनि का सावधान होकर प्रवृत्ति करना। प्रवृत्ति में यत्नाचार।

समय - काल का सबसे छोटा हिस्सा।

सम्यग्दृष्टि - तत्त्वश्रद्धानी, देवशास्त्र - गुरु का भक्त।

समुद्घात - मूल शरीर को बिना छोड़े आत्मप्रदेशों का बाहर निकल जाना।

सर्वघाती - आत्मगुणों का पूर्ण घात करने वाला कर्म।

सविपाकनिर्जरा - समय आने पर फल देकर कर्मों का झड़ जाना।

सागर - व्यवहारपल्य से असंख्यातगुणा उद्धारपल्य। उद्धारपल्य से असंख्यातगुणा अद्धापल्य और दस कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यों का एक सागर।

सामान्य - अनेक वस्तुओं में समानता से रहने वाला धर्म।

सामायिक - नियत काल तक सब पापों का पूर्णतः त्याग कर ध्यान करना।

सावद्ययोग - सदोष कार्य, आरम्भी प्रवृत्ति।

सासादन - सम्यक्त्व विराधना का काल। सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त न होने तक के परिणाम। दूसरा गुणस्थान।

सूक्ष्मत्व - नामकर्म के अभाव में पैदा होने वाला सिद्धों का एक गुण।

संशय - दो तरफ ढलता हुआ अनिश्चित ज्ञान।

संक्रमण - एक प्रकृति का अन्य प्रकृतिरूप हो जाना।

संज्ञी - मनसहित जीव। वह जीव जिसमें सोचने-विचारने की शक्ति है।

स्कन्ध - पुद्गल परमाणुओं का समूह।

स्थावर - पृथ्वी आदि पाँच प्रकार के जीव।

स्पर्धक - वर्गणाओं का समूह।

स्थितिबंध - कर्म का आत्मा के साथ रहने का काल।

स्वरूपाचरण - आत्मस्वरूप में विचरना (लीन होना) स्वरूप में चरण करना स्वरूपाचरण है।

स्याद्वाद - आपेक्षिक कथन। कथंचिद् उक्ति।

परिशिष्ट - ३

उद्धरण सूची

卐 प्रस्तुत संस्करण के अर्थसहयोगी 卐

मोक्षमार्ग-प्रकाशक के इस द्वितीय संस्करण का प्रकाशन पूज्य मुनिराज श्री सुधासागरजी महाराज की प्रेरणा से हो रहा है। उनका १९९६ का वर्षायोग जयपुर में भट्टारकजी की नसियाँ में बड़ी प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ था। वर्षायोग के बाद तीन लोक महामण्डल विधान आयोजित था, उस अवसर पर निम्नलिखित दातारों ने अर्थसहयोग प्रदान कर इस संस्करण को प्रकाशित करवाया है —

१. श्रीमती उमरावदेवी पाण्ड्या
२. श्री राजेन्द्रकुमारजी बिल्टीवाले
३. श्रीमती गुणमालादेवी पाण्ड्या
४. श्री श्रेयांसकुमार जी गोधा
५. श्री ताराचन्दजी अजमेरा
६. श्री बाबूलालजी कैलाशचन्दजी पाटोदी
७. श्रीमती सूरजकान्ता - भागचन्दजी छाबड़ा
८. श्रीमती राजकँवरदेवी - भँवरलालजी चौधरी
९. श्री ताराचन्दजी अजमेरा, जौहरी बाजार
१०. श्री राजमलजी रतनलालजी साईवाड़ वाले
११. श्री प्रकाशचन्द्रजी कोठ्यारी, चौड़ा रास्ता
१२. श्रीमती कमलादेवी मेरठ वाले
१३. श्री गुलाबचन्दजी रतनलालजी गंगवाल, रेनवाल
१४. श्री ताराचन्दजी, घी वालों का रास्ता
१५. श्री नेमीचन्दजी कागला, झालरापाटन वाले
१६. श्री माणकचन्दजी काला, मानसरोवर
१७. श्री भँवरलालजी छाबड़ा मेहँदी वाले
१८. श्री अकलंक जैन, मधुवन, टोंक फाटक
१९. श्रीमती चन्दादेवी - धर्मचन्दजी जैन
२०. श्रीमती सूर्यदेवी - कमलेन्दु जैन आगरा वाले
२१. श्रीमती घीसीबाई माणकचन्दजी बैनाड़ा
२२. श्री हरकचन्दजी गंगवाल
२३. श्री फूलचन्दजी जैन गंगापुर वाले
२४. श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन, सेठी कॉलोनी
२५. श्री गुणमाला - भागचन्दजी दीवान
२६. श्रीमती तारादेवी - रूपकिशोरजी, तिलकनगर
२७. श्री खेड़मलजी कुन्दनमलजी गंगवाल
२८. श्री दीपचन्दजी गंगवाल
२९. श्रीमती कौशल्यादेवी चांदमलजी
३०. श्रीमती कस्तूरीबाई बयाना वाले
३१. श्री प्रेमजी अजमेरा
३२. श्री विमलचन्दजी, जवाहरनगर